ओ३म्

अथर्ववेद संहिता

भाषा-भाष्य

(चतुर्थ खण्ड)

मुद्रक—

दी फ़ाइन आर्ट प्रिंटिंग प्रेस, अजमेर.

॥ ओ३म् ॥

अथर्ववेदसंहिता

भाषा-भाष्य

(चतुर्थ खण्ड)

भाष्यकार

श्री पण्डित जयदेवजी शर्मा,

विद्यालङ्कार, मीमांसातीर्थ

संशोधनकर्त्ता

श्री विश्वनाथजी विद्यालङ्कार

भूतपूर्व प्रोफेसर गुरुकुल कांगड़ी,

प्रकाशक

आर्य्य साहित्य मण्डल लि०, अजमेर

तृतीयावृत्ति ५०० | सं० २००९ वि० | मूल्य ६) रुपये

मुद्रक
बा० मथुराप्रसाद शिवहरे
दी फ़ाइन आर्ट प्रिंटिंग प्रेस, अजमेर।

॥ ओ३म् ॥

चतुर्थखण्ड की भूमिका

इस खण्ड में १८, १९, २० काण्ड सम्मिलित हैं। इस खण्ड में कुछ विषय बड़े महत्व के हैं जिनको स्पष्ट करना आवश्यक है।

१८ वें काण्ड में बहुत से विषय विचारणीय हैं जैसे (१) यमयमी संवाद, (२) पितृगण, (३) पिण्डदान, (४) प्रेतदाह, (५) सतीदाह, (६) छाग वध (७) कुछ और्ध्वदेहिक क्रियाएं।

(१) यमयमी संवाद।

ऋग्वेद (१० । १० । १-१४) में १४ और अथर्ववेद (१७ । १ । १—१६) १६ ऋचाएं यमयमी संवाद के नाम से प्रसिद्ध हैं। आचार्य सायण के कथनानुसार यम यमी दोनों भाई बहिन हैं। इन १६ मन्त्रों में विवस्वान् के पुत्र पुत्री यम और यमी दोनों का संभोग के निमित्त संवाद वर्जित है।

हमें वस्तुतः यह पुत्राभिलाषी स्त्री पुरुषों का ही परस्पर संवाद है। १ म मन्त्र में सखा को वरण करने की इच्छुक कुमारी वर वर्णिनी कन्या के विचारों को बड़ी उत्तम रीति से रक्खा गया है। वह एक सखा चाहती है। संसार-सागर में वह अकेली न रहकर सखा से ही पितृऋण के उतारने के निमित्त सन्तान लाभ की इच्छा करती है। २य मन्त्र में उसकी बात का अनुमोदन है। तीसरे मन्त्र में विवाहित पति पत्नी पुत्र प्राप्त न होने पर कम से कम एक सन्तान के अति उत्सुक जान पड़ते हैं। चौथे मन्त्र में सन्तान से निराश दम्पति में पुरुष का वचन प्रतीत होता है। ५, ६, ७ मन्त्रों में सन्तान से निराश दम्पती के भावों को उत्तम रीति से दर्शाया है। ८ वें में वरवर्णिनी कन्या के विवाह के पूर्व के

विचारों का स्मरण है। ९ वें में निराश पति का स्त्री को नियोग द्वारा पुत्र लाभ करने की सम्मति है। १० वें में पत्नी की कुछ अनिच्छा है। ११ वें में पति की स्त्री को पुनः आज्ञा है १२ वें में स्त्री की स्वाभाविक लज्जावश पुनः अनिच्छा है। १३, १४, में पुत्रोत्पादन में असमर्थ एवं महाभारत के राजा पाण्डु के समान रोगादि पीड़ित पति की पुनः आज्ञा है। ऐसा व्यक्ति अपनी स्त्री को भी भगिनी के समान जान अपने शरीर के दोषों से स्त्री के शरीर का नाश नहीं करना चाहिये, इस भाव से पत्नी को पृथक् रहने का आदेश करता है। १५ वें में पत्नी का कटाक्षपूर्वक पति के हृदय की बात जानने के लिये यत्नमात्र है। १६ वें में और भी स्पष्ट रूप से पति ने पुत्र लाभ के लिये आवश्यक कर्त्तव्य का आदेश किया है।

गृहस्थ आदि के सामान्य कर्त्तव्यों का वर्णन तो १४ वें काण्ड में ही कर दिया है। इस काण्ड में तो पुत्रार्थी स्त्री पुरुषों के लिये ही आपद्-धर्म रूप नियोग का वर्णन किया है।

ऐसा ही महर्षि दयानन्द ने भी स्वीकार किया है। साधारण रीति से नियोग के नाना लाभों का वर्णन महर्षि दयानन्द के बताये सत्यार्थ-प्रकाश (४र्थ समुल्लास) में कर दिया है। यहाँ इतना लिखना ही पर्याप्त है कि—१-नियोग विधान से स्त्रियों के दायभाग के अधिकार की रक्षा होती है। पति का मृत्यु हो जाने पर उसकी जायदाद का अधिकार स्त्री को होता है। यदि वह दूसरे पुरुष से पुनः विवाह करे तो वह अपने पहले पति की जायदाद को दूसरे पति के अर्पण कर देगी। परन्तु उस स्त्री के देवर और जेठ आदि संबन्धी उसे ऐसा नहीं करने देंगे। क्योंकि वह जायदाद उनके बाप-दादों की सम्मिलित है। विशेषतया भूमि, मकान और पशु-संपत्ति में ऐसा ही होता है। ऐसी दशा में या तो स्त्री विधवा ही रहे या जायदाद का हक छोड़े। यदि जायदाद को छोड़ती है तो अन्य पुरुष के साथ विवाह करने पर स्त्री को जो हक अपने पूर्व

पति के सर्वस्व पर प्राप्त है वह नष्ट होता है । और वह हक जो देवर जेठ आदि को प्राप्त नहीं था वह उनको मिलता है। यदि दाय भाग को नहीं छोड़ती तो जेठ और देवरादि में अन्य कुल का व्यक्ति उनके भाई के हक पर अधिकार जमाता है इससे शामिलात जायदाद में नया पति कलह का कारण होता है और स्त्री को फिर भी अपने पूर्व पति के जायदाद का हक नहीं रहता । क्योंकि वह हक दूसरे पति ने छीन लिया । (२) दूसरे जो इस नये पति से सन्तान होगी उससे पूर्वपति का वंश नहीं चलता और परस्पर वंश चलाने की प्रतिज्ञा भी खण्डित होती है। ऐसी दशा में स्त्री को अपने मृत पति की जायदाद पर हक भी बना रहे, पुत्र लाभ भी हो और पूर्व पति का वंश भी चले इन सब सुविधाओं के लिये ऐसे विधान की आवश्यकता है जो स्त्री को पुत्र लाभ करने का अधिकार प्रदान करे और स्त्री को उसके दायभाग के अधिकार से भी च्युत न करे। इस विधान का नाम 'नियोग' है ।

मनु आदि धर्मशास्त्रों ने इस नियोग को जहाँ तक हो सका उस कुल में सीमित किया है अर्थात् वह स्त्री देवर से या और किसी अपने पति के सपिण्ड से पुत्र लाभ करे। ऐसा करने से दायभाग और पुत्र आदि अन्य कुल में न जाकर पति का वंश चलता है। इतिहास में ऐसे दृष्टान्त बहुत हैं। जैसे पाण्डु के असमर्थ रहने पर कुन्ती और माद्री दोनों रानियों को नियोग द्वारा सन्तान लाभ हुआ और उनके पुत्रों को वंशागत राज्य भी प्राप्त हुआ । इसी प्रकार विचित्रवीर्य और चित्राङ्गद दोनों के मरने पर उनका बन्धुओं में व्यासदेव द्वारा सन्तान लाभ होकर वंश चला। और वह पौरव वंश ही कहाया। इस प्रकार के पुत्र 'क्षेत्रज' पुत्र कहाते हैं।

जहां जायदाद के अधिकारों के प्रश्न न हों और केवल स्त्रियों का पेट का ही प्रश्न है वहाँ श्रमी (शूद्र) लोगों में 'नियोग' का विशेष प्रयोजन नहीं है। ऐसी दशा में स्त्रियों का पुनः विवाह ही उत्तम है।

यही महर्षि का सिद्धान्त है। यहाँ ऐसा नियम नहीं कि पति के मर जाने पर स्त्री नियोग करे ही, प्रत्युत यदि सन्तान न हो और सन्तान की इच्छा हो तो नियोग विधान ऐच्छिक है। इसी प्रकार पुनर्विवाह के लिये भी समझना चाहिये। इति दिक्।

(२) पितृगण।

'पिता' बहुत प्रचलित शब्द है। पालन करने वाला 'पिता' कहाता है। विद्या सम्बन्ध से आचार्य भी 'पिता' कहाता है। ब्राह्मण ग्रन्थों में 'पिता' और 'पितरः' शब्दों का प्रयोग नीचे लिखे प्रकारों से आया है।

(१) यमो वैवस्वतो राजा इत्याह तस्य पितरो विशः। त इम आसत इति स्थविरा उपसमेता भवन्ति। तानुपदिशति यजूंषि वेदः। शत० १३।४।३।६॥

वैवस्वत राजा यम की प्रजाएं 'पितरः' हैं ये स्थविर वृद्धजन हैं उनका वेद यजुर्वेद है।

(२) क्षत्रं वै यमो विशः पितरः। श० ७।१।१।४॥

क्षत्रिय 'यम' हैं और प्रजाएं ही 'पितरः' हैं।

(३) मर्त्याः पितरः। श० २।१।३।४॥ मरने हारे मनुष्य ही 'पितरः' हैं।

(४) गृहाणां हि पितरः ईशते। शं० २।६।१।४०। घरों के स्वामी 'पितरः' हैं।

(५) देवाः वा एते पितरः। गो० ३।१।२४॥ देवगण, तेजस्वी, व्यवहार कुशल, दानशील पुरुष 'पितरः' हैं।

(६) त्रयाः वै पितरः। सामवन्तः, बर्हिषदः, अग्निष्वात्ताः। श० ५।५।५।२८

तीन प्रकार के पितर हैं सोमवान्, बर्हिषद् और अग्निष्वात्त।

(७) याम् अग्निरेव दहन् स्वदयति ते पितरोऽग्निष्वाताः। श० २।६।१।७॥

जिनको अग्नि ही जलाता हुआ स्वाद देता है वे पितर अग्निष्वात्त हैं।

(८) ये वै अयज्वानो गृहमेधिनः। ते पितरो अग्निष्वात्ताः। तै० १।६।७।६॥

जो गृहस्थ यज्ञशील नहीं हैं वे 'अग्निष्वात्त' कहाते हैं।

(६) अथ ये दत्तेन पक्वेन लोकं जयन्ति ते पितरो बर्हिषदः। श० २।६।१।७॥ जो दान और पाक यज्ञ से लोक का जय करते हैं वे पितर 'बर्हिषद्' हैं।

(१०) ये वै यज्वानः ते पितरो बर्हिषदः। तै० ब्रा० १।६।८।६॥ जो यज्ञशील हैं वे 'बर्हिषद्' पितर हैं।

(११) तद् ये सामेनेजानाः ते पितरः सोमवन्तः। श० १।६।१।७ जो सोम से यज्ञ करते हैं वे 'सोमवान्' पितर हैं।

(१२) ओषधिलोको वै पितरः। श० १३।८।१।२॥ ओषधियां पितर हैं।

(१३) षड वा ऋतवः पितरः। श० २।४।३। छहों ऋतु पितर हैं।

इस प्रकार 'पितरः' शब्द बड़ा व्यापक शब्द है। पालन करने वाले गुणों को देखकर ओषधि ऋतु आदि जड़ पदार्थों को भी 'पितर' कहा गया है। इसी प्रकार प्राणो वै पिता। ए० २।३८। एष वै पिता य एष तपति। श० १४।१।७।१५॥ प्राण और सूर्य भी पिता हैं। परन्तु इन स्थलों पर भी कहीं मृत जीवों को पितर शब्द से नहीं कहा गया है।

अब वेद मन्त्रों में आये पितरों पर विचार करते हैं—वेद में जहाँ भी 'पितरौ' ऐसा द्विवचन प्रयोग होगा वहाँ वह माता पिता के लिए प्रयुक्त हुआ है इसमें सन्देह नहीं है। मन्त्र (१८।१ ४२) में सरस्वती के उपासक पितरों का वर्णन है। सरस्वती शब्द परमात्मा, वेदवाणी और स्त्री तीनों का वाचक है। इससे ईश्वरोपासक मुमुक्षु जन, वेदज्ञ विद्वान् और गृहस्थजन 'पितर' कहाते हैं। मन्त्र (१८।१।४४) में अवर, पर, मध्यम, ये तीन प्रकार के पितर बतलाये हैं। उनके सौम्य, अवृक, ऋतज्ञ, ये तीन विशेषण हैं। सौम्य का अर्थ सोम अर्थात् ऐश्वर्य, ज्ञान और बल सम्पन्न हों। अवृक अर्थात् जो भेड़िये के समान कुटिल क्रूर चोर स्वभाव के न हों। ऋतज्ञ अर्थात् सत्य व्यवहार और वेदव्यवस्था, विधि-विधान के जानकार हों।

सू० १ म के मन्त्र ४६ में पृथिवी लोक पर शासन करने वाले उन

अधिकारियों को 'पितर' कहा गया है जो प्रजाओं पर शासन करते हैं। ४८ में अजेय इन्द्र का वर्णन है और ४९ में समस्त जनों के आश्रय रूप राजा वैवस्वत यम के आदर करने का आदेश है। इस स्थान पर स्पष्ट 'यम' स्वयं राजा है। वह विविध ऐश्वर्यों और बसनेहारी प्रजाओं का स्वामी होने से 'वैवस्वत' है और नियन्ता, शासक होने से 'यम' है। मन्त्र ५२ में गोड़ों को संकोच कर भोजन स्वीकार करने वाले जीवित पितरों का वर्णन है। समस्त सूक्त में जहाँ 'यम' शब्द से परमेश्वर का ग्रहण है वहां ही पक्षान्तर में राजा परक अर्थ भी आप से आप निकलता है। 'यम' क्यों मृत्यु वाचक नहीं और 'पितरः' शब्द क्यों मृत पितरों का ग्रहण नहीं करता इसका हेतु क्रम से पूर्ण सूक्त का पठन करने से स्पष्ट पता लग जाता है।

(३) प्रेतदाह और और्ध्वदैहिक कर्म-पद्धति।

मन्त्र-पाठ में शव को कन्धों पर न लेजाकर गाड़ी पर लेजाना लिखा है। गाड़ी पर ईसाइयों का शव को लेजाना आर्ष प्रयोग का अनुकरण है। इसका प्रचार होना उत्तम है। लेजाते समय गृहसूत्रों में यमगाथा के गान का विधान है।

(४) सतीदाह।

सायण ने विनियोग लिखा है कि—प्रथम ऋचा से चिता में भार्या को मृतपुरुष के साथ लेटा दे। मन्त्रपाठ इस प्रकार है—

इयं नारी पतिलोकं वृणाना नि पद्यत उप त्वा मर्त्य प्रेतम्।
धर्मं पुराणमनुपालयन्ती तस्यै प्रजां द्रविणं चेह धेहि ॥

"यह नारी पतिलोक का वरण करती हुई, पुराण धर्म का पालन करती हुई, तुझ मृतपुरुष के पास आती है, तू उसको यहां प्रजा और धन प्रदान कर।" इस वाक्य-रचना से स्त्री को जला देने का अर्थ कैसे निकाला जाता है यह आश्चर्यजनक है।

इसलिये विनियोग ऐसा प्रतीत होता है कि शोकातुर स्त्री उस समय चिता के पास आती है और शोक प्रकट करती या अन्तिम दर्शन करती है। उस समय वह पति के मर जाने पर पति के सर्वस्व की उत्तराधिकारिणी बनती है। पुराने आचार के अनुसार धर्माचरण पूर्वक रहती हुई मृत-पुरुष की प्रजा और ऐश्वर्य की स्वामिनी बनती है।

(५) कुन्तापसूक्त ।

२० वें काण्ड के १२७ वें सूक्त से लेकर १३६ वें सूक्त तक सामान्यतः 'कुन्तापसूक्त' कहाते हैं। कुन्तापसूक्तों का पाठ ऋग्वेद के परिशिष्ट में पढ़ा गया है।

ऐतरेय ब्राह्मण के अनुसार कुन्ताप सूक्तों में केवल ३० ऋचाओं का समावेश है। जिसमें ६ नाराशंसी, ३ रैभी, ४ पारीक्षित, ४ कारव्य, ५ दिशां क्लृप्ति, ६ जनकल्प और ५ इन्द्रगाथा हैं। ये ही 'कुन्ताप' सूक्त कहाते हैं। इसके अनन्तर ७० पद ऐतशप्रलाप कहे जाते हैं जिनको योग विभाग द्वारा ७६ पद बना कर (सू० १२९–३२) अथर्ववेदी पढ़ते हैं। इसके अनन्तर ६ प्रवल्हिकाएं [१३३], ६ आजिज्ञासेन्याएं [१३४], ३ प्रतिराधा, १ अतिवाद, २ देवनीथ नामक ऋचा हैं, बाद में ३ भूतेच्छद्, इसके अनन्तर १६ आहनस्या ऋचाएं हैं इन सबको अथर्ववेदी साहचर्य से कुन्तापसूक्तों के नाम से ही व्यवहृत कर लेते हैं।

(६) ऐतश-प्रलाप ।

इन कुन्ताप सूक्तों में ऐतशप्रलाप के विषय में ऐतरेय ब्राह्मणकार महीदास ने लिखा है कि—

ऐतशोह मुनिरग्नेरायुर्ददर्श। यज्ञस्यायातयाममिति हैक आहुः सोऽब्रवीत् पुत्रान्, पुत्रकाः अग्नेरायुरदर्शं तदभिलपिष्यामि यत्किं च वदामि तन्मे मा परिगातेति स प्रत्यपद्यतैतां अश्वा आप्लवन्ते प्रतीपं प्रातिसत्वनमिति तस्याभ्यग्निरैतशायनः एत्याऽकालेऽभिहाय मुखमप्यगृह्णाद् अदृपन्नः पितेति ॥ तं होवाचापेह्यलसोऽभूर्यो मे वाचमवधीः। शतायुं गामकरिष्यं

सहस्त्रायुं पुरुषम् । पापिष्ठां ते प्रजां करिष्यामि यो मे इत्थमसक्थाः इति । तस्मादाहुरभ्यग्नय ऐतशायना और्वाणां पापिष्ठाः ।

अर्थ—"ऐतेश मुनि ने अग्नि की आयु का साक्षात् किया । कोई इस मन्त्रकाण्ड को यज्ञ का 'अयातयाम' कहते हैं । ऐतशमुनि ने पुत्रों को कहा—हे पुत्रो ! मैंने अग्नि की आयु का साक्षात् दर्शन किया है । वह मैं कहूँगा । मैं जो कुछ भी कहूँ उसको बुरा मत कहना । उसने कहना प्रारम्भ किया 'एता अश्वा आप्लवन्ते' इत्यादि (सू० १२९–१३२) । ऐतश के अभ्यग्नि नामक पुत्र ने बीच ही में उठकर पिता का मुख पकड़ लिया । कहा कि—हमारा पिता पागल हो गया है । इस पर पिता ने कहा—पुत्र ! दूर हो, तू मेरे वचन समझने में मन्द है ? इसी से मेरी वाणी को तूने बीच ही में नाश किया है । मैं 'गौ' को १०० वर्ष और मनुष्य को १००० वर्ष की आयु वाला कर सकता हूँ, परन्तु तूने मुझे बीच में इस प्रकार टोका है इसलिये तेरी सन्तान को बहुत पापयुक्त, पतित ठहराता हूँ इसीसे और्व कुल में एतशायन सबसे अधिक पतित कहे जाते हैं ।"

इस कथा की सत्यता के विषय में कुछ नहीं कहा जा सकता । यह कहना कि ये वचन ऐतश मुनि के स्वयं गढ़े हुए हैं, ऐसा नहीं माना जा सकता । सायण ने अपने भाष्य में 'अलसो भूर्यो मे वाचमवधीः' इसका व्याख्यान करते हुए लिखा है—'अहमुन्मत्त इति तव बुद्धिर्नत्वहमुन्मत्तः किन्तु मन्त्रकाण्डमीदृशम् ।' हे पुत्र तू समझता है कि मैं उन्मत्त हो गया हूँ, परन्तु नहीं । मैं उन्मत्त नहीं । मन्त्रकाण्ड ही ऐसा है ? इससे प्रतीत होता है कि ऐतश मुनि तो द्रष्टामात्र हैं । मन्त्र तो पूर्व से ही विद्यमान थे । इस मन्त्रकाण्ड के पूर्व 'एता अश्वाः' ये पद होने से ही कदाचित् उस सूक्त के द्रष्टा ऋषि का नाम भी 'ऐतश' है ।

(७) आहनस्या ऋचाएं ।

सूक्त १३६ की १६ ऋचाएं 'आहनस्या' कहाती हैं । इनके सम्बन्ध

में ऐतरेय ब्राह्मण में लिखा है—आहनस्याद्वै रेतः सिच्यते। रेतसः प्रजाः प्रजायन्ते। (ऐत० ब्रा० १, ३०। १०) इस पर सायण का भाष्य है—"आहननं स्त्रीपुरुषयोः परस्परसंयोगः। तद्वत् प्रजोत्पत्तिहेतुत्वात् ऋचोऽप्याहनस्याः। आहनस्यं मिथुनमित्युक्तं।"

अर्थात्—आहनस्य से वीर्य सेचन किया जाता है। वीर्य से प्रजाए उत्पन्न होती हैं। स्त्री पुरुषों का परस्पर संयोग 'आहनन' कहाता है। उसी प्रकार प्रजोत्पत्ति के कारण होने से ये ऋचाएं 'आहनस्या' हैं।

इस आधार पर विचार करने से यह सूक्त प्रजोत्पत्ति के गूढ़ रहस्यों का भी वर्णन करता है। परन्तु हमने प्रस्तुत भाष्य में प्रजोत्पत्ति पक्ष पर विशेष प्रकाश नहीं डाला। हमने कई कारणों से राष्ट्र पक्ष में ही इसकी व्याख्या की है। जिस प्रकार गर्भ-विज्ञान, काम-विज्ञान और प्रजनन-विज्ञान के शास्त्रीय भाग को विशुद्ध दृष्टि वाले विशुद्ध रूप से देखते हैं और पतित प्रवृत्ति वाले उन ही ग्रन्थों से अपने दुर्भाव-तृष्णा की पूर्त्ति भी करते हैं उसी प्रकार इन सूक्तों के सम्बन्ध में भी समझना चाहिये।

(८) उपसंहार।

अन्त में मैं विद्वान् महानुभावों से सप्रेम, सानुनय निवेदन करता हूँ कि मेरे इस श्रम में अनेकानेक त्रुटियां होनी सम्भव हैं। अनेक स्थलों पर विचार अपरिपक्व होने सम्भव हैं। सर्व पक्षों में प्रकाश करने वाली ईश्वरीय आगाध वेदवाणी के परम तत्व को सर्वाङ्ग रूप से प्रकट करने में मानव तुच्छ बुद्धि का क्या सामर्थ्य ? तो भी निवेदन है कि विद्वान्जन विचार और भाषा सम्बन्धी और सिद्धान्त और प्रमाण सम्बन्धी जिन त्रुटियों को भी दर्शावेंगे या वेदमन्त्रों पर जो भी स्वतन्त्र विचार प्रकट करेंगे उनके उस उपकार के लिए मैं कृतज्ञ होऊंगा। यदि मेरे जीवन काल में इस ग्रन्थ का पुनः भी संस्करण हुआ तो उनको यथा प्रमाण सुधार कर विद्वानों के प्रति हार्दिक कृतज्ञता प्रकट कर सकूंगा। और इस वेदाध्ययनरूप तप और वेदचिन्तनरूप ज्ञानयज्ञ में सफल हो सकूंगा।

गुण ग्रहण करने में हंस-स्वभाव को दर्शाने वाले महानुभाव गुण ग्रहण करने में तत्परता दिखावेंगे ही और जो इससे विपरीत केवल दोष-दर्शन कर व्यर्थ के निन्दा और कलह के प्रवाद बढ़ाने की चेष्टा करते हैं उनके प्रति निवेदन है कि—

ये नाम केचिदिह नः प्रथयन्त्यवज्ञां
जानन्तु ते किमपि, तान् प्रति नैष यत्नः ॥

अन्त मेंः—भट्ट कुमारिल के शब्दों में—

आगमप्रवणश्चाहं नापवाद्यः स्खलन्नपि ।
नहि सद्-वर्त्मना गच्छन् स्खलितेष्वप्यपोद्यते ॥

विद्वानों का अनुचर—
जयदेव शर्मा
विद्यालंकार, मीमांसातीर्थ

———

अथर्ववेद-भाषाभाष्ये (चतुर्थखण्डस्य)

विषय-सूची

भूमिका

सूक्तसंख्या

अष्टादशं काण्डम्।

सूक्तसंख्या	विषय	पृष्ठाङ्क

अथर्ववेदसंहिता

अथाष्टादशं काण्डम् ।

[१] सन्तान के निमित्त पति पत्नी का परस्पर विचार ।

अथर्वा ऋषिः । यमो मन्त्रोक्ता वा देवताः । ४१, ४३ सरस्वती । ४० रुद्रः । ४०–४६, ५१, ५२ पितरः । ८, १५ आर्षीपंक्तिः । १४, ४९, ५० भुरिजः । १८, २०, २१, २३ जगत्यः । ३७, ३८ परोष्णिहौ । ५६, ५७, ६१ अनुष्टुभः । ५९ पुरो बृहती शेषास्त्रिष्टुभः । एकषष्ट्यृचं सूक्तम् ॥

ओ चित् सखायं सख्या ववृत्यां तिरः पुरू चिदर्णवं जगन्वान् ।
पितुर्नपातमा दधीत वेधा अधि क्षमि प्रतरं दीध्यानः ॥ १ ॥

भा०—मैं स्त्री सखिभाव से प्रेरित होकर अपने सखा पति को स्वयं वरण कर चुकी हूं और महान् ब्रह्मचर्य सागर से पार गया हुआ बुद्धिमान् पुरुष, इस पृथ्वी में या अपनी भूमिरूप जाया में पुत्र को दुःखसागर से तरने का साधन विचारता हुआ, अपने पिता के वंश को न गिरने देने हारी वंशकर्त्ता सन्तान का आधान करे ।

न ते सखा सख्यं वष्ट्येतत् सलक्ष्मा यद् विषुरूपा भवाति ।
महस्पुत्रासो असुरस्य वीरा दिवो धर्तार उर्विया परि ख्यन् ॥२॥

भा०—हे पत्नि ! तेरा यह पति इस मित्रता के भाव को क्या नहीं चाहता ? कि समान लक्षणों से युक्त स्त्री प्रजा आदि द्वारा बहुरूप हो जाय । क्योंकि बड़े बलवान् पुरुष के वीर्यवान् पुत्र ही द्यौलोक और पृथ्वी के धारण करने वाले देखे जाते हैं ।

उशन्ति घ ते अमृतास एतदेकस्य चित् त्यजसं मर्त्यस्य ।
नि ते मनो मनसि धाय्यस्मे जन्युः पतिस्तन्वमा विविश्याः ॥३॥

भा०—हे पते ! वे मोक्ष में प्राप्त जीवन्मुक्त पुरुष भी यह कामना करते हैं कि प्रत्येक मनुष्य का उत्तम पुत्र उत्पन्न हो । तेरा मन मेरे चित्त में ही रक्खा है । पुत्र जनन में समर्थ वीर्यसेक्ता मेरा पति होने के कारण तू ही मेरे शरीर में प्रविष्ट हो ।

न यत् पुरा चकृमा कद्ध नूनमृतं वदन्तो अनृतं रपेम ।
गन्धर्वो अप्स्वप्या च योषा सा नौ नाभिः परमं जामि तन्नौ ॥४॥

भा०—यौवन काल में सन्तान न प्राप्त होने पर पति कहता है—कि वह क्या शेष है जो हमने पूर्व, यौवव काल में नहीं किया अर्थात् सन्तान प्राप्ति के लिये सभी कुछ किया । निश्चय से सत्य का भाषण करने वाले हम क्या असत्य बोलें ? जब गन्धर्व अर्थात् पुरुष भी जलीय परमाणुओं का बना हो और स्त्री भी जलमयी हो, अर्थात् स्त्री और पुरुष अग्नि और जल के स्वभाव के न होकर दोनों जल स्वभाव के, एक ही प्रकृति के हों तो वही जलीय प्रकृति हम दोनों की उत्पत्ति कारण है । वही हम दोनों में बड़ा दोष है जो सन्तान उत्पन्न होने में बाधक है ।

गर्भे नु नौ जनिता दम्पती कर्देवस्त्वष्टा सविता विश्वरूपः ।
नकिरस्य प्र मिनन्ति व्रतानि वेद नावस्य पृथिवी उत द्यौः ॥५॥

भा०—पत्नी निराश होकर कहती है । क्या उत्पादक परमेश्वर हम दोनों को गर्भ में ही एक दूसरे का पति-पत्नी बना देता है ? वह परमात्मा समस्त प्रकार के प्राणियों का रचयिता, सबका उत्पादक, अखिल विश्व अर्थात् प्राणियों को रचने वाला है । क्या उस परमात्मा की बनाई कर्म-व्यवस्थाओं को कोई भी नहीं तोड़ सकते ? क्या हम दोनों इस रहस्य के विषय में जान सकते हैं ? या पृथिवी और आकाश या माता और पिता दोनों ही उसके विषय में जानते हैं ।

को अद्य युङ्क्ते धुरि गा ऋतस्य शिमीवतो भामिनो दुर्हृणायून्।
आसन्निषून् हृत्स्वसो मयोभून् य एषां भृत्यामृणधत् स जीवात् ॥६॥

भा०—नित्य गतिशील संसार और देह के धुरे में कौन, क्रियाशक्ति से युक्त, तेजस्वी, प्रतापी इन्द्रियों, प्राणों और सूर्य आदि को घोड़ों या बैलों के समान नियुक्त करता है। ये इन्द्रिय आदि सुख में गति करने वाले, हृदयों में विद्यमान और सुख के उत्पादक हैं। जो इनके भरण-पोषण की क्रिया को बढ़ाता है वह दीर्घ काल तक जीता है।

को अस्य वेद प्रथमस्याह्नः क ईं ददर्श क इह प्र वोचत्।
बृहन्मित्रस्य वरुणस्य धाम कदु ब्रव आहनो वीच्या नॄन् ॥ ७ ॥

भा०—इस संसार के प्रथम दिन के विषय में कौन जानता है? इस जगत् को बनते हुए भी किसने देखा, इस विषय में कौन कह सकता है? सब के स्नेही सर्वश्रेष्ठ परमात्मा का धारण सामर्थ्य भी बड़ा भारी है। सब मनुष्यों का विवेक करके, हे हृदय पर चोट पहुंचाने या हृदय में प्रवेश करने हारी प्रियतमे! तुम क्या कह सकती हो?

यमस्य मा यम्यं१ काम आगन्त्समाने योनौ सहशेय्याय।
जायेव पत्ये तन्वं रिरिच्यां वि चिद् वृहेव रथ्येव चक्रा ॥८॥

भा०—पत्नी कहती है कि पतिपत्नी भाव के योग्य स्थान में एक साथ शयन करने के लिये मुझ यमी अर्थात् ब्रह्मचारिणी को यम—ब्रह्मचारी की कामना हुई है। और यह अभिलाषा हुई है कि जिस प्रकार स्त्री अपने पति के लिये अपना शरीर अर्पण करती है उसी प्रकार मैं ब्रह्मचारिणी अपने शरीर को अपने अभिलषित ब्रह्मचारी के हाथों सौंप दूं। रथ में लगे दो चक्रों के समान हम दोनों एक गृहस्थ रथ में जुड़कर उत्तम रीति से एक दूसरे का भार उठालें।

न तिष्ठन्ति न नि मिषन्त्येते देवानां स्पश इह ये चरन्ति।
अन्येन मदाहनो याहि तूयं तेन वि वृह रथ्येव चक्रा ॥ ९ ॥

भा०—इस संसार में जो विद्वान् राजाओं के सिपाही विचरते हैं वे न कभी विश्राम लेते हैं और न कभी झँपकते हैं, वे सदा सचेत रहते हैं, अतः उनके उत्तम राष्ट्र में, और निरीक्षण में हे पुत्राभिलाषिणि ! हे कटाक्ष से आघात करने वाली ! या हृदयंगमे ! प्रियतमे ! पुत्रोत्पादन में असमर्थ मुझ पति से अतिरिक्त अन्य के साथ शीघ्र संग कर, उसके साथ ही रथ में लगे दो चक्रों के समान परस्पर गृहस्थ-भार को उठा।

रात्रीभिरस्मा अहभिर्दशस्येत् सूर्यस्य चक्षुर्मुहुरुन्मिमीयात्।
दिवा पृथिव्या मिथुना सबन्धू यमीर्यमस्य विवृहादजामि ॥१०(१)

भा०—वह परमात्मा बहुत सी रातों और बहुत से दिन गुजर जाने पर स्वयं ही इस पुरुष को पुत्र आदि दे दिया करता है। इसलिये सम्भव है कि सर्वप्रेरक उस परमेश्वर की दयामय दृष्टि; हम निरपत्य पति पत्नी पर फिर भी पड़े। और हम प्रकाशमान सूर्य और पृथिवी के समान परस्पर जोड़े बने हुए, समान रूप से बन्धु होते हुए, मैं पुनः संयमी अर्थात् व्रतनिष्ठ तुझ पति के साथ दोषरहितरूप से संग करूं। चिरकाल तक यदि अपत्य उत्पन्न न हो तो स्त्री का विचार होता है कि कुछ वर्षों में ईश्वर की कृपादृष्टि से पुनः पुत्रलाभ हो। वा संभव है सूर्य-पृथिवी के समान दोनों पति पत्नी परस्पर एकत्र रहकर भी ब्रह्मचारी और व्रती रहकर तप करें तो पुनः पुत्रोत्पन्न कर सकें।

आ घा ता गच्छानुत्तरा युगानि यत्र जामयः कृणवन्नजामि।
उप बर्बृहि वृषभाय बाहुमन्यमिच्छस्व सुभगे पतिं मत् ॥११॥

भा०—वे भविष्य के पति पत्नियों के जोड़े भी निश्चय से आने सम्भव हैं, जिनमें सन्तान उत्पन्न करने में समर्थ, कन्यायें या पुत्र-वधुएँ दोष रहित सन्तान उत्पन्न करेंगी। इसलिये हे उत्तम भाग्यशालिनी स्त्री ! तू वीर्यसेचन में समर्थ पुरुष के लिये अपनी बाहु को सिरहाने के समान लगा, उसको सुखी कर और मुझ सन्तान उत्पन्न करने में असमर्थ पुरुष से भिन्न पुरुष को अपना पति चाह, ऐसी मेरी आज्ञा है।

किं भ्रातासद् यदनाथं भवाति किमु स्वसा यन्निर्ऋतिर्निगच्छात् ।
काममूता बह्वे३तद् रपामि तन्वामे तन्वा३ सं पिपृग्धि ॥१२॥

भा०—इस प्रकार नियोग अर्थात् आज्ञा पूर्वक अपने से अन्य पति कर लेने की आज्ञा देते हुए पुत्र-उत्पादन में असमर्थ पति के प्रति स्त्री लज्जावश पुनः अपने पति को कहती है, हे प्रियतम ! क्या आप भाई हैं कि जिससे आप नाथ के समान नहीं आचरण करते ? और क्या मैं भी आपकी भगिनी हूँ कि परस्पर स्वयं पुत्र उत्पन्न करने में हमें पाप लगे ? मैं आपके प्रति अति अभिलाषा से आविष्ट होकर यह बहुत कुछ कह रही हूँ । मेरी इच्छा यही है कि अपने देह से इस मेरे शरीर को आप भली प्रकार आलिंगन करो ।

न ते नाथं यम्यत्राहमस्मि न ते तनूं तन्वा३ सं पपृच्याम् ।
अन्येन मत् प्रमुदः कल्पयस्व न ते भ्राता सुभगे वष्ट्येतत् ॥१३॥

भा०—हे यमि ! अपनी अभिलाषा के पूर्ण न होने पर भी पति-गृह में संयम से रहने वाली हे स्त्रि ! तेरे पुत्रलाभरूप प्रयोजन को मैं पूर्ण करने में समर्थ नहीं हूँ और इसी कारण तेरे शरीर को मैं अपने शरीर के साथ सम्पर्क नहीं कराता हूँ । अतएव मेरे से भिन्न पुरुष के साथ अपने प्रमोदों को प्राप्त कर । हे सौभाग्यवति ! तेरे आक्षेप के अनुसार यह असमर्थ पति तेरा भ्राता ही सही । वह शरीर-सम्पर्क आदि कार्य को नहीं चाहता ।

न वा उ ते तनूं तन्वा३ सं पपृच्यां पापमाहुर्यः स्वसारं निगच्छात् ।
असंयदेतन्मनसो हृदो मे भ्राता स्वसुः शयने यच्छयीय ॥१४॥

भा०—जब असमर्थ पति अपनी स्त्री को अपनी बहिन के समान समझ लेता है तब वह उसी बुद्धि से कहता है—हे प्रियतमे ! तेरे शरीर को अपने शरीर से अब नहीं सम्पर्क कराऊँ, क्योंकि विद्वान् लोग इसको पाप कहते हैं कि जो वह अपनी बहिन का भोग करे । क्योंकि यदि मैं

तेरा भाई सा होकर अपनी बहिन के सेज पर सो जाऊँ तो यह मेरे हृदय और चित्त के संयम का भंग होगा ।

बतो बंतासि यम नैव ते मनो हृदयं चाविदाम ।
अन्या किल त्वां कृक्ष्येव युक्तं परिं ष्वजातै लिबुंजेव वृक्षम् ॥१५॥

भा०—हे नियमवान् पुरुष ! खेद है कि तू निर्बल है । तेरे मन और हृदय को हम नहीं समझ पाये । बगल की रस्सी जिस प्रकार जुते हुए घोड़े के संग चिपटी रहती है उस प्रकार या वृक्ष की लता जिस प्रकार आलिंगन करती है उस प्रकार तुझ को क्या कोई दूसरी स्त्री आलिंगन करती है ? जिससे तू मुझ से इस प्रकार अपना मन बटोरता है ।

अन्यमूषु यम्यन्य उ त्वां परिं ष्वजातै लिबुंजेव वृक्षम् ।
तस्यं वा त्वं मनं इच्छा स वा तवाधां कृणुष्व संविदं सुभंद्राम् १६

भा०—हे यमि ! दृढ़व्रतपत्नी ! तू अन्य पुरुष को ही भली प्रकार आलिंगन कर और तुझको दूसरा पुरुष ही, वृक्ष को लता के समान, आलिंगन करे । अथवा तू ही उसके चित्त की अभिलाषा कर और वह तेरे चित्त को चाहे । और खूब कल्याणकारी परस्पर सहमति करो ।

बहुत से विद्वान् यम-यमी को भाई बहिन मानकर उसका संवाद कराते हैं । महर्षि दयानन्द ने इसको पुत्रोत्पादन में असमर्थ पति और समर्थ पत्नी के बीच का संवाद स्वीकार किया है । यही अधिक युक्तियुक्त प्रतीत होता है । उसी को यहाँ दर्शाया है ।

परमेश्वर और वेदवाणी ।

त्रीणि छन्दांसि कवयो वि येतिरे पुरुरूपं दर्शतं विश्वचंक्षणम् ।
आपो वाता ओषंधयस्तान्येकंस्मिन् भुवन आर्पितानि ॥ १७ ॥

भा०—तीनों छन्दों अर्थात् वेदों को, नाना प्रकार से विश्व में प्रकट होने वाले, विश्व के द्रष्टा, दर्शनीय परमेश्वर को लक्ष्य करके ही, क्रान्त-

दर्शी विद्वान् पुरुष व्याख्या करते हैं। जिस प्रकार जल, नाना वायुएं और ओषधियें वे सब एक ही भूलोक पर आश्रित हैं, उसी प्रकार उस परमेश्वर के स्वरूप वर्णन में ही ऋग्वेद, सामगान और याजुषकर्म तीनों आश्रित हैं।

वृषा वृष्णे दुदुहे दोहसा दिवः पयांसि यह्वो अदितेरदाभ्यः।
विश्वं स वेद वरुणो यथा धिया स यज्ञियो यजति यज्ञियाँ ऋतून्॥ १८॥

भा०—वर्षण करने में समर्थ महान् और नित्य परमेश्वर अखण्ड द्यौलोक से, वर्षण करने में समर्थ सूर्य के दोहन करने के सामर्थ्य से दोहन करता है, रसवर्षण करता है। वह सर्वश्रेष्ठ परमेश्वर जिस प्रकार समस्त संसार को बुद्धि से ठीक ठीक जानता है, उसी प्रकार वह महान् यज्ञकर्त्ता विश्वमय-यज्ञ के करनेहारी ऋतुओं को परस्पर संयुक्त करता है।

रपद् गन्धर्वीरप्या च योषणा नदस्य नादे परि पातु नो मनः।
इष्टस्य मध्ये अदितिर्नि धातु नो भ्राता नो ज्येष्ठः प्रथमो वि वोचति॥ १९॥

भा०—कर्म और ज्ञान को देने में हितकारी तथा जलमयी स्त्री के समान सेवन करने योग्य वेदवाणी ऐश्वर्यवान् परमेश्वर की महिमा के स्तवन में हमें लगा कर हमारे मन की सब प्रकार से रक्षा करे, अखण्ड परमेश्वर की अखण्ड वेदवाणी हमारे मन को अभीष्ट कार्यों में स्थापित करे। हम में से सब से श्रेष्ठ और बड़ा, पूजनीय महान् परमेश्वर ही सब का भरण पोषण करने हारा है। सब से प्रथम वही हमें नाना प्रकार से उपदेश करता है।

सो चिन्नु भद्रा क्षुमती यशस्वत्युषा उवास मनवे स्वर्वती।
यदीमुशन्तमुशतामनु क्रतुमग्निं होतारं विदथाय जीजनन्॥ २०(२)

भा०—वह वेदवाणी ही निश्चय से सुखजनक, मन्त्रमय शब्द से युक्त, वीर्यवाली उषा के समान सब पदार्थों को प्रकाशित करने हारी, मननशील पुरुष के लिए अत्यन्त सुखकारिणी होकर प्रकट होती है। क्योंकि विद्वान् पुरुष नाना प्रकार की कामना करने वालों में से इस वेदवाणी की ही कामना करने वाले क्रियाशील, ज्ञानवान्, दूसरे को भी ज्ञान प्रदान करने हारे विद्वान् को वेदवाणी के ज्ञान के लिए उत्पन्न करते हैं।

अध त्यं द्रप्सं विभ्वं विचक्षणं विराभरदिषिरः श्येनो अध्वरे।
यदी विशो वृणते दस्ममार्या अग्निं होतारमध धीरजायत ॥२१॥

भा०—और उस रसरूप से आस्वादन करने योग्य, सर्वव्यापक, विविध रूप से संसार के द्रष्टा उस परमेश्वर को कामनावान्, ज्ञानवान्, हंस रूप पारगामी आत्मा प्राप्त होता है। और जब श्रेष्ठ या गतिशील प्रजाएं या तत्व के भीतर प्रवेश करने वाले जन या प्राणगण उस दर्शनीय, दानशील, अग्निस्वरूप, ज्ञानवान्, गुरु, स्वयंप्रकाश परमेश्वर या आत्मा को वरण करते हैं तब ध्यानवृत्ति या ज्ञान, विवेक-बुद्धि उत्पन्न होती है।

सदासि रण्वो यवसेव पुष्यते होत्राभिरग्ने मनुषः स्वध्वरः।
विप्रस्य वा यच्छशमान उक्थ्यो३ वाजं ससवाँ उपयासि भूरिभिः ॥ २२ ॥

भा०—जिस प्रकार घास भूसा आदि से पशु अपने पोषण करने वाले के लिये दर्शनीय होता है, उसी प्रकार हे प्रकाशस्वरूप परमेश्वर! तू उत्तम यज्ञरूप तथा मनस्वी स्तुतियों के द्वारा सर्वदा आनन्दजनक बना रहता है। और जब तू निरन्तर स्तुति किया जाता है और प्रवचन करने योग्य होता है तब तू ज्ञान और बल प्रदान करता हुआ अनेक प्रकारों से प्राप्त होता है।

उदीरय पितरा जार आ भगमियक्षति हर्यतो हृत्त इष्यति।
विवक्ति वह्निः स्वपस्यते मखस्तविष्यते असुरो वेपते मती ॥२३॥

भा०—रात्रि का विनाश करने वाला आदित्य जिस प्रकार अपने सेवन करने योग्य प्रकाश को सर्वत्र फैलाता है उसी प्रकार हे मनुष्य ! तू भी अपने ऐश्वर्य को अपने माता पिता के प्रति प्रेरित कर, उनको प्रदान कर। जो पुरुष यज्ञ या पूजा करना चाहता है वह परम अभिलाषावान् होकर पूजनीय इष्टदेव को अपने हृदय से चाहा करता है। उसी अवसर पर ज्ञान का वहन करने वाला, अग्नि के समान ज्ञानी, परमेश्वर स्वयं नाना प्रकार के उपदेश करता है। और वह पूजनीय शुभ कर्म में प्रेरित करता है और वह प्राणों का प्रदाता बढ़ाता है। अपने ज्ञान संकल्प से समस्त संसार को प्रेरित करता है।

यस्ते॑ अग्ने सु॒म॒तिं मर्तो॒ अख्य॒त् सह॑सः सूनो॒ अति॒ स प्र शृ॑ण्वे।
इषं॒ दधा॑नो॒ वह॑मानो॒ अश्वै॒रा स द्यु॒माँ अम॑वान् भूषति॒ द्यून् ॥२४॥

भा०—हे प्रकाशस्वरूप तथा बल के उत्पन्न करने वाले परमेश्वर ! जो पुरुष तेरे ज्ञान का दूसरों को उपदेश करता है, वह बहुत अधिक प्रख्यात हो जाता है। वह पुरुष अन्न को धारण करता और घोड़ों की सवारी करता है। वह तेजस्वी और बलवान् होकर बहुत दिनों तक बना रहता है।

श्रुधी नो॑ अग्ने॒ सद॑ने स॒धस्थे॑ यु॒क्ष्वा रथ॑म॒मृत॑स्य द्रवि॒त्नुम्।
आ नो॑ वह॒ रोद॑सी दे॒वपु॑त्रे॒ माकि॑र्दे॒वाना॒मप॑ भूरि॒ह स्याः ॥२५॥

भा०—हे परमात्मन् ! तू हमारी प्रार्थना सुन। योगियों द्वारा एकत्र होकर बैठने योग्य स्वाश्रय में प्रवहणशील, रस रूप अमृत आत्मानन्द को युक्त कर। देवों को पुत्र के समान पालने वाले द्यौ और पृथिवी के समान विस्तृत हमारे प्राण और अपान को धारण कर और तू देवों से कभी दूर न हो, प्रत्युत उनके हृदयों में सदा बना रह।

यद॑ग्न ए॒षा समि॑ति॒र्भवा॑ति दे॒वी दे॒वेषु॑ यज॒ता य॑जत्र।
रत्ना॑ च॒ यद् वि॒भजा॑सि स्वधावो भा॒गं नो॒ अत्र॒ वसु॑मन्तं वीतात् ॥ २६ ॥

भा०—हे ज्ञानवन् ! हे यजनीय, हे प्राणों में उपासनीय ! जब यह प्रत्यक्ष ज्योतिष्मती परस्पर एकत्र स्थिति अर्थात् एकाग्रता हो जाती है और जब हे स्वतः अपनी धारणा शक्ति से सम्पन्न ! तू हमारे लिये नाना रमण योग्य पदार्थों का नाना प्रकार से विभाग करता है, तब इस लोक में अति ऐश्वर्य युक्त सेवनीय अंश हमें प्रदान कर ।

अन्वग्निरुषसामग्रमख्यदन्वहानि प्रथमो जातवेदाः ।
अनु सूर्यं उषसो अनु रश्मीननु द्यावापृथिवी आ विवेश ॥२७॥

प्रत्यग्निरुषसामग्रमख्यत् प्रत्यहानि प्रथमो जातवेदाः ।
प्रति सूर्यस्य पुरुधा च रश्मीन् प्रति द्यावापृथिवी आ ततान ॥२८॥

भा०—व्याख्या देखो अथर्व० ७ । ८२ । ४, ५ ॥

द्यावा ह क्षामा प्रथमे ऋतेनाभिश्रावे भवतः सत्यवाचा ।
देवो यन्मर्तान् यजथाय कृण्वन्त्सीदद्धोता प्रत्यङ् स्वमसुं यन् २९॥

भा०—पिता माता सबसे प्रथम सत्यवाणी से युक्त तथा सत्य ज्ञानमय वेद से प्रकट होते हैं । जब परमेश्वर मनुष्यों को उपासना या अपने प्रति संगति लाभ करने के लिए प्रेरित करता है तब वह अपने आप को सबके प्रेरक प्राणरूप से व्याप्त होकर सबको अपने भीतर ग्रहण करके गुप्त रूप से विराजता है ।

देवो देवान् परिभूर्ऋतेन वहा नो हव्यं प्रथमश्चिकित्वान् ।
धूमकेतुः समिधा भाऋजीको मन्द्रो होता नित्यो वाचा यजीयान् ॥ ३० ॥ (३)

भा०—परमेश्वर दिव्यगुणों वाले पदार्थों के ऊपर अधिष्ठाता रूप से विराजमान है । हे परमेश्वर ! आप सर्वज्ञ, सब से पूर्व विद्यमान रह कर हमें सत्यज्ञान से अपने स्तुति करने योग्य स्वरूप को प्राप्त कराओ । आप अति अधिक दीप्ति से समस्त बन्धनों को तोड़नेवाले, ज्ञान से सम्पन्न, कान्ति से कान्तिमान्, आनन्दघन तथा समस्त जगत् के दाता और ग्रहीता हो । नित्य हो तथा वेदवाणी द्वारा उपासना करने योग्य हो ।

अर्चामि वां वर्धायापो घृतस्नू द्यावाभूमी शृणुतं रोदसी मे ।
अहा यद् देवा असुनीतिमायन् मध्वा नो अत्र पितरा शिशीताम् ॥ ३१ ॥

भा०—हे पिता और माता ! हे प्रकाश से आत्मा को स्नान कराने वाले ! हे प्राण और अपान के समान वर्तमान ! तुम दोनों मेरी प्रार्थना श्रवण करो । मैं ज्ञान और कर्म की वृद्धि के लिए आप दोनों की स्तुति करता हूँ और जब इन्द्रियगण प्राण की शक्ति को प्राप्त होते हैं तब इस लोक में आप दोनों पालक होकर हमें मधुर रस से आह्लादित करते हैं ।

स्वावृग् देवस्यामृतं यदी गोरतो जातासो धारयन्त उर्वी ।
विश्वे देवा अनु तत् ते यजुर्गुर्दुहे यदेनी दिव्यं घृतं वाः ॥३२॥

भा०—जब प्रकाशमान सूर्य से उत्पन्न हुई तथा उत्तम रीति से दुःखों को दूर करने वाली अमृतमय प्राण शक्ति को, इस लोक से उत्पन्न जीव, इस पृथ्वी पर धारण करते हैं, और जब प्रकाशमयी द्यौ दिव्य तथा सरणशील जल को दोहती है तब वे समस्त देवगण उसी की संगति लाभ करते और उसी के पीछे पीछे चलते हैं ।

किं स्विन्नो राजा जगृहे कदस्याति व्रतं चकृमा को वि वेद ।
मित्रश्चिद्धि ष्मा जुहुराणो देवांछ्लोको न यातामपि वाजो अस्ति ॥ ३३ ॥

भा०—राजा के समान सर्वोपरि विराजमान परमेश्वर हमें क्योंकर पकड़ता है ? वह क्यों देह-बन्धनों में डालता है ? उसके बनाये किस व्रत अर्थात् नियम व्यवस्था को कब हम अतिक्रमण करते हैं ? इस बात को भलीभांति कौन जानता है ? विषयों में रमण करते हुए जीवों को उनके अपराधों का दण्ड देता हुआ भी उनका वह निश्चय से मित्र ही है । वह सबका स्तुति योग्य ईश्वर क्या यहाँ से देह छोड़कर परलोक में जानेवालों का एकमात्र बल और आश्रय नहीं है ?

दुर्मन्त्वत्रामृतस्य नाम सलक्ष्मा यद् विषुरूपा भवाति ।
यमस्य यो मनवते सुमन्त्वग्ने तमृष्व पाह्यप्रयुच्छन् ॥ ३४ ॥

भा०—इस संसार में अमृत परमात्मा का नाम अर्थात् स्वरूप समझ लेना बड़ा कठिन है। क्योंकि परमात्मा के समान लक्षणों वाली जीव जाति इस संसार में नाना रूप की हो जाती है और फिर सर्व-नियन्ता परमेश्वर के स्वरूप को जो विद्वान् सम्यक् प्रकार से जान लेता है, हे महान् दर्शनीय ! हे ज्ञानप्रकाशक परमेश्वर ! उस तत्वदर्शी को विना प्रमाद के तू रक्षा कर ।

यस्मिन् देवा विदथे मादयन्ते विवस्वतः सदने धारयन्ते ।
सूर्ये ज्योतिरदधुर्मास्य१क्तून् परि द्योतनिं चरतो अजस्रा ॥३५॥

भा०—जिस प्राप्त करने योग्य या ज्ञानस्वरूप परमेश्वर में ज्ञानी पुरुष हर्ष और आनन्द प्राप्त करते हैं, और नाना प्रकार के ऐश्वर्य से युक्त जिस परमेश्वर के शरण में अपने आप को स्थित करते हैं, उस सबके प्रेरक सूर्य के समान प्रकाशक परमेश्वर में ही परम प्रकाश को धारण करते हैं। उसी सबके निर्माणकर्त्ता प्रभु में, चन्द्र में, रात्रियों के समान समस्त व्यक्त होने वाले पदार्थों को आश्रित मानते हैं, उसी प्रकाशवान् के आश्रय पर निरन्तर गतिशील सूर्य और चन्द्र दोनों भी अपने-अपने मार्ग में गति कर रहे हैं।

यस्मिन् देवा मन्मनि संचरन्त्यपीच्ये३ न वयमस्य विद्म ।
मित्रो नो अत्रादितिरनागान्त्सविता देवो वरुणाय वोचत् ॥३६॥

भा०—जिस मनन योग्य सबके लय होने के स्थान या परम दर्शनीय या परम गुप्त, गूढ़तम परमेश्वर में विद्वान् पुरुष विचरते हैं उसके विषय में हम स्थूल बुद्धि के पुरुष नहीं जानते। इस संसार में अपराध रहित हम लोगों का मित्र तथा अविनश्वर और सर्वप्रेरक परमेश्वरदेव ही उसको वरण करने हारे भक्त या साधक के प्रति ज्ञान का उपदेश करता है।

सखाय आ शिषामहे ब्रह्मेन्द्राय वज्रिणे ।
स्तुष ऊ षु नृतमाय धृष्णवे ॥ ३७ ॥

भा०—हे मित्रगण ! हम लोग परमैश्वर्यवान् तथा परम शक्तिमान् परमेश्वर की उपासना के लिये वेद-ज्ञान की कामना करते हैं और उसी सर्वोत्तम नायक, सबके धर्षण करने वाले, शक्तिमान् की मैं उत्तम रीति से स्तुति करता हूँ ।

शवसा ह्यसि श्रुतो वृत्रहत्येन वृत्रहा ।
मघैर्मघोनो अति शूर दाशसि ॥ ३८ ॥

भा०—हे परमेश्वर ! तू आवरणकारी, ज्ञान के विघ्नरूप 'वृत्र' के नाश करने में समर्थ बल से सर्वत्र प्रसिद्ध है । हे शूर ! तू ही धनाढ्यों को धनों से अतिक्रमण करके समस्त जीवों को जीवन, अन्न और धन प्रदान करता है ।

स्तेगो न क्षामत्येषि पृथिवीं मही नो वाता इह वान्तु भूमौ ।
मित्रो नो अत्र वरुणो युज्यमानो अग्निर्वने न व्यसृष्ट शोकम् ॥ ३९ ॥

भा०—हे परमात्मन् ! गर्जन करता हुआ मेघ या सूर्य या वेग से जाने वाला हरिण जिस प्रकार विस्तृत पृथिवी को पार करता हुआ चला जाता है, उसी प्रकार तू भी इस विशाल तथा जीवों के निवास योग्य संसार-पदवी को लांघ कर बैठा है । इस भू-लोक में हमारे लिये बड़े २ प्रचण्ड वायु चलें । हमारा सर्वश्रेष्ठ और सब दुःखों का वारक सर्वस्नेही परमेश्वर, समाधि द्वारा साक्षात् होकर वन में दहकने वाले अग्नि के समान अपने परम तेज को नाना प्रकार से प्रकट करे । स्तेगः = अंग्रेजी में Stag [स्टैग] इसी का अपभ्रंश है ।

स्तुहि श्रुतं गर्तसदं जनानां राजानं भीममुपहत्नुमुग्रम् ।
मृडा जरित्रे रुद्र स्तवानो अन्यमस्मत् ते नि वपन्तु सेन्यम्
॥ ४० ॥ (४)

भा०—हे पुरुष ! तू श्रवण करने योग्य, हृदयरूप गुहा में विराजमान, उत्पन्न होने वाले प्राणियों के राजा, दण्डकर्ता, सब को दुष्ट कर्मों का दण्ड देनेवाले, अति बलवान् उस परमेश्वर की स्तुति इस प्रकार कर कि हे सब पापियों को रुलाने हारे ! स्तुति योग्य तू स्तुति करने हारे ज्ञानी पुरुष को सुखी कर। तेरी सेनायें हमसे दूसरे अर्थात् शत्रु का विनाश करें।

सरस्वती रूप से परमेश्वर की स्तुति।

सरस्वतीं देवयन्तो हवन्ते सरस्वतीमध्वरे तायमाने।
सरस्वतीं सुकृतो हवन्ते सरस्वती दाशुषे वार्यं दात् ॥ ४१ ॥

भा०—परमेश्वर की उपासना और कामना करते हुए विद्वान् पुरुष सरस्वती रूप परमेश्वरी वाणी का पाठ करते हैं और यज्ञ के होते उसमें याज्ञिक भी उसी वाणी और प्रभु के रसवान् स्वरूप को स्मरण करते हैं। उत्तम पुण्याचरण करने वाले पुरुष भी सरस्वती ईश्वर की उपासना करते हैं। वह आनन्दमयी प्रभुशक्ति आत्मसमर्पण करने वाले को वरण करने योग्य स्वरूप या परम ऐश्वर्य का प्रदान करती है।

सरस्वतीं पितरो हवन्ते दक्षिणा यज्ञमभिनक्षमाणाः।
आसद्यास्मिन् बर्हिषि मादयध्वमनमीवा इष आ धेह्यस्मे ॥४२॥

भा०—पालक पिता, पितामह और देश के अधिकारी लोग यज्ञ में दक्षिण दिशा में विराजमान होकर वेदवाणी को या गृहस्थ स्त्री को स्वीकार करते हैं। हे पुरुषो ! आप लोग इस महान् यज्ञ में बैठकर हर्ष और आनन्द प्राप्त करो। हे सरस्वती ! तू हमें रोग रहित अन्नों को प्रदान कर।

योषा वै सरस्वती। वृषा पूषा। श० २।५।१।११॥ वाग्वै सरस्वती॥ ऐ० ३।२॥

सरस्वति या सरथं ययाथोक्थैः स्वधाभिर्देवि पितृभिर्मदन्ती।
सहस्रार्घमिडो अत्र भागं रायस्पोषं यजमानाय धेहि ॥ ४३ ॥

भा०—रस की भरी नदिया के समान हे स्त्रि ! तू प्रवचन योग्य वेदमन्त्रों, उत्तम अन्नों तथा गृह के पालक बुजुर्गों के साथ आनन्दित हुई, इस गृह में अन्न के सहस्र गुणा मूल्य के अंश को और धन की वृद्धि को यजमान के निमित्त प्रदान कर ।

पितृगण का वर्णन ।

उदीरतामवर उत् परास उन्मध्यमाः पितरः सोम्यासः ।
असुं य ईयुरवृका ऋतज्ञास्ते नोऽवन्तु पितरो हवेषु ॥ ४४ ॥

भा०—हमारे पिता आदि उन्नति की तरफ चलें, प्रपितामह आदि भी ऊंचे पद को प्राप्त करें । मध्यम अवस्था के पितामह आदि भी उन्नति को प्राप्त करें । जो भी प्राण धारण कर रहे हैं वे भेड़िये के समान क्रूर न होकर तथा सत्य वेद के जानने हारे होकर हमारे पालक रूप से हमारे आह्वानों पर हमारी रक्षा करें । ये सब सौम्य स्वभाव वाले हों ।

आहं पितॄन्त्सुविदत्राँ अवित्सि नपातं च विक्रमणं च विष्णोः ।
बर्हिषदो ये स्वधया सुतस्य भजन्त पित्वस्त इहागमिष्ठाः ॥४५॥

भा०—मैं उत्तम ज्ञानी वा उत्तम-उत्तम शिक्षाओं के दाता गुरुओं को प्राप्त करूं । उसी प्रकार प्रजा-तन्तु को न गिरने देने वाले पुत्र आदि को भी प्राप्त करूं और व्यापक परमेश्वर के नाना प्रकार के सृष्टि-कार्य को भली प्रकार जानूं और जो महान् ब्रह्म में निष्ठ होकर आत्मा की धारणा शक्ति से निष्पादित, अन्न के समान श्रेष्ठ फल का भोग करते हैं, वे इस लोक में आवें । ये वै यज्वानो गृहमेधिनस्ते पितरो बर्हिषदः । तै० ब्रा० १ । ६ । ९ । ६ ॥

इदं पितृभ्यो नमो अस्त्वद्य ये पूर्वासो ये अपरास ईयुः ।
ये पार्थिवे रजस्या निषत्ता ये वा नूनं सुवृजनासु दिक्षु ॥ ४६ ॥

भा०—इस काल में जो पूर्व के और जो पीछे के इस लोक में आये हैं, उन सभी पालकों का हम इस प्रकार आदर करें । उनका भी

आदर करें जो पृथिवी सम्बन्धी लोक में अच्छी प्रकार प्रतिष्ठा पूर्वक विराजते हैं और जो निश्चय से उत्तम रीति से वर्गीकृत देशों या देशवासी प्रजाओं में अच्छी प्रकार राजा, शासक आदि पदों पर अधिष्ठित हैं।

मातली कुव्यैर्यमो अङ्गिरोभिर्बृहस्पतिर्ऋक्वभिर्वावृधानः ।
यांश्च देवा वावृधुर्ये च देवांस्ते नोवन्तु पितरो हवेषु ॥ ४७ ॥

भा०—ज्ञानों को प्राप्त करने वाला, उत्तम कवियों द्वारा व्यवस्थापक नेता विद्वान् पदाधिकारियों द्वारा और वेदवाणी का पालक विद्वान् पूजनीय वेदज्ञों द्वारा वृद्धि को प्राप्त होता है। जिनको राजागण उन्नति का पद देते हैं और जो राजा को बढ़ाते हैं वे राष्ट्र और देशके पालक जन युद्धों और यज्ञों में हमारी रक्षा करें।

स्वादुष्किलायं मधुमाँ उतायं तीव्रः किलायं रसवाँ उतायम् ।
उतो न्व१स्य पपिवांसमिन्द्रं न कश्चन सहत आहवेषु ॥ ४८ ॥

भा०—यह आनन्दरस निश्चय से स्वादु है और मधुर भी है, और यह अति तीक्ष्ण भी है, अति आनन्दरस से पूर्ण है। और क्या कहें? इसके पान करने हारे ऐश्वर्यवान् आत्मा को कोई भी युद्धों में पराजित नहीं कर सकता।

परेयिवांसं प्रवतो महीरिति बहुभ्यः पन्थामनुपस्पशानम् ।
वैवस्वतं संगमनं जनानां यमं राजानं हविषा सपर्यत ॥ ४९ ॥

भा०—हे मनुष्यो! बड़े दूर २ के देशों में पहुंचे हुये और इसी प्रकार बहुतों को मार्ग का उपदेश करने हारे, सब जनों के एकमात्र उत्तम शरण, विशेष ऐश्वर्यवान्, सर्वनियामक, सब के राजा परमात्मा की भक्ति द्वारा उपासना करो।

यमो नो गातुं प्रथमो विवेद नैषा गव्यूतिरपभर्तवा उ ।
यत्रा नः पूर्वे पितरः परेता एना जज्ञानाः पथ्या३ अनु स्वाः ॥ ५० ॥ (५)

भा०—सर्वनियन्ता परमेश्वर हमारे गमन करने के योग्य मार्ग को सब से पहले खूब अच्छी प्रकार जानता है। यह मार्ग परे भी किया नहीं जा सकता। जहां हमारे पूर्व पिता, पितामह आदि गये हैं और इन इन अपने हितकारी प्राप्तव्य मार्गों या लोकों को प्राप्त होकर फिर फिर उत्पन्न हुआ करते हैं, उनको भी वह सर्व-नियन्ता परमेश्वर भली प्रकार जानता है।

बर्हिषदः पितर ऊत्य१र्वागिमा वो हव्या चकृमा जुषध्वम्।
त आ गतावसा शंतमेनाधा नः शं योररपो दधात ॥ ५१ ॥

भा०—हे कुशा के आसनों या ब्रह्म या यज्ञ में उच्च आसनों पर बैठने वालो! हे पालक पिता तुल्य पूज्य पुरुषो! आप लोगों के लिये ये नाना प्रकार के अन्नों को हम तैयार करते हैं। आप इनका प्रेम से उपभोग करें और वे आप लोग अति कल्याण और सुखकारी रक्षा से रोगों की शान्ति और अभय स्थापन करो।

आच्या जानु दक्षिणतो निषद्येदं नो हविरभि गृणन्तु विश्वे।
मा हिंसिष्ट पितरः केन चिन्नो यद् व आगः पुरुषता कराम॥५२॥

भा०—हे पितृ लोगो! आप सब गोड़ों को कुछ सिकोड़ कर हमारे दायें ओर बैठकर हमारा यह अन्न स्वीकार करें और आप लोगों के प्रति हम लोग जो अपराध मनुष्य होने के कारण करें ऐसे किसी भी अपराध के कारण हमें आप पीड़ित न करें।

त्वष्टा दुहित्रे वहतुं कृणोति तेनेदं विश्वं भुवनं समेति।
यमस्य माता पर्युह्यमाना महो जाया विवस्वतो ननाश ॥ ५३ ॥

भा०—जगत् का स्रष्टा, समस्त लोक जिससे दोहे जाते हैं ऐसी प्रकृति से ब्रह्माण्ड रूप भार को, जिसको वह स्वयं उठाये है, बनाता है। उसी कारण यह समस्त लोक बना हुआ है। सर्वनियन्ता की जगत्-निर्मात्री प्रकृति जो कि सब प्रकार से धारण की गई है और बड़ी भारी

उत्पादक शक्ति रूप है वह विविध रूपों में बने लोकों के स्वामी उस प्रभु की शक्ति से ही विकार को प्राप्त होती है अर्थात् अप्रकट से प्रकट और सूक्ष्मरूप से स्थूल में आती है ।

प्रेहि प्रेहि पथिभिः पूर्याणैर्येना ते पूर्वे पितरः परेताः ।
उभा राजानौ स्वधया मदन्तौ यमं पश्यासि वरुणं च देवम् ॥५४॥

भा०—हे पुरुष ! तू पुर को जाने वाले मार्गों के समान पूर्ण ब्रह्म द्वारा जाने योग्य उन मार्गों से नित्य आगे आगे बढ़ जिनसे तेरे पूर्व के पुरुषा लोग चले गये हैं । तू इस मार्ग द्वारा प्रकाशमान तथा अपनी धारण शक्ति से आनन्द लाभ करते हुए परमात्मा के दोनों रूपों को अब से सर्वनियामक यम-स्वरूप को और वरण करने योग्य सबसे श्रेष्ठ रूप को देख सकता है । पुमांसो येन वर्त्मना यान्ति, पुंभिरुह्यमानो वा स 'पूर्याणः', मार्गो रथो वा । सा० ।

अपेत वीत वि च सर्पतातोऽस्मा एतं पितरो लोकमक्रन् ।
अहोभिरद्भिरक्तुभिर्व्यक्तं यमो ददात्यवसानमस्मै ॥ ५५ ॥

भा०—इस लोक से हे जीव ! तुम दूर जाते हो, नाना दिशाओं में जाते हो, और विविध प्रकारों से जीवन-यात्रा करते हो । पूर्व पुरुषा लोगों ने इस अपने उत्तराधिकारी के लिये यह लोक भोगने के लिए बनाया है । सर्वनियन्ता परमेश्वर दिनों, जलों और रात्रियों से विशेष रूप से कान्तियुक्त इस भूलोक को इन जीवों के निवास के लिए देता है ।

उशन्तस्त्वेधीमह्युशन्तः समिधीमहि ।
उशन्नुशत आ वह पितॄन् हविषे अत्तवे ॥ ५६ ॥

भा०—हे परमेश्वर ! हम तेरी कामना करते हुए हृदय में तुझे चेताते हैं और तेरी कामना करते हुए तुझे भली प्रकार प्रदीप्त करते हैं । हे कान्तिमय ! तू नाना कामना करते हुए पिता, पितामह आदि को यज्ञशिष्ट के भोजन के लिये हमें प्राप्त करा ।

द्युमन्तस्त्वेधीमहि द्युमन्तः समिधीमहि।
द्युमान् द्युमत आ वह पितॄन् हविषे अत्तवे ॥ ५७ ॥

भा०—हे परमेश्वर! हम तेजस्वी होकर तुझे प्रज्वलित करें। हम तेजस्वी होकर भली प्रकार हृदय में तुझे प्रबोधित करें। तू तेजस्वी पुरुषों को यज्ञशिष्ट के भोजन के लिये हमें प्राप्त करा।

अङ्गिरसो नः पितरो नवग्वा अथर्वाणो भृगवः सोम्यासः।
तेषां वयं सुमतौ यज्ञियानामपि भद्रे सौमनसे स्याम ॥ ५८ ॥

भा०—हमारे पालक पूज्य पुरुष, जलते अंगारों के समान तेजस्वी, सदा नवीन, हृदय-ग्राहिणी स्तुतियों से पूर्ण वाणियों को बोलने हारे, अहिंसक, पापों को भून डालने वाले और सोम रस, ज्ञान और ब्रह्मानन्द का रस पान करने वाले सौम्य स्वभाव वाले हों। उन यज्ञ करने वालों की शुभ मति में और उनकी कल्याणकारी उत्तम सुप्रसन्न-चित्तता में हम सदा रहें।

अङ्गिरोभिर्यज्ञियैरा गहीह यम वैरूपैरिह मादयस्व।
विवस्वतं हुवे यः पिता तेऽस्मिन् बर्हिष्या निषद्य ॥ ५९ ॥

भा०—यज्ञ के उपासक, सूर्य के समान तेजस्वी पुरुषों के साथ, हे नियन्ता राजन्! इस लोक में तू आ, प्रकट हो और नाना रूपों से इस लोक में तू ही समस्त प्राणियों के सुख का कारण है। मैं उपासक यज्ञ में बैठकर उस नाना वसुओं अर्थात् लोकों और ऐश्वर्यों के स्वामी परमेश्वर को पुकारता हूँ, जो कि तेरा भी पालक पिता है।

इमं यम प्रस्तरमा हि रोहाङ्गिरोभिः पितृभिः संविदानः।
आ त्वा मन्त्राः कविशस्ता वहन्त्वेना राजन् हविषो मादयस्व ॥ ६०

भा०—हे राजन्! आंगिरस वेद के ज्ञाता, राष्ट्र के पालक, पिता के समान पूजनीय पुरुषों के साथ राष्ट्र-व्यवस्था की मन्त्रणा करता हुआ तू उत्तम बिछे हुए आसन पर आरूढ़ हो। कान्तदर्शी, दूरदर्शी बुद्धिमान्

पुरुषों द्वारा उपदेश किये गये नीति-उपदेश तुझको आगे के उचित मार्ग पर ले जायं। हे राजन्! इन विद्वान् पुरुषों को उत्तम अन्न और आदर से प्रदत्त पुरस्कारों से प्रसन्न रख।

इत एत उदारुहन् दिवस्पृष्ठान्यारुहन्।
प्र भूर्जयो यथा पथा द्यामङ्गिरसो ययुः ॥६१॥ (६)

भा०—जिस प्रकार के मार्ग से इस भूलोक को या 'भूः' अर्थात् जन्म ग्रहण करने रूप भवबन्धन को विजय करनेहारे ज्ञानी, प्रकाशस्वरूप मोक्ष में प्रयाण करते हैं, उसी प्रकार के मार्ग से जो लोग प्रकाशमान दिव्य लोकों को जाते हैं वे इस लोक से ऊपर को जाते हैं।

इति प्रथमोऽनुवाकः।

[तत्र एकं सूक्तं ऋचश्चैकषष्टिः]

[२] पुरुष को सदाचारमय जीवन का उपदेश।

अथर्वा ऋषिः। यमो मन्त्रोक्ताश्च बहवो देवताः। ४, ३४ अग्निः। ५ जातवेदाः। २९ पितरः। १—३, ६, १४—१८, २०, २२, २३, २५, ३०, ३६, ४६, ४८, ५०—५२, ५६ अनुष्टुभः। ४, ७, ९, १३ जगत्यः। ५, २६, ३९, ४७ भुरिजः। १९ त्रिपदार्षी गायत्री। २४ त्रिपदा समविषमार्षी गायत्री। ३७ विराड् जगती। ३८—४४ आर्षीगायत्र्यः (४०, ४२, ४४ भुरिजः)। ४५ ककुम्मती अनुष्टुप्। शेषास्त्रिष्टुभः। षष्ट्यृचं सूक्तम्॥

यमाय सोमः पवते यमाय क्रियते हविः।
यमं ह यज्ञो गच्छत्यग्निदूतो अरंकृतः॥ १॥

भा०—नियम व्यवस्था के करने हारे राजा के निमित्त सोम रस छाना जाता है। प्रजा के नियन्ता राजा के लिये अन्न उत्पन्न किया जाता है। राष्ट्र ज्ञानवान् पुरुषों को दूत बनाकर और सुशोभित होकर नियामक राजा की शरण में आता है।

परमात्मा के पक्ष में—सर्वनियन्ता परमेश्वर की आज्ञा के निमित्त ही प्रेरक सूर्य और वायु गति करता है। उस नियन्ता के लिए ही यज्ञ-हवि तैयार की जाती है। अग्नि से प्रज्वलित यज्ञ भी परमेश्वर की पूजा के निमित्त ही रचा जाता है।

यमाय मधुमत्तमं जुहोता प्र च तिष्ठत।
इदं नम ऋषिभ्यः पूर्वजेभ्यः पूर्वेभ्यः पथिकृद्भ्यः ॥ २ ॥

भा०—सर्वनियन्ता परमेश्वर और राजा के लिये अति मधुर वचन और पदार्थ का एक दूसरे के प्रति दान-प्रदान करो। और एक दूसरे के देशों को प्रस्थान करो। पूर्व उत्पन्न ऋषियों और अपने पूर्वकाल के मार्ग-विधाताओं को इस प्रकार से नित्य आदर, मान, अन्न आदि दिया करो।

यमाय घृतवत् पयो राज्ञे हविर्जुहोतन।
स नो जीवेष्वा यमेद्दीर्घमायुः प्र जीवसे ॥ ३ ॥

भा०—हे पुरुषो! सर्वनियन्ता राजा के समान सब के राजा परमेश्वर के लिये, घृत से युक्त पुष्टिकारक दुग्ध और अन्न आदि प्रदान करो। वह परमेश्वर हमें और हमारे जीवों में दीर्घ जीवन प्रदान करे और वह जीवन के लिये हमें सब पदार्थ प्रदान करे।

आचार्य और शिष्य का कर्त्तव्य

मैनमग्ने वि दहो माभि शूशुचो मास्य त्वचं चिक्षिपो मा शरीरम्।
शृतं यदा करसि जातवेदोऽथेमेनं प्र हिणुतात् पितॄरुप ॥ ४ ॥

भा०—हे आचार्य! इस शिष्य को मत जला, दुःखित मत कर। संतप्त मत कर। इसकी त्वचा को मत काट फाट, और इसके शरीर को भी मत विनाश कर। हे जातप्रज्ञ! विद्वन्! जब इसको परिपक्व, पूर्ण ज्ञानवान्, तपस्वी करदे तब इस शिष्य को माता पिताओं व बड़े बन्धु व अधिकारी जनों के समीप भेज देना।

यदा शृतं कृणवो जातवेदोऽथेममेनं परि दत्तात् पितृभ्यः ।
यदो गच्छात्यसुनीतिमेतामथ देवानां वशनीर्भवाति ॥ ५ ॥

भा०—हे जातप्रज्ञ ! आचार्य ! जब आप शिष्य को ज्ञान और तप में परिपक्व कर देते हो, और इसको इसके माता पिता और वृद्धजनों को सौंप देते हो और जब वह इस प्रकार के असत् आचार में चला जाय तभी वह विद्वान् शासकों के वश में जाने योग्य हो जाय ।

त्रिकद्रुकेभिः पवते षडुर्वीरेकमिद् बृहत् ।
त्रिष्टुब् गायत्री छन्दांसि सर्वा ता यम आर्पिता ॥ ६ ॥

भा०—एक ही महान् ब्रह्मतत्व तीन 'कद्रुक', गुणों या व्यापक बलों से छहों महान् दिशाओं में व्याप्त हो रहा है। वे त्रिष्टुप् और गायत्री तथा अन्य सब छन्द नियन्ता परमेश्वर में गतार्थ हैं। सबमें उसी की स्तुति है। षड् उर्वीः—द्यौश्च पृथिवी च, अहश्च रात्रिश्च, आपश्चौषधयश्च एताः षड उर्व्यः। सायणः।

सूर्यं चक्षुषा गच्छ वातमात्मना दिवं च गच्छ पृथिवीं च धर्मभिः ।
अपो वा गच्छ यदि तत्र ते हितमोषधीषु प्रति तिष्ठा शरीरैः ॥७॥

भा०—हे पुरुष ! अपनी चक्षु द्वारा सूर्य के प्रकाश को प्राप्त कर। अपने शरीर से प्राण वायु को ग्रहण कर। शरीर के धारक बलों द्वारा आकाश और पृथिवी को भी प्राप्त कर, अपने वश कर। तू जलों को भी प्राप्त कर। और जो कुछ उन ओषधियों में भी तेरे लिये हितकर पदार्थ विद्यमान है तो उसको भी प्राप्त कर। फलतः तू अपने अनेक विध शरीरों से लोकों में प्रतिष्ठित होकर रह।

अजो भागस्तपसस्तं तपस्व तं ते शोचिस्तपतु तं ते अर्चिः ।
यास्ते शिवास्तन्वोजातवेदस्ताभिर्वहैनं सुकृतामु लोकम् ॥ ८ ॥

भा०—हे जातप्रज्ञ परमात्मन्, आचार्य ! अजन्मा जीवात्मा ही शरीर में दुःख सुख का सेवन करता है। अतः तू उसे ही तप, ज्ञान,

स्वाध्याय प्रवचन और तपस्या द्वारा सन्तप्त कर, उसको तपोमय आचरण करा । उस आत्मा को ही तेरी ज्ञानरूप ज्वाला तप्त करे, उसको तेरी दीप्ति प्रकाशित करे । हे ईश्वर ! तेरे जो कल्याणकारी रचित पदार्थ हैं । उनसे इस जीव को पुण्यकर्त्ताओं के लोक को प्राप्त करा ।

यास्ते शोचयो रंहयो जातवेदो याभिरापृणासि दिवमन्तरिक्षम् ।
अजं यन्तमनु ताः समृण्वतामथेतराभिः शिवतमाभिः शृतं कृधि ॥ ९

भा०—हे सर्वज्ञ परमेश्वर ! तेरी जो ज्वालाएं और वेगवती शक्तियां हैं और जिनसे द्यौः और अन्तरिक्ष को भी सर्वत्र व्याप रहा है, वे सब उनके अनुकूल रहने वाले इस अजन्मा आत्मा को भली प्रकार सुख रूप से प्राप्त हों । और उनसे दूसरी अर्थात् कष्टमय प्रतीत होने वाली, परन्तु परिणाम में अति कल्याणकारिणी जो तेरी शक्तियाँ हैं उन से उस आत्मा को बराबर परिपक्व, सहनशील, तपस्वी बना ।

अव सृज पुनरग्ने पितृभ्यो यस्त आहुतश्चरति स्वधावान् ।
आयुर्वसान उप यातु शेषः सं गच्छतां तन्वा सुवर्चाः ॥ १० ॥ (७)

भा०—हे ज्ञानवन् आचार्य ! जो आत्मा या शरीर को धारण-पोषण करने वाले वीर्य से युक्त होकर तेरे समीप अपने को सर्वार्पण करके ब्रह्मचर्यव्रत का आचरण करे, तू उसको, फिर उसके पिता, माता और वृद्धों की सेवा के लिये या पिता के योग्य गृहस्थ कार्यों वा राष्ट्रपालक शासक आदि पदों के लिये तैयार कर । और वह तेरी आज्ञा पाया हुआ शिष्य या पुत्र अपने जीवन में तेरी आज्ञा में ही रह कर गृहों में जावे और वहां शरीर से उत्तम तेजस्वी होकर उत्तम संगति लाभ करे ।

अति द्रव श्वानौ सारमेयौ चतुरक्षौ शबलौ साधुना पथा ।
अधा पितॄन्त्सुविदत्राँ अपीहि यमेन ये सधमादं मदन्ति ॥ ११ ॥

भा०—हे पुरुष ! तू गति उत्पन्न करने हारी चिति शक्ति से उत्पन्न, बुरे-अच्छे दोनों का ग्रहण करने वाले, चार इन्द्रिय अर्थात् आंख, नाक,

कान, रसना वाले, गतिशील प्राण और उदान दोनों को उत्तम मार्ग से चला। और उत्तम ज्ञानवान् पुरुषों के पास जा जो सर्वनियामक परमेश्वर के नित्य साथ रहने का आनन्द लाभ करते हैं। अथवा हे पुरुष ! तू उषा से उत्पन्न, चारों ओर आंख रखने वाले, गतिशील रात और दिन को उत्तम मार्ग से व्यतीत कर।

यौ ते॒ श्वानौ॑ यम रक्षि॒तारौ॑ चतुर॒क्षौ प॑थि॒षदी॑ नृ॒चक्ष॑सा।
ताभ्यां॑ राजन् परि॑ धेह्येनं स्व॒स्त्यस्मा अनमी॒वं च॑ धेहि ॥१२॥

भा०—हे सर्वनियन्तः ! तेरे जो दो, चारों तरफ आंख फेंकने वाले अर्थात् सावधान, रक्षा करने हारे, मार्ग में विराजने वाले, सब मनुष्यों को देखने वाले, सदा गतिशील रात्रि और दिन हैं, हे सर्वोपरि विराजमान ! उन दोनों से इस पुरुष की सब तरफ से रक्षा कर और इस पुरुष को सुखपूर्वक और नीरोग रख।

उ॒रू॒ण॒सावसु॒तृपा॑वुदुम्ब॒लौ य॒मस्य॑ दू॒तौ च॑रतो॒ जनाँ॒ अनु॑।
तावस्मभ्यं॑ दृ॒शये॒ सूर्या॑य॒ पुन॑र्दाता॒मसु॑म॒द्येह भ॒द्रम् ॥ १३ ॥

भा०—महान् शब्द करने हारे, सब प्राणियों को प्राणों से तृप्त करने वाले, अति बलवान्, नियन्ता परमेश्वर के दो दूत रात और दिन, प्राणियों के सदा साथ साथ चला करते हैं, वे दोनों हमें सब के प्रेरक परमात्मा के दर्शन के लिये बार बार इस लोक में कल्याणकारी, सुखप्रद जीवन प्रदान करें।

सोम॒ एके॑भ्यः पवते घृ॒तमेक॒ उपा॑सते।
येभ्यो॒ मधु॑ प्र॒धाव॑ति॒ तांश्चि॑दे॒वापि॑ गच्छतात् ॥ १४ ॥

भा०—किन्हीं विद्वानों के लिये सोममय ब्रह्मरस बहता है। और कोई विद्वान् तेजोमय ब्रह्म की उपासना करते हैं। जिनसे मधुविद्या प्रवाहित होती है, हे पुरुष ! तू उन पूज्य पुरुषों के पास सत्संग लाभ कर और ज्ञान प्राप्त कर।

ये चित् पूर्व ऋतसाता ऋतजाता ऋतावृधः ।
ऋषीन् तपस्वतो यम तपोजाँ अपि गच्छतात् ॥ १५ ॥

भा०—हे यम-नियम में निष्ठ ब्रह्मचारिन् ! जो पूर्व के या परिपूर्ण, तप और स्वाध्याय में संलग्न, सत्य ज्ञान में उत्पन्न, ब्रह्मज्ञान को बढ़ाने, उपदेश करके उसकी वृद्धि करने वाले ऋषि लोग हैं, उन तपश्चर्या से युक्त, तपस्वी, तत्वदर्शी, तपोनिष्ठ महर्षियों को प्राप्त हो और तू उनसे ज्ञान प्राप्त कर ।

तपसा ये अनाधृष्यास्तपसा ये स्वर्ययुः ।
तपो ये चक्रिरे महस्तांश्चिदेवापि गच्छतात् ॥ १६ ॥

भा०—हे पुरुष ! जो तप से अजेय तेजवाले हैं और जो तप के बल से प्रकाशस्वरूप परमेश्वर को प्राप्त हैं और जो महान् तप करते हैं, उन पूज्य पुरुषों के पास भी तू जा, उनका सत्संग कर ।

ये युध्यन्ते प्रधनेषु शूरासो ये तनूत्यजः ।
ये वा सहस्रदक्षिणास्तांश्चिदेवापि गच्छतात् ॥ १७ ॥

भा०—और हे पुरुष ! जो शूरवीर पुरुष युद्ध के अवसरों में युद्ध करते हैं और जो अपने देहों को भी त्याग देने में समर्थ हैं और जो सहस्रों धन-सम्पत्ति दक्षिणा रूप में दान करने में समर्थ हैं, तू उनको भी प्राप्त कर । उनका भी सत्संग कर और उन से सत्कर्म की शिक्षा ले ।

सहस्रणीथाः कवयो ये गोपायन्ति सूर्यम् ।
ऋषीन् तपस्वतो यम तपोजाँ अपि गच्छतात् ॥ १८ ॥

भा०—हज़ारों को उत्तम मार्ग पर चलाने वाले, दीर्घदर्शी विद्वान् लोग, जो सर्वप्रकाशक ज्ञानभण्डार वेद की रक्षा करते हैं, उनका अध्ययन करते हैं, हे यम-नियम में निष्ठ पुरुष ! ऐसे तपस्वी, तप में निष्ठ ऋषियों को भी तू प्राप्त हो और उनसे ज्ञान लाभ कर ।

स्योनास्मै भव पृथिव्यनृक्षरा निवेशनी ।
यच्छास्मै शर्म सप्रथाः ॥ १९ ॥

भा०—हे पृथिवि ! इस पुरुष के लिये तू सुखकारिणी, कांटों से रहित, बसने योग्य हो और इसे अति विस्तृत होकर सुखमय शरण प्रदान कर ।

असंबाधे पृथिव्या उरौ लोके नि धीयस्व ।
स्वधा याश्चकृषे जीवन् तास्ते सन्तु मधुश्चुतः ॥२०॥८॥

भा०—हे पुरुष ! तू पृथिवी के पीड़ा और भय से रहित बड़े विशाल लोक में निवास कर । तू जीता रह कर अपने जीवन काल में जो भी अपने धारण, पालन, पोषण और रक्षा के उपाय करे वे सब तुझे आनन्द-रस बहाने वाले हों ।

ह्वयामि ते मनसा मन इहेमान् गृहाँ उप जुजुषाण एहि ।
सं गच्छस्व पितृभिः सं यमेन स्योनास्त्वा वाता उप वान्तु शग्माः२१

भा०—हे पुरुष ! मन से तेरे चित्त को मैं बुलाता हूं । तू इन गृह के सम्बन्धियों को निरन्तर प्रेम करता हुआ प्राप्त हो । और अपने बुजुर्ग, माता पिताओं से जाकर सत्संग लाभ कर । सर्वनियन्ता प्रभु से भी भेंट कर । तेरे लिये सुखकारी शान्तिदायक वायु बहा करें ।

उत् त्वा वहन्तु मरुत उदवाहा उदप्रुतः ।
अजेन कृण्वन्तः शीतं वर्षेणोक्षन्तु बालिति ॥ २२ ॥

भा०—हे पुरुष ! जल उठाने वाले और जलों से पूर्ण वायुएं तेरा उत्थान करें । और निरन्तर गति करने वाले वर्षण द्वारा सर्वत्र शीत करती हुई मेघयुक्त वायुएँ 'बाल्' इस प्रकार के शब्द के साथ भूमि पर खूब जल बरसावें ।

उदह्वमायुरायुषे क्रत्वे दक्षाय जीवसे ।
स्वान् गच्छतु ते मनो अधा पितूँरुप द्रव ॥ २३ ॥

भा०—हे पुरुष ! दीर्घजीवन, उत्तम उत्तम कर्म करने, आरोग्य युक्त जीवन जीने के लिये, दीर्घ आयु प्राप्त करने का मैं उपदेश करता हूं । तेरा चित्त अपने बन्धुजनों के प्रति जावे, और तू स्वयं भी माता पिता आदि वृद्ध, पूज्य पालक पुरुषों के पास जा और उनसे विद्या और अनुभव प्राप्त कर ।

मा ते मनो मासोर्माङ्गानां मा रसस्य ते ।
मा ते हास्त तन्वः किं चनेह ॥ २४ ॥

भा०—हे पुरुष ! तेरा मन तुझे न छोड़े । प्राण का कुछ भी अंश तुझे न छोड़े । तेरे अंगों का भी कुछ अंश तुझे न छोड़े । यहां तेरे शरीर का कोई भाग भी तुझसे न छूटे । तू सर्वाङ्ग सम्पन्न, सबल होकर जीवन व्यतीत कर ।

मा त्वा वृक्षः सं बाधिष्ट मा देवी पृथिवी मही ।
लोकं पितृषु वित्त्वैधस्व यमराजसु ॥ २५ ॥

भा०—वृक्ष जाति तुझको पीड़ा न दे । बड़ी पृथिवी देवी भी तुझे पीड़ा न पहुंचावे । तू नियन्ता परमेश्वर को ही एकमात्र अपना राजा मानने वाले पितरों में स्थान पाकर वृद्धि को प्राप्त हो ।

यत् ते अङ्गमतिहितं पराचैरपानः प्राणो य उ वा ते परेतः ।
तत् ते संगत्य पितरः सनीडा घासाद् घासं पुनरा वेशयन्तु ॥ २६ ॥

भा०—हे पुरुष ! तेरा जो अंग कष्ट पा गया है या अपान और प्राण और भी जो अंग तेरे विकृत हो गये हैं उस सब को एकही आश्रय-स्थान में रहने वाले वृद्ध लोग मिलकर ठीक करदें और अपने भोग्य अन्न पदार्थों में से तेरे लिये पर्याप्त भोग्य अन्न पदार्थ पुनः पुनः प्रदान करें ।

अपेमं जीवा अरुधन् गृहेभ्यस्तं निर्वहत परि ग्रामादितः ।
मृत्युर्यमस्यासीद् दूतः प्रचेता असून् पितृभ्यो गमयां चकार ॥ २७ ॥

भा०—जीवित लोग प्राण-अपान से रहित मृत पुरुष को घरों से निकाल कर बहार रक्खें । हे गृहस्थ जीवित पुरुषो ! उस मृत शव को

इस ग्राम से परे दूर ले जाओ । मृत्यु सर्वनियन्ता परमेश्वर का दूत है । वह उत्तम उपदेश देने और शिक्षा प्राप्त कराने का भी साधन है । वस्तुतः वही परमेश्वर बूढ़े माता पिताओं और बुजुर्गों के भी प्राणों को हरता रहा है ।

ये दस्यवः पितृषु प्रविष्टा ज्ञातिमुखा अहुतादश्चरन्ति ।
परापुरो निपुरो ये भरन्त्यग्निष्टानस्मात् प्र धमाति यज्ञात् ॥ २८ ॥

भा०—जो हानिकारक लोग, हमारे सम्बन्धी जनों को अपना अगुआ बनाकर या बन्धुओं का सा रूप धारण करके, हमारे बुजुर्ग लोगों के बीच में घुसकर, विना दिये अन्न को ही आकर भोग करते या खा जाते हैं और जो चाहे वे दूर के रहने वाले या निकट के रहने वाले या बेघरबार के लुच्चे अपने को पालते पोषते हैं या हमारा धन चुरा लेते हैं, अग्नि के समान संतापक राजा उन लोगों को हमारे इस सत्संग या परस्पर संघ से बने राष्ट्र से बाहर निकाल दे ।

सं विशन्त्विह पितरः स्वा नः स्योनं कृण्वन्तः प्रतिरन्त आयुः ।
तेभ्यः शकेम हविषा नक्षमाणा ज्योग् जीवन्तः शरदः पुरूचीः २९॥

भा०—हमारे अपने सम्बन्ध के पालक पिता, पितामह, माता, मातामही आदि वृद्धजन हमारे लिये सुख के कार्य करते हुए, जीवन को बढाते हुए, इस लोक में सुखपूर्वक रहें । हम उनके लिये अन्न से सेवा करते हुए बहुत वर्षों तक खूब जीते हुए, शक्तिमान् बने रहें ।

यां ते धेनुं निपृणामि यमु ते क्षीर ओदनम् ।
तेना जनस्यासो भर्ता योऽत्रासदजीवनः ॥३०॥ (६)

भा०—हे पुरुष ! तुझे जिस गौ और जिस दूध में पके भात 'खीर' पक्वान्न को मैं प्रदान करता हूँ, उससे तू उन जनों का, जो कि इस लोक में आजीविका रहित हों, पालन पोषण कर ।

अश्वावतीं प्र तर या सुशेवार्क्षाकं वा प्रतरं नवीयः ।
यस्त्वा जघान वध्यः सो अस्तु मा सो अन्यद्विदत भागधेयम् ३१

भा०—हे पुरुष ! तू कर्मेन्द्रियों से युक्त इस कर्ममयी जीवन-नदी को पार कर और अति नवीन उत्कृष्ट पथ में ले जाने वाले ज्ञानेन्द्रिय गण को भी पार कर । हे पुरुष ! तुझे जो मारे वह वध करने और दण्ड करने योग्य हो । यह और अधिक भोग को न प्राप्त करे ।

यमः परोऽवरो विवस्वान् ततः परं नाति पश्यामि किं चन ।
यमे अध्वरो अधि मे निविष्टो भुवो विवस्वानन्वाततान ॥३२॥

भा०—सर्वनियन्ता परमेश्वर सबसे ऊंचा है । और नाना प्रकार के लोकों का स्वामी यह सूर्य उससे नीचे, उससे कम शक्ति वाला है । मेरा न नष्ट होना या जीवन बना रहना भी उस सर्वनियन्ता परमेश्वर पर ही आश्रित है । विविध लोकों का स्वामी सूर्य नाना लोकों को उस ईश्वर की आज्ञा का वशवर्त्ती रह कर वश करता, उन पर जीव जगत् को फैलाता है ।

अपागूहन्नमृतां मर्त्येभ्यः कृत्वा सवर्णामदधुर्विवस्वते ।
उताश्विनावभरद् यत् तदासीदजहादु द्वा मिथुना सरण्यूः ॥३३॥

भा०—जगत् के विधायक पञ्चभूतों ने, मरणधर्मा जीवों से, उस कभी न मरने वाली अमर चेतना शक्ति को छिपा लिया और उसके समान वर्ण, कान्ति और तेज से युक्त चेतनाशक्ति को उन्होंने विविध लोकों और जीवों के स्वामी सूय के लिए प्रदान किया । और जो अमृत रूप बल है वही इन व्यापक द्यौ और पृथिवी का पालन पोषण करता है । और सर्वत्र व्यापक उसी चितिशक्ति ने उन नर मादा, स्त्री पुरुषों को भी जो कि मिलकर परस्पर एक हो जाते हैं और दम्पति भाव से रहते हैं अपने भीतर छे बाहर किया, उत्पन्न किया । व्यष्टिरूप से स्त्री पुरुष ही समष्टि रूप से 'द्यौः-पृथिवी' हैं ।

ये निखा॑ता ये परो॑प्ता ये दग्धा ये चोद्धि॑ताः ।
सर्वा॑स्तान॑ग्न॒ आ व॑ह पि॒तॄन् ह॒विषे॒ अत्त॑वे ॥ ३४ ॥

भा०—जो निकट ही दृढ़रूप से गड़े हुए अपना घर जमा कर बैठे हुए हैं और जो दूर अपनी सन्तान उत्पन्न करते हैं । और जो अपने पाप आदि मानसिक और कायिक, वाचिक मलों को भस्म कर चुके हैं और जो उत्कृष्ट पदों पर पहुंचे हुए हैं, उन सब पिता के समान पूजनीय पालकों को पवित्र अन्न भोजन करने के लिये हे गृहस्थ पुरुष ! तू प्राप्त कर । उनको अपने घर ला और प्रेम से उनको भोजन करा ।

ये अ॒ग्निद॒ग्धा ये अन॑ग्निदग्धा मध्ये॑ दि॒वः स्व॒धया॑ मा॒दय॑न्ते ।
त्वं तान् वे॑त्थ॒ यदि॒ ते जा॑तवेदः स्व॒धया॑ य॒ज्ञं स्वधि॑तिं जुषन्ताम् ३५

भा०—जो अग्नि के समान तीव्र ताप से स्वयं जाज्वल्यमान और जो अग्नि से भिन्न शीतल पदार्थों के समान तेजस्वी होकर, आनन्दमय मोक्ष धाम में अपने कर्मों से प्राप्त आत्मशक्ति से आनन्द लाभ करते हैं, हे पूर्णप्रज्ञ, सर्वज्ञ, परमात्मन् ! निश्चय से उन सबको जब तू अपनाता है तो वे निजी धारण शक्ति से स्वतः धारण करने वाली आत्मशक्ति स्वरूप उपास्य प्रभु को प्राप्त करते हैं ।

शं त॑प॒ माति॑ त॒पो अग्ने॒ मा त॒न्व॑ तपः ।
वने॑षु शु॒ष्मो॑ अस्तु ते पृथि॒व्याम॑स्तु॒ यद्धरः ॥३६॥

भा०—हे परमेश्वर ! आचार्य ! तू कल्याण के लिये तपा, दण्ड दे । हमें अधिक संतप्त मत कर । हमारे शरीर को पीड़ित मत कर । तेरा बल वनों में अग्नि के समान, शिष्यों में प्रकट हो । और जो तेरा पाप हरने वाला तेज है वह समस्त पृथिवी पर विद्यमान रहे ।

दद॑ाम्यस्मा अ॒व॒सान॑मे॒तद् य ए॒ष आग॑न् मम॒ चेद॒भूदि॒ह ।
यमश्चि॑कि॒त्वान् प्रत्ये॒तदा॑ह॒ ममै॑ष रा॒य उप॑ तिष्ठतामि॒ह ॥३७॥

भा०—मैं परमेश्वर और आचार्य इस पुरुष को यह शरण प्रदान करता हूं, जो यह पुरुष यहाँ आता है और मेरा ही भक्त होकर रहे ।

इस प्रकार सर्वज्ञ सर्वनियन्ता परमेश्वर या आचार्य मानो उसको इस प्रकार कह रहा है कि यह पुरुष मेरे दिये धन-ऐश्वर्य के उपभोग के लिये यहाँ विराजे ।

इमां मात्रां मिमीमहे यथापरं न मासातै ।
शते शरत्सु नो पुरा ॥ ३८ ॥

भा०—सौ वर्षों में हम अपने जीवन की इस कालमात्र को ऐसी उत्तमता से मापें कि जैसे और किसी वस्तु को नहीं मापते और पहले भी किसी ने वैसा न मापा हो ।

प्रेमां मात्रां० । ० ॥ ३९ ॥ अपेमां मात्रां० । ० ॥ ४० ॥ (१०) वीमां मात्रां० । ० ॥ ४१ ॥ निरिमां मात्रां० । ० ॥ ४२ ॥ उदिमां मात्रां० । ० ॥ ४३ ॥ समिमां मात्रां मिमीमहे यथापरं न मासात । शते शरत्सु नो पुरा ॥ ४४ ॥

भा०—जीवन के सौ वर्षों में हम अपने जीवन की इस कालमात्रा को ऐसे प्रकृष्टरूप से मापें, व्यतीत करें, जैसे और किसी वस्तु को नहीं नापते और पहले भी किसी ने वैसी न मापा हो ।

हम अपने जीवन की इस कालमात्रा को इतनी सुगमता से व्यतीत करें…। जीवनमात्रा को ऐसे विशेष रूप से व्यतीत करें…। इस जीवनमात्रा को ऐसी पूर्णता या निर्दोषता से व्यतीत करें…। जीवन की कालमात्रा को ऐसी उत्तमता से व्यतीत करें…। जीवन मात्रा को ऐसी भली प्रकार से समाप्त करें कि जैसी कोई न व्यतीत कर सके और न किसी ने हमसे पहले की हो । अर्थात् हम अपने जीवन को ऐसे प्रकृष्टरूप से, सुगमता से, विशेष रूप से, निःशेष या निर्दोष रूप से, उन्नत रूप से और समान रूप से व्यतीत करें कि आदर्श हो, लोग कहें कि 'न भूतो न भविष्यति' ।

अमासि मात्रां स्व१रगामायुष्मान् भूयासम् ।
यथापरं न मासातै शते शरत्सु नो पुरा ॥ ४५ ॥

भा०—मैं इस जीवनकाल की मात्रा को पूर्ण रूप से व्यतीत करूं कि जिससे मैं सुखमय आनन्द-मय मोक्ष भी प्राप्त करूं और दीर्घायु होकर रहूँ। जैसे०—इत्यादि पूर्ववत्।

प्राणो अपानो व्यान आयुश्चक्षुर्दृशये सूर्याय।
अपरिपरेण पथा यमराज्ञः पितॄन् गच्छ ॥ ४६ ॥

भा०—हे पुरुष! प्राण, अपान, व्यान, आयु और चक्षु आदि ये इन्द्रियगण सबके प्रेरक परमेश्वर रूप सूर्य के नित्य दर्शन करने के लिये बने रहें। हे पुरुष! तू सर्वनियन्ता सब के राजा परमेश्वर के बनाये कामादि शत्रुओं से रहित मार्ग द्वारा पूज्य पुरुषों के पीछे पीछे, उनके उपदिष्ट सन्मार्ग से गमन कर।

ये अग्रवः शशमानाः परेयुर्हित्वा द्वेषांस्यनपत्यवन्तः।
ते द्यामुदित्याविदन्त लोकं नाकस्य पृष्ठे अधि दीध्यानाः ॥ ४७ ॥

भा०—जो अविवाहित, शम का नित्य अभ्यास करते हुए, सब प्रकार के द्वेष के भावों को परित्याग कर, सन्ततिरहित भी रहें, वे भी स्वर्गलोक को जाकर, परम सुखमय धाम में, विराजते हुए उस दर्शनीय परमेश्वर को प्राप्त करते हैं।

उदन्वती द्यौरवमा पीलुमतीति मध्यमा।
तृतीया ह प्रद्यौरिति यस्यां पितर आसते ॥ ४८ ॥

भा०—सबसे नीचे की भूमि जलवाली है और बीच की भूमि मट्टी के कणों वाली है और तीसरी सबसे उत्कृष्ट अति अधिक प्रकाश वाली है जिस तीसरी भूमिमें कि पालक पिता, माता, गुरु लोग विराजते हैं।

ये नः पितुः पितरो ये पितामहा य आविविशुरुर्व१न्तरिक्षम्।
य आक्षियन्ति पृथिवीमुत द्यां तेभ्यः पितृभ्यो नमसा विधेम ॥ ४९ ॥

भा०—जो हमारे पिता के भी पिता हैं, जो पितामह हैं, जो विशाल आकाश में प्रवेश करते हैं और जो इस पृथिवी और स्वर्ग या उच्च आकाश में निवास करते या उस पर भी वश करते हैं उन सब पिता आदि के लिये हम नमस्कार या अन्न द्वारा सत्कार करें।

इ॒दमिद् वा उ॒ नाप॑रं दि॒वि प॑श्यसि॒ सूर्य॑म्।
मा॒ता पु॒त्रं यथा॑ सि॒चाभ्ये॑नं भूम ऊर्णुहि ॥ ५० ॥ (११)

भा०—हे पुरुष ! यही भूलोक तेरे रहने के लिये है इससे भिन्न नहीं। देख द्यौलोक में तो सूर्य जैसे पदार्थ रहते हैं। हे भूमे ! जिस प्रकार माता पुत्र को वस्त्र से ढक लेती है उसी प्रकार तू इस पुरुष को मकान द्वारा आच्छादित कर, सुरक्षित रख।

इ॒दमिद् वा उ॒ नाप॑रं ज॒रस्य॒न्यदि॒तोऽप॑रम्।
जा॒या पति॑मिव॒ वास॑सा॒भ्ये॑नं भूम ऊर्णुहि ॥ ५१ ॥

भा०—गृहस्थ लोक में यही तेरा गृहस्थोचित भोग है अन्याश्रयोचित भोग नहीं। और बुढ़ापे में और प्रकार का भोग है जो कि गृहस्थ के भोग से भिन्न है। हे भूमे ! पति को जिस प्रकार उसकी स्त्री वस्त्र से ढकती है उसी प्रकार तू इस पुरुष को मकान द्वारा आच्छादित कर।

अ॒भि त्वो॑र्णोमि पृथि॒व्या मा॒तुर्वस्त्रे॑ण भ॒द्रया॑।
जी॒वेषु॑ भ॒द्रं तन्मयि॑ स्व॒धा पि॒तृषु॒ सा त्वयि॑ ॥ ५२ ॥

भा०—हे पुरुष ! मैं तुझको पृथिवी के बने मकान द्वारा ढापूं जैसे कि माता के वस्त्र द्वारा बच्चे को ढांपा जाता है। इस प्रकार जीवों में जो सुख और कल्याण है वह मुझे प्राप्त हो ताकि मैं माता पिताओं को और तुझे अन्न आदि देता रहूँ।

अग्नी॑षोमा॒ पथि॑कृता स्यो॒नं दे॒वेभ्यो॒ रत्नं॑ दधथु॒र्वि लो॒कम्।
उप॒ प्रेष्य॑न्तं पू॒षणं॒ यो वहा॑त्यञ्जो॒यानैः॑ प॒थिभि॒स्तत्र॑ गच्छतम् ॥५३॥

भा०—हे आग के समान ज्ञानप्रकाशक और सोम के समान

शान्तस्वभाव योगिन् ! आप दोनों सब उत्तम मार्गों को बनाने हारे हो। आप दोनों ज्ञानवान् पुरुषों के लिये रमण करने योग्य लोक का नाना प्रकार से विधि-विधान करते हो। जो व्यक्ति समस्त जगत् के प्रेरणा करने हारे और समस्त जगत् के पोषक परमेश्वर को प्राप्त करावे, उसके पास अति वेगवान् रथों द्वारा जाने योग्य मार्गों से गमन किया करो।

पूषा त्वेतश्च्यावयतु प्र विद्वाननष्टपशुर्भुवनस्य गोपाः ।
स त्वैतेभ्यः परि ददत् पितृभ्योऽग्निर्देवेभ्यः सुविदत्रियेभ्यः ॥५४॥

भा०—हे जीव ! जिस परमेश्वर के जीव गण कभी नष्ट नहीं होते, वह उत्तम गोपाल के समान समस्त संसार का रक्षक है। वह सर्वज्ञ तथा सब का पोषक तुझको इस लोक से उत्तम लोक में ले जाता है। वह ही पथदर्शक होकर तुझे उत्तम ज्ञानवान् और दानशील, इन पिता और आचार्य आदि देवों के हाथों सौंपता है।

आयुर्विश्वायुः परि पातु त्वा पूषा त्वा पातु प्रपथे पुरस्तात् ।
यत्रासते सुकृतो यत्र त ईयुस्तत्र त्वा देवः सविता दधातु ॥५५॥

भा०—हे जीव ! समस्त संसार का जीवनस्वरूप परमेश्वर तेरी सब प्रकार से रक्षा करे। और आगे भी उत्तम मार्ग में सर्वपोषक परमात्मा तेरी रक्षा करे। जिस लोक में वे पुण्याचारी लोग जाते हैं वहां सर्वोत्पादक परमेश्वर तुझे रक्खे।

इमौ युनज्मि ते वह्नी असुनीताय वोढवे ।
ताभ्यां यमस्य सादनं समितीश्चाव गच्छतात् ॥ ५६ ॥

भा०—हे जीव ! प्राण द्वारा लोकान्तर में पहुंचने वाले तेरी आत्मा को वहन करने के लिये इन दोनों, प्राण और अपान, को मैं योग द्वारा एकत्र युक्त करता हूं। उन दोनों द्वारा सर्वनियन्ता परमेश्वर के आश्रय को तथा सत् ज्ञानमय सत्संगों को तू प्राप्त हो।

एतत् त्वा वासः प्रथमं न्वागन्नपैतदूह यदिहाबिभः पुरा।
इष्टापूर्तमनुसंक्राम विद्वान् यत्र ते दत्तं बहुधा विबन्धुषु ॥ ५७ ॥

भा०—हे जीव ! जो तूने पूर्व जन्म में भी धारण किया था वह देह का चोला सबसे उत्तम तुझे प्राप्त हुआ है। उसको तू त्याग दे और अपनी की हुई देव-उपासना और जीवों के भरण-पोषणकारी लोकोपकार के कार्यों के अनुसार, ज्ञानवान् होकर, अगले लोक में जा, जहां प्रायः विशेष बन्धन करने वाले लोकों में तेरा मन लगा हुआ है।

अग्नेर्वर्म परि गोभिर्व्ययस्व सं प्रोर्णुष्व मेदसा पीवसा च।
नेत् त्वा धृष्णुर्हरसा जर्हृषाणो दधृग् विधक्षन् परीङ्खयातै ॥५८॥

भा०—हे जीव ! तू ज्ञानाग्नि के कवच को वेद की वाणियों द्वारा पहन और अपने को परस्पर प्रेम द्वारा और देह की पुष्टि द्वारा अच्छी प्रकार ढकले। नहीं तो तेरे बल का नाश करने वाला कामादि तथा रोग आदि शत्रु अपने हरणशील बल से तुझे हरण करने की इच्छा करता हुआ, अति निर्भय होकर नाना प्रकार से संतप्त करता हुआ भय से कंपा देगा।

दण्डं हस्तादाददानो गतासोः सह श्रोत्रेण वर्चसा बलेन।
अत्रैव त्वमिह वयं सुवीरा विश्वा मृधो अभिमातीर्जयेम ॥ ५९ ॥

भा०—प्राणों से रहित अर्थात् शक्तिहीन पुरुष के हाथ से दमन करने के अधिकार को तथा अभियोगों को सुन सकने तथा तत्सम्बधी तेज और बल को मैं वापिस ले लेता हूँ। हे शक्तिहीन पुरुष ! तू इस स्थान में यहां ही रह। और हम उत्तम वीर्यवान् पुरुष समस्त अभिमानी राष्ट्रशत्रुओं का विजय करें।

धनुर्हस्तादाददानो मृतस्य सह क्षत्रेण वर्चसा बलेन।
समागृभाय वसु भूरि पुष्टमर्वाङ् त्वमेह्युप जीवलोकम् ॥६०॥(१२)

भा०—हे पुत्र ! मुर्दा अर्थात् निर्बल पुरुष के हाथ से वीर्य, तेज

और बल सहित धनुष् को लेता हुआ तू बहुत अधिक धन प्राप्त कर। और फिर तू जीवित अर्थात् बलवान् पुरुषों के निवास स्थान को आ जा।

इति द्वितीयोऽनुवाकः।

[तत्र एकं सूक्तं ऋचश्च पष्टिः।]

[३] स्त्री-पुरुषों के धर्म।

अथर्वा ऋषिः। यमः मन्त्रोक्ताश्च वह्व्यो देवताः। ५, ६ अग्निः। ५० भूमिः। ५४ इन्दुः। ५६ आपः॥ ४, ८, ११, २३ सतः पंक्तयः। ५ त्रिपदा निचृद् गायत्री। ६, ५६, ६८, ७०, ७२ अनुष्टुभः। १८, २५—२९, ४४, ४६ जगत्यः। (१८ भुरिक्, २९ विराड्)। ३० पञ्चपदा अतिजगती। ३१ विराट् शक्वरी। ३२—३५, ४७, ४९, ५२ भुरिजः। ३६ एकावसाना आसुरी अनुष्टुप्। ३७ एकावसाना आसुरी गायत्री। ३९ परात्रिष्टुप पंक्तिः। ५० प्रस्तारपंक्तिः। ५४ पुरोऽनुष्टुप्। ५८ विराट्। ६० त्र्यवसाना षट्पदा जगती। ६४ भुरिक् पथ्या पंक्त्यार्षी। ६७ पथ्या बृहती। ६०, ७१ उपरिष्टाद् बृहती।

शेषास्त्रिष्टुभः। त्रिसप्तत्यृचं सूक्तम्॥

मृतपतिक स्त्री का अधिकार

इ॒यं नारी॑ पतिलो॒कं वृ॑णा॒ना नि प॑द्यत॒ उप॑ त्वा मर्त्य॒ प्रेत॑म्।
धर्मं॑ पुरा॒णम॑नुपा॒लय॑न्ती॒ तस्यै॑ प्र॒जां द्रवि॑णं चे॒ह धे॑हि॥ १॥

भा०—पूर्व के ही पातिव्रत धर्म का निरन्तर पालन करती हुई यह स्त्री, पति के रूप से पुरुष को वरण करती हुई, हे मरणधर्मा पुरुष! तुझ मृतपति के समीप प्राप्त होती है। इस स्त्री को तू प्रजा और धन का प्रदान कर। अर्थात् मृत पुरुष के सन्तान और धन की स्वामिनी उसकी पत्नी हो।

पति के मरने पर पुत्र और स्त्री के लिये आज्ञा

उदी॑र्ष्व ना॒र्यभि जी॑वलो॒कं ग॒तासु॑मे॒तमुप॑ शेष॒ एहि॑।
ह॒स्त॒ग्रा॒भस्य॑ दधि॒षोस्तवे॒दं पत्यु॑र्जनि॒त्वम॒भि सं ब॑भूथ॥ २॥

भा०—हे नारि ! तू उठ । तू प्राणरहित इस पुरुष के पास पड़ी है । जीवित प्राणि-लोक को प्राप्त हो । हे स्त्रि ! तू पाणिग्रहण करने वाले तथा भरण-पोषणकारी तेरे अपने पति के लिये ही, इस अपने भार्यापन को लक्ष्य करके, नियुक्त पति के साथ सहवास कर ।

अपश्यं युवतिं नीयमानां जीवां मृतेभ्यः परिणीयमानाम् ।
अन्धेन यत् तमसा प्रावृतासीत् प्राक्तो अपाचीमनयं तदेनाम् ।३॥

भा०—मृत पूर्व पतियों के निमित्त और उनके ही वंश-रक्षार्थ जीवित जवान स्त्री को दूर ले जाई गई और विवाह करती हुई मैं देखूं । और जब वह शोक-मोह से ढकी हुई हो तो उसको पहिले के कष्टदायी दृश्य से हटाकर दूसरी ओर मैं ले जाऊं ।

प्रजानत्यघ्न्ये जीवलोकं देवानां पन्थामनुसंचरन्ती ।
अयं ते गोपतिस्तं जुषस्व स्वर्गं लोकमधि रोहयैनम् ॥ ४ ॥

भा०—हे गौ के समान कभी न ताड़ने योग्य स्त्रि ! तू जीवित लोगों को भली प्रकार जानती हुई और श्रेष्ठ पुरुषों के शिष्टाचार का पालन करती हुई, अपनी इन्द्रियों के स्वामी इस नियुक्त पति को प्रेम से प्राप्त कर और इसको ही अपने सुखमय गृहस्थलोक पर अधिकारारूढ कर ।

परिपालक पुरुष का स्वरूप

उप द्यामुप वेतसमवत्तरो नदीनाम् । अग्ने पित्तमपामसि ॥ ५ ॥

भा०—हे अग्रणी ! ज्ञानमय ! परमेश्वर ! तू जलों के समान स्वच्छ आप्त पुरुषों को पवित्र करने या पालन करने हारा है । तू नदियों के समीप, उनके जलों में उतराने वाली सेवार के समान व्यवस्था जाल फैला कर और वेत के समान तट पर अपने [मूल फैला कर, उन आप्त पुरुषों की बड़ी भारी रक्षा करने हारा है ।

यं त्वम॑ग्ने स॒मद॑ह॒स्तमु॒ निर्वा॑पया॒ पुन॑ः ।
कि॒याम्बु॒रत्र॑ रोहतु शाण्डदू॒र्वा व्य॑ल्कशा ॥ ६ ॥

भा०—हे अग्रणी ज्ञानमय परमेश्वर ! तू जिसको दुःखाग्नि से जलाता है, उसको ही फिर जल के समान शांत कर । जिस प्रकार अधिक जल पड़ने पर काई उग आती है और विविध शाखावाली बड़ी दूब पैदा हो जाती है उसी प्रकार जिस जनपद या आत्मा में तूने कठोर दमन किया हो वहां भी ऐसी शान्ति स्थापन कर कि वहां फिर से क्षात्र-शक्ति, पशुशक्ति और प्राणशक्ति की वृद्धि हो सके । क्षत्रं वा एतदोषधीनां यद् दूर्वा ॥ ऐ० ८ । ८ ॥ प्राणो दूर्वेष्टका ॥ श० ७ । ४ । २२० ॥ पशवो वै दूर्वेष्टका ॥ ७ । ४ । २ । १० । १० ॥

इ॒दं त॒ एकं॑ प॒र ऊ॑ त॒ एकं॑ तृ॒तीये॑न॒ ज्योति॑षा॒ सं वि॑शस्व ।
सं॒वेश॑ने त॒न्वा॒३॒ चारु॑रेधि प्रि॒यो दे॒वानां॑ पर॒मे स॒धस्थे॑ ॥ ७ ॥

भा०—हे पुरुष तेरे लिये यह एक ज्योति है । जो कि अपर ज्योति है । और तेरे लिये एक पर ज्योति अर्थात् ब्रह्मज्योति भी है । तू इस पर ज्योति में तीसरी जीवात्मारूप ज्योति से प्रवेश कर । इस प्रवेश के लिये तू अपने शरीर से शोभनरूप होओ और उस परम उत्कृष्ट ब्रह्म-स्थान में जाने के लिये देवों का प्रिय बनकर रह ।

उत्ति॑ष्ठ॒ प्रेहि॒ प्र द्र॒वौक॑ः कृणुष्व सलि॒ले स॒धस्थे॑ ।
तत्र॒ त्वं पि॒तृभि॑ः संविदा॒नः सं सोमे॑न॒ मद॑स्व॒ सं स्व॒धाभि॑ः ॥८॥

भा०—हे पुरुष ! उठ । आगे बढ़ । शीघ्रता से आगे बढ़ । जल के समान शान्त परम शरण उस प्रभु में अपना निवासस्थान बना । इस उद्देश्य के निमित्त तू अपने गुरु, माता, पिता आदि के साथ भली प्रकार सत्संग और ज्ञान लाभ करता हुआ, सर्वप्रेरक परमेश्वर के साथ अपने कर्मों से प्राप्त इष्ट फलों का उत्तम आनन्द लाभ कर ।

प्र च्य॑वस्व त॒न्व॑१ं सं भ॑रस्व॒ मा ते॒ गात्रा॒ वि हा॑यि॒ मो शरी॑रम् ।
मनो॒ निवि॑ष्टमनु॒ सं वि॑शस्व॒ यत्र॒ भूमे॒र्जुष॑से॒ तत्र॑ गच्छ ॥ ९ ॥

भा०—हे पुरुष ! तू अपने शरीर को उद्यमी बना और उसको भली प्रकार से पुष्ट कर। ताकि तेरे नाना अंग छूट न जायँ, शरीर भी तेरा न छूट जाय। जहाँ तेरा मन लगा है वहां ही उसे प्रविष्ट कर। भूमिलोक के जिस भाग में तुझे प्रेम लगा है वहां तू चला जा।

वर्चसा मां पितरः सोम्यासो अञ्जन्तु देवा मधुना घृतेन।
चक्षुषे मा प्रतरं तारयन्तो जरसे मा जरदष्टिं वर्धन्तु ॥१०॥ (१३)

भा०—ब्रह्मानन्द रस का पान करानेहारे पिता आदि वृद्धजन मुझको ब्रह्मवर्चस् से युक्त करें। और विद्याप्रदाता गुरु जन मुझे मधुर ज्ञानमय प्रकाश से प्रकाशित करें। साक्षात् दर्शन करने के लिये बहुत उत्कृष्ट रीति से मुझको संसार-यात्रा के पार पहुंचाते हुए वे वृद्धजन वृद्ध अवस्था तक पहुंचने वाले मुझको बढ़ावें।

वर्चसा मां समनक्त्वग्निर्मेधां मे विष्णुर्न्यनक्त्वासन्।
रयिं मे विश्वे नि यच्छन्तु देवाः स्योना मापः पवनैः पुनन्तु॥११॥

भा०—ज्ञान से प्रकाशित और अग्नि के समान तेजस्वी आचार्य मुझको तेज से खूब प्रकाशित करे। व्यापक परमेश्वर मेरे मुख में ज्ञान-युक्त वाणी को प्रकाशित करे। सब इन्द्रियगण, प्राण और विद्वान्गण मुझे बल, वीर्य प्रदान करें। और जलों के समान स्वच्छ हृदय वाले आप्त-जन पवित्र करने वाले अपने उपदेशों से मुझे पवित्र करें।

मित्रावरुणा परि मामधातामादित्या मा स्वरवो वर्धयन्तु।
वर्चो म इन्द्रो न्यनक्तु हस्तयोर्जरदष्टिं मा सविता कृणोतु ॥१२॥

भा०—मरण से रक्षा और विघ्नों का विनाश करने हारे माता पिता मेरा सब प्रकार से धारण पोषण करें। सूर्य के समान तेजस्वी तथा उत्तम ज्ञान के उपदेष्टा गुरु लोग मुझे ज्ञानोपदेश से बढ़ावें। और ऐश्वर्यवान् राजा मेरे हाथों में बल दे। सर्वोत्पादक परमेश्वर और प्रेरक सूर्य मुझे वृद्धावस्था तक पहुंचने वाला दीर्घायु करे।

यो म॒मार॑ प्रथ॒मो मर्त्या॑नां॒ यः प्रे॒याय॑ प्रथ॒मो लो॒कमे॒तम् ।
वै॒व॒स्व॒तं सं॒गम॑नं॒ जना॑नां य॒मं राजा॑नं ह॒विषा॑ सपर्यत ॥ १३ ॥

भा०—जो सर्वश्रेष्ठ प्रभु, मरण धर्मा प्राणियों के प्राण त्याग कराता और जो सर्वश्रेष्ठ होकर इस लोक में प्राणियों को भेजता है। उस सर्व-व्यापक, सर्वनियामक प्रभु की उपासना करो।

परा॑ यात पितर॒ आ च॑ याता॒यं वो॑ य॒ज्ञो मधु॑ना॒ सम॑क्तः ।
द॒त्तो अ॒स्मभ्यं॒ द्रवि॑णे॒ह भ॒द्रं र॒यिं च॑ नः॒ सर्व॑वीरं दधात ॥१४॥

भा०—हे पूज्य वृद्ध पुरुषो ! यह आप लोगों का यज्ञमय आत्मा मधु के समान मधुर ज्ञान से भली प्रकार प्रकाशित है। आप दूर दूर देशों तक जाओ और दूर दूर देशों से आओ भी। हम लोगों को नाना प्रकार के ज्ञान और धनों को प्रदान करो। इस लोक में कल्याणकारी और सुखकारी सब पुत्रों सहित ऐश्वर्य को भी धारण कराओ।

कण्वः॑ क॒क्षीवा॑न् पु॒रुमी॒ढो अ॒गस्त्यः॑ श्या॒वाश्वः॒ सोभ॑र्यर्च॒नाना॑ः ।
वि॒श्वामि॑त्रो॒ऽयं ज॒मद॑ग्नि॒रत्रि॒रव॑न्तु नः क॒श्यपो॑ वा॒मदे॑वः ॥ १५ ॥

भा०—कण्व[1] अर्थात् ज्ञान का उपदेश करने वाला, कक्षीवान्[2] अर्थात् प्राण, रश्मियों को अपने वश करनेहारा, पुरुमीढ[3] अर्थात् अति अधिक पुत्रों और धनों से युक्त, अगस्त्य[4] अर्थात् वृक्ष पर्वतादि को भी बलपूर्वक उखाड़ देने में समर्थ, श्यावाश्व अर्थात् दानशील इन्द्रियों से सम्पन्न, सोभरी अर्थात् उत्तम रीति से पुष्ट करने वाला, अर्चनानाः[5] अर्थात् पूजनीय उत्तम 'अनस्' शकट आदि का रचयिता, विश्वामित्र

[१५]—१. कणतेः शब्दार्थकात् औणा० क्वन्। २. 'कक्षं सेवते' इति यास्कः (नि० २। २)। ३. पुरूणि मीढानि अपत्यानि धनानि वा यस्य इति। सायणः। ४. अगान् वृक्षान् अस्यति इति अगस्तिः। दया० उणादि०। ५. 'अर्चनीयमनः शकटं यस्येति सायणः।

अर्थात् सब जगत् का मित्र, जमदग्नि[1] अर्थात् अग्नियों को नित्य प्रज्वलित रखने वाला तेजस्वी, अत्रि[2] अर्थात् त्रिविध तापों से मुक्त, कश्यप[3] अर्थात् ज्ञान का पालक, ज्ञान का पानकर्ता या जगत् को सूक्ष्म दृष्टि से देखने वाला, वामदेव[4] अर्थात् सुन्दर देव परमेश्वर का उपासक, ये समस्त समर्थ पुरुष हमारी रक्षा करें।

अध्यात्म में कण्व आदि १२ नाम १२ प्राणों के समझने चाहियें। १२ प्राणों के संग रहने से लक्षणावृत्ति से वह आत्मा भी इन १२ नामों से पुकारा जाता है। आत्मा की उन १२ शक्तियों के साधक भी कण्व आदि नामों से पुकारे जाते हैं।

विश्वा॑मित्र॒ जम॑दग्ने॒ वसि॑ष्ठ॒ भर॑द्वाज॒ गोत॑म॒ वाम॑देव।
श॒र्दिर्नो॒ अत्रि॑रग्रभी॒न्नमो॑भिः॒ सुसं॑शासः॒ पित॑रो मृ॒डता॑ नः ॥१६॥

भा०—हे विश्वामित्र अर्थात् सबके मित्र! हे जमदग्नि अर्थात् प्रज्वलित अग्नि वाले! या अग्नि के समान दीप्तियुक्त! हे वसिष्ठ अर्थात् बसने हारों में सबसे मुख्य! हे भरद्-वाज अर्थात् अन्न को भरने हारे! ज्ञानों और अन्नों से सबको पोषण करने हारे, हे वामदेव अर्थात् ईश्वरोपासक! आप लोग और शर्दि अर्थात् शरण देनेवाला, अत्रिः अर्थात् त्रिविध तापों से मुक्त, ये सब हमें ग्रहण करें, स्वीकार करें, अपनावें। ये सभी उत्तम रीति से शासन करने हारे, सबके पालक, आप पूज्य वृद्धजन अन्न और दुष्टों के नमाने वाले बलयुक्त साधनों से हमें सुखी करो। इस मंत्र में ऋषि सात मुख्य प्राणों के नाम हैं और उन सात शक्तियों के साधक पुरुष और व्यष्टिरूप से जीव-आत्मा और समष्टिरूप से परमेश्वर के भी वे नाम हैं।

---

१. जमतिर्ज्वलतिकर्मा। 'जमिताग्निः इति यास्कः। २. तस्मादत्रिर्नत्रय इति यास्कः (नि० ३। १७)। ३. 'कश्यपः पश्यको भवति, यत् सर्वं परिपश्यति सौक्ष्म्यात्' (तै० आ० १। ८। ८)। ४. वामः वननीयो देवःद्योतको बोधो यस्य सः' इति सा०॥

कस्ये मृजाना अति यन्ति रिप्रमायुर्दधानाः प्रतरं नवीयः ।
आप्यायमानाः प्रजया धनेनाध स्याम सुरभयो गृहेषु ॥ १७ ॥

भा०—ज्ञानयोग्य, सर्वोपरि शासक, परम वेद्य, ब्रह्म के आश्रय पर विद्वान् लोग अपनी आत्मा को शुद्ध करते हुए, अति उत्तम, नवीन जीवन को धारण करते हुए, पाप और चित्त के मल को दूर करते हैं। प्रजा और धन से खूब बढ़ते हुए हम लोग घरों में पुण्य कार्य की सुगन्धि को फैलाते रहें।

अञ्जते व्यञ्जते समञ्जते क्रतुं रिहन्ति मधुनाभ्यञ्जते ।
सिन्धोरुच्छ्वासे पतयन्तमुक्षणं हिरण्यपावाः पशुमासु गृह्णते॥१८॥

भा०—परमेश्वर के उपासक पुरुष प्रथम अपने नेत्रों को ज्ञान रूप अंजन से आंजते हैं, फिर विशेष रूप से उसका साक्षात् करते हैं और फिर भली प्रकार उसका साक्षात् करते हैं और फिर कर्त्ता आत्मा के स्वरूप को भी प्राप्त करते हैं और उसको अमृत ब्रह्मरस से साक्षात् रूप से प्रकाशित करते हैं। हृदय समुद्र के श्वासोच्छ्वास में गति करते हुए, धर्ममेघरूप आनन्द-जल की वर्षा करने वाले, अपने आत्मा को स्वर्ण के समान तप से पवित्र करने वाले तपस्वी योगीजन सर्वद्रष्टा प्रभु को इन भीतरी नाड़ियों में साक्षात् करते हैं।

यद् वो मुद्रं पितरः सोम्यं च तेनो सचध्वं स्वयशसो हि भूत ।
ते अर्वाणः कवय आ शृणोत सुविदत्रा विदथे हूयमानाः ॥१९॥

भा०—हे माता, पिता, गुरुजनो! आप लोगों का हर्षजनक और सौम्यरूप जो उपदेश है उसके सहित आप लोग स्वयं यशस्वी और वीर्यवान् होकर हमें प्राप्त होओ और उसी से निश्चय से आप सामर्थ्यवान् बने रहो। वे नाना प्रकार के आप लोग उत्तम मार्ग से गति करने वाले, दूरदर्शी, उत्तम दानशील या उत्तम ज्ञानसम्पन्न, ज्ञानमय यज्ञ में बुलाये

जाकर, हमारे वचनों को सुनो वा हमें उत्तम ज्ञानप्रद वाणियों का उपदेश श्रवण कराओ।

ये अत्रयो अङ्गिरसो नवग्वा इष्टावन्तो रातिषाचो दधानाः।
दक्षिणावन्तः सुकृतो य उ स्थासद्यास्मिन् बर्हिषि मादयध्वम्
॥ २० ॥ (१४)

भा०—जो अत्रि अर्थात् त्रिविधि तापों से रहित, अंगिरसः अर्थात् अंगारों के समान तेज से चमकने वाले, नवग्वाः अर्थात् नवीन नवीन वाणी को प्राप्त करने या प्राप्त कराने वाले, अथवा नवों प्राणों को वश करने वाले, यज्ञ करने हारे, दान देने, पवित्र दान ग्रहण करने हारे और सबको धारण पोषण करने वाले हैं और जो लोगों में दक्षिणा वाले दानशील, पुण्यकर्मों के करनेहारे हैं, वे सब आप एकत्र विराज कर इस आसन पर या यज्ञ में प्रसन्न रहो।

अधा यथा नः पितरः परासः प्रत्नासो अग्न ऋतमाशशानाः।
शुचीदयन् दीध्यत उक्थशासः क्षामा भिन्दन्तो अरुणीरप व्रन्
॥ २१ ॥　　ऋ० ६ । २ । १६ ॥ यजु० १९ । ६९ ॥

भा०—और जिस प्रकार हमारे अतिश्रेष्ठ, पुरातन गुरुजन सत्य ज्ञान को प्राप्त करते हुए, शुद्ध प्रकाश, शुद्ध आचरण व शील को प्राप्त होते हैं और स्वयं प्रकाशमान होकर वेद मन्त्रों का अनुशासन करते हुए, अन्धकार को नाश करते हुए, कान्तिमय ज्ञानधाराओं या वेदवाणियों को प्रकाशित करते हैं उसी प्रकार हम भी किया करें।

सुकर्माणः सुरुचो देवयन्तो अयो न देवा जनिमा धमन्तः।
शुचन्तो अग्निं वावृधन्त इन्द्रमुर्वीं गव्यां परिषदं नो अक्रन् ॥२२॥

भा०—उत्तम कर्म करनेवाले, उत्तम रुचिवाले, देव-उपासना करने वाले, ईश्वर भक्त पुरुष स्वयं विद्वान् होकर अपने जन्म को, लोहार जिस प्रकार लोहे को या स्वर्णकार जिस प्रकार सोने को आग में तपा तपा कर

शुद्ध करता है उसी प्रकार, बराबर तपस्या द्वारा शुद्ध करते हुए और अपने ज्ञानमय आत्मा को अग्नि के समान प्रदीप्त करते हुए और ऐश्वर्य-वान् परमेश्वर की स्तुतियों द्वारा महिमा बढ़ाते हुए, विशाल वाणी के प्रकाश के लिये हमारी परिषद् बनावें ।

आ यूथेव क्षुमति पश्वो अख्यद् देवानां जनिमान्त्युग्रः ।
मर्तासश्चिदुर्वशीरकृप्रन् वृधे चिदर्य उपरस्यायोः ॥ २३ ॥

भा०—बलवान् गोपालक जिस प्रकार अन्न वाले स्थान पर पशुओं के यूथों की उत्पत्ति को देखता है, उसी प्रकार सदा उद्यत दण्ड परमेश्वर भी अग्नि आदि देवों, विद्वानों और प्राणों की उत्पत्ति पर सदा दृष्टि रखता है, उसकी रक्षा करता है । मरणधर्मा पुरुष तो केवल स्त्रियों का भोग करते हैं । परन्तु वह सबका स्वामी परमेश्वर गर्भाशय में वपन किये हुए गर्भस्थ मनुष्य के बढ़ाने में भी समर्थ है ।

अकर्म ते स्वपसो अभूम ऋतमवस्रन्नुषसो विभातीः ।
विश्वं तद् भद्रं यदवन्ति देवा बृहद् वदेम विदथे सुवीराः ॥२४॥

भा०—हे परमेश्वर ! हम तेरे लिये कर्म करें और उत्तम कर्म और ज्ञान वाले होवें । प्रकाशवान् उषाएं हमारे यज्ञ या ज्ञान के कर्म में नित्य आया करें । विद्वान् जन जिसकी रक्षा करते हैं वह विश्व अति सुखकारी हो । हम उत्तम वीर्यवान् होकर ज्ञानमय यज्ञ में उस महान् परमेश्वर की खूब स्तुति करें ।

इन्द्रो मा मरुत्वान् प्राच्या दिशः पातु बाहुच्युता पृथिवी द्यामिवोपरि ।
लोककृतः पथिकृतो यजामहे ये देवानां हुतभागा इह स्थ ॥२५॥

भा०—प्राणों और वायुओं या प्रजाओं का स्वामी ऐश्वर्यवान् आत्मा, परमात्मा और राजा मेरी प्राची दिशा से रक्षा करे, ऊपर से जैसे कि सहस्रबाहु परमात्मा की बाहु द्वारा प्रेरित की गई पृथिवी द्युलोक के ऊपर तक गति करती हुई हमारी रक्षा करती है । जो राजा और

राजा के नियत अधिकारियों में से इस राष्ट्र में आप लोग अपने वेतन या अंश को प्राप्त करने वाले हैं वे प्रजाओं के व्यवस्थाकर्ता और मार्ग दर्शाने वाले या कानून बनाने वाले हैं, हम उनकी पूजा, सत्कार करें।

धाता मा निर्ऋत्या दक्षिणाया दिशः पातु बाहु० । ० ॥ २६ ॥

भा०—सबका पालक पोषक और धारण करने वाला परमेश्वर मुझको पृथिवी की शक्ति द्वारा दक्षिण की दिशा से बचावे जिस प्रकार कि पृथिवी द्युलोक के ऊपर तक गति करती हुई हमारी रक्षा करती है, (लोककृतः० इत्यादि) पूर्ववत्।

अदितिर्मादित्यैः प्रतीच्या दिशः पातु बाहु० । ० ॥ २७ ॥

भा०—अखण्डित शासनवाला परमेश्वर अपने उत्पन्न किये सूर्य आदि पदार्थों द्वारा मेरी प्रतीची दिशा से रक्षा करे। (बाहुच्युता० इत्यादि) पूर्ववत्।

सोमो मा विश्वैर्देवैरुदीच्या दिशः पातु बाहु० । ० ॥ २८ ॥

भा०—सर्वोत्पादक और सर्वप्रेरक प्रभु मेरी जीवन दान करने वाली, दिव्य गुण वाले पदार्थों द्वारा उदीची दिशा की ओर से रक्षा करे (बाहुच्युता० इत्यादि) पूर्ववत्।

धर्त्ता ह त्वा धरुणो धारयाता ऊर्ध्वं भानुं सविता द्यामिवोपरि।
लोककृतः० ॥ २९ ॥

भा०—विश्व का धारण करने वाला, आश्रय-स्तम्भ के समान सब विश्व का आधारभूत प्रभु तेरा ऊँचे स्थानों में भी उसी प्रकार धारण अर्थात् पालन पोषण करता है जिस प्रकार सर्वप्रेरक सूर्य ऊपर प्रकाशमान द्यौलोक को धारण करता है। (लोककृतः० इत्यादि) पूर्ववत्।

अधिकारियों की पदों पर नियुक्ति।

प्राच्यां त्वा दिशि पुरा संवृतः स्वधायामा दधामि बाहु० । ० ॥ ३० ॥ (१५)

भा०—हे पुरुष ! प्राची दिशा से पालन करने वाली पुरी या नगरी के चारों ओर लगी परकोट व परिखा द्वारा भली प्रकार आवृत, सुरक्षित होकर मैं राजा तुझको धारण करने योग्य अन्न, वेतन आदि पुरस्कार पर स्थापित करता हूँ। (बाहुच्युता० इत्यादि) पूर्ववत् ।

दक्षिणायां त्वा दिशि पुरा० । ० ॥ ३१ ॥ प्रतीच्यां त्वा दिशि पुरा० । ० ॥३२॥ उदीच्यां त्वा दिशि पुरा० । ० ॥ ३३ ॥ ध्रुवायां त्वा दिशि पुरा० । ० ॥ ३४ ॥ ऊर्ध्वायां त्वा दिशि पुरा संवृतः स्वधायामा दधामि बाहुच्युता पृथिवी द्यामिवोपरि । लोककृतः पथिकृतो यजामहे ये देवानां हुतभागा इह स्थ ॥ ३५ ॥

भा०—हे पुरुष ! तुझको दक्षिण दिशामें, प्रतीची दिशा में, उत्तर दिशा में, नीचे की दिशा में और ऊपर की दिशा में, पुर की परकोट से सुरक्षित रहता हुआ मैं राजा स्वयं धारण ग्रहण करने योग्य अन्न, वेतन आदि पुरस्कार पर, अधिकारी रूप से, नियत करता हूँ (बाहु-च्युता लोककृतः० इत्यादि) पूर्ववत् ।

धर्तासि धरुणोऽसि वंसगोऽसि ॥ ३६ ॥
उदपूरसि मधुपूरसि वातपूरसि ॥ ३७ ॥

भा०—हे राजन् ! तू प्रजाओं का धारण करने हारा तथा आश्रय है। वृषभ के समान सुन्दर, नरश्रेष्ठ है। तू जल, मधु और वायु के समान प्रजा का पालन करने वाला है।

राजा और प्रजा का परस्पर व्यवहार।

इतश्च मामुतश्चावतां यमे इव यतमाने यदैतम् ।
प्र वां भरन् मानुषा देवयन्तो आ सीदतां स्वमु लोकं विदाने ॥३८॥

भा०—जब राजसभा और प्रजासभा या माता और पिता आप दोनों सुव्यवस्थित युगलरूप से परस्पर के पालन में यत्न करते हुए आते

हो तब तुम दोनों मेरे समीप के देश से और दूर के देश से उसी प्रकार रक्षा करो जैसे पृथ्वी समीप से और आकाश दूर के देश से रक्षा करता है। चमकने वाले और शक्ति देने वाले पदार्थों को अपने वश करने वाले विद्वान् तथा विचारशील लोग तुम दोनों का भली प्रकार पालन-पोषण करें। आप दोनों अपने अपने स्थान, पद और प्रतिष्ठा को प्राप्त करते हुए और भली प्रकार जानते हुए विराजमान रहो।

स्वासस्थे भवतमिन्दवे नो युजे वां ब्रह्म पूर्व्यं नमोभिः।
वि श्लोक एति पथ्येव सूरिः शृण्वन्तु विश्वे अमृतास एतत् ॥३९॥

भा०—हे राजगण और प्रजागण! आप दोनों हमारे परम ऐश्वर्यवान् राजा के लिये सुखपूर्वक अपने अपने आसन वा पद पर उपविष्ट हो जाओ। तुम दोनों को मैं वश करने वाले उत्तम नियमों द्वारा पुरातन वेद के उपदेश से युक्त करता हूँ। सूर्य जिस प्रकार उचित मार्गों से आता है, उसी प्रकार समस्त पदार्थों का दर्शन कराने वाला यह ज्ञानमय वेद विविध मार्गों में गति करता है। हे दीर्घायु पुरुषो! आप सब लोग इस वेद-ज्ञान का श्रवण करें।

त्रीणि पदानि रुपो अन्वरोहच्चतुष्पदीमन्वैतद् व्रतेन।
अक्षरेण प्रति मिमीते अर्कमृतस्य नाभावभि सं पुनाति ॥ ४० ॥

भा०—बीज से उत्पन्न होने वाला पुरुष ज्ञानमय वेद-त्रयी को क्रम से चढ़ जाता है। और उसके पश्चात् ब्रह्मचर्य आदि व्रत पूर्वक चार पदों वाली चतुर्वेदमयी वाणी को प्राप्त होता है, तब अविनाशी 'ओंकार' रूप से उपासना करने योग्य परमेश्वर का भिन्न भिन्न गुणों से ज्ञान करता है। और तब सत्य ज्ञान के एकमात्र आश्रय रूप परमेश्वर में ही मग्न होकर उसको साक्षात् करके अपने को भली प्रकार पवित्र कर लेता है।

देवेभ्यः कर्मवृणीत मृत्युं प्रजायै किममृतं नावृणीत।
बृहस्पतिर्यज्ञमतनुत ऋषिः प्रियां यमस्तन्व१मा रिरेच ॥ ४१ ॥

भा०—देवों से किस प्रकार की मृत्यु को परमेश्वर ने दूर किया है ?, प्रजा से किस के अमृत को नहीं दूर किया। अर्थात् माता पिता आदि देव सन्तति परम्परा द्वारा अमर कर दिये गये हैं। महान् लोकों का पालक सर्वद्रष्टा परमेश्वर ऐसे प्रजातन्तु रूप यज्ञ को विस्तारित करता है और वह सर्वनियन्ता परमेश्वर जीव के प्रिय शरीर को मृत्यु रूप अग्नि से हर लेता है।

त्वम॑ग्न ईडि॒तो जा॑तवेदो॒ऽवा॑ड्ढ॒व्यानि॑ सुर॒भीणि॑ कृ॒त्वा ।
प्रादा॑: पि॒तृभ्य॑: स्व॒धया॒ ते अ॑क्षन्न॒द्धि त्वं दे॑व॒ प्रय॑ता ह॒वींषि॑ ॥४२॥

भा०—हे उत्पन्न पदार्थों को जानने हारे सबके अग्रणी ! स्तुतिपात्र तू अन्नों को सुगन्धित करके प्रदान करता है और प्रजा के पालन करने वाले गृहस्थ माता पिता को प्रदान करता है। वे अपने देह को पालन करने वाले पर्याप्त अन्न के स्वरूप में उन नाना प्रकार के हव्य रूप अन्नों को प्राप्त करते, उनका उपयोग करते हैं। हे सबको देने वाले देव ! राजन् ! प्रभो ! तू सब प्रदान किये अन्नों को स्वीकार कर लेता है।

आसी॑नासो अरु॒णीना॑मु॒पस्थे॑ र॒यिं ध॑त्त दा॒शुषे॒ मर्त्या॑य ।
पु॒त्रेभ्य॑: पितर॒स्तस्य॒ वस्व॒: प्र य॑च्छत॒ त इ॒होर्जं॑ दधात ॥४३॥

भा०—हे राष्ट्र के पालक, माता पिता, गुरुजन एवं वृद्ध पुरुषो ! आप लोग लाल वर्णवाली अर्थात् स्वस्थ माताओं या गौओं या पृथिवियों के समीप, उनके आश्रय में रहते हुए, अन्न आदि देने वाले मरणधर्मा पुरुष को धन प्रदान करो। और पिता लोग जिस प्रकार पुत्रों को धनादि प्रदान करते हैं उसी प्रकार आप लोग भी धन प्रदान करो। हे नाना विभागों के अध्यक्ष अधिकारी पुरुषो ! आप लोग इस राष्ट्र में बलकारक अन्न प्रदान करो।

अग्नि॑ष्वात्ताः पितर॒ एह ग॑च्छत॒ सद॑:-सदः सदत सुप्रणीतयः ।
अ॒त्तो ह॒वींषि॒ प्रय॑तानि ब॒र्हिषि॑ र॒यिं च॑ न॒: सर्व॑वीरं दधात ॥४४॥

भा०—जिन गृहस्थ पुरुषों ने यज्ञ वा सोमपान नहीं किया वे 'अग्निष्वात्त' हैं, अथवा जिन्होंने अग्नि, विद्युत् आदि का विज्ञान प्राप्त किया है या अग्नि के समान तापदायक तेजों से सम्पन्न हैं, वे आप प्रजा के पालक गण, इस यज्ञ में आवें। हे उत्तम नीति का उपदेश करने हारे विद्वान् लो।ो ! आप गृह गृह में प्राप्त होओ। और यज्ञ में प्रदान किये अन्न आदि पदार्थों को खाओ, और हमें सब प्रकार के वीर पुरुषों से युक्त धन सम्पत्ति का प्रदान करो। ये यज्वानस्ते पितरो बर्हिषदः। ये वा अयज्वानो गृहमेधिनस्ते पितरोऽग्निष्वात्ताः, इति तै० ब्रा० १ । ६ । ९ । ६ ॥

उपहूता नः पितरः सोम्यासो बर्हिष्येषु निधिषु प्रियेषु।
त आ गमन्तु त इह श्रुवन्त्वधि ब्रुवन्तु तेऽवन्त्वस्मान् ॥ ४५ ॥

भा०—हमारे सौम्यस्वभाव वाले पालक जन, यज्ञ सम्बन्धी प्रिय रत्न आदि पदार्थों द्वारा आदर सत्कारपूर्वक अर्चित किये जायं। वे आवें, वे इस यज्ञ या राष्ट्र या लोक में हमारी प्रार्थनाओं को सुनें और हमें उपदेश करें और हमारी रक्षा करें।

ये नः पितुः पितरो ये पितामहा अनूजहिरे सोमपीथं वसिष्ठाः।
तेभिर्यमः संरराणो हवींष्युशन्नुशद्भिः प्रतिकाममत्तु ॥ ४६ ॥

भा०—जो हमारे पिता के पिता और जो बाबा हैं, जो बसने वाले बस्ती के निवासियों में सबसे श्रेष्ठ होकर सोमपान या राष्ट्र के पालन-कार्य को क्रम से एक दूसरे के बाद करते हैं, उनके साथ अच्छी प्रकार रमण करता हुआ प्रजाओं का नियन्ता राजा, श्रेष्ठ अन्नों या भोज्य पदार्थों को चाहता हुआ, नाना भोग्य पदार्थों को स्वयं भी चाहने वाले प्रजारक्षक अधिकारियों के साथ अपनी इच्छानुसार अन्न आदि सात्विक भोग्य पदार्थों का भोग या ग्रहण, सेवन करे।

ये तातृषुर्देवत्रा जेहमाना होत्राविदः स्तोमतष्टासो अर्कैः।
आग्ने याहि सहस्रं देववन्दैः सत्यैः कविभिर्ऋषिभिर्घर्मसद्भिः ॥ ४७ ॥

भा०—जो विद्वान्, परमेश्वर की प्राप्ति के लिये निरन्तर यत्नशील होते हुए, त्यागपूर्वक दिये अन्नों को प्राप्त करने वाले वा श्रद्धा पूर्वक ग्रहण करने योग्य वेद-वाणियों के ज्ञाता, स्तुति के बचनों द्वारा स्तुतियों को करने वाले, ईश्वर के रस के लिए पिपासा अनुभव करते हैं, इन सच्चे, यज्ञ में बैठने वाले हज़ारों मन्त्रद्रष्टा ऋषियों, कवियों और ईश्वर के उपासकों के साथ हे अग्नि के समान तेजस्विन् ! राजन् ! या आचार्य ! आप आवें ।

ये सत्यासो हविरदो हविष्पा इन्द्रेण देवैः सरथं तुरेण ।
आग्ने याहि सुविदत्रेभिरर्वाङ् परैः पूर्वैर्ऋषिभिर्घर्मसद्भिः ॥४८॥

भा०—हे राजन् ! आचार्य ! परमेश्वर ! जो सत्यवादी, सत्यकर्मा, पवित्र अन्न को खाने वाले, पवित्र अन्नरस का पान करने वाले होकर, शत्रुनाशक या वेगवान् राजा के साथ तथा सामन्त राजाओं के साथ उनके समान रथ पर सवार होकर चलते हैं, उन उत्तम ज्ञानी पुरुषों और उत्कृष्ट और ज्ञान में पूर्ण, सूर्य के प्रखर तेज के समान तापकारी तेज में विराजमान, ज्ञानद्रष्टा ऋषियों के साथ हमें प्राप्त हो ।

उप सर्प मातरं भूमिमेतामुरुव्यचसं पृथिवीं सुशेवाम् ।
ऊर्णम्रदाः पृथिवी दक्षिणावत एषा त्वा पातु प्रपथे पुरस्तात् ॥४९॥

भा०—हे राजन् ! इस विशाल विस्तार वाली, सुखप्रद तथा सब को उत्पन्न करने वाली पृथिवी माता को तू प्राप्त हो । दक्षिणा या शक्ति वा अन्न से सम्पन्न अर्थ-सम्पत्ति या कार्य को अधिक बलपूर्वक करने की शक्तियों से सम्पन्न पुरुष के लिए यह पृथिवी भी कठिन न होकर उनके समान अति कोमल है, वह पृथिवी सर्वोत्तम मार्ग में आगे चलने वाला जो तू है उसकी पालना करे ।

उच्छ्वञ्चस्व पृथिवि मा नि बाधथाः सूपायनास्मै भव सूपसर्पणा ।
माता पुत्रं यथा सिचाभ्येनं भूम ऊर्णुहि ॥ ५० ॥ (१७)

भा०—हे भूमि ! तू उन्नति को प्राप्त हो। अपने ऊपर के निवासी प्रजा और राजा को पीड़ित मत कर। इस उत्तम राजा के लिये उत्तम रीति से प्राप्त करने योग्य, एवं उत्तम उपहार के समान और उत्तम रीति से उसके शरण में आनेवाली होकर रह। हे सर्वाश्रय भूमे ! जिस प्रकार माता पुत्र को अपना दूध पिलाती है उसी प्रकार तू उस राजा को सुखप्रद अन्नों से पूर्ण कर और उसे सब प्रकार से आच्छादित कर, सुरक्षित कर।

उच्छ्वञ्चमाना पृथिवी सु तिष्ठतु सहस्रं मित उप हि श्रयन्ताम्।
ते गृहासो घृतश्चुतः स्योना विश्वाहास्मै शरणाः सन्त्वत्र ॥५१॥

भा०—खूब पुलकित शरीर अर्थात् खूब ओषधि और कृषि आदि से सम्पन्न पृथिवी उत्तम रीति से विराजमान रहे। हज़ारों लोग परस्पर मिलकर इस पर अपना बसेरा करें। वे गृह घृत आदि पुष्टि-कारक पदार्थों को देने वाले, सुखकारक और इस स्वामी के लिये सब प्रकार से, सब दिनों, इस लोक में शरणप्रद हों।

उत् ते स्तभ्नामि पृथिवीं त्वत् परीमं लोगं निदधन्मो अहं रिषम्।
एतां स्थूणां पितरो धारयन्ति ते तत्र यमः सादना ते कृणोतु ॥५२॥

भा०—हे राजन् ! तेरे निमित्त पृथिवी को उत्पन्न करता हूँ। तेरे इर्दगिर्द, इस लोकसमाज को बसाता हुआ मैं पीड़ित न होऊँ। राष्ट्र के पालक लोग राज्य के भार को उठाने वाली इस धुरा को स्वयं धारण करते हैं। हे पुरुष ! उस कार्य में व्यवस्थापक या शिल्पी तेरे लिये अनेक आश्रयस्थान, गृहों, इमारतों को बनावे।

इममग्ने चमसं मा वि जिह्वरः प्रियो देवानामुत सोम्यानाम्।
अयं यश्चमसो देवपानस्तस्मिन् देवा अमृता मादयन्ताम् ॥५३॥

भा०—हे अग्रणी ! सेनापते ! तू इस पृथ्वी के भोग्य पदार्थों के भोग करने वाले राजा के प्रति कुटिलता का वर्ताव मत कर। यह

समस्त विद्वानों और राजाओं का और ज्ञान से सम्पन्न विद्वानों का प्यारा है। यह जो विद्वानों का रक्षक स्वयं भी नाना भोग्य पदार्थों का भोक्ता है उसके आश्रय पर रहने वाले अमृतरूप विद्वान् पुरुष हर्षित और आनन्दित हों।

अथर्वा पूर्णं चमसं यमिन्द्रायाबिभर्वाजिनीवते।
तस्मिन् कृणोति सुकृतस्य भक्षं तस्मिन्निन्दुः पवते विश्वदानीम् ५४

भा०—अथर्ववेद का ज्ञाता जिस पूर्ण चमस पात्र को, सेना के बल से युक्त ऐश्वर्यवान् सेनापति के लिये स्वयं धारण करता है, उसके आश्रय पर ही उत्तम पुण्यमय कार्यों के भोग्य फल को वह उत्पन्न करता है। और उसके आश्रय पर ही पात्र में रक्खे सोम के समान ज्ञान रस से सम्पन्न विद्वान् गण भी सदा उन्नति को प्राप्त करते हैं।

यत् ते कृष्णः शकुन आतुतोद पिपीलः सर्प उत वा श्वापदः।
अग्निष्टद् विश्वादगदं कृणोतु सोमश्च यो ब्राह्मणाँ आविवेश ॥५५॥

भा०—हे पुरुष ! तेरे शरीर में यदि काला पक्षी, काक आदि वा काटने हारा शक्तिशाली कीड़ी आदि जन्तु, सांप और कुत्ता, भेड़िया आदि हिंसक जन्तु घाव करदे तो उसको सब पदार्थों का भक्षक अग्नि रोग रहित करे। और जो सोम ओषधि का ज्ञाता वेद के विद्वान् पुरुषों में विद्यमान है वह वैद्य भी तुझको रोगरहित करे।

पयस्वतीरोषधयः पयस्वन्मामकं पयः।
अपां पयसो यत् पयस्तेन मा सह शुम्भतु ॥ ५६ ॥

भा०—सब ओषधियां रस वाली हों और मेरा वचन भी रस वाला हो और जो जलों के सारभूत पदार्थ का भी रस है उससे परमात्मा मुझे सुशोभित करे।

स्त्रियों के कर्त्तव्य

इमा नारीरविधवाः सुपत्नीराञ्जनेन सर्पिषा सं स्पृशन्ताम्।
अनश्रवो अनमीवाः सुरत्ना आ रोहन्तु जनयो योनिमग्रे ॥५७॥

भा०—ये सधवा नारियें उत्तम गृहस्वामिनी हैं, वे घृत से मिले अंजन वा लेपन द्रव्य से अपनी देह आंजें, उसे देह में मलें। और वे विना आंसू के, सुप्रसन्न, रोगरहित, सन्तान जनने में समर्थ स्त्रियां उत्तम रत्नों को धारण करती हुईं प्रथम निवासगृह या प्रतिष्ठा के पद या सेज को प्राप्त करें। स्त्री और पुरुषों में प्रथम स्त्रियें ही आदर पूर्वक प्रवेश करें अनन्तर पुरुष, यह शिष्टाचार है।

सं गच्छस्व पितृभिः सं यमेनेष्टापूर्तेन परमे व्योमन्।
हित्वावद्यं पुनरस्तमेहि सं गच्छतां तन्वा सुवर्चाः ॥ ५८ ॥

भा०—हे पुरुष ! तू पालन करने वाले वृद्ध महानुभावों से सत्संग किया कर। इन्द्रियों का संयम करने वाले ब्रह्मचारी पुरुष से संगति लाभ कर। उस परम रक्षास्थान परमेश्वर का आश्रय लेकर यज्ञ आदि देव-उपासना के कार्यों और लोकोपकार के कार्यों के साथ अपने को संगत कर। और निन्दा योग्य आचरण को छोड़ कर तू फिर अपने घर को आ। और उत्तम तेज से सम्पन्न होकर देह से सदा संयुक्त रह।

ये नः पितुः पितरो ये पितामहा य आविविशुरुर्व१न्तरिक्षम्।
तेभ्यः स्वराडसुनीतिर्नो अद्य यथावशं तन्वः कल्पयाति ॥५९॥

भा०—जो हमारे पिता के पिता और उनके भी पितामह हैं और जो भी विशाल अन्तरिक्ष में प्रविष्ट हैं अर्थात् देह छोड़ कर मोक्ष में आश्रय करते हैं, सर्व-प्राणप्रद स्वयं प्रकाशमान परमेश्वर उनकी प्रबल इच्छाओं या संस्कारों के अनुसार आज तक उनके शरीरों को बनाता है।

शं ते नीहारो भवतु शं ते प्रुष्वाव शीयताम्।
शीतिके शीतिकावति ह्लादिके ह्लादिकावति।
मण्डूक्य१प्सु शं भुव इमं स्व१ग्निं शमय ॥६०॥ (१८)

भा०—हे पुरुष ! तेरे लिये कोहरा सुखकारक हो। जलविन्दु के

फुहारे भी तेरे लिये सुखकारी रूप से भूमि पर आवें। हे शीत गुण वाली लते! हे शीतगुण वाली लता से युक्त भूमे! और चित्त में हर्ष उत्पन्न करने वाली लते! और हे हर्ष उत्पन्न करने वाली ओषधियों से युक्त भूमे! तू मेंडकी के समान जल में डूबी रह कर सदा कल्याणकारी हो और इस जीव रूप अग्नि को भली प्रकार शान्त कर।

विवस्वा॑न् नो॒ अभ॑यं कृणोतु॒ यः सु॒त्रामा॑ जी॒रदा॑नुः सु॒दानुः॑।
इ॒हेमे वी॒रा ब॒हवो॑ भवन्तु॒ गोम॒दश्व॑व॒न्मय्य॑स्तु पु॒ष्टम्॥ ६१॥

भा०—जो उत्तम रीति से प्रजा के पालन में समर्थ, सब को प्राण और अन्न देने में समर्थ और उत्तम कल्याणमय दान करने हारा है, वह विशेष धनैश्वर्य-सम्पन्न महापुरुष राजा या प्रभु, विविध वस्तुओं के स्वामी सूर्य के तुल्य हम प्रजाओं के लिये अभय करे। इस राष्ट्र में ये नाना प्रकार के वीर पुरुष रहें। और मेरे पास गौओं और घोड़ों वाला बहुत पुष्टिकारी या अतिपुष्ट जंगम धन हो।

विवस्वा॑न् नो॒ अमृत॒त्वे द॑धातु॒ परै॑तु मृ॒त्युर॒मृतं॑ न॒ ऐतु॑।
इ॒मान् र॑क्षतु॒ पुरु॑षा॒ना ज॑रि॒म्णो मो ष्वे॑षामस॑वो य॒मं गुः॑ ॥६२॥

भा०—विविध ऐश्वर्यों से युक्त राजा, सूर्य वा परमेश्वर हमें दीर्घ-जीवन के मार्ग में बनाये रक्खे। प्राणों का देह से छूटने की घटना दूर चली जाय। सैकड़ों वर्षों का जीवन हमें प्राप्त हो। वह प्रभु इन राष्ट्र-वासी पुरुषों की शरीर के स्वयं जीर्ण हो जाने के काल तक रक्षा करे। इनके प्राण मृत्यु के वश न हों।

यो द॒ध्रे अ॒न्तरि॑क्षे॒ न म॒ह्ना पि॑तृ॒णां क॒विः प्रम॑तिर्म॒ती॒नाम्।
तम॑र्चत वि॒श्वमि॑त्रा ह॒विर्भिः॒ स नो॑ य॒मः प्र॑त॒रं जी॒वसे॑ धात्॥६३॥

भा०—जो महान् सामर्थ्य से मानो अन्तरिक्ष आकाश में समस्त लोकों को धारण करता है और जो पालकों में से सबसे अधिक प्रज्ञावान् और मननशील पुरुषों में से सबसे उत्कृष्ट, मतिमान् है, हे समस्त

प्राणियों को स्नेह करने करने वाले या सब विश्व को मरण से बचाने वाले विद्वान् पुरुषो ! आप लोग उसकी अर्चना करो, उनकी जो कि हम सबका नियन्ता है और जो हमें जीवन भर बड़ी ही उत्तम रीति से पालन पोषण करता है। विश्वमित्राः = सर्वजनमित्रभूताः ब्राह्मणाः ॥सा०॥

आ रोहत दिवमुत्तमामृषयो मा बिभीतन।
सोमपाः सोमपायिन इदं वः क्रियते हविरगन्म ज्योतिरुत्तमम् ॥६४॥

भा०—हे वेद मन्त्रों का साक्षात् करने हारे विद्वान् पुरुषो ! आप लोग सबसे उत्तम और प्रकाशमय मोक्ष पदवी को प्राप्त करो। आप लोग निर्भय हो जाओ। हे ब्रह्मानन्द रस का पान करने हारे योगिजनो! और हे अन्यों को आनन्दरस का पान कराने हारे पुरुषो ! आप लोगों के लिये यह अन्न तैयार किया जाता है। हम भी आपकी कृपा से सर्वोत्कृष्ट परम प्रकाश परमेश्वर को प्राप्त होते हैं।

प्र केतुना बृहता भात्यग्निरा रोदसी वृषभो रोरवीति।
दिवश्चिदन्ताँदुपमामुदानडपामुपस्थे महिषो ववर्ध ॥ ६५ ॥

भा०—ज्ञानमय, सर्वप्रकाशक, सबका अग्रणी परमेश्वर बड़े भारी ज्ञान से खूब प्रकाशित है। आकाश और पृथिवी को वह सब सुखों का वर्षक अपनी गर्जना से खूब प्रतिध्वनित करता है। वह महान् आकाश के परले सिरे से मेरे तक व्याप रहा है। वही महान् सर्वव्यापक मूल प्रकृति के परमाणुओं के भीतर भी व्यापक है।

नाके सुपर्णमुप यत् पतन्तं हृदा वेनन्तो अभ्यचक्षत त्वा।
हिरण्यपक्षं वरुणस्य दूतं यमस्य योनौ शकुनं भुरण्युम् ॥ ६६ ॥

भा०—हे परमात्मा ! हृदय से कामना करते हुए ऋषि लोग परम आनन्दमय मोक्ष धाम में गमन कर रहा है, जो कि तेरा हृदय से साक्षात् दर्शन करते हैं, अभिरमणीय तेजोमय स्वरूप को ग्रहण करने वाला है, जो तू श्रेष्ठ पुरुष का दूत के समान हितकर है और यमनियमों

के पालन करने वाले के हृदय में शक्ति देने वाला तथा भरण-पोषण करने वाला है।

इन्द्र क्रतुं न आ भर पिता पुत्रेभ्यो यथा।
शिक्षा णो अस्मिन् पुरुहूत यामनि जीवा ज्योतिरशीमहि ॥६७॥

भा०—हे परमेश्वर ! जिस प्रकार पिता पुत्रों को धन-ऐश्वर्य और ज्ञान प्रदान करता है उसी प्रकार तू हमें कर्म, कर्मफल और ज्ञान प्राप्त करा। हे समस्त मनुष्यों से पुकारे गये ! हमें शिक्षा दो। इस व्यवस्थित राष्ट्र वा संसार-मार्ग में हम जीवित रह कर उत्तम ज्ञान-ज्योति का भोग करें।

अपूपापिहितान् कुम्भान् यांस्ते देवा अधारयन्।
ते ते सन्तु स्वधावन्तो मधुमन्तो घृतश्चुतः ॥ ६८ ॥

भा०—हे पुरुष ! दिव्य पदार्थ, पञ्चभूत, सूर्य, चन्द्र, मेघ आदि नैसर्गिक शक्तिमान् पदार्थ या स्वयं प्राणगण जिन तेरे रस को गुप्तरूप से धारण करने हारे कलशों के समान शारीरिक रस के पात्रों को, इन्द्रियों और तद् ग्राह्य विषयों से आच्छादित कर धारण कर रहे हैं, वे नाना प्रकार के रसपूर्ण कलश तेरे लिये आत्मा या देह के अपने धारण सामर्थ्य या शक्ति से युक्त मधु के समान मधुर आनन्द से युक्त घटों के तुल्य, घृत के समान पुष्टिकर और तेज को प्रदान करने वाले हों।

यास्ते धाना अनुकिरामि तिलमिश्राः स्वधावतीः।
तास्ते सन्तु विभ्वीः प्रभ्वीस्तास्ते यमो राजानु मन्यताम् ॥६९॥

भा०—हे पुरुष ! तेरे निमित्त जो तिल, अन्न और धान्य खेतों में बखेरता हूँ वे तेरे लिये खूब अधिक और उत्कृष्ट बल पैदा करने वाली मात्रा में हों। राष्ट्र का नियन्ता राजा उन अन्न-सम्पत्तियों को प्राप्त करने के लिये तुझे अनुज्ञा करे।

पुनर्देहि वनस्पते य एष निहितस्त्वयि ।
यथा यमस्य सादन आसातै विदथा वदन् ॥ ७० ॥

भा०—हे महावृक्ष के समान सब पर अपनी कृपा छाया रखने हारे सर्वशरण परमेश्वर ! जो यह पुरुष तुझमें विलीन हो जाता है, इस देह को छोड़ कर तेरे पास पहुंच जाता है, तू उसको पुनः शरीर प्रदान कर, जिससे सर्वनियन्ता के शरण में रहता हुआ ही वह परोपकारी जन सर्वसाधारण को ज्ञानों का उपदेश करता हुआ इस लोक में विद्यमान रहे ।

आ रभस्व जातवेदस्तेजस्वद्धरो अस्तु ते ।
शरीरमस्य सं दहाथैनं धेहि सुकृतामु लोके ॥ ७१ ॥

भा०—हे समस्त उत्पन्न प्राणियों को जानने हारे परमेश्वर ! तू उसे अपनी शरण में ले । तेरा हरणशील सामर्थ्य अग्नि के समान तेज से युक्त हो । इस जीव के शरीर को सामान्य अग्नि के समान ही भस्म कर डाल, जिनसे फिर कर्मबीज अंकुरित न हो । और इस पुरुष को पुण्यकारी पुरुषों के लोक में ही रख ।

ये ते पूर्वे परागता अपरे पितरश्च ये ।
तेभ्यो घृतस्य कुल्यैतु शतधारा व्युन्दती ॥ ७२ ॥

भा०—वे जो पूर्व पुरुषा लोग हमसे परे वानप्रस्थ आदि में चले गये हैं और जो अपने दूसरे पिता के समान पूजनीय पुरुष हमारे समीप विद्यमान हैं, उन सबके लिये, पुष्टिकारक अन्न, जल और आनन्द रस की नहर सैकड़ों धारा वाली होकर नाना प्रकार से आर्द्र करती हुई प्राप्त हो ।

एतदा रोह वय उन्मृजानः स्वा इह बृहदु दीदयन्ते ।
अभि प्रेहि मध्यतो माप हास्थाः पितृणां लोकं प्रथमो यो अत्र
॥ ७३ ॥ (११)

भा०—हे पुरुष ! तू जीवन को शुद्ध करता हुआ इस पूर्ण आयु को प्राप्त कर । इस लोक में तेरे अपने बन्धुजन बहुत अच्छी प्रकार प्रकाशित हो रहे हैं । तू उनके बीच में उनके सामने आ । पिता, पितामह आदि का लोक जो इस लोक में सर्वश्रेष्ठ है उसको परित्याग मत कर ॥ इति तृतीयोऽनुवाकः ॥ [तत्र त्रिसप्ततिर्ऋचः]

[४] देवयान और पितृयाण ।

अथर्वा ऋषिः । यमः, मन्त्रोक्ताः बहवश्च देवताः (८१ पितरो देवताः, ८८ अग्निः, ८९ चन्द्रमाः) । १, ४, ७, १४, ३६, ६० भुरिजः । २, ५, ११, २९, ५०, ५१, ५८ जगत्यः । ३० पञ्चपदा भुरिगतिजगती । ६, ९, १३ पञ्चपदा शक्वरी (९ भुरिक्, १३ त्र्यवसाना) । ८ पञ्चपदातिशक्वरी । १२ महाबृहती । १६-२४ त्रिपदाभुरिक् महाबृहती । २६, ३२-४३ । उपरिष्टाद् बृहती (२६ विराट्) २७ याजुषी गायत्री [२५] । ३१, ३२, ३८, ४१, ४२, ५५-५७, ५९, ६१ अनुष्टुप् (५६ ककुम्मती) । ३९, ६२, ६३ आस्तारपंक्तिः (३९ पुरोविराट् । ६२ भुरिक् । ६३ स्वराट्) । ४९ अनुष्टुब्गर्भा त्रिष्टुप् । ५३ पुरोविराट् सतः पंक्तिः । ६६ त्रिपदा स्वराड् गायत्री । ६७ द्विपदार्ची अनुष्टुप् । ६८, ७१ आसुरी अनुष्टुप् । ७२-७४, ७९ आसुरी पंक्तिः । ७५ आसुरीगायत्री । ७६ आसुरी उष्णिक् । ७७ दैवी जगती । ७८ आसुरीत्रिष्टुप् । ८० आसुरी जगती । ८१ प्राजापत्यानुष्टुप् । ८२ साम्नी बृहती । ८३, ८४ साम्नीत्रिष्टुभौ । ८५ आसुरी बृहती (६७, ६८, ७१-८६ एकावसाना) । ८६, ८७ चतुष्पदा उष्णिक् (८६ ककुम्मती, ८७ शंकुमती) । ८८ त्र्यवसाना पथ्यापंक्तिः । ८९ पंचपदा पथ्या पंक्तिः । शेषा स्त्रिष्टुभः । एकोननवत्यृचं सूक्तम् ॥

आ रो॑हत॒ जनि॑त्रीं जा॒तवे॑दसः पितृ॒याणैः॒ सं व॒ आ रो॑हयामि ।
अवा॑ड्ढ॒व्येषि॒तो ह॑व्यवा॒ह ई॑जा॒नं यु॒क्ताः सु॒कृतां॑ धत्त लो॒के ॥१॥

भा०—हे ब्रह्मज्ञानी विद्वानो ! आप लोग प्रजापति के योग्य मार्गों से प्रजा के उत्पन्न करने वाली उस परमेश्वरी जगदम्बा शक्ति को प्राप्त

करो । मैं आप लोगों को उस तक पहुंचाता हूँ । हे ज्ञानों को धारण करने हारे विद्वानो ! कामना से प्रेरित आत्मा स्तुतियों को उस परमेश्वर के प्रति समर्पित करता अर्थात् उनसे प्रभु की उपासना-स्तुति, पूजा करता है । आप लोग देवोपासना करने हारे आत्मा को एकाग्रचित्त होकर पुण्याचरण करने वाले पुरुषों के लोक में रक्खो ।

देवा यज्ञमृतवः कल्पयन्ति हविः पुरोडाशं स्रुचो यज्ञायुधानि ।
तेभिर्याहि पथिभिर्देवयानैर्यैरीजानाः स्वर्गं यन्ति लोकम् ॥ २ ॥

भा०—विद्वान् पुरुष, राजागण और ऋतुएं, प्राण और होतागण, दिशाएं, राजसभा के सदस्य आदि यज्ञ करते हैं । उसमें अन्न 'पुरोडाश' है और आहुति देने के चमस, स्रुवे, प्राण और ये लोक यज्ञ करने के आयुध, हथियार या उपकरण के समान हैं । उन देवों के गमन करने योग्य मार्गों से यज्ञ द्वारा देव-उपासना करने वाले लोग सुखमय लोक को प्राप्त होते हैं ।

ऋतवो वा होत्राः ॥ गो० ३ । ६ । ६ ॥ सदस्याऋतवोऽभवन् ॥ तै० ३ । १२ ॥ दिशः ॥ गो० उ० ६ । १२ ॥ याः षड् विभूतयः ऋतवस्ते ॥ जै० ३ । १ । २१ । १ ॥ आत्मा वै यजमानस्य पुरोडाशः ॥ कौ० १३ । ४ । ६ ॥ मस्तिष्को वै पुरोडाशः ॥ तै० ३ । २ । २ । ७ ॥ पुरोडाश शब्द से ब्रह्माण्ड, आत्मा, मस्तिष्क और हवि आदि लिये जाते हैं ।

स्रुचः—इमे वै लोकाः स्रुचः ॥ तै० ३ । ३ । १ । २ ॥ प्राणा वै स्रुचः ॥ है० ३ । २ । १ । ५ ॥ आधिदैविक, आध्यात्मिक आदि भेद से इनकी योजना कर लेनी चाहिये ।

ऋतस्य पन्थामनु पश्य साध्वाङ्गिरसः सुकृतो येन यन्ति ।
तेभिर्याहि पथिभिः स्वर्गं यत्रादित्या मधु भक्षयन्ति
तृतीये नाके अधि वि श्रयस्व ॥ ३ ॥

भा०—सत्यस्वरूप प्रजापति के उस मार्ग को भली प्रकार साक्षात् कर जिससे उत्तम रूप से योगादि कर्म करने हारे ज्ञानी पुरुष जाते हैं। उन मार्गों से हे पुरुष ! तू सुखमय उस स्वर्ग लोक को प्राप्त हो जहां अखण्ड ब्रह्म के पुत्ररूप परम योगी, आदित्य के समान तेजस्वी पुरुष ब्रह्ममय, अमृत, अभय, आनन्द का भोग करते हैं। हे पुरुष ! तू उस तीर्णतम, सबसे उत्कृष्ट, सर्व दुःखरहित, निःश्रेयस पद में अपने आपको प्रतिष्ठित कर।

त्रयः सुपर्णा उपरस्य मायू नाकस्य पृष्ठे अधि विष्टपि श्रिताः।
स्वर्गा लोका अमृतेन विष्ठा इषमूर्जं यजमानाय दुह्राम् ॥ ४ ॥

भा०—तीन सुपर्ण अर्थात् उत्तम पालन शक्ति से युक्त अग्नि, सूर्य और सोम मेघ के गर्जना कराने वाले वे हैं, वे स्वर्ग के स्थान पर सूर्य में आश्रित हैं। सुखमय सब लोक जल से व्याप्त हैं। वे यज्ञ करने वाले पुरुष के लिये अन्न और उत्तम रस का प्रदान करते हैं।

जुहूर्दाधार द्यामुपभृदन्तरिक्षं ध्रुवा दाधार पृथिवीं प्रतिष्ठाम्।
प्रतीमां लोका घृतपृष्ठाः स्वर्गाः कामंकामं यजमानाय दुह्राम् ॥५॥

भा०—विराट् यज्ञ का वर्णन करते हैं—परमेश्वर की विशाल आदान करने वाली वशकारिणी शक्ति महान् आकाश जिसमें समस्त सूर्य और नक्षत्र विद्यमान हैं उसको धारण करती है। समस्त प्राणियों का भरण पोषण करने वाली महान् परमेश्वरी शक्ति जिसमें वायु और मेघ विद्यमान हैं उसको धारण करती है। परमात्मा की स्थिर करने वाली अचल शक्ति सब प्राणियों को अपने भीतर स्थिर करने वाली पृथिवी को धारण करती है। इस पृथिवी के प्रति घृत के समान पुष्टिकारक पदार्थ और जल से पूर्ण सुखमय लोक या प्रदेश देवोपासक के लिये उसकी प्रत्येक कामना को पूर्ण करते हैं।

ध्रुव आ रोह पृथिवीं विश्वभोजसमन्तरिक्षमुपभृदा क्रमस्व।
जुहु द्यां गच्छ यजमानेन साकं स्रुवेण वत्सेन दिशः प्रपीनाः
सर्वा धुक्ष्वाहृणीयमानः ॥ ६ ॥

भा०—हे अचलशक्ते! समस्त भोग्य पदार्थ के आश्रयभूत इस पृथिवी पर तू अधिष्ठात्री होकर रह। हे समस्त प्राणियों को भरण पोषण करने वाली शक्ते! तू अन्तरिक्ष लोक में सदा विद्यमान रह। हे भूमि से जल आदि लेने और उस पर बरसाने वाली शक्ति! तू ईश्वर की यज्ञ द्वारा उपासना करने हारे पुरुष के साथ सूर्य में विद्यमान रह। बछड़े के समान दिशाओं के आश्रय में रहने वाले निरन्तर गतिशील वायु द्वारा समस्त दिशाएं पूरी तरह से भरी पूरी हैं। बछड़े को देखकर जैसे गौएं अपना दूध प्रेम से बहाती हैं। इसी प्रकार वायु के द्वारा दिशाएं भी अपना रस पृथिवी पर बरसाती हैं। हे पुरुष! तू उन सबको बिना किसी लज्जा और संकोच के दोहन कर।

तीर्थैस्तरन्ति प्रवतो महीरिति यज्ञकृतः सुकृतो येन यन्ति।
अत्रादधुर्यजमानाय लोकं दिशो भूतानि यदकल्पयन्त ॥ ७ ॥

भा०—जिस प्रकार तैरने के साधन नाव आदि द्वारा बड़ी वेगवान् नदियां तरी जाती हैं उसी प्रकार भवसागर से पार उतरने के साधनभूत अध्यात्म यज्ञ, तप आदि तीर्थों और तपस्वी आदि जंगम तीर्थों द्वारा बड़ी विपत्तियों को भी लोग तर जाते हैं। इस प्रयोजन से जिस मार्ग द्वारा बड़ी भारी उत्तम कर्म करने हारे पुण्यात्मा और ईश्वरोपासना करने वाले यज्ञशील पुरुष गमन करते हैं उसी मार्ग में रहकर वे दिशा और उत्पन्न प्राणी जो जो भी बनाये हैं वे परमेश्वर के उपासक यज्ञशील पुरुष के लिये स्थान को बनाते हैं।

अङ्गिरसामयनं पूर्वो अग्निरादित्यानामयनं
गार्हपत्यो दक्षिणानामयनं दक्षिणाग्निः।
महिमानमग्नेर्विहितस्य ब्रह्मणा समङ्गः सर्व उप याहि शग्मः॥८॥

भा०—ज्ञानी पुरुषों का परम उद्देश्य रूप आश्रय, पूर्व दिशा से निकलने वाले सूर्य के समान सबसे पूर्व विद्यमान, आदि मूल, सबका प्रवर्त्तक नेता परमेश्वर है । आदित्य के समान सबके पालक-पोषक प्रजापतियों का आश्रयस्थान, गृहपति के समान होकर रहनेहारा प्रजापति है । और बलवान् पुरुषों का आश्रय क्रियाशक्ति प्रदान करने वाला वही परमेश्वर है । हे पुरुष! नाना प्रकार से वर्तमान उस सर्वप्रकाशक परमेश्वर के महत्व को तू वेद से जान जो तू भली प्रकार ज्ञानवान्, सब प्रकार से पूर्ण और शक्तिमान् है ।

पूर्वो अग्निष्ट्वा तपतु शं पुरस्ताच्छं पश्चात् तपतु गार्हपत्यः ।
दक्षिणाग्निष्टे तपतु शर्म वर्मोत्तरतो मध्यतो अन्तरिक्षाद्
दिशोदिशो अग्ने परि पाहि घोरात् ॥ ९ ॥

भा०—हे पुरुष ! पूर्व से या सबसे पूर्ण ज्ञानी, अग्रणी परमेश्वर तेरे आगे कल्याण और शान्ति प्रदान करने के लिये तुझे प्रकाशित करे । और पीछे से गृहपति के समान प्रजापति परमेश्वर प्रदीप्त हो । बलप्रदाता परमेश्वर तुझे सुखदायक और कवच के समान रक्षक होकर तपे । हे परमेश्वर ! तू बहुत ऊपर से, बीच से, अन्तरिक्ष से और प्रत्येक दिशा से आने वाले कष्टदायी आक्रमण से रक्षा कर ।

यूयमग्ने शंतमाभिस्तनूभिरीजानमभि लोकं स्वर्गम् ।
अश्वा भूत्वा पृष्टिवाहो वहाथ यत्र देवैः सधमादं मदन्ति १०(२०)

भा०—हे परमेश्वर और उसकी नाना शक्तियो ! तुम सब अत्यन्त कल्याणकारी स्वरूपों से, पीठ पर लाद कर चलने वाले घोड़ों के समान होकर, दानशील, ईश्वर-उपासक और विद्युत्, जलवायु के साधक विज्ञानवान् पुरुष को उस सुखमय लोक में लेजाते हो जहां मुक्त आत्मा लोग देवों के साथ आनन्द प्रसन्न करते हुए उनके सुख का भोग करते हैं ।

शमग्ने पश्चात् तप शं पुरस्ताच्छमुत्तराच्छमधरात् तपैनम् ।
एकस्त्रेधा विहितो जातवेदः सम्यगेनं धेहि सुकृतामु लोके ॥११॥

भा०—हे परमेश्वर! तू पीछे से कल्याणरूप होकर आत्मा को परिपक्व कर, आगे से भी कल्याणकारी होकर परिपक्व कर । ऊपर से भी कल्याणकारी होकर परिपक्व कर और इस आत्मा को नीचे से भी कल्याणकारी होकर परिपक्व कर । हे सर्वज्ञ प्रभो! आप एक हैं, तो भी तीन अग्नियों के तुल्य तीन प्रकार से विशेष रूप से बतलाये जाते हो । आप इस आत्मा को उत्तम कर्म करने वाले पुण्यात्माओं के लोक में भली प्रकार स्थापित करो ।

शमग्नयः समिद्धा आ रभन्तां प्राजापत्यं मेध्यं जातवेदसः ।
शृतं कृण्वन्त इह माव चिक्षिपन् ॥ १२ ॥

भा०—खूब प्रदीप्त ज्ञानी जन, उत्कृष्ट ज्ञानवान् होकर, प्रजापति अर्थात् परमेश्वर सम्बन्धी पवित्र यज्ञ-कार्य को प्रारम्भ करें । आप लोग इस आत्मा को भी अन्न के समान परिपक्व करते हुए, इस मर्त्यलोक में न गिरने दें ।

यज्ञ एति वितंतः कल्पमान ईजानमभि लोकं स्वर्गम् ।
तमग्नयः सर्वहुतं जुषन्तां प्राजापत्यं मेध्यं जातवेदसः ।
शृतं कृण्वन्त इह माव चिक्षिपन् ॥ १३ ॥

भा०—सुखमय लोक को उद्देश्य करके यज्ञ करने हारे देव-उपासक पुरुष को, यज्ञमय परमात्मा सब प्रकार से समर्थ होकर व्यापकरूप में प्राप्त होता है । सर्वस्व को ईश्वर के निमित्त समर्पण कर देने वाले पुरुष को, प्रकाशवान् ज्ञानी पुरुष भी, प्रजापति के अनुरूप पूजनीय जानकर प्राप्त होते हैं । वे उसको परिपक्व तपोनिष्ठ करते हुए इस संसार में कभी नीचे न गिरने दें ।

ईजानश्चितमारुक्षदग्निं नाकस्य पृष्ठाद् दिवमुत्पतिष्यन् ।
तस्मै प्र भाति नभसो ज्योतिषीमान्त्स्वर्गः पन्थाः सुकृते देवयानः ॥ १४ ॥

भा०—देव का उपासक जन सुखमय लोक से प्रकाशस्वरूप परमेश्वर के प्रति ऊपर उठने की अभिलाषा करता हुआ चित्स्वरूप ज्ञानमय परमेश्वर का आश्रय लेता है। उसके लिये ही आकाश के बीच ज्योतिर्मय परमेश्वर प्रकाशित होता है। यही वास्तव में सुख से गमन करने योग्य देवयान-मार्ग उत्तम कर्म करने हारे के लिये प्राप्त होने योग्य है।

अग्निर्होताध्वर्युष्टे बृहस्पतिरिन्द्रो ब्रह्मा दक्षिणतस्ते अस्तु।
हुतोऽयं संस्थितो यज्ञ एति यत्र पूर्वमयनं हुतानाम् ॥ १५ ॥

भा०—हे पुरुष ! तेरे यज्ञ का होता ज्ञानवान् परमेश्वर ही है। वही समस्त वेदवाणी का स्वामी परमेश्वर तेरा अध्वर्यु अर्थात् रक्षक है। और वही ऐश्वर्यवान् परमेश्वर तेरे यज्ञ का ब्रह्मा तेरे दक्षिण भाग में सदा विद्यमान रहे। हे पुरुष ! जीवन समाप्त करके मृत हुआ यह देह अग्नि में आहुति कर दिया जाता है और यज्ञ रूप आत्मा उस स्थान पर चला जाता है जहाँ पूर्व आहुति किये आत्माओं का आश्रय लोक है।

अपूपवान् क्षीरवांश्चरुरेह सीदतु। लोककृतः पथिकृतो यजामहे ये देवानां हुतभागा इह स्थ ॥ १६ ॥ अपूपवान् दधिवांश्चरुरेह ०।० ॥ १७ ॥ अपूपवान् द्रप्सवांश्चरुरेह ०।० ॥ १८ ॥ अपूपवान् घृतवांश्चरुरेह ०।० ॥ १९ ॥ अपूपवान् मांसवांश्चरुरेह ०।० ॥ २० ॥ (२१) अपूपवानन्नवांश्चरुरेह ०।० ॥ २१ ॥ अपूपवान् मधुमांश्चरुरेह ०।० ॥ २२ ॥ अपूपवान् रसवांश्चरुरेह ०।० ॥ २३ ॥ अपूपवानपवांश्चरुरेह सीदतु। लोककृतः पथिकृतो यजामहे ये देवानां हुतभागा इह स्थ ॥ २४ ॥

भा०—इस लोक में अपूप वाला और क्षीर से युक्त भोग्य अन्न रक्खा जावे। देवों के निमित्त जो लोग उनके प्राप्त होने योग्य भोग्य अंशों को प्रदान करते हैं उन लोक-व्यवस्थापक पुरुषों और मार्ग निर्माण

करने वाले उपकारी पुरुषों को हम उक्त पदार्थ प्रदान करें ॥ १६ ॥ इस लोक में अपूप और दधिवाला अन्न रक्खा जाय, इत्यादि पूर्ववत् ॥ १७ ॥ अपूप और रस वाला चरु यहाँ रक्खा जाय, इत्यादि पूर्ववत् ॥ १८ ॥ अपूप और घृत से युक्त चरु यहाँ रक्खा जाय, इत्यादि पूर्ववत् ॥ १९ ॥ अपूपवाला और माँस अर्थात् गूदेवाला चरु यहाँ रक्खा जाय, इत्यादि पूर्ववत् ॥ २० ॥ अपूप और अन्न से युक्त चरु यहाँ रक्खा जाय, इत्यादि पूर्ववत् ॥ २१ ॥ अपूप और मधु से युक्त चरु यहाँ रक्खा जाय, इत्यादि पूर्ववत् ॥ २२ ॥ अपूप और रसवाला चरु, इत्यादि पूर्ववत् ॥ २३ ॥ अपूप और जल से युक्त चरु यहाँ रक्खा जाय, इत्यादि पूर्ववत् ॥ २४ ॥

अपूपापिहितान् कुम्भान् यांस्ते देवा अधारयन् ।
ते ते सन्तु स्वधावन्तो मधुमन्तो घृतश्चुतः ॥ २५ ॥

भा०—अपूप आदि द्वारा परिपुष्ट हुए शरीर जो तुझे दिव्यशक्तियों द्वारा मिलते रहते हैं, उनमें अपने को धारने की शक्ति हो वे माधुर्यमय हों और वीर्यवान् हों ।

यास्ते धाना अनुकिरामि तिलमिश्राः स्वधावतीः ।
तास्ते सन्तूद्भ्वीः प्रभ्वीस्तास्ते यमो राजानु मन्यताम् ॥ २६ ॥

भा०—हे पुरुष ! तिलों से मिश्रित और तेरे शरीर को धारण कर सकने में समर्थ जिन खीलों या फुल्लियों को तेरी जीवनस्थिति के अनुकूल मैं विस्तृत करता हूँ । वे तेरे लिये उत्तम स्थिति पैदा करने वाली तथा शक्ति देने वाली हों । और सर्वनियन्ता सर्वोपरि विराजमान परमेश्वर तेरे निमित्त उनको अनुकूल बनावे ।

अक्षितिं भूयसीम् ॥ २७ ॥

भा०—हे पुरुष ! नियन्ता परमेश्वर की अनुमति से तू बहुत, कभी क्षय न होने वाली सम्पत्ति को चिरकाल तक भोग कर ।

द्रप्सश्चस्कन्द पृथिवीमनु द्यामिमं च योनिमनु यश्च पूर्वः ।
समानं योनिमनु संचरन्तं द्रप्सं जुहोम्यनु सप्त होत्राः ॥ २८ ॥

भा०—आदित्य[1] पृथिवी और आकाश को व्याप्त करता है, अर्थात् वह इस लोक को और जो इससे पूर्व विद्यमान द्यौलोक है उसको भी अनुमाणित करता है । दोनों लोकों में समानरूप से व्याप्त होते हुए उस तेजःस्वरूप आदित्य के आश्रय पर ही सात होत्र अर्थात् सबको अपने भीतर समा लेने वाली ये दिशाएँ हैं इनके प्रति मैं आहुति देता हूँ ।

शतधारं वायुमर्कं स्वर्विदं नृचक्षसस्ते अभि चक्षते रयिम् ।
ये पृणन्ति प्र च यच्छन्ति सर्वदा ते दुह्रते दक्षिणां सप्तमातरम् ॥ २९

भा०—सैकड़ों के परिपोषक, क्रियाशील, एवं अर्चना करने योग्य और सुख के प्राप्त करने और कराने वाले परमेश्वर को, वे सर्वनेता परमेश्वर को साक्षात् करने वाले, सर्वैश्वर्यरूप, प्राणरूप, बलरूप में ही साक्षात् कहते हैं । और जो पुरुष सब कालों में समस्त जीवों का पालन करते हैं और उनको अन्न, वस्त्र, आश्रय सुख प्रदान करते हैं, वे सातों प्रकार के अन्नों वाली अथवा सात निर्मातृ पदार्थों अर्थात् सप्त धातुओं वाली, दक्षिणा रूप पृथिवी को दोहते हैं, वे पृथिवी के समस्त जीवनोपयोगी उत्तम उत्तम सार पदार्थों को प्राप्त करते हैं ।

कोशं दुहन्ति कलशं चतुर्बिलमिडां धेनुं मधुमतीं स्वस्तये ।
ऊर्जं मदन्तीमदितिं जनेष्वग्ने मा हिंसीः परमे व्योमन् ॥ ३० ॥

भा०—चार छिद्रों वाले चार थनों से युक्त गाय के समान चार वेदों वाली जो मधुर वाली है जो कि ज्ञान, कर्म, उपासना और विज्ञान रूपी धनों का ख़ज़ाना है उसको प्रजा की रक्षा और कल्याण के लिये

१. असौ वादित्यो द्रप्सः । स दिवं च पृथिवीं च स्कन्दति ॥ श० ब्रा० ७ । ४ । १२० ॥

विद्वान् लोग दोहते हैं । हे ज्ञानवान् ! अग्रणी नेतः ! तू विनष्ट न होने वाली तथा परम रस से जनों को संतृप्त करती हुई उस वेद वाणी की कभी हिंसा मत कर । इसी प्रकार ४ स्तन-छिद्रों वाली, मधुर दुग्ध देने हारी, बल-अन्न देने वाली गाय की भी परम रक्षा करनी चाहिये ।

एतत् ते देवः सविता वासो ददाति भर्तवे ।
तत् त्वं यमस्य राज्ये वसानस्तार्प्यं चर ॥ ३१ ॥

भा०—हे पुरुष ! सबका उत्पादक परमेश्वर ! तुझे अपने देह को बचाने के लिये यह वस्त्र या निवासस्थान प्रदान करता है । तू सर्व-नियन्ता परमेश्वर के राज्य में निवास करता हुआ आत्मा को तृप्त कर । 'तृपा' नाम तृण के बने वस्त्र को पहन कर विचर ।

धाना धेनुरभवद् वत्सो अस्यास्तिलोऽभवत् ।
तां वै यमस्य राज्ये अक्षितामुप जीवति ॥ ३२ ॥

भा०—पूर्वोक्त २६ वें मन्त्र में कहे 'तिलमिश्रा धाना' की व्याख्या करते हैं । 'धाना' अर्थात् खीलें लोक के धारण पोषण में समर्थ होने से ही धेनु है और तिल स्नेहयुक्त होने से उसका बछड़ा है । २७ मन्त्र में कहे 'अक्षिति' की व्याख्या करते हैं । नियन्ता परमेश्वर के राज्य में उस गोमाता को सदा अक्षीण रूप में या अक्षय सम्पदा के रूप में प्राप्त करके उसके आधार पर यह लोक अपनी आजीविका चलाता है ।

एतास्ते असौ धेनवः कामदुघा भवन्तु ।
एनीः श्येनीः सरूपा विरूपास्तिलवत्सा उप तिष्ठन्तु त्वात्र ॥३३॥

भा०—हे पुरुष ! ये रसपान कराने हारी धेनुएं तेरे लिये कामनाओं को पूर्ण करने वाली 'कामधेनु' हों । ये गेहुंए रंग की, श्वेत वर्ण की, समानरूप की और विविध रूप की, तथा तिलों के समान, स्नेह युक्त छोटे छोटे बछड़ों वाली गौएं तुझे इस भूमि पर प्राप्त हों ।

एनीर्धाना हरिणीः श्येनीरस्य कृष्णा धाना रोहिणीर्धेनवस्ते ।
तिलवत्सा ऊर्जमस्मै दुहाना विश्वाहा सन्त्वनपस्फुरन्तीः ॥३४॥

भा०—गेहुंए रंग की, हरित या नीले वर्ण की, श्वेत वर्ण की, काले रंग की तथा लाल रंग की गौवें, जो इस लोक को धारण पोषण करने में समर्थ हैं वे ही 'धाना' शब्द से कही जाती हैं, वे भरण पोषण में समर्थ दुधार गौवें तुझे प्राप्त हों। और तिल के समान स्नेह से पूर्ण बछड़ों वाली गौवें इस लोक के निमित्त परम पुष्टिकारक रस को प्रदान करती हुई, सब दिन निर्भय, निराकुल, आपद्रहित, सुखी रहें।

वैश्वानरे हविरिदं जुहोमि साहस्रं शतधारमुत्सम्।
स बिभर्ति पितरं पितामहान् प्रपितामहान् बिभर्ति पिन्वमानः॥ ३५॥

भा०—समस्त मनुष्यों के हितकारी देव के निमित्त मैं इस अन्न आदि त्याग करने योग्य पदार्थ की आहुति करता हूँ। यह सहस्रों फलों को देने वाला, सैकड़ों धाराओं वाला स्रोत है। वह समस्त लोक का हितकारी, परम देव स्वयं प्रसन्न होकर पालक पिता को पितामह और प्रपितामह आदि वृद्ध पूजनीय पुरुषों का पालन पोषण करता है।

सहस्रधारं शतधारमुत्समक्षितं व्यच्यमानं सलिलस्य पृष्ठे।
ऊर्जं दुहानमनपस्फुरन्तमुपासते पितरः स्वधाभिः॥ ३६॥

भा०—अन्तरिक्ष के पृष्ठ पर विविध प्रकार से प्रकट होने वाले, सहस्रों धारण शक्तियों या सहस्रों धाराओं से समृद्ध, सैकड़ों का धारण पोषण करने वाले, अक्षय, जल आदि सुखकारी पदार्थों को बहाने वाले, समस्त प्राणियों को सर्वोत्तम अन्नादि रस का प्रचुर मात्रा में प्रदान करने हारे, धीर परमेश्वर की, प्रजापालक लोग अपनी धारणा ध्यान आदि शक्तियों द्वारा उपासना करते हैं।

इदं कसाम्बु चयनेन चितं तत् सजाता अव पश्यतेत।
मर्त्योऽयममृतत्वमेति तस्मै गृहान् कृणुत यावत्सबन्धु॥ ३७॥

भा०—पुरुष की उत्पत्ति का रहस्य खोलते हैं। यह विकस्वर 'अम्बु' अर्थात् वीर्य ही अवयवों के एकत्र संगृहीत हो जाने से संचित होकर

उत्पन्न हो जाता है। हे समान जाति वाले बन्धुजनो! आओ, इसे देखो। यह मरणधर्मा मनुष्य अपने कर्मों से मोक्ष को भी प्राप्त कर लेता है। इस मनुष्य के लिये जितने भी बन्धु जन हैं गृह आदि बनावें।

इहैवैधि धनसनिरिहचित्त इहक्रतुः।
इहैधि वीर्यवत्तरो वयोधा अपराहतः॥ ३८॥

भा०—हे पुरुष! तू धन का प्रदान करने वाला बनकर यहां ही रह। इस लोक में सर्व प्रसिद्ध, इस लोक में प्रशस्त कर्मवान्, अन्य पुरुषों की अपेक्षा अधिक वीर्यवान्, अन्न और ऐश्वर्य को धारण करने वाला और शत्रु से पराजित न होता हुआ रह।

पुत्रं पौत्रमभितर्पयन्तीरापो मधुमतीरिमाः।
स्वधां पितृभ्यो अमृतं दुहाना आपो देवीरुभयांस्तर्पयन्तु॥३९॥

भा०—जलों के समान स्वच्छ आचरण वाली, दिव्य उपदेश प्रदान करने वाली आप्त प्रजाएं, पुत्रों और पौत्रों को सब प्रकार से तृप्त करती हुई और स्वयं मधुर अन्न से समृद्ध होकर, पालक पितरों को शरीर का धारण पोषण करने में समर्थ अन्न और जल प्रदान करते हुए पुत्र, पौत्र और पालक पितृजनों को सदा तृप्त, प्रसन्न किया करें।

आपो अग्निं प्र हिणुत पितॄँरुपेमं यज्ञं पितरो मे जुषन्ताम्।
आसीनामूर्जमुप ये सचन्ते ते नो रयिं सर्ववीरं नि यच्छान्
॥ ४० ॥ (२३)

भा०—हे आप्तजनो! आप लोग रक्षकों और गुरुजनों के समीप अपने अग्रणी नेता पुरुष को भेजा करो। और पालक पितृजन यज्ञमय श्रेष्ठ कर्म में प्रेम पूर्वक योग दें। जो लोग बैठी हुई बलकारिणी सेनाशक्ति का सेवन करते हैं या उपभोग करते हैं वे वीर जन हमें समस्त वीरों से युक्त धनैश्वर्य प्रदान करें।

समिन्धते अमर्त्यं हव्यवाहं घृतप्रियम् ।
स वेद निहितान् निधीन् पितॄन् परावतो गतान् ॥ ४१ ॥

भा०—घृत आदि पदार्थों के प्रिय अग्नि के समान तेजस्वी, चरु आदि के समान समस्त स्तुतियों और ज्ञानों का वहन करने वाले, अविनाशी परमात्मा को, यज्ञ की अग्नि के समान, अपनी हृदय-वेदि में प्रदीप्त करते हैं। वह परमेश्वर गुप्त रूप से रक्खे खज़ानों अर्थात् ऋद्धि सिद्धि आदि ऐश्वर्यों को जानता है और वही दूर गये या दूर स्थित हमारे पूज्य पुरुषों व पालक पदार्थों को जानता है।

यं ते मन्थं यमोदनं यन्मांसं निपृणामि ते ।

ते ते सन्तु स्वधावन्तो मधुमन्तो घृतश्चुतः ॥ ४२ ॥

भा०—हे पुरुष! मैं परमेश्वर जिस मथे हुए दही को, जिस भात को और जिस मन चाहे परम अन्न, फल आदि गूदेदार पदार्थ को तेरे लिये क्षुधा तृप्ति के निमित्त प्रदान करता हूँ, वे समस्त पदार्थ, तेरे लिये शरीरों को पुष्टि देने वाले, मधुर रस वाले और घृत सहस्र वीर्य के देने वाले हों।

यास्ते धाना अनुकिरामि तिलमिश्राः स्वधावतीः ।
तास्ते सन्तूद्भ्वीः प्रभ्वीस्तास्ते यमो राजानुमन्यताम् ॥४३॥

भा०—व्याख्या देखो इसी सूक्त का मन्त्र २६ और १८।१३।६९॥

इदं पूर्वमपरं नियानं येना ते पूर्वे पितरः परेताः ।
पुरोगवा ये अभिशाचो अस्य ते त्वा वहन्ति सुकृतामु लोकम् ॥४४॥

भा०—हे पुरुष! यह मनुष्यदेह ही वह रथ है जो कि पहले मिला था और बाद में भी प्राप्त होता है, जिसके साथ तेरे पहले पिता, पितामह आदि भी संगत हुए थे। इस देह में लगे सब प्रकार से शक्तिमान् और आगे लगे बैलों के समान आगे आगे ले जानेवाले ज्ञानेन्द्रिय कर्मेन्द्रिय रूप अश्व तुझको पुण्याचारवान् पुरुषों के स्थान में ले जाते हैं।

सरस्वतीं देवयन्तो हवन्ते सरस्वतीमध्वरे तायमाने ।
सरस्वतीं सुकृतो हवन्ते सरस्वती दाशुषे वार्यं दात् ॥ ४५ ॥

भा०—उपास्य परमेश्वर को प्राप्त करने की इच्छा वाले विद्वान् पुरुष परमेश्वर की रस से परिपूर्ण नदी के समान स्तुति करते हैं। और हिंसारहित यज्ञ के किये जाते हुए यज्ञकर्त्ता जन भी परमेश्वर को उसी रूप से स्मरण करते हैं। पुण्य कर्म करने हारे पुरुष भी 'सरस्वती' नाम परमेश्वर का स्मरण करते हैं। वह आनन्दरसमयी प्रभु-देवता आत्म-समर्पक भक्त को वरण करने योग्य श्रेष्ठ धन प्रदान करती है।

सरस्वतीं पितरो हवन्ते दक्षिणा यज्ञमभिनक्षमाणाः ।
आसद्यास्मिन् बर्हिषि मादयध्वमनमीवा इष आ धेह्यस्मे ॥४६॥
सरस्वति या सरथं ययाथोक्थैः स्वधाभिर्देवि पितृभिर्मदन्ती ।
सहस्रार्घमिडो अत्र भागं रायस्पोषं यजमानाय धेहि ॥ ४७ ॥

भा०—व्याख्या देखो अथर्व० १८ । १ । ४२, ४३ ॥

पृथिवीं त्वा पृथिव्यामा वेशयामि देवो नो धाता प्र तिरात्यायुः ।
परापरैता वसुविद् वो अस्त्वधा मृताः पितृषु सं भवन्तु ॥ ४८ ॥

भा०—पृथिवी के समान व्रतपालन में स्थिर रहने वाली हे स्त्रि ! तुझको इस पृथिवी पर बसाता हूँ। सर्वपोषक, सब पदार्थों का प्रदाता परमेश्वर हमें दीर्घजीवन प्रदान करे। हे प्रजागण ! दूर दूर तक के देशों में जाने वाला व्यापारी तुम्हें धनों को प्राप्त कराने में समर्थ हो। और जो पुरुष मर जायं वे मां-बापों के घरों में पुत्र रूप से उत्पन्न हों।

आ प्र च्यवेथामप तन्मृजेथां यद् वामभिभा अत्रोचुः ।
अस्मादेतमघ्न्यौ तद् वशीयो दातुः पितृष्विह भोजनौ मम ॥४९॥

भा०—हे स्त्री पुरुषो ! तुम दोनों जब धर्मयुक्त मार्ग से स्खलित हो जाया करो तब सर्वतः प्रकाशमान विद्वान् पुरुष इस विषय में आप

दोनों को जैसा उपदेश करें तदनुसार उस स्खलित पाप कर्म को त्याग कर शुद्ध हो जाया करो। हे अविनाशी आत्माओ ! इस प्रकार स्खलित पाप से तुम सदा लौट कर सत् पथ पर आजाओ। तुम्हारा यह कर्म ही तुम्हारी सब पाप-प्रवृत्तियों पर वश करने में प्रशस्त है। और पालकों की श्रेणी में स्थित तुम दोनों मुझ पुत्र के पालक बनो।

एयमगन् दक्षिणा भद्रतो नो अनेन दत्ता सुदुघा वयोधाः ।
यौवने जीवानुपपृञ्चती जरा पितृभ्य उपसंपराणयादिमान् ५०(२४)

भा०—यह दक्षिणारूप से प्राप्त गौ उत्तम कर्म और कल्याणमय पुरुष से हमें प्राप्त हो। क्योंकि इस उत्तम यजमान से प्रदान की हुई यह गौ अन्न आदि पुष्टिकारक पदार्थों की देने हारी, दीर्घ जीवन की पोषक और सुगमता से रहने योग्य होती है, जवान और बूढ़े सभी जीवों को प्रेम करती हुई इन समस्त जीवों को पर्याप्त दीर्घ जीवन तक की यात्रा करा देती है, अर्थात् पर्याप्त काल तक पालती रहती है।

इदं पितृभ्यः प्र भरामि बर्हिर्जीवं देवेभ्य उत्तरं स्तृणामि ।
तदा रोह पुरुष मेध्यो भवन् प्रति त्वा जानन्तु पितरः परेतम् ॥५१॥

भा०—पिता पितामह आदि के लिये मैं यह कुश आदि का बना आसन नित्य लाऊं। और विद्याप्रदाता गुरुजनों के लिये स्वयं जीवित रहता हुआ अपने मां बाप से भी ऊंचा आसन बिछाऊं। हे पुरुष ! तू पूज्य होकर उस आसन पर विराजमान हो। पिता आदि गुरुजन दूर स्थान पर प्राप्त हुए भी तुझको स्मरण करें।

एदं बर्हिरसदो मेध्योऽभूः प्रति त्वा जानन्तु पितरः परेतम् ।
यथापरु तन्वं सं भरस्व गात्राणि ते ब्रह्मणा कल्पयामि ॥५२॥

भा०—हे पुरुष ! तू इस कुशा के बने आसन पर बैठ और पवित्र हो। तेरे पिता माता, गुरु आदि देशान्तर में दूर चले जाने पर भी तुझे स्मरण करें। तू शरीर के प्रत्येक जोड़ की बिना उपेक्षा किये

अपने शरीर को अच्छी प्रकार पुष्ट कर । मैं तेरे अंगों को वैदिक विधि से शक्तिशाली बनाता हूँ ॥ गो० ५ । ३ । ४ ॥

पर्णो राजापिधानं चरूणामूर्जो बलं सह ओजो न आगन् ।
आयुर्जीवेभ्यो विदधद् दीर्घायुत्वाय शतशारदाय ॥ ५३ ॥

भा०—जिस प्रकार भात जो डेकची में पकते हैं उनको सुरक्षित रखने के लिये पत्ते का ढक्कन धर दिया जाता है उसी प्रकार संचरण करने वाली प्रजाओं को ढकने और उनका पालन और पूर्ण करने वाला पुरुष ही उनका रक्षक है । वह ही राष्ट्र का बल और प्राण स्वरूप, शत्रुओं का पराजय करता, देह में ओज के समान राष्ट्र में तेजःस्वरूप होकर हमें प्राप्त होता है । वह सौ बरस तक के दीर्घ जीवन को प्राप्त करने के लिये राष्ट्र की प्रजाओं को जीवन प्रदान करता है ।

ऊर्जो भागो य इमं जजानाश्मान्नानामाधिपत्यं जगाम ।
तमर्चत विश्वमित्रा हविर्भिः स नो यमः प्रतरं जीवसे धात् ॥५४॥

भा०—अन्न या बल और प्राण देने वाले पदार्थ का जो पुष्ट भाग इस राजा को उत्पन्न करता है, उससे ही वह अन्नों को पीस डालने वाली चक्की के पाट के समान प्रजाओं को दलन करने में समर्थ वीर्यवान् होकर ही अधिपति पद को प्राप्त होता है । हे समस्त प्रजाओं के स्नेहपात्र, प्रतिष्ठित पुरुषो ! आप लोग उत्तम स्तुतियों और अन्नों द्वारा उसकी पूजा सत्कार करो । वह हमारा नियन्ता राजा है, वह हमें खूब लम्बे जीवन के लिये शक्ति प्रदान करे ।

यथा यमाय हर्म्यमवपन् पञ्च मानवाः ।
एवा वपामि हर्म्यं यथा मे भूरयोऽसत ॥ ५५ ॥

भा०—जिस प्रकार पांच प्रकार के मनुष्य सर्व नियन्ता राजा के लिये राजमहल खड़ा कर देते हैं, उसी प्रकार मैं बड़ा महल अपने लिये भी खड़ा करूं, जिससे मेरे अधीन बहुत से मिलने-जुलने वाले मित्र, भृत्य आदि रहें ।

इदं हिर॑ण्यं बिभृहि॒ यत् ते॑ पि॒ताबि॑भः पु॒रा ।
स्व॒र्गं य॒तः पि॒तुर्हस्तं॒ निर्मृ॑ड्ढि दक्षि॒णम् ॥ ५६ ॥

भा०—हे पुरुष ! जिस सुवर्ण के आभूषण को तेरे पिता ने पहले धारण किया, तू उसी सुवर्ण के बने आभूषण को धारण कर । स्वर्गमय लोक में प्रयाण करते हुए पिता के दायें हाथ को स्वच्छ कर, अर्थात् उसके दायें हाथ का कर्तव्य अपने ऊपर ले और पाल ।

ये च॑ जी॒वा ये च॑ मृ॒ता ये जा॒ता ये च॑ य॒ज्ञियाः॑ ।
तेभ्यो॑ घृ॒तस्य॑ कु॒ल्यैतु॒ मधु॑धारा व्यु॒न्दती ॥ ५७ ॥

भा०—जो भी जीवित पुरुष हैं और जो मर गये हैं और जो नव-जात शिशु हैं और जो आत्मा और परब्रह्म की उपासना में लगे हैं, उन सबके लिये घृत और अन्यान्य पुष्टिकारक पदार्थों की धारा और मधु और आनन्द की धारा हृदय को आर्द्र करती हुई प्राप्त हो ।

अध्यात्म ऊर्ध्वगति का वर्णन करते हैं ।

वृषा॑ मती॒नां प॑वते विचक्ष॒णः सूरो॒ अह्नां॒ प्र॒तरी॑तो॒षसां॑ दि॒वः ।
प्रा॒णः सिन्धू॑नां क॒लशाँ॑ अचिक्रद॒दिन्द्र॑स्य॒ हार्दि॑मावि॒शन्म॑नी॒षया॑ ॥ ५८

भा०—मनन करने योग्य ज्ञानों का वर्षण करने वाला, विविध प्रकार से ज्ञानों का द्रष्टा, दिनों के उत्पादक तथा प्रकाश और उषाओं के प्रवर्त्तक सूर्य के समान विविध रूप से दर्शनीय, निरन्तर विषयों में बहनेवाले इन्द्रियों का मुख्य प्राण रूप आत्मा, घटरूप इन देहों को प्राप्त होता और उनको भी सजीव करता है और वह शक्तिशाली परमात्मा के हृदय में मन की नियन्त्रणा द्वारा प्रविष्ट होता है ।

त्वे॒षस्ते॑ धू॒म ऊ॑र्णोतु दि॒वि षं॑छु॒क्र आत॑तः ।
सूरो॒ न हि द्यु॒ता त्वं कृ॒पा पा॑वक॒ रोच॑से ॥ ५९ ॥

भा०—हे पुरुष ! तेरा कम्पा देने वाला प्रकाश सर्वत्र फैले । और प्रकाशस्वरूप मोक्ष में तू निष्पाप होकर व्याप्त हो । तू कान्ति से सूर्य के

समान प्रकाशवान् होकर हे आत्ममलशोधक अग्निस्वरूप आत्मन् ! अपने सामर्थ्य से प्रकाशित हो।

प्र वा एतीन्दुरिन्द्रस्य निष्कृतिं सखा सख्युर्न प्र मिनाति संगिरः।
मर्य इव योषाः समर्षसे सोमः कलशे शतयामना पथा ॥ ६० ॥

भा०—चन्द्र के समान आह्लादक गुणों से युक्त तथा पर-प्रकाश से प्रकाशित होने वाला जीव, मोक्ष में, उस ऐश्वर्यवान् परमेश्वर के परम मोक्ष धाम को, जिसमें कोई कार्य करना शेष न रह जाय, प्राप्त होता है। तब जिस प्रकार मित्र अपने परममित्र के स्थान को प्राप्त करता है और बराबर उत्तम मित्रतायुक्त प्रेमोक्तियों को कहता है उसी प्रकार जीव भी उस परमेश्वर के धाम को पहुंच कर उसके संग उत्तम स्तुतिवाणियों का उच्चारण करता है, उसकी बहुत बहुत स्तुतियां करता है। और फिर हे परमेश्वर ! जिस प्रकार समर्थपुरुष स्त्री का पालन कर उसे सुखी करता है उसी प्रकार तू प्रेम युक्त होकर जीवों का अपने अनन्त सामर्थ्य से सबको उसी आनन्दमय रूप में सैकड़ों पुरुषों से चलने योग्य मार्ग द्वारा हृदय कलश में सबको एक साथ ही प्राप्त होता है, साक्षात् हो आनन्दित करता है।

अक्षन्नमीमदन्त ह्यव प्रियाँ अधूषत।
अस्तोषत स्वभानवो विप्रा यविष्ठा ईमहे ॥ ६१ ॥

भा०—स्वयंप्रकाश मेधावी पुरुष जब उस परमब्रह्म के साक्षात्कार से प्राप्त सोम-रस का आस्वादन करते हैं, तब वे निरन्तर तृप्त रहा करते हैं, तब वे अपने प्रिय शरीर के भोगों को कपांकर झाड़ देते हैं और परब्रह्म की स्तुति करते हैं। इन ज्ञानी पुरुषों के पास हम अति तुच्छ, न्यून ज्ञानवाले पुरुष उनको प्राप्त होकर ज्ञान की याचना करते हैं।

आ यात पितरः सोम्यासो गम्भीरैः पथिभिः पितृयाणैः।
आयुरस्मभ्यं दधतः प्रजां च रायश्च पोषैरभि नः सचध्वम् ॥ ६२ ॥

भा०—हे पूजनीय पुरुषो ! आप लोग ब्रह्मज्ञान का अभ्यास करने हारे, अति गम्भीर संसार के परिपालक पिताओं के जाने योग्य सन्मार्गों से गमन करो। और हमारे हित के लिये दीर्घ आयु करें और प्रजाओं का भली प्रकार धारण पोषण करते हुए ऐश्वर्य के द्वारा प्राप्त पोषक उपायों से हमें प्राप्त होओ।

परा यात पितरः सोम्यासो गम्भीरैः पथिभिः पूर्याणैः ।
अधा मासि पुनरा यात नो गृहान् हविरत्तुं सुप्रजसः सुवीराः ॥६३

भा०—हे ब्रह्मज्ञान के अभ्यास करने हारे पूजनीय पुरुषो ! आप लोग दुर्गम तथा पुर के समान भीतरी ब्रह्मपुरी को पहुंचाने वाले योग आदि मार्गों से मोक्ष को जाओ। अथवा पुरी तक पहुंचने वाले मार्गों से ही आप पुनः अपने अपने आश्रमों में पधारें। और मास पूर्ण हो जाने पर, प्रति पूर्णिमा पर हमारे घरों पर फिर उत्तम प्रजा और उत्तम वीर सन्तान एवं शिष्यगण से युक्त होकर अन्न खाने के लिये आइये।

यद् वो अग्निरजहादेकमङ्गं पितृलोकं गमयं जातवेदाः ।
तद् व एतत् पुनरा प्यायायामि साङ्गाः स्वर्गे पितरो मादयध्वम् ॥६४

भा०—हे पूज्य पितृपुरुषो ! यदि सर्वज्ञ प्रभु आप लोगों को पिता माता के पद तक पहुंचाता हुआ तुम्हारे एक अंग, स्त्री आदि किसी सम्बन्धी को त्याग करा दे, पीछे छोड़ दे, तो तुम्हारे उस अंग को मैं पुनः पूर्ण करूं अर्थात् शिक्षा द्वारा उसे तुम्हारे साथ चलने योग्य बना दूँ। जिससे आप लोग, हे पितृपद पर विराजमान पुरुषो ! सम्पूर्ण अंगों सहित सुखमय लोक में हर्ष आनन्द का लाभ करें।

अभूद् दूतः प्रहितो जातवेदाः सायं न्यह्न उपवन्द्यो नृभिः ।
प्रादाः पितृभ्यः स्वधया ते अक्षन्नद्धि त्वं देव प्रयता हवींषि ॥६५॥

भा०—वेदों का जानने हारा जो पुरुष सूय के समान हमारे पास उत्तम संदेश पहुंचाने वाले के रूप में भेजा जाता है, वह सायं प्रातः

दोनों समय पुरुषों द्वारा सदा नमस्कार करने योग्य होता है। हे विद्वान्! तू नाना अन्न पूज्य पितरों को प्रदान कर। वे अपने शरीर के धारण के हेतु उन अन्नों का भोजन करें। और हे विद्वन्! अनन्तर तू अति नियमित अन्नों का स्वयं भोग कर।

असौ हा इह ते मनः ककुत्सलमिव जामयः।
अभ्येनं भूम ऊर्णुहि ॥ ६६ ॥

भा०—हे परदेशगत पुरुष! तेरा मन उस देश में ही लगा है। भगिनियें या स्त्रियें जिस प्रकार अपने कन्धे के भाग को ढके रहती हैं, हे भूमे! तू भी उसको उसी प्रकार सब प्रकार से ढांक, सुरक्षित रख, उसकी रक्षा व पालन कर।

शुम्भन्तां लोकाः पितृषदनाः पितृषदने त्वा लोक आ सादयामि॥६७॥

भा०—पूज्य पुरुषों के घर सुशोभित रहें। हे पूजनीय पुरुष! पितरों के विराजने के स्थान में तुझको आदर पूर्वक बिठाता हूँ।

ये३ऽस्माकं पितरस्तेषां बर्हिरसि ॥ ६८ ॥

भा०—जो हमारे पूज्य गुरुजन हैं यह आसन उनकी प्रतिष्ठा का साधन रूप है।

उदुत्तमं वरुण पाशमस्मदवाधमं वि मध्यमं श्रथाय।
अधा वयमादित्य व्रते तवानागसो अदितये स्याम ॥ ६९ ॥

भा०—हे सबसे वरण करने योग्य, सर्वश्रेष्ठ परमेश्वर! आप हमारे उत्कृष्ट सात्विक कर्मबन्धन को ऊपर से खोल दो। नीचे के पाशको नीचे ढीला कर सरका दो और बीच के राजस कर्मबन्धन को भी विशेष रूप से ढीला कर दो। और हे सूर्य के समान सबके वशयितः! तेरे व्रत में निष्ठ होकर हम अविनाशी पद की प्राप्ति के लिये पापरहित हों। व्याख्या देखो (अथर्व० ७। ८३। ३॥)

प्रास्मत् पाशान् वरुण मुञ्च सर्वान् यैः संमामे बध्यते यैर्व्यामे ।
अधा जीवेम शरदं शतानि त्वया राजन् गुपिता रक्षमाणाः ॥७०॥

भा०—हे परमात्मन् ! हमसे उन सब कर्मबन्धनों को छुड़ा, जिन से यह जीव समान रूप से बांधा जाता है, और जिन्हों से जीव विशेष रूप से भी बंध जाता है । हे सबके राजा परमेश्वर ! हम तेरे द्वारा सुरक्षित रहते हुए सैकड़ों वर्ष जीवें ।

राजा और राष्ट्रपालकों का स्वागत ।

अग्नये कव्यवाहनाय स्वधा नमः ॥ ७१ ॥ सोमाय पितृमते स्वधा नमः ॥ ७२ ॥ पितृभ्यः सोमवद्भ्यः स्वधा नमः ॥ ७३ ॥ यमाय पितृमते स्वधा नमः ॥ ७४ ॥ एतत् ते प्रततामह स्वधा ये च त्वामनु ॥ ७५ ॥ एतत् ते ततामह स्वधा ये च त्वामनु ॥ ७६ ॥ एतत् ते तत स्वधा ॥ ७७ ॥ स्वधा पितृभ्यः पृथिविषद्भ्यः ॥ ७८ ॥ स्वधा पितृभ्यो अन्तरिक्षसद्भ्यः ॥ ७९ ॥ स्वधा पितृभ्यो दिविषद्भ्यः ॥ ८० ॥ (२७)

भा०—मेधावी पुरुषों के हितकारी सात्विक अन्न रूप पदार्थों को प्राप्त करने वाले अग्रणी, नेता पुरुष का हम देह के पोषक पदार्थ द्वारा आदर करते हैं । राष्ट्र के पालक पितृगणों से युक्त, सबके प्रेरक सोम राजा का अन्न द्वारा हम आदर करते हैं । सोम राजा से युक्त पालक पुरुषों का अन्न द्वारा सत्कार करते हैं । प्रजा पालक पुरुषों से युक्त नियन्ता राजा का हम अन्न द्वारा सत्कार करते हैं ॥ ७१—७४ ॥

हे प्रपितामह ! तेरे निमित्त, और जो भी तेरे पीछे अनुसरण करने हारे हैं उनके लिये, यह शरीर पोषक अन्न है । हे पितामह ! तेरे और तेरे पीछे अनुसरण करने हारों के लिये यह शरीर पोषक अन्न है । हे पिता तेरे लिये यह अन्न है ॥ ७४-७७ ॥

पृथिवी पर विराजनेवाले पालक माता पिता आदि पूजनीय पुरुषों को अन्न आदि पुष्टिकारक पदार्थ प्राप्त हों। अन्तरिक्ष में विराजने वाले पालक पुरुषों को अन्नादि पदार्थ प्राप्त हों। तेजोमय मोक्ष मार्ग में विराजमान पूज्य गुरुजनों को आत्मपोषक बल आदि प्राप्त हो ॥ ७५—८० ॥

नमो॑ वः पितर ऊ॒र्जे नमो॑ वः पितरो॒ रसा॑य ॥ ८१ ॥ नमो॑ वः पितरो॒ भामा॑य॒ नमो॑ वः पितरो म॒न्यवे॑ ॥ ८२ ॥ नमो॑ वः पितरो॒ यद् घो॒रं तस्मै॒ नमो॑ वः पितरो॒ यत् क्रू॒रं तस्मै॑ ॥८३॥ नमो॑ वः पितरो॒ यच्छि॒वं तस्मै॒ नमो॑ वः पितरो॒ यत् स्यो॒नं तस्मै॑ ॥ ८४ ॥ नमो॑ वः पितरः स्व॒धा वः॑ पितरः ॥ ८५ ॥　　यजु० २ । ३२ ॥

भा०—हे पालक पुरुषो ! अन्नादि परम रस के निमित्त हम आप लोगों का आदर करते हैं। आप लोगों के निमित्त ओषधि आदि रसका आदर करते हैं। हे पालक पुरुषो ! आप लोगों के क्रोध वा तेज का हम आदर करते हैं, आप लोगों की मानस असहिष्णुता वा ज्ञान वा मान का भी हम आदर करते हैं। हे पालक पुरुषो ! आप लोगों का जो भयंकर कार्य है। उसका भी हम आदर करते हैं। जो आपका युद्ध आदि के अवसर पर क्रूर, शत्रुहिंसा आदि कर्म है उसका भी हम आदर करते हैं। हे प्रजा के पालक पुरुषो ! आप लोगों का जो शिव, मङ्गल, कल्याणकारी कार्य है उसका हम आदर करते हैं। आप लोगों का जो प्रजा को सुख पहुंचाने वाला कार्य है उसका हम आदर करते हैं। हे पालक पुरुषो ! आप लोगों का हम आदर करते हैं और आप लोगों के निमित्त शरीरपोषक यह अन्न प्रदान करते हैं।

ये॑ऽत्र॑ पि॒तरः॑ पि॒तरो॒ ये॑ऽत्र॑ यू॒यं स्थ ।
यु॒ष्मांस्ते॑ऽनु॒ यू॒यं ते॒षां श्रेष्ठा॑ भूयास्थ ॥ ८६ ॥

भा०—हे माता, पिता, आचार्य आदि गुरुजन ! इस लोक में जो

भी पालन करनेहारे हैं और जो यहां आप लोग हैं, उनमें से जो आप लोगों के अनुगामी हैं वे पूजनीय हैं और उनमें से आप लोग ही श्रेष्ठ, अधिक आदर और प्रशंसा के पात्र रहें ।

य इह पितरो जीवा इह वयं स्मः ।
अस्मांस्तेऽनु वयं तेषां श्रेष्ठा भूयास्म ॥ ८७ ॥

भा०—हे पालक जनो ! इस लोक में अन्य भी जीव हैं और इस लोक में हम लोग भी हैं, वे अन्य जीव हमसे उतर कर रहें और हम उन सब जीवों में श्रेष्ठ होकर रहें ।

आ त्वाग्न इधीमहि द्युमन्तं देवाजरम् ।
यद् घ सा ते पनीयसी समिद् दीदयति द्यवि ॥
इषं स्तोतृभ्य आ भर ॥ ८८ ॥

भा०—हे ज्ञानवान् ! हे द्योतमान ! प्रकाशमान और अविनाशी जो तू है उसकी हम उपासना करें । क्योंकि तेरी ही यह जगत् प्रसिद्ध अति प्रशंसनीय और अति देदीप्यमान सूर्यरूप शक्ति द्यौलोक में प्रकाशमान है । हे परमेश्वर ! तू गुणगान करने वाले उपासकों को अन्न और भीतरी मानस प्रेरणा प्राप्त करा ।

चन्द्रमा अप्स्व१न्तरा सुपर्णो धावते दिवि ।
न वो हिरण्यनेमयः पदं विन्दन्ति विद्युतो वित्तं मे अस्य रोदसी
॥ ८९ ॥ (२८) ऋ० १ । १०५ । १ ॥

भा०—ज्ञान और कर्मों के बीच वर्तमान चन्द्र के समान सूर्य रूप परम-आत्मा के प्रकाश से प्रकाशित होकर स्वयं सबको आह्लादित करने हारा, उत्तम ज्ञानवान् आत्मा, प्रकाशस्वरूप परमेश्वर में वेग से गति करता है । हे विशेष द्युति से प्रकाशित हुए ज्ञानी पुरुषो ! सुवर्ण के समान अभिरमणीय पदार्थों के प्रति झुकने वाले संसारलिप्त भोगी लोग

आप लोगों के पद को नहीं पाते हैं। हे पापों से रोकने हारे गुरु और उपदेशक लोगो! तुम दोनों इस मेरी ओर भी ध्यान रक्खो! मुझे भी इस संसार-सागर से पार उतारो।

इति चतुर्थोऽनुवाकः ।

[तत्रैकं सूक्तं नवाशीतिश्चर्चः]

इत्यष्टादशं काण्डं समाप्तम् ।

अष्टादशे तु गण्यन्ते ह्यनुवाकचतुष्टयम् ।
ऋचस्त्र्यशीतिश्च शते द्वे चाथर्वणकोविदैः ॥
बाणवस्वङ्कचन्द्राब्देऽथाश्विने शुक्लपक्षके ।
बुधे चतुर्थ्यां काण्डं चाष्टादशं ब्रह्मणो गतम् ॥

इति प्रतिष्ठितविद्यालंकारमीमांसातीर्थविरुदोपशोभित-श्रीमज्जयदेवशर्मणा विरचित अथर्वणो ब्रह्मवेदस्यालोकभाष्ये अष्टादशं काण्डं समाप्तम् ।

॥ ओ३म् ॥

अथर्ववेद संहिता

अथैकोनविंशं काण्डम्

---

[१] यज्ञ के रूप से राष्ट्र की वृद्धि का उपदेश ।

ब्रह्मा ऋषिः । यज्ञः चन्द्रमाश्च देवते । १, २ पथ्याबृहत्यौ । ३ पंक्तिः । तृचं सूक्तम् ॥

सं सं स्रवन्तु नद्यः सं वाताः सं पतत्रिणः ।
यज्ञमिमं वर्धयता गिरः संस्राव्येण हविषा जुहोमि ॥ १ ॥

भा०—समृद्ध करने हारी नदियों के समान ऐश्वर्यों की नदियां खूब बहें । वायुएँ और पाल वाली नौकाएं वा विमान भी बराबर चला करें । हे उत्तम उपदेश करने हारे पुरुषो ! आप लोग इस यज्ञ या यज्ञ करने हारे पुरुष को या परस्पर की संगति, उत्तम व्यवस्था से बंधे समाज और राष्ट्र को बढ़ाओ, समृद्ध और उन्नत करो । मैं भली प्रकार धन, ऐश्वर्य और सुख को लाने वाले उपाय से इस यज्ञ में आहुति करता हूँ, अपने आपको लगाता हूँ ।

इमं होमा यज्ञमवतेमं संस्रावणा उत ।
यज्ञमिमं वर्धयता गिरः संस्राव्येण हविषा जुहोमि ॥ २ ॥

भा०—हे यज्ञो ! आप इस यज्ञकर्ता पुरुष या यज्ञमय राष्ट्र की रक्षा करो । और हे समस्त ऐश्वर्यों को भली प्रकार प्राप्त कराने हारे उपायो ! तुम भी इस यज्ञपति और राष्ट्रपति की रक्षा करो । शेष पूर्ववत् ।

रूपंरूपं वयोवयः संरभ्यैनं परि ष्वजे ।
यज्ञमिमं चतस्रः प्रदिशो वर्धयन्तु संस्राव्येण हविषा जुहोमि ॥३॥

भा०—प्रत्येक प्रकार के रूप अर्थात् पशु और प्रत्येक प्रकार के अन्न और बल को भली प्रकार प्राप्त करके मैं इस राष्ट्रपति और यज्ञपति को सब ओर से आलिंगन करता हूँ, सब ओर से उसकी रक्षा करता हूँ। चारों दिशाओं के वासी जन उसको बढ़ावें । मैं, धन को बढ़ाने वाले उपाय से राष्ट्र की रक्षा करता हूँ ।

[२] शान्तिदायक जलों का वर्णन ।

सिन्धुद्वीप ऋषिः । आपो देवता । अनुष्टुभः । पञ्चर्चं सूक्तम् ।

शं त आपो हैमवतीः शमु ते सन्तूत्स्याः ।
शं ते सनिष्यदा आपः शमु ते सन्तु वर्ष्याः ॥ १ ॥

भा०—हे मनुष्य ! तुझे हिमवाले पर्वतों से बहने वाली जलधाराएं कल्याणकारी हों । तुझे सोतों से बहनेवाली जलधाराएं सुखकारी हों । विशेष वेग से बहने वाली जलधाराएं तुझे कल्याणकारी हों, वर्षा से प्राप्त जलधाराएं तुझे शान्तिदायक हों ।

शं त आपो धन्वन्याः शं ते सन्त्वनूप्याः ।
शं ते खनित्रिमा आपः शं याः कुम्भेभिराभृताः ॥ २ ॥

भा०—हे मनुष्य ! मरुदेश में होने वाली जल-धाराएं तुझे शान्तिदायक हों। अनूपदेश में उत्पन्न जलधाराएं तुझे शान्तिदायक हों । खोदकर प्राप्त हुए जल तुझे शान्तिदायक हों और जो घड़ों में भरकर रक्खे हैं या घड़ों द्वारा घर में लाये हैं वे जल भी शान्तिकारक हों ।

अनभ्रयः खनमाना विप्रा गम्भीरे अपसः ।
भिषग्भ्यो भिषक्तरा आपो अच्छा वदामसि ॥ ३ ॥

भा०—जो विना कुदाली के ओषधियों को केवल हाथों से खोदते

हैं उन मेधावी पुरुषों के समान वे जल भी सब रोग दूर करने हारी ओषधियों से भी अधिक रोगविनाशक हैं जिनके विषय में हम उत्तम रूप से उपदेश करें।

अपामह दिव्यानामपां स्रोतस्यानाम्।
अपामह प्रणेजनेऽश्वा भवथ वाजिनः ॥ ४ ॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो ! आप लोग आकाश से बरसने वाले और सोतों से उत्पन्न होने वाले तथा अन्यान्य जलों को शुद्ध कर सेवन करने से अश्वों के समान शीघ्रकारी तथा बल से युक्त सदा बने रहो।

ता अपः शिवा अपोऽयक्ष्मंकरणीरपः।
यथैव तृप्यते मयस्तास्त आ दत्त भेषजीः ॥ ५ ॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो ! वे नाना प्रकार के जल कल्याणकारी जल कहाते हैं जो कि राजयक्ष्मा आदि रोगों को उत्पन्न नहीं करते। वे आप लोग उन उन औषधरूप जलों का ग्रहण करो जिस प्रकार से सुख बराबर बढ़े।

[३] जातवेदा अग्नि, परमेश्वर का वर्णन।

अथर्वाङ्गिरा ऋषिः। अग्निर्देवता। १–५ त्रिष्टुभः। २ भुरिक्। चतुर्ऋचं सूक्तम्॥

दिवस्पृथिव्याः पर्यन्तरिक्षाद् वनस्पतिभ्यो अध्योषधीभ्यः।
यत्रयत्र विभृतो जातवेदास्तत स्तुतो जुषमाणो न एहि ॥ १ ॥

भा०—द्यौलोक से, पृथिवीलोक से, अन्तरिक्ष से, वनस्पतियों में से, ओषधियों में से और जहां जहाँ भी व्यापक अग्नि विशेष रूप से विद्यमान है, वहां वहां से अग्नि उपभोग करने योग्य होकर हमें प्राप्त हो। द्यौलोक में सूर्य, पृथिवी पर की अग्नि, अन्तरिक्ष में विद्युत्, वनस्पतियों और ओषधियों में तेज़ाब और रसायन से प्राप्त वैद्युत आदि तेजों का मनुष्य उपभोग करें।

यस्ते॑ अ॒प्सु म॑हि॒मा यो वने॑षु॒ य ओष॑धीषु प॒शुष्व॒प्स्व॑१॒न्तः ।
अग्ने॒ सर्वा॑स्त॒न्व॑१ः सं र॑भस्व॒ ताभि॑र्न॒ एहि॑ द्रविणो॒दा अज॑स्रः ॥२॥

भा०—हे अग्ने ! तेरा जो जलों में महत्वपूर्ण सामर्थ्य है और जो वनों में और वनस्पतियों में जो तेरा महान् सामर्थ्य है और जो ओषधियों में और पशुओं में और प्रजाओं में या जलों में तेरा महान् सामर्थ्य है, हे अग्ने ! तू समस्त रूपों को उत्तम रीति से प्रकट कर । और उन सहित हमें धन, ऐश्वर्य के प्रदाता और अविनाशी रूप में प्राप्त हो ।

यस्ते॑ दे॒वेषु॑ महि॒मा स्व॒र्गो या ते॑ त॒नूः पि॒तृष्वा॑वि॒वेश॑ ।
पु॒ष्टिर्या ते॑ मनु॒ष्ये॑षु पप्र॒थेऽग्ने॒ तया॑ र॒यिम॒स्मासु॑ धेहि ॥ ३ ॥

भा०—हे परमेश्वर ! तेरा जो महान् सामर्थ्य के विद्वानों में सुख और प्रकाश को प्राप्त कराने वाला आनन्दमय है और जो तेरा स्वरूप प्रजा के पालन करने हारे वृद्ध, अनुभवी, शक्तिशाली पुरुष और ऋतु आदि पदार्थों में आविष्ट है और जो तेरा स्वरूप पोषक स्वरूप से मनुष्यों में विस्तृत है, उस सर्वपोषक, ज्ञानमय, रक्षामय, पुष्टिमय स्वरूप से हम में सर्व प्रकार के ऐश्वर्य और बलों का प्रदान कर ।

श्रु॒त्कर्णा॑य क॒वये॒ वेद्या॑य॒ वचो॑भिर्वा॒कैरुप॑ यामि रा॒तिम् ।
यतो॑ भ॒यमभ॑यं॒ तन्नो॑ अ॒स्त्वव॑ दे॒वानां॑ यज॒ हेडो॑ अग्ने ॥ ४ ॥

भा०—प्रार्थनाओं को सुनने वाले, क्रान्तदर्शी, ज्ञान करने योग्य परमेश्वर से, नित्य पाठ करने योग्य अथवा अच्छी प्रकार सुविचारित वेदमन्त्रों द्वारा, अभिलषित दान की याचना करता हूँ । और प्रार्थना करता हूं कि जिधर से भी भय हो उधर से हमें अभय करो । हे अग्रणी नेतः ! प्रभो ! आप दिव्य पदार्थों और विद्वानों के क्रोध को दूर कर । राजा और ईश्वर के पक्ष में समान है ।

(४) वाणी और आकृति का वर्णन ।

अथर्वाङ्गिरा ऋषिः । अग्निरुत मन्त्रोक्ता देवता । १ पञ्चपदा विराड् अतिजगती । २ जगती । ३, ४ त्रिष्टुभौ । चतुर्ऋचं सूक्तम् ॥

यामाहुतिं प्रथमामथर्वा या जाता या हव्यमकृणोज्जातवेदाः ।
तां त एतां प्रथमो जोहवीमि ताभिष्टुप्तो वहतु हव्यमग्निरग्नये स्वाहा ॥ १ ॥

भा०—परमात्मा ने जिस दी गई वेदवाणी को सब से प्रथम प्रकट किया और जो स्वयं प्रकट हुई, जिस द्वारा वेदों के उत्पादक परमेश्वर ने ज्ञान करने योग्य इस समस्त संसार को प्रकट किया, उसको ही मैं, सबसे प्रथम, हे पुरुष ! तुझे प्रदान करता हूँ, उपदेश करता हूँ । उन वेद-वाणियों द्वारा यथार्थ रूप से वर्णन करने योग्य सर्वप्रकाशक परमेश्वर समस्त संसार का धारण करता है । उस अग्निरूप परमेश्वर की हम उत्तम रीति से प्रार्थना, स्तुति, उपासना करते हैं ।

आकूतिं देवीं सुभगां पुरो दधे चित्तस्य माता सुहवा नो अस्तु ।
यामाशामेमि केवली सा मे अस्तु विदेयमेनां मनसि प्रविष्टाम् ॥२॥

भा०—उत्तम ऐश्वर्य से युक्त, सर्व गूढ़तत्वों को दर्शाने और प्रकाशित करने वाली, वाक्यतात्पर्यरूप शक्ति को मैं साक्षात् धारण करता हूँ, उसका ज्ञान करता हूँ । वह ज्ञान करने के साधन रूप अन्तः-करण की बनाने वाली, उत्तम रीति से ज्ञान करने वाली हमें प्राप्त हो । मैं जिस आशा या कामना को चाहूँ वह मेरी अवश्य शुद्धरूप से पूर्ण हो । और मन में गुप्त रूप से विद्यमान इस 'आकूति' अर्थात् साक्षात्-कारशक्ति को मैं जान लूं, उसको साक्षात् करूं ।

आकूत्या नो बृहस्पत आकूत्या न उपा गहि ।
अथो भगस्य नो धेह्यथो नः सुहवो भव ॥ ३ ॥

भा०—हे वेदवाणी के स्वामिन् ! आप वाक्य के तात्पर्यरूप वाणी के मर्म द्वारा हमें प्राप्त होते हो । इस रूप से ही आप हमें प्राप्त होते हो । हमें ज्ञानरूप ऐश्वर्य प्रदान कर । और हमारे लिये उत्तम रीति से स्तुतियोग्य हो ।

बृहस्पतिर्म आकूतिमाङ्गिरसः प्रति जानातु वाचमेताम् ।
यस्य देवा देवताः संबभूवुः स सुप्रणीताः कामो अन्वेत्वस्मान् ॥४॥

भा०—अंग अंग में रस रूप से विद्यमान बृहती वेदवाणी का स्वामी परमेश्वर, जो बात मेरे मुख से निकले उसका प्रथम स्पष्ट तात्पर्य रूप विचार और फिर तदनुरूप प्रकट होने वाली व्यक्त रूप से उच्चारण की जाने वाली व्यक्त वाणी को भी मुझे प्रदान करे। जिसके अधीन सब बल प्रदान करने वाले और बाह्य विषयों का प्रकाश करने वाले इन्द्रिय-गण भी उत्तम रीति से प्रयोग किये जाते हैं और शरीर में आत्मा की विशेष शक्तियां जिससे प्रकट होती हैं वह महान् 'काम', समष्टिकामना या महती इच्छा रूप संकल्पमय परमात्मा हमें प्राप्त हो।

(५) उपास्य देव ।

अथर्वाङ्गिरा ऋषिः । इन्द्रो देवता । एकर्चं सूक्तम् ।

इन्द्रो राजा जगतश्चर्षणीनामधि क्षमि विषुरूपं यदस्ति ।
ततो ददाति दाशुषे वसूनि चोदद् राध उपस्तुतश्चिदर्वाक् ॥ १ ॥

भा०—परमैश्वर्यवान् परमात्मा समस्त जगत् का, समस्त प्रजाओं का और इस पृथिवी पर जो कुछ भी नाना प्रकार के पदार्थ हैं उन सबका राजा है। वह उस अपने ख़जाने में से दानशील पुरुष को नाना जीवनोपयोगी ऐश्वर्य प्रदान करता है। वह ही भक्तिपूर्वक स्तुति करने योग्य है। वह हमारे प्रति ऐश्वर्य और ज्ञान प्रदान करे।

(६) महान् पुरुष का वर्णन ।

नारायण ऋषिः । पुरुषो देवता । अनुष्टुभः । षोडशर्चं सूक्तम् ।

सहस्रबाहुः पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात् ।
स भूमिं विश्वतो वृत्वात्यतिष्ठद् दशाङ्गुलम् ॥ १ ॥

भा०—हज़ारों बाहुओं वाला, हज़ारों आंखों वाला, हज़ारों पैरों वाला पुरुष इस ब्रह्माण्ड रूप पुर में व्यापक है। वह सब ओर से समस्त प्राणियों और समस्त जगत् की उत्पत्ति करने वाली भूमि के समान उत्पादिका प्रकृति को व्याप्त करके, दश विकार भूत अर्थात् ५ स्थूल-भूत और ५ सूक्ष्म भूत पदार्थों को अति क्रमण करके, व्याप्त है।

त्रिभिः पद्भिर्द्यामरोहत् पादस्येहाभवत् पुनः।
तथा व्यक्रामद् विष्वङ्ङशनानशने अनु ॥ २ ॥

भा०—यह पुरुष तीन अंशों से प्रकाश रूप मोक्ष को व्याप्त करता है और इसका एक अंश ही इस दृश्य जगत् में वार वार सृष्टि और प्रलय के रूप में प्रकट होता है। इसी प्रकार से वह विश्व में व्याप्त हो रहा है। वह भोजन करने वाले प्राणियों और भोजन न करने वाले जड़ पदार्थों के भीतर भी व्याप्त है।

तावन्तो अस्य महिमानस्ततो ज्यायांश्च पूरुषः।
पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि ॥ ३ ॥

भा०—इस पुरुष के वे सब लोक-लोकान्तर और उसमें होने वाले बड़े बड़े कार्य उसकी महान् शक्ति के प्रदर्शनमात्र हैं, वह पुरुष उन सब से कहीं बड़ा है। ये समस्त भूत अर्थात् चर अचर जगत् इस महान् पुरुष का एक अंश है। इसके शेष तीन अंश परम तेजोमय स्वरूप में मोक्षरूप हैं।

पुरुष एवेदं सर्वं यद् भूतं यच्च भाव्यम्।
उतामृतत्वस्येश्वरो यदन्येनाभवत् सह ॥ ४ ॥

भा०—यह सब कुछ जो उत्पन्न हुआ था और उत्पन्न होने वाला है और जो ब्रह्म या चेतन रूप के अतिरिक्त जड़ प्रकृति द्वारा उत्पन्न हुआ है, वह परमात्मा ही की रचना है अमृत सत्ता का भी स्वामी है।

यत् पुरुषं व्यदधुः कतिधा व्यकल्पयन् ।
मुखं किमस्य किं बाहू किमूरू पादा उच्येते ॥ ५ ॥

भा०—जो विद्वान् पुरुष उस पूर्ण पुरुष का विशेष रूप से प्रतिपादन करते हैं, उसको उन्होंने भला कितने प्रकार से विविध रूपों में कल्पित किया है, इसका मुख क्या पदार्थ है, बाहुएं क्या हैं, जांघें क्या हैं और पैर भाग क्या कहे जाते हैं ?

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीत् बाहू राजन्योऽभवत् ।
मध्यं तदस्य यद् वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत ॥ ६ ॥

भा०—इस पुरुष की बनाई सृष्टि में ब्राह्मण मुख हैं । वे मुख के समान ऊंचे पद पर स्थित एवं समाज के अग्रणी और प्रमुख हैं । राजा के पुत्र के समान पालित वीर योद्धा जन शरीर में विद्यमान बाहु के समान शत्रुओं के बाधक, समाज के रक्षक और बल का कार्य करने में समर्थ बनाये गये हैं । इस विराट् शरीर का जो मध्य भाग अर्थात् ऊरू, कटि, पेट के समान है वह वैश्य जन है । पैरों से शूद्र को प्रकट किया जाता है । अर्थात् शूद्रों को पैरों के समान दर्शाया जाता है ।

चन्द्रमा मनसो जातश्चक्षोः सूर्यो अजायत ।
मुखादिन्द्रश्चाग्निश्च प्राणाद् वायुरजायत ॥ ७ ॥

भा०—चन्द्र मन से कल्पना किया गया है । चक्षु सूर्य का स्थानापन्न है । मुख से विद्युत् और अग्नि दो को कल्पित किया गया और घ्राण इन्द्रिय से वायु को कल्पित किया । मानो उस विराट् शरीर में चन्द्र मन था, सूर्य आंख थी, इन्द्र और अग्नि मुख के दो जबाड़े थे, वायु नासिकागत प्राण था ।

नाभ्या आसीदन्तरिक्षं शीर्ष्णो द्यौः समवर्तत ।
पद्भ्यां भूमिर्दिशः श्रोत्रात् तथा लोकाँ अकल्पयन् ॥ ८ ॥

भा०—नाभि से अन्तरिक्ष कल्पित था । शिर से ऊपर का महान्

आकाश कल्पित था। पैरों से भूमि और कानों से दिशाएं कल्पित की गयीं। और उसी प्रकार विद्वान् पुरुषों ने अन्य लोकों की भी प्रजापति शरीर के अन्य अंगों के रूप में कल्पना की।

विराडग्रे समभवद् विराजो अधि पूरुषः ।
स जातो अत्यरिच्यत पश्चाद् भूमिमथो पुरः ॥ ९ ॥

भा०—उस पूर्ण पुरुष से सबसे प्रथम ज्योतिर्मय पदार्थों से प्रकाशमान ब्रह्माण्ड उत्पन्न हुआ। उस ब्रह्माण्ड के भी ऊपर व्यापक परमेश्वर अधिष्ठाता रूप से विराजमान रहा। वह इतने विविध पदार्थों में शक्ति रूप से प्रकट होकर भी अभी बहुत अधिक शेष रहा, अर्थात् संसार के संचालक अंश से भी अतिरिक्त शक्ति का बहुत बड़ा अंश और शेष है। वही इस प्रथम उत्पन्न विराट् के बाद सब जंगम, स्थावर सृष्टि के आश्रयभूत और उत्पादक भूमि को उत्पन्न करता है और नाना शरीरों को भी रचता है।

यत् पुरुषेण हविषा देवा यज्ञमतन्वत ।
वसन्तो अस्यासीदाज्यं ग्रीष्म इध्मः शरद्धविः ॥ १० ॥

भा०—जब स्वीकार करने योग्य व्यापक परमेश्वर द्वारा विद्वान् गण, उपासनारूप या देवार्चनारूप यज्ञ करते हैं, तब इस यज्ञ का वर्ष के प्रारम्भ काल के समान दिन का प्रारम्भ भाग घृत सदृश है, अर्थात् यज्ञ में जिस प्रकार घृत अग्नि को प्रदीप्त करता है, उसी प्रकार दिन का प्रारम्भ काल आत्मा की शक्ति को प्रदीप्त करता है। वर्ष का ग्रीष्म काल जिस प्रकार सूर्य को प्रचण्ड करता है उसी प्रकार दिन का गर्म मध्याह्न काल मानस यज्ञ में आत्मा की ज्ञानाग्नि को अग्नि में डाले काष्ठ के समान दीप्त करता है। और वर्ष का शरत् काल जिस प्रकार सूर्य के तेज को कुछ शीतल या सौम्य कर देता है उसी प्रकार मानस यज्ञ करने वाले के लिये रात्रिकाल अत्यन्त शान्तिमय होने से आत्मा की

समस्त शक्तियों को आत्मा में आहुति कर देने, उनको ध्यानबल से एकत्र कर आत्मा में लीन करा देने के लिये अति उत्तम है ।

तं यज्ञं प्रावृषा प्रौक्षन् पुरुषं जातमग्रशः ।
तेन देवा अयजन्त साध्या वसवश्च ये ॥ ११ ॥

भा०—उस यज्ञस्वरूप तथा समस्त सृष्टि के भी पूर्व विद्यमान जगत् के कर्त्ता को योगिजन, वर्षा के समान आत्मरूप भूमि में ब्रह्मानन्द के वर्षण करने वाले धर्ममेघ समाधि द्वारा खूब अभिषिक्त करते हैं । ज्ञानी पुरुष, योगाभ्यास आदि साधनों के करने हारे और जो प्राणों को वश करने वाले हैं, वे उसी यज्ञमय परमपुरुष द्वारा आत्म-यज्ञ सम्पादन करते हैं ।

तस्मादश्वा अजायन्त ये च के चोभयादतः ।
गावो ह जज्ञिरे तस्माज्जाता अजावयः ॥ १२ ॥

भा०—घोड़े और जो कोई भी ऊपर नीचे दोनों जबाड़े के दांतों वाले प्राणी हैं उस परमपुरुष से ही उत्पन्न होते हैं । और उससे ही गौएं अर्थात् दूध देने वाले वे पशु जिनके ऊपर के दांत नहीं होते वे भी उत्पन्न हुए । और उससे ही बकरी और भेड़ें भी पैदा हुईं ।

तस्माद् यज्ञात् सर्वहुत ऋचः सामानि जज्ञिरे ।
छन्दो ह जज्ञिरे तस्माद् यजुस्तस्मादजायत ॥ १३ ॥

भा०—उस पूजनीय सर्वदाता परमात्मा से ऋग्वेद के मन्त्र और साम के समस्त गान उत्पन्न हुए । उससे ही छन्द अर्थात् अथर्व के मन्त्र उत्पन्न हुए और उससे ही यजुर्वेद के मन्त्र भी उत्पन्न हुए ।

तस्माद् यज्ञात् सर्वहुतः संभृतं पृषदाज्यम् ।
पशूँस्तांश्चक्रे वायव्यानारण्या ग्राम्याश्च ये ॥ १४ ॥

भा०—उस यज्ञमय सर्वप्रद परमेश्वर से दधि, घी आदि समस्त भोज्य पदार्थ प्राप्त हुआ है । वह वायु विहारी पक्षियों को और जंगल

के वासी हरिण, सिंह, हस्ती आदि को, और ग्राम के वासी गर्दभ, अश्व, गौ आदि को उत्पन्न करता है ।

सप्तास्यासन् परिधयस्त्रिः सप्त समिधः कृताः ।
देवा यद् यज्ञं तन्वाना अबध्नन् पुरुषं पशुम् ॥ १५ ॥

भा०—योगीजन जब उपासना करते हुए सर्वद्रष्टा व्यापक आत्मा को समाधि द्वारा साक्षात् करते हैं तो देखते हैं कि इसकी सात परिधि अर्थात् इसको सब ओर से घेरने वाले सात पदार्थ हैं और इक्कीस पदार्थ उसके उत्तम रीति से प्रकाशक बनाये गये हैं ।

सात परिधियें—गायत्री आदि सात छन्द । २१ समिधें = १२ मास, ६ ऋतुएं, ३ लोक ।

अध्यात्म में—५ महाभूत, ५ तन्मात्रा; ५ ज्ञानेन्द्रिय, ५ कर्मेन्द्रिय और मन । ब्रह्माण्ड में प्रकृति, महत्तत्व, अहंकार, ५ महाभूत, ५ सूक्ष्मभूत, ३ गुण, ५ ज्ञानेन्द्रिय ।

मूर्ध्नो देवस्य बृहतो अंशवः सप्त सप्ततीः ।
राज्ञः सोमस्याजायन्त जातस्य पुरुषादधि ॥ १६ ॥

भा०—व्यापक परमेश्वर से उत्पन्न हुए, शिर के समान सर्वोपरि विद्यमान, महान् और प्रकाशमान, सर्वोत्पादक बीज से ४९० चारसौ नब्बे सूक्ष्मतत्व उत्पन्न हुए । ब्रह्माण्ड के ४९० सूक्ष्मतत्वों का विश्लेषण वैज्ञानिक करें ।

(७) नक्षत्रों का वर्णन ।

गार्ग्य ऋषिः । नक्षत्राणि देवताः । त्रिष्टुभः । पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

चित्राणि साकं दिवि रोचनानि सरीसृपाणि भुवने जवानि ।
तुर्मिशं सुमतिमिच्छमानो अहानि गीर्भिः सपर्यामि नाकम् ॥ १ ॥

भा०—नाना वर्ण के, एक साथ दीप्तिमान्, उत्पन्न ब्रह्माण्ड में वेगवान्, सदा गतिशील, कभी नष्ट न होने वाले नक्षत्रों को और सुख—

मय द्यौलोक को, उत्तम ज्ञानवाणियों द्वारा अनिष्टनाशक शुभमति को चाहता हुआ उनका ज्ञान करूं, उनके द्वारा उचित कार्य और तदनुसार होने वाली अन्तरिक्ष और आकाश की घटनाओं के जानने का अभ्यास करूं।

सुहवमग्ने कृत्तिका रोहिणी चास्तु भद्रं मृगशिरः शमार्द्रा।
पुनर्वसू सूनृता चारु पुष्यो भानुराश्लेषा अयनं मघा मे ॥२॥

भा०—हे विद्वन्! कृत्तिका और रोहिणी दोनों नक्षत्र उत्तम रीति से यज्ञ करने योग्य हों। मृगशिरा नक्षत्र सुखकारी हो। आर्द्रा नक्षत्र शान्तिदायक हो। दोनों पुनर्वसु नक्षत्र उत्तम ज्ञान देने वाले हों। पुष्य नक्षत्र उत्तम हो। आश्लेषा नक्षत्र अति दीप्तिजनक हो और मघा नक्षत्र मेरे लिये सब सम्पत्ति प्राप्त कराने वाला या सूर्य की गति का चरम स्थान हो।

पुण्यं पूर्वा फल्गुन्यौ चात्र हस्तश्चित्रा शिवा स्वाति सुखो मे अस्तु।
राधे विशाखे सुहवानुराधा ज्येष्ठा सुनक्षत्रमरिष्ट मूलम् ॥ ३ ॥

भा०—पूर्वाफल्गुनी के दो नक्षत्र सुखकर हों। इस लोक में हस्त नक्षत्र और चित्रा नक्षत्र कल्याणकारी हों। स्वाति नक्षत्र मुझे सुखकारी हो। राधा नक्षत्र और विशाखा नक्षत्र दोनों उत्तम रीति से यज्ञ करने योग्य और अनुकूल सिद्धि देने वाले होवें। ज्येष्ठा उत्तम नक्षत्र हो। मूल नक्षत्र भी कल्याणकारी हो।

अन्नं पूर्वा रासतां मे अषाढा ऊर्जं देव्युत्तरा आ वहन्तु।
अभिजिन्मे रासतां पुण्यमेव श्रवणः श्रविष्ठाः कुर्वतां सुपुष्टिम् ॥४॥

भा०—पूर्वा अषाढा नक्षत्र मुझे अन्न प्रदान करे। उत्तरा अषाढा नक्षत्र प्रकाशवान् होकर अन्नरस और बल प्राप्त करावें। अभिजित् नामक नक्षत्र मुझे पवित्रता प्रदान करे। श्रवण और श्रविष्ठा दोनों नक्षत्र उत्तम पुष्टि प्रदान करें।

आ मे महच्छतभिषग् वरीय आ मे द्वया प्रोष्ठपदा सुशर्म ।
आ रेवती चाश्वयुजौ भगं म आ मे रयिं भरण्य आ वहन्तु ॥५॥

भा०—बड़ा भारी शतभिषग् नामक नक्षत्र मुझे सर्वश्रेष्ठ धन प्राप्त करावे । दोनों प्रोष्ठपदा नाम के नक्षत्र मुझे उत्तम सुख प्रदान करें। रेवती और अश्विनी के दोनों नक्षत्र मुझे ऐश्वर्य प्राप्त करावें । भरणी नाम के नक्षत्र मेरे लिये ऐश्वर्य समृद्धि प्रदान करावें ।

(८) नक्षत्रों का वर्णन ।

गार्ग्य ऋषिः । मन्त्रोक्तानि नक्षत्राणि देवताः । ६ ब्रह्मणस्पतिर्देवता । १ विराट् जगती । २, ५, ७ त्रिष्टुभः । ६ त्र्यवसाना षट्पदा अति जगती । सप्तर्चं सूक्तम् ॥

यानि नक्षत्राणि दिव्य१न्तरिक्षे अप्सु भूमौ यानि नगेषु दिक्षु ।
प्रकल्पयंश्चन्द्रमा यान्येति सर्वाणि ममैतानि शिवानि सन्तु ॥१॥

भा०—जो नक्षत्र आकाश में, जो वायुमण्डल में, जो जलों में या समुद्रों में, भूमि पर, पर्वतों पर और समस्त दिशाओं में दिखाई देते हैं और जिन नक्षत्रों को चन्द्र अपनी गति से पृथक् निर्देश करता हुआ प्राप्त होता है, वे सब मेरे लिये सुखकारी हों ।

अष्टाविंशानि शिवानि शग्मानि सह योगं भजन्तु मे ।
योगं प्र पद्ये क्षेमं च क्षेमं प्र पद्ये योगं च नमोऽहोरात्राभ्यामस्तु ॥२॥

भा०—पूर्व कहे अट्ठाईस नक्षत्र कल्याणकारी तथा सुखकारी होकर मेरे लिये चन्द्र के साथ योग प्राप्त करें । तदनुसार मैं भी अलभ्य वस्तु की प्राप्ति करूं, प्राप्त वस्तु को सुरक्षित रक्खूं । और सदा कल्याण और सुखप्रद पदार्थों को प्राप्त करता रहूँ । दिन और रात्रि दोनों काल मेरे अनुकूल रहें, दोनों का मैं सद्-उपभोग करूं ।

स्वस्तितं मे सुप्रातः सुसायं सुदिवं सुमृगं सुशकुनं मे अस्तु ।
सुहवमग्ने स्वस्त्य१मर्त्यं गत्वा पुनरायाभिनन्दन् ॥ ३ ॥

भा०—मेरे लिये सूर्य का अस्तकाल कल्याणप्रद हो। प्रातःकाल सुखप्रद हो। सायंकाल सुखकारी हो। दिन का काल सुखकर हो। वनचारी पशुओं का मेरे प्रति व्यवहार उत्तम हो। पक्षियों का व्यवहार मेरे लिये उत्तम हो। हे परमेश्वर! मेरा उत्तम अग्निहोत्र सबको कल्याणकारी हो। हे जीव! तू साक्षात् सबको प्रसन्न करता हुआ अविनश्वर भाव को प्राप्त होकर यहां पुनः आ, दर्शन दे।

अनुहवं परिहवं परिवादं परिक्षवम्।
सर्वैर्मे रिक्तकुम्भान् परा तान्त्सवितः सुव ॥ ४ ॥

भा०—हे परमेश्वर! दूसरे का मेरे साथ स्पर्द्धा करना, वर्जन करने योग्य संघर्ष, वर्जनीयवचन अर्थात् निन्दा, चारों ओर से मुझ पर घृणा का भाव, इन सबके साथ साथ मेरे प्रति खाली घड़ों के समान निःसार बातों को और समस्त क्षुद्र पुरुषों और तुच्छ बातों को, हे सर्वप्रेरक परमेश्वर! तू मुझसे दूर कर।

अपपापं परिक्षवं पुण्यं भक्षीमहि क्षवम्।
शिवा ते पाप नासिकां पुण्यगश्चाभि मेहताम् ॥ ५ ॥

भा०—पाप से प्राप्त हुए वर्जनीय अन्न को हमसे दूर करें। और पुण्य से प्राप्त अन्न का हम भोग करें। हे पापी पुरुष, तेरी नासिका पर कल्याणकारी स्त्री और पुण्य मार्ग से जाने वाला पुरुष अर्थात् उत्तम स्त्री पुरुष दोनों मूत्र करें, अर्थात् तेरा अपमान करें, तुझे मान आदर न दें। क्षु—इत्यन्ननाम [निघं० अ० ७ । ९]

इमा या ब्रह्मणस्पते विषूचीर्वात ईरते।
सध्रीचीरिन्द्र ताः कृत्वा मह्यं शिवतमास्कृधि ॥ ६ ॥

भा०—हे वेद के पति परमेश्वर! ये जो मेरे प्रतिकूल वायुएँ बहती हैं उनको हे ईश्वर! तू मेरे साथ चलने वाली मेरे सहयोगी करके मेरे लिये अत्यन्त कल्याणकारी बना।

स्वस्ति नो अस्त्वभयं नो अस्तु नमोऽहोरात्राभ्यामस्तु ॥ ७ ॥

भा०—हे ईश्वर ! हमारा कल्याण हो । हमें अभय हो । दिन रात्रि पर हमारा वश हो ।

(९) सुख शान्ति की प्रार्थना

ब्रह्मा ऋषिः । शान्तिसूक्तम् । शान्तिर्देवता । १ विराट् उरो बृहती । ५ पञ्चपदा पथ्यापंक्तिः । ९ पञ्चपदा ककुम्मती । १२ त्र्यवसाना सप्तपदा अष्टिः । १४ चतुष्पदा संकृतिः । २, ४, ६, ८, १०, ११, १३ अनुष्टुभः । चतुर्दशर्चं सूक्तम् ॥

शान्ता द्यौः शान्ता पृथिवी शान्तमिदमुर्वन्तरिक्षम् ।
शान्ता उदन्वतीरापः शान्ता नः सन्त्वोषधीः ॥ १ ॥

भा०—आकाश शान्तिदायक हो, पृथिवी शान्तिदायक हो । यह विशाल अन्तरिक्ष शान्तिदायक हो । समुद्र के जल भी शान्तिदायक हों । हमारे लिये ओषधियें शान्तिदायक हों ।

शान्तानि पूर्वरूपाणि शान्तं नो अस्तु कृताकृतम् ।
शान्तं भूतं च भव्यं च सर्वमेव शमस्तु नः ॥ २ ॥

भा०—उपद्रवों और रोगों के पूर्वरूप हमारे लिये शान्तिदायक हों । हमारे किये कार्य और प्रमादवश न किये हुए अवश्य कर्तव्य कार्य भी हमें शान्तिदायक हों । अतीत-काल और भविष्यत् काल दोनों भी हमें सुखप्रद हों । हमारे लिये सबही शान्तिदायक हो ।

इयं या परमेष्ठिनी वाग् देवी ब्रह्मसंशिता ।
ययैव ससृजे घोरं तयैव शान्तिरस्तु नः ॥ ३ ॥

भा०—जो यह सर्वोपरि विद्यमान परमेश्वर में स्थित वाणी-रूप दिव्य शक्ति ब्रह्मवर्चस या ब्रह्मचर्य के बल से अति बलवती है, जिससे ही क्रोध आदि भयानक कार्य किये जा सकते हैं, उससे ही हमें सुखप्राप्ति हो ।

इदं यत् परमेष्ठिनं मनो वां ब्रह्मसंशितम् ।
येनैव ससृजे घोरं तेनैव शान्तिरस्तु नः ॥ ४ ॥

भा०—जो यह ब्रह्मज्ञान और ब्रह्मचर्य के बल से तीक्ष्ण होकर परम स्थान में स्थित हे स्त्री पुरुषो ! तुम दोनों का मन है, जिससे ही घोर, क्रूरकर्म भी किये जा सकते हैं, उससे ही हमें शान्ति सुख प्राप्त हो ।

इमानि यानि पञ्चेन्द्रियाणि मनः षष्ठानि मे हृदि ब्रह्मणा संशितानि
यैरेव ससृजे घोरं तैरेव शान्तिरस्तु नः ॥ ५ ॥

भा०—ये जो छठे मन सहित पांच ज्ञानेन्द्रिय ब्रह्मचर्य के बल से अति उत्तम रूप से खूब तीक्ष्ण होकर मेरे हृदय में आश्रित हैं, जिनके द्वारा घोर कार्य भी किया जाता है उनसे ही हमें शान्ति प्राप्त हो ।

शं नो मित्रः शं वरुणः शं विष्णुः शं प्रजापतिः ।
शं न इन्द्रो बृहस्पतिः शं नो भवत्वर्यमा ॥ ६ ॥

भा०—हमें सबका स्नेही, सबको मरण से त्राण करने वाला पुरुष शान्तिदायक हो । सर्वश्रेष्ठ, सबके वरण करने योग्य, एवं सब शत्रुओं का वारक पुरुष कल्याणकारी हो । सर्वत्र प्रभुता से सम्पन्न या व्यवस्थापक पुरुष हमें शान्तिदायक हो । प्रजा का पालक पुरुष भी शान्तिदायक हो । वाणी का पालक ऐश्वर्यवान् पुरुष और न्यायकारी पुरुष ये सब सदा हमें सुख प्रदाता हों । अथवा ये सब विशेषण परमेश्वर के हैं । गुण भेद से ये सभी नाम परमात्मा के हैं ।

शं नो मित्रः शं वरुणः शं विवस्वांछमन्तकः ।
उत्पाताः पार्थिवान्तरिक्षाः शं नो दिविचरा ग्रहाः ॥ ७ ॥

भा०—सबका स्नेही, सबका मरण से त्राता, सर्वश्रेष्ठ, सब के वरण करने योग्य, सब दुःखों का वारक, सुखकारी, शान्तिदायक हो । विविध वस्तुओं या जीवों को प्राण देकर बसाने वाला या विविध ऐश्वर्यों का स्वामी, पुरुष या सूर्य या परमेश्वर शान्ति प्रदान करे । अन्त

करने वाला मृत्यु हमें शान्ति दे। पृथिवी और अन्तरिक्ष में होने वाले नाना उपद्रव और द्यौ आकाश में विचरने वाले ग्रह धूमकेतु, उल्का आदि भी अपने आकर्षण विकर्षण आदि द्वारा हमें शान्तिदायक हों।

शं नो भूमिर्वेप्यमाना शमुल्का निर्हतं च यत्।
शं गावो लोहितक्षीराः शं भूमिरव तीर्यती ॥ ८ ॥

भा०—भूचाल से कांपती हुई भूमि हमारे लिये सुखकारी हो। आकाश से भूमि पर गिरने वाले लघुग्रह शान्तिदायक हों। और जो भी वेग से पृथ्वी पर आकर गिरें वह भी हमें शान्तिदायक हों। गौएं जो रोग के कारण रुधिर के समान दूध देती हों वे भी शान्ति दें। और फट जाने वाली भूमि भी शान्तिकारी हो।

नक्षत्रमुल्काभिहतं शमस्तु नः शं नोऽभिचाराः शमु सन्तु कृत्याः।
शं नो निखाता वलगाः शमुल्का देशोपसर्गाः शमु नो भवन्तु ॥९॥

भा०—उल्का से युक्त नक्षत्र हमारे लिये कल्याणकारी हों। हम पर किये गुप्त आक्रमण हमारे लिये शान्त ही रहें। घातक क्रियाएं भी शान्त ही रहें। धोखा देकर गिरा कर मारने या भीतर विस्फोटक द्रव्य भरकर उड़ा देने के लिये खोदे हुए स्थान, सुरंग (Mines) हमारे लिये हानिरहित रहें। अन्य कपट के हिंसा के कार्य भी हमारे लिये शान्त रहें। पृथ्वी पर उल्काओं का गिरना शान्त हो। देश में उत्पन्न होने वाले संहारक उपद्रव हमारे लिये शान्त ही रहें, उत्पन्न ही न हों।

शं नो ग्रहाश्चान्द्रमसाः शमादित्यश्च राहुणा।
शं नो मृत्युर्धूमकेतुः शं रुद्रास्तिग्मतेजसः ॥ १० ॥

भा०—चन्द्रमा से सम्बद्ध या चन्द्रमा को ग्रहण करने वाले भूमि की छाया आदि ग्रहण हमें शान्ति दें। प्रकाश के नाशक आवरण से युक्त आदित्य भी शान्ति दे। जनों के मृत्यु का कारण धूमकेतु हमारे लिये हानि रहित रहें। तीक्ष्ण प्रकाश वाले, प्रजा को रुलाने वाले

नाना 'रुद्र' नामक केतु ग्रह अथवा प्राण, अपान आदि ११ रुद्र भी शान्त रहें, उत्पात न करें ।

शं रुद्राः शं वसवः शमादित्याः शमग्नयः ।
शं नो महर्षयो देवाः शं देवाः शं बृहस्पतिः ॥ ११ ॥

भा०—प्रजाओं को रुलाने वाले 'रुद्र' रूप ३६ वर्ष के ब्रह्मचर्य के पालक पुरुष हमारे लिये शान्तिदायक हों । वसु नामक २४ वर्ष के ब्रह्मचारी हमारे लिये कल्याणकारी हों । आदित्य, ४८ वर्ष के ब्रह्मचारी गण हमें सुख दें । अग्नि के समान तीक्ष्ण स्वभाव के पुरुष अथवा राजागण, क्षत्रियजन और अन्य विद्वान् लोग हमें सुख दें । ज्ञान प्रकाशक, ज्ञानप्रद, तेजस्वी बड़े बड़े मन्त्रार्थद्रष्टा ऋषिजन हमारे लिये शान्तिदायक हों । विद्वान्गण और संसार के दिव्य पदार्थ शान्तिदायक हों । महान् लोकों का पालक परमेश्वर हमें शान्ति दे । अथवा रुद्र ११ = प्राण, अपान, व्यान, समान, उदान, नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त, धनञ्जय और जीव । वासु आठ = अग्नि, पृथिवी, वायु, अन्तरिक्ष, द्यौः, सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र । और १२ आदित्य = १२ मास ।

ब्रह्म प्रजापतिर्धाता लोका वेदाः सप्तऋषयोऽग्नयः ।
तैर्मे कृतं स्वस्त्ययनमिन्द्रो मे शर्म यच्छतु ब्रह्मा मे शर्म यच्छतु ।
विश्वे मे देवाः शर्म यच्छन्तु सर्वे मे देवाः शर्म यच्छन्तु ॥ १२ ॥

भा०—महान् परमेश्वर, प्रजा का पालक राजा, सबका पोषक वायु, समस्त लोक, ज्ञानमय वेद, ऋग्, यजुः, साम, अथर्व, सात प्रकार के मन्त्रार्थद्रष्टा, अथवा शरीरस्थ सात इन्द्रियें और पांचों ज्ञानेन्द्रियां इन सब में मेरे लिये कल्याण का मार्ग बना हो । परमेश्वर मुझे सुख प्रदान करे । वेदों का ज्ञाता ब्रह्मा मुझे सुख प्रदान करे । समस्त विद्वान् मुझे सुख शान्ति दें । समस्त दिव्य शक्तियां मुझे शान्ति प्रदान करें ।

यानि कानि चिच्छान्तानि लोके सप्तऋषयो विदुः ।
सर्वाणि शं भवन्तु मे शं मे अस्त्वभयं मे अस्तु ॥ १३ ॥

भा०—लोक में शरीरगत सातों इन्द्रियें और उन द्वारा सूक्ष्म ज्ञान प्राप्त करने वाले विद्वान् ब्राह्मण जिन किन्हीं पदार्थों को भी शान्तिदायक जानें वे सब मेरे लिये कल्याणकारी हों। मुझे शान्ति प्राप्त हो, मुझे अभय प्राप्त हो।

पृथिवी शान्तिरन्तरिक्षं शान्तिर्द्यौः शान्तिरापः शान्तिरोषधयः शान्तिर्वनस्पतयः शान्तिर्विश्वे मे देवाः शान्तिः सर्वे मे देवाः शान्तिः शान्तिः शान्तिः शान्तिभिः। ताभिः शान्तिभिः सर्वं शान्तिभिः शमयामोऽहं यदिह घोरं यदिह क्रूरं यदिह पापं तच्छान्तं तच्छिवं सर्वमेव शमस्तु नः॥ १४ ॥

भा०—पृथिवी, अन्तरिक्ष, द्यौ, जल, ओषधियां, वनस्पति, बड़े वृक्ष, समस्त विद्वान् लोग, सब दिव्यगुणवान् पदार्थ मेरे लिये शान्ति उत्पन्न करें। समस्त प्रकार की शान्तियों के साथ साथ मेरा शान्तिमय आत्मा भी शान्तरूप धारण करे। उन शान्तियों से और अन्यान्य सब प्रकार के शान्ति-साधनों से हम लोग शान्तिमय परम सुख को प्राप्त हों। जो पदार्थ इस लोक में कष्टदायक हो, जो यहां हिंसाजनक, त्रासोत्पादक और जो यहां पापी हो वह शान्त हो। वह सब कल्याणकारी हो। हमारे लिये सब ही शान्तिदायक हो।

इति प्रथमोऽनुवाकः ।

[तत्र नव सूक्तानि एकोनषष्टिश्चर्चः]

(१०) सुख शान्ति का वर्णन ।

शान्तिकामो ब्रह्मा [ऋ० वसिष्ठ] ऋषिः । सोमो देवता । त्रिष्टुभः । दशर्चं सूक्तम् ।

शं न इन्द्राग्नी भवतामवोभिः शं न इन्द्रावरुणा रातहव्या ।
शमिन्द्रासोमा सुविताय शं योः शं न इन्द्रापूषणा वाजसातौ ॥१॥

भा०—राजा और सेनापति या प्राण और उदान रक्षा साधनों द्वारा हमें शान्तिदायक हों। अन्न आदि उत्तम पदार्थ प्राप्त करके वायु और मेघ या राजा और दुष्टों का दमन करने हारा पुलिस विभाग का अध्यक्ष, या प्राण और व्यान हमें सुख और शान्ति दें। वायु और सूर्य या राजा और न्यायाधीश या प्राण और समान उत्तम सुख के लिये रोगों के शमन और भयों के दूर करने के लिये हों। वायु और अन्न, या प्राण और अपान बल और वीर्य के प्राप्त करने के कार्य में हमें शान्तिदायक हों।

शं नो॒ भग॒ः शमु॑ न॒ः शंसो॑ अस्तु शं न॒ः पुर॑न्धि॒ः शमु॑ सन्तु॒ राय॑ः।
शं न॑ः स॒त्यस्य॑ सु॒यम॑स्य॒ शंस॒ः शं नो॑ अ॒र्य॒मा पु॑रुजा॒तो अ॑स्तु ॥२॥

भा०—ऐश्वर्यवान् परमेश्वर अथवा धनाढ्य लोग हमें शान्ति सुख दें। उत्तम उपदेश करने हारा शास्त्रवक्ता अथवा प्रशंसनीय परमेश्वर हमें शान्ति सुख दे। नगर का धारण करने वाला पुरुष या देह को धारण करने वाली बुद्धि, अथवा पूर्ण ब्रह्माण्ड को धारण करने वाला परमेश्वर, हमें शान्ति सुख दें। समस्त ऐश्वर्य हमें शान्तिदायक हों। उत्तम रूप से संयमन करने वाले सत्यस्वरूप परमेश्वर का भजन-कीर्त्तन हमें शान्ति दे। बहुत से प्रजाजनों में सबकी सहमति से बनाया गया न्यायकारी पुरुष हमें शान्तिदायक हो।

शं नो॑ धा॒ता शमु॑ ध॒र्त्ता नो॑ अस्तु॒ शं न॑ उरू॒ची भ॑वतु स्व॒धाभि॑ः।
शं रोद॑सी बृह॒ती शं नो॒ अद्रि॒ः शं नो॑ दे॒वानां॑ सु॒हवा॑नि सन्तु ॥३॥

भा०—पालन पोषण करने वाला परमेश्वर या दुग्ध आदि से पुष्ट करने वाला पिता हमें शान्तिदायक हो। आश्रय प्रदाता परमेश्वर या संरक्षक हमें शान्तिदायक हो। बहुत दूर दूर तक फैली हुई पृथिवी अन्नों द्वारा हमें सुखप्रद हो। विशाल पृथिवी और अन्तरिक्ष हमें सुख दें। पर्वत और मेघ हमें सुख दें। विद्वानों की उत्तम स्तुतियें, उनके उत्तम ज्ञान और उत्तम उपदेश हमें सुखद और कल्याणकारक हों।

शं नो अग्निर्ज्योतिरनीको अस्तु शं नो मित्रावरुणावश्विना शम् ।
शं नः सुकृतां सुकृतानि सन्तु शं न इषिरो अभि वातु वातः ॥४॥

भा०—ज्वालाओं वाले मुख वाली आग या आग के समान तेज को अपने मुख पर धारण करने वाला या अग्नि के समान ज्ञान-प्रकाशक ब्राह्मण या ज्योतिर्मय तेजस्वी पुरुषों के सेना बल से युक्त सेनापति हमारे लिये कल्याणकारक हो। मित्र अर्थात् परस्पर स्नेह करने वाली धन और ऋण विद्युतें और वरुण अर्थात् स्वसमान विद्युत को परे वारण कर देने वाली धन और ऋण दोनों हमें शान्तिदायक हों। सूर्य रूप अश्व पर सदा आरूढ़ दिन और रात, एवं देहरूप रथ और इन्द्रियरूप अश्वों पर आरूढ़ प्राण और अपान शान्तिदायक हों। सुन्दर कार्य करने वाले शिल्पियों के बनाये उत्तम प्रशंसनीय शिल्प के कार्य और पुण्यात्माओं के किये हुए उत्तम प्रशंसनीय परोपकार के कार्य हमें शान्तिदायक हों। निरन्तर गतिशील महान् वायु और देहों का प्रेरक प्राण वायु हमारे लिये कल्याणकारी होकर प्रवाहित हो।

शं नो द्यावापृथिवी पूर्वहूतौ शमन्तरिक्षं दृशये नो अस्तु ।
शं न ओषधीर्वनिनो भवन्तु शं नो रजसस्पतिरस्तु जिष्णुः ॥५॥

भा०—आकाश और भूमि सबसे पूर्व समस्त पदार्थ प्रदान करने में हमें शान्तिदायक हों। वातावरण भी हमारी दर्शन शक्ति के स्वतन्त्र व्यापार के लिये हमें कल्याणकारी हो, अर्थात् अन्तरिक्ष स्वच्छ रहे कि हम दूर दूर तक देख सकें। ओषधियें सेवन करने योग्य होकर हमें शान्तिदायक हों। लोकों का पालक सूर्य और सूर्य के समान तेजस्वी विजयशील राजा हमें शान्तिदायक हो।

शं न इन्द्रो वसुभिर्देवो अस्तु शमादित्येभिर्वरुणः सुशंसः ।
शं नो रुद्रो रुद्रेभिर्जलाषः शं नस्त्वष्टा ग्नाभिरिह शृणोतु ॥६॥

भा०—ऐश्वर्यवान् सूर्य प्राणियों को अपने में बसाने में समर्थ

पृथिवी आदि लोकों सहित हमें शान्तिदायक हो, अथवा राजा ऐश्वर्यवान् होकर वसुविद्वान् शासकों के साथ हमें शान्तिदायक हो या आत्मा वसुरूप प्राणों सहित हमें शान्तिदायक हो। सबके वरण करने योग्य राजा आदित्य के समान तेजस्वी पुरुषों के साथ उत्तम रीति से स्तुति करने योग्य होकर या बारह मासों सहित सूर्य के समान हमें कल्याणकारी हो। सब दुष्टों को रुलाने वाला पुरुष सिंह दुष्टों को रुलाने में समर्थ अन्य अधिकारियों सहित सुखकारी होकर हमें शान्तिदायक हो। सर्वस्रष्टा परमेश्वर अपनी व्यापक दिव्य शक्तियों सहित हमारे लिये शान्तिप्रद हो और इस लोक में हमारी सब प्रार्थनायें श्रवण करे।

शं नः सोमो भवतु ब्रह्म शं नः शं नो ग्रावाणः शमु सन्तु यज्ञाः।
शं नः स्वरूणां मितयो भवन्तु शं नः प्रस्वः शम्वस्तु वेदिः ॥७॥

भा०—वायु और सोम ओषधि हमें शान्तिदायक हो। वेदज्ञान हमें शान्तिदायक हो। उपदेश कर्त्ता गुरुजन हमें शान्तिदायक हों, अथवा सिलबट्टे के समान शत्रुओं को पीसने वाले शस्त्रधारी पुरुष हमारे लिये शान्तिदायक हों। यज्ञ भी शान्तिदायक हों। उपदेशप्रद मंत्रों के ज्ञान करने वाले विद्वान् जन हमारे लिये शांतिदायक हों। नाना प्रकार से उत्पन्न होने वाली ओषधियां या उत्कृष्ट पुत्रोत्पादक माताएं और गौएं हमें शान्ति सुख दें। यज्ञवेदि हमको शान्ति दे।

शं नः सूर्य उरुचक्षा उदेतु शं नो भवतु प्रदिशश्चतस्रः।
शं नः पर्वता ध्रुवयो भवन्तु शं नः सिन्धवः शमु सन्त्वापः ॥८॥

भा०—विस्तीर्ण तेज वाला सूर्य हमें शान्तिदायक होकर उदित हो। चारों मुख्य दिशाएं हमें शांतिदायक हों। स्थिर खड़े पर्वत हमें शान्ति सुख देने हारे हों। वेग से बहने वाली नदियां और अन्य नाना जल हमें शान्तिदायक हों।

शं नो अदितिर्भवतु व्रतेभिः शं नो भवन्तु मरुतः स्वर्काः।
शं नो विष्णुः शमु पूषा नो अस्तु शं नो भवित्रं शम्वस्तु वायुः ॥९॥

भा०—अखण्ड पृथिवी नाना व्रतों द्वारा हमें शान्तिदायक हो। उत्तम गति करने वाली वायुएं, प्राण और वैश्यजन हमें शान्तिदायक हों। व्यापक परमेश्वर हमें शान्तिदायक हो। पोषक अन्न हमें शान्तिदायक हो। यह उत्पत्तिस्थान भुवन हमें शान्तिदायक हो। वायु हमें शान्तिदायक हो।

शं नो॑ दे॒वः स॑वि॒ता त्राय॑माणः॒ शं नो॑ भवन्तू॒षसो॑ विभा॒तीः।
शं नः॑ प॒र्जन्यो॑ भवतु प्र॒जाभ्यः॒ शं नः॒ क्षेत्र॑स्य॒ पति॑रस्तु श॒म्भुः॥१०॥

भा०—सबका पालन करता हुआ सर्वोत्पादक प्रकाशक सूर्य हमें शान्तिदायक हो। विविध और विशेषरूप से प्रकाशित उषाएं हमें शान्तिदायक हों। मेघ हमें शान्तिदायक हो। शरीर रूपी क्षेत्र का स्वामी आत्मा और प्रकृति का स्वामी परमेश्वर हमारे लिये शान्तिदायक हो।

(११) शान्ति की प्रार्थना।

शान्तिकामो ब्रह्मा ऋषिः। बहवोः देवता। त्रिष्टुभः। दशर्चं सूक्तम्॥

शं नः॑ स॒त्यस्य॒ पत॑यो भवन्तु॒ शं नो॒ अर्व॑न्तः॒ शमु॑ सन्तु॒ गावः॑।
शं न॑ ऋ॒भवः॑ सु॒कृतः॑ सु॒हस्ताः॒ शं नो॑ भवन्तु पि॒तरो॒ हवे॑षु॥१॥

भा०—सत्य की रक्षा करने वाले, प्राड्विवाक और धर्माधिकारी आदि हमें शान्तिदायक हों। शीघ्रगामी अश्व हमें शान्तिदायक हों। गौएं हमें शान्तिसुख दें। उत्तम उत्तम पदार्थ बनाने वाले शिल्प में सिद्धहस्त शिल्पीजन हमें शान्तिसुखप्रद हों। यज्ञों और युद्धों में राष्ट्र के रक्षक अधिकारी लोग हमें शान्तिदायक हों।

शं नो॑ दे॒वा वि॒श्वदे॑वा भवन्तु॒ शं सर॑स्वती स॒ह धी॒भिर॑स्तु।
शम॑भि॒षाचः॒ शमु॑ राति॒षाचः॒ शं नो॑ दि॒व्याः पार्थि॑वाः॒ शं नो॒ अप्याः॑॥२॥

भा०—समस्त व्यवहारों में निपुण विद्वान् लोग हमें शान्ति-सुखदायक हों। वाणी नाना ध्यानगम्य विचारों और कर्मों सहित शान्तिदायक

हो। चारों ओर से एकत्र होकर विराजने वाले प्रतिनिधि गण शान्तिदायक हों। दक्षिणा के दान और प्राप्ति के लिये एकत्र होने वाले दाता और प्रतिग्रहीता हमें शान्तिदायक हों। दिव्य आकाश से प्राप्त होने वाले पदार्थ और पृथिवी से उत्पन्न पदार्थ और जल से उत्पन्न पदार्थ सब हमें शान्तिप्रद हों।

शं नो॑ अ॒ज एक॑पाद् दे॒वो अ॑स्तु॒ शमहि॑र्बु॒ध्न्य॒ः शं स॑मु॒द्रः।
शं नो॑ अ॒पां नपा॑त् पे॒रुर॑स्तु॒ शं नः॒ पृश्नि॑र्भवतु दे॒वगो॑पाः ॥ ३ ॥

भा०—शक्ति के एक चतुर्थांश द्वारा चराचर जगत् को धारण करने वाला प्रकाशमय परमेश्वर हमें शान्तिदायक हो। जो कभी नाश नहीं होता वह सर्वाधार परमेश्वर शान्ति प्रदान करे। समस्त संसार की उत्पत्ति तथा लय का स्थान महासमुद्र रूप परमेश्वर हमें शान्ति प्रदान करे। समस्त दुःखों से पार उतारने हारा आपोमय प्राणों को धारण करने वाला परमेश्वर हमें शान्ति दे। सूर्य आदि, पृथिव्यादि पांच भूत, १० इन्द्रिय, पञ्च प्राण आदि समस्त देवों का रक्षक समस्त रसों और ज्योतिर्मय पिण्डों का आश्रय, परमेश्वर हमें शांति दे।

आ॒दि॒त्या रु॒द्रा वस॑वो जुषन्तामि॒दं ब्रह्म॑ क्रि॒यमा॑णं॒ नवी॑यः।
शृ॒ण्वन्तु॑ नो दि॒व्याः पार्थि॑वासो॒ गोजा॑ता उ॒त ये य॒ज्ञियासः ॥४॥

भा०—इस नये से नये बनाये गये बृहत् जगत् का १२ मास, नाना वायुगण या प्राण तथा जीवों के वास कराने हारे लोक पालन करें। दिव्य गुणों वाले पृथिवी के स्वामी राजा लोग और वाणी से प्रसिद्ध मेधावी पुरुष तथा यज्ञ में विराजमान ऋत्विक्गण हमारे वचनों का श्रवण करें।

ये दे॒वाना॑मृ॒त्विजो॑ य॒ज्ञिया॑सो॒ मनो॒र्यज॑त्रा अ॒मृता॑ ऋत॒ज्ञाः।
ते नो॑ रासन्तामुरुगा॒यम॒द्य यू॒यं पा॑त स्व॒स्तिभिः॒ सदा॑ नः ॥५॥

भा०—जो विद्वान् पुरुषों में से ऋतुओं में यज्ञ करने वाले, यज्ञों में पूजनीय, मननशील पुरुष के यज्ञ को कराने वाले, अमरणधर्मा, सत्य ज्ञान के जानने वाले हैं वे हमें विशाल ज्ञानोपदेश निरन्तर प्रदान करें। हे विद्वान् पुरुषो! आप लोग कल्याणकारक साधनों से हमारी सदा रक्षा करें।

तदस्तु मित्रावरुणा तदग्ने शं योरस्मभ्यमिदमस्तु शस्तम् ।
अशीमहि गाधमुत प्रतिष्ठां नमो दिवे बृहते सादनाय ॥ ६ ॥

भा०—हे मरण से बचाने वाले और सर्व दुःखवारक प्राण और अपान और हे जाठर शक्ते! हमें नाना प्रकार के पदार्थ शान्तिदायक और विपत्तिनाशक हों। यह प्राप्त पदार्थ भी प्रशस्त हो। हम अभिलषित ऐश्वर्य और कीर्त्ति का लाभ करें। और बड़ा भारी आश्रय प्राप्त करने के लिये द्यौलोक के समान विशाल पृथिवी को हम अपने वश करें।

(१२)

वसिष्ठ ऋषिः। उषा देवता। त्रिष्टुप्। एकर्चं सूक्तम्।

उषा अप स्वसुस्तमः सं वर्तयति वर्तनिं सुजातता ।
अया वाजं देवहितं सनेम मदेम शतहिमाः सुवीराः ॥ १ ॥

भा०—आप से आप हट जाने वाली रात्रि के अन्धकार को प्रभात वेला दूर हटा देती है। और अपनी उत्तम सुखकर उत्पत्ति से उत्तम मार्ग को या लोक-व्यवहार को भली प्रकार चला देती है। इस उषा से हम प्राणों के हितकारी बल को प्राप्त करें। और हम उत्तम वीर्ययुक्त हो कर सौ वर्षों तक आनन्द प्रसन्न तृप्त रहें।

(१३)

अप्रतिरथ ऋषिः। इन्द्रो देवता। त्रिष्टुभः। एकादशर्चं सूक्तम्।

इन्द्रस्य बाहू स्थविरौ वृषाणौ चित्रा इमा वृषभौ पारयिष्णू ।
तौ योक्षे प्रथमो योग आगते याभ्यां जितमसुराणां स्वर्यत् ॥१॥

भा०—इस आत्मा के दृढ़, सकल काम्य सुखों की वर्षा करने वाले आश्चर्यजनक, बलवान्, जीवनयात्रा के पार पहुंचा देने वाले तथा समस्त विघ्नों को दूर करने वाली दो बाहुओं के समान प्राण और अपान को समय आने पर मैं प्रथम अभ्यासी, समाहित करूं जिससे कि प्राणों का जो जितना भी प्रेरक बल है उसको जीता जाता है।

आशुः शिशा॑नो वृष॒भो न भी॒मो घ॑नाघ॒नः क्षोभ॑णश्चर्षणी॒नाम्।
सं॒क्रन्द॑नोऽनिमि॒ष ए॑कवी॒रः श॒तं सेना॑ अजयत् सा॒कमिन्द्र॑ः ॥२॥

भा०—ऐश्वर्यशील राजा शीघ्रगामी, तीक्ष्ण शस्त्रास्त्रों से युक्त, बड़े सांड के समान अति भयंकर, शत्रुओं को बराबर मारने और परास्त करने वाला, मनुष्यों और प्रजाओं को कंपा देने हारा, शत्रुओं को रुलाने वाला या उनको संग्राम के लिये ललकारने वाला, समस्त सेना में एकमात्र वीर, सैकड़ों सेनाओं को एक साथ ही विजय कर लेता है।

अध्यात्म में—व्यापक ज्ञान और तप से वृषभ के समान भयानक, मेघ के समान आनन्दघन, विषयद्रष्टा इन्द्रियों, प्राणों का प्रेरक, आनन्दमय, नित्य चेतन, समस्त प्राणों का मुख्य प्राण होकर सौ सेनाओं के समान सैकड़ों चित्तवृत्तियों को एक ही बार विजय करता है।

सं॒क्रन्द॑नेनानिमि॒षेण॑ जि॒ष्णुना॑यो॒ध्येन॑ दुश्च्यव॒नेन॑ धृ॒ष्णुना॑।
तदिन्द्रे॑ण जयत॒ तत्स॑हध्वं॒ युधो॑ नर॒ इषु॑हस्तेन॒ वृष्णा॑ ॥ ३ ॥

भा०—हे नेता पुरुषो! आप लोग शत्रुओं को ललकारने वाले, बेचूक अत्यन्त सावधान, विजयशील, जिसको कोई युद्ध में पराजय न कर सके ऐसे, जिसको कोई सुगमता से पदच्युत न कर सके ऐसे, शत्रुओं का धर्षण करने हारे, बाण को हाथ में लिये, बलवान्, ऐश्वर्यवान् राजा के द्वारा उस अभिलषित राष्ट्र को विजय करो और उस शत्रु-राष्ट्र का दमन करो।

अध्यात्मविषयक विवेचन देखो सामवेद आलोक-भाष्य पृ० ८५३ ॥

स इषुहस्तैः स निषङ्गिभिर्वशी संस्रष्टा स युध इन्द्रो गणेन ।
संसृष्टजित् सोमपा बाहुशर्ध्युग्रधन्वा प्रतिहिताभिरस्ता ॥ ४ ॥

भा०—वह कवच धारण किये, धनुष्बाण हाथ में लिये योद्धाओं द्वारा राष्ट्र पर वश करने वाला, युद्धों का करनेहारा, सेना के सुभटों की श्रेणियों के सहित होकर ऐश्वर्यवान् राजा होता है। वह भली प्रकार परस्पर दलबद्ध सेनाओं का जीतने वाला, सोमरस का पान करने हारा, अपने बाहु बल से शत्रुओं को पराजय करनेहारा, भयंकर धनुर्धर प्रति-पक्ष के लिये खड़ी की गई सेनाओं और फेंकी गई बाण परम्पराओं से शत्रुओं को उखाड़ डालने में समर्थ होता है।

बलविज्ञायः स्थविरः प्रवीरः सहस्वान् वाजी सहमान उग्रः ।
अभिवीरो अभिषत्वा सहोजिज्जैत्रमिन्द्र रथमा तिष्ठ गोविदन् ॥५॥

भा०—अपने और पराये के सेनाबल को भली प्रकार जानने वाला, युद्ध में स्थिर या पुराना अनुभवी, सुवीर, बलवान्, वीर्य, अन्न, बल से सम्पन्न, अति भयकारी, शत्रु को पराजित करता हुआ, अपने दायें बायें नाना वीर पुरुषों के लिये हुए, अधिक सत्व-बल को धारण करने वाला, सबके बलों का विजेता ही राजा 'इन्द्र' है। हे इन्द्र! हे पृथिवी को अपने वश करने हारे! तू विजयी रथ पर बैठ।

इमं वीरमनु हर्षध्वमुग्रमिन्द्रं सखायो अनु सं रभध्वम् ।
ग्रामजितं गोजितं वज्रबाहुं जयन्तमज्म प्रमृणन्तमोजसा ॥ ६ ॥

भा०—हे इन्द्र के मित्र राजागण! इस उग्र स्वभाव वाले वीर इन्द्र के अनुकूल रह कर ही तुम हर्ष उत्सव करो। और उसकी आज्ञा में रह कर ही एकत्र होकर युद्ध आदि कार्य प्रारम्भ करो। शत्रुसमूहों के विजेता, वज्र, तलवार एवं शक्ति को अपने हाथ में वश में किये हुए, युद्ध का विजय करने वाले, अपने बल, पराक्रम और प्रभाव से

शत्रुगण को खूब कुचलते हुए, राजा के अनुकूल वशवर्ती होकर उसके कार्य में सहयोग दो ।

अभि गोत्राणि सहसा गाहमानोऽदाय उग्रः शतमन्युरिन्द्रः ।
दुश्च्यवनः पृतनाषाडयोध्योऽस्माकं सेना अवतु प्र युत्सु ॥७॥

भा०—पृथिवी को पालन करने वाले राष्ट्रों को अपने बल से पार करता हुआ, शत्रुओं पर निर्दय, अति भयंकर, सैकड़ों शत्रुओं को अपने बाहुबल से स्तम्भन करने वाला, संग्राम से न उखड़ने हारा, शत्रुसेना का पराजय करने में समर्थ, युद्ध में अजेय, ऐश्वर्यवान् राजा हमारी सेनाओं को युद्धों में अच्छी प्रकार सुरक्षित रक्खे ।

बृहस्पते परि दीया रथेन रक्षोहामित्राँ अपबाधमानः ।
प्रभञ्जञ्छत्रून् प्रमृणन्नमित्रानस्माकमेध्यविता तनूनाम् ॥ ८ ॥

भा०—बड़ी सेना के स्वामिन् ! शत्रुगण को दूर करता हुआ, विघ्नकारी राक्षसों का नाश करता हुआ, रथ से चारों ओर आक्रमण कर । शत्रुओं को खूब मसलता हुआ हमारे शरीरों का रक्षक होकर रह ।

इन्द्र एषां नेता बृहस्पतिर्दक्षिणा यज्ञः पुर एतु सोमः ।
देवसेनानामभि भञ्जतीनां जयन्तीनां मरुतो यन्तु मध्ये ॥ ९ ॥

भा०—राजा इन वीरों का नेता हो और बड़ी भारी सेना का स्वामी सेनापति दक्षिण हाथ में होकर चले । आज्ञा प्रदान करने वाला और समस्त सेनाओं को व्यूह में संगठित करने वाला पुरुष आगे आगे चले । सब ओर शत्रुओं को कुचलने वाली, विजय करती हुई, विजयी लोगों की सेनाओं के बीच में, वायुओं के समान तीव्र गतिशील अथवा मारने में चतुर वीर सुभट चलें ।

इन्द्रस्य वृष्णो वरुणस्य राज्ञ आदित्यानां मरुतां शर्ध उग्रम् ।
महामनसां भुवनच्यवानां घोषो देवानां जयतामुदस्थात् ॥१०॥

भा०—ऐश्वर्यशील, शत्रुओं पर अस्त्रों का और प्रजा पर सुखों का वर्षण करने वाले, प्रजा द्वारा वरण किये गये राजा के सूर्य के समान तेजस्वी तथा शत्रुओं के मारने वाले सुभटों की अति भयंकर मारकाट हो। बड़े विचारशील, जगत् को पलट देने वाले, विजयशील विजिगीषु सैनिकों के जय-घोष उठें।

अस्माकमिन्द्रः समृतेषु ध्वजेष्वस्माकं या इषवस्ता जयन्तु।
अस्माकं वीरा उत्तरे भवन्त्वस्मान् देवासोऽवता हवेषु ॥११॥

भा०—हमारा राजा जब युद्ध के झण्डे भी परस्पर मिल रहे हों तब भी रक्षा करे। जो हमारे बाण हैं वे शत्रुओं पर विजय करें। हमारे वीरगण विजयी रहें। हे समस्त योद्धा और राजागण युद्धों में आप लोग हमारी रक्षा करो।

(१४) द्वेष रहित होकर अभय की प्राप्ति।

अथर्वा ऋषिः। द्यावापृथिव्यौ देवते। त्रिष्टुप्। एकर्चं सूक्तम्।

इदमुच्छ्रेयोऽवसानमागां शिवे मे द्यावापृथिवी अभूताम्।
असपत्नाः प्रदिशो मे भवन्तु न वै त्वा द्विष्मो अभयं नो अस्तु ॥१॥

भा०—मैं इस श्रेय के स्थान पर पहुंचूं। आकाश और ज़मीन मेरे लिये अति कल्याणकर हों। मुख्य दिशाएं मेरे लिये शत्रुरहित हों। हे व्यक्ति! तुझसे हम द्वेष नहीं करते, हमें सदा अभय रहे।

(१५) अभय की प्रार्थना।

अथर्वा ऋषिः। १—४ इन्द्रः। मन्त्रोक्ता बहवो देवताः। १ पथ्या बृहती। २, ५ चतुष्पदा जगत्य। ३ विराट पथ्यापांक्तिः। ४, ६ त्रिष्टुभौ। षडृर्चं सूक्तम्।

यत इन्द्र भयामहे ततो नो अभयं कृधि।
मघवञ्छग्धि तव त्वं न ऊतिभिर्वि द्विषो वि मृधो जहि ॥१॥

भा०—हे ऐश्वर्यवान् राजन्! या प्रभो! हम जिससे भय करें उससे

हमें अभय कर। हे समस्त ऐश्वर्यों के स्वामिन्! तू ही ऐसा करने में समर्थ है। तू ही अपने रक्षाकारी उपायों से द्वेष करने वाले और हिंसाकारी शत्रुओं को विशेषरूप से और विविध उपायों से विनाश कर।

इन्द्रं वयमनूराधं हवामहेऽनु राध्यास्म द्विपदा चतुष्पदा।
मा नः सेना अररुषीरुप गुर्विषूचीरिन्द्र द्रुहो वि नाशय ॥ २ ॥

भा०—हम आराधना करने योग्य या कार्य सिद्ध करने हारे इन्द्र की स्तुति करते हैं। हम दोपाये स्त्री, पुरुष चार पाओं वाले पशुओं से सुखपूर्वक समृद्ध होते रहें। अनुदार सेनाएं हम तक न पहुंचें। हे राजन्! सब प्रकार की द्रोह करने वाली सेनाओं को विनाश कर।

इन्द्रस्त्रातोत वृत्रहा परस्फानो वरेण्यः।
स रक्षिता चरमतः स मध्यतः स पश्चात् स पुरस्तान्नो अस्तु ॥३॥

भा०—घेरने वाले शत्रु का नाशक राजा प्रजा का रक्षक है और वही शत्रुओं से प्रजा की रक्षा करने वाला, सबके वरण करने योग्य है। वही अन्त में, वही बीच में, वही पीछे से, वही आगे से भी हमारा रक्षक हो।

उरुं नो लोकमनु नेषि विद्वान्त्स्वर्यज्ज्योतिरभयं स्वस्ति।
उग्रा त इन्द्र स्थविरस्य बाहू उप क्षयेम शरणा बृहन्ता ॥ ४ ॥

भा०—हे ऐश्वर्यवान् राजन्! तू हमें विशाल देश में लेजा जहां सुखमय, प्रकाशमय सूर्य का प्रकाश और अभय तथा कल्याण हो। हे राजन्! युद्ध में स्थिर रहने वाले तेरी बड़ी बाहुओं को ही आश्रयस्थान मानकर सुख से रहें।

अभयं नः करत्यन्तरिक्षमभयं द्यावापृथिवी उभे इमे।
अभयं पश्चादभयं पुरस्तादुत्तरादधरादभयं नो अस्तु ॥ ५ ॥

भा०—वातावरण हमें अभय प्रदान करे। ये दोनों आकाश और पृथिवी अभय करें। पीछे से या पश्चिम से भय न रहे। आगे से या पूर्व

से अभय हो । ऊपर से और नीचे से अथवा उत्तर और दक्षिण से हमें अभय हो ।

अभयं मित्रादभयममित्रादभयं ज्ञातादभयं पुरो यः ।
अभयं नक्तमभयं दिवा नः सर्वा आशा मम मित्रं भवन्तु ॥ ६ ॥

भा०—मित्र से भय न रहे, शत्रु से भय न रहे । जाने हुए पुरुष से भय न रहे । और जो अनजान हमारे सामने आ जाय उससे भी भय न रहे । रात को अभय रहे । दिन को भय न रहे । समस्त दिशाएं मेरे मित्र होकर रहें ।

(१६) अभय और रक्षा की प्रार्थना

अथर्वा ऋषिः । मन्त्रोक्ता देवताः । १ अनुष्टुप् । २ त्र्यवसाना सप्तपदा बृहतीगर्भातिशक्करी । द्व्यृचं सूक्तम् ।

असपत्नं पुरस्तात् पश्चान्नो अभयं कृतम् ।
सविता मा दक्षिणत उत्तरान्मा शचीपतिः ॥ १ ॥

भा०—सबका प्रेरक राजा और सेनापति ये दोनों आगे से और पीछे से या पूर्व और पश्चिम से तथा दक्षिण और उत्तर से, दायें बायें से हमें शत्रुरहित और भयरहित करें ।

दिवो मादित्या रक्षन्तु भूम्या रक्षन्त्वग्नयः ।
इन्द्राग्नी रक्षतां मा पुरस्तादश्विनावभितः शर्म यच्छताम् ।
तिरश्चीनघ्न्या रक्षतु जातवेदा भूतकृतो मे सर्वतः सन्तु वर्म ॥२॥

भा०—आकाश से १२ मास मेरी रक्षा करें । भूमि से अग्रणी नेता लोग रक्षा करें । आगे से मुझको वायु और आग, एवं राजा और सेनापति रक्षा करें । दिन और रात या सूर्य चन्द्र या अश्वारोही सेना सेनापति जन, इधर उधर से सुख प्रदान करें । प्रज्ञावान् पुरुष न मारने योग्य तिर्यग् योनि के जन्तुओं की रक्षा करें । पञ्चभूतों के नाना प्रकार

के विकारों और विज्ञानों के आविष्कर्ता लोग मेरे सब ओर से रक्षाकारी कवच के समान हों।

(१७) रक्षा की प्रार्थना

अथर्वा ऋषिः। मन्त्रोक्ता देवताः। १–४ जगत्यः। ५, ७, १० अतिजगत्यः। ६ भुरिक्। ९ पञ्चपदातिशक्वरी। दशर्चं सूक्तम्।

अग्निर्मा पातु वसुभिः पुरस्तात् तस्मिन् क्रमे तस्मिञ्छ्रये तां पुरं प्रैमि।
स मा रक्षतु स मा गोपायतु तस्मा आत्मानं परि ददे स्वाहा ॥१॥

भा०—अग्रणी, ज्ञानवान् आगे से या पूर्व की दिशा से वसुओं सहित मेरी रक्षा करे। मैं उसके बल पर आगे पग बढ़ाऊं, उसी में आश्रय लूं, उसको अपनी दुर्गनगरी समझ कर प्राप्त करूं। वह मेरी रक्षा करे, वह मुझे बचाये रक्खे। उसी के हाथों में अपने आपको सौंपता हूँ। यही मेरी उत्तम आहुति या त्याग या प्रार्थना है।

वायुर्मान्तरिक्षेणैतस्या दिशः पातु तस्मिन् क्रमे० । ० ॥ २ ॥

भा०—वायु या वायु के समान तीव्र वेगवान् बलवान् पुरुष अन्तरिक्ष से इस पूर्व दिशा से मेरी रक्षा करे। पूर्व कहे 'वायु' में मैं पैर जमाऊं, उसमें आश्रय पाऊं। इत्यादि पूर्ववत् ॥

सोमो मा रुद्रैर्दक्षिणाया दिशः पातु० । ० ॥ ३ ॥

भा०—सोम रोदनकारी प्राणों सहित दक्षिण दिशा से मेरी रक्षा करे। इत्यादि पूर्ववत्।

वरुणो मादित्यैरेतस्या दिशः पातु० । ० ॥ ४ ॥

भा०—सर्वश्रेष्ठ परमेश्वर मुझे १२ मासों द्वारा इस दक्षिण दिशा से रक्षा करे। शेष पूर्ववत्।

सूर्यो मा द्यावापृथिवीभ्यां प्रतीच्या दिशः पातु० । ० । ॥ ५ ॥

भा०—सूर्य मुझे पश्चिम दिशा से द्यौः और पृथिवी द्वारा रक्षा करे। शेष पूर्ववत्।

आपो मौषधीमतीरेतस्यां दिशः पान्तु तासु क्रमे तासु श्रये तां पुरं प्रैमि । ता मा रक्षन्तु ता मा गोपायन्तु ताभ्य आत्मानं परि दद्मे स्वाहा ॥ ६ ॥

भा०—ओषधियों के रस से पूर्ण जल इस प्रतीची दिशा से मेरी रक्षा करे । उनके बल पर आगे बढ़ूं । इत्यादि पूर्ववत् ।

विश्वकर्मा मा सप्तऋषिभिरुदीच्या दिशः पातु तस्मिन् क्रमे० ।०॥७॥

भा०—विश्व का रचने वाला परमेश्वर मेरी सात प्राणों द्वारा उत्तर दिशा से रक्षा करे ।

इन्द्रो मा मरुत्वानेतस्यां दिशः पातु० ॥ ८ ॥

भा०—प्राणों से सम्पन्न आत्मा उदीची दिशा से मेरी रक्षा करे ।

प्रजापतिर्मा प्रजननवान्त्सह प्रतिष्ठाया ध्रुवाया दिशः पातु० ।०॥९॥

भा०—प्रजा के उत्पन्न करने के सामर्थ्य से युक्त परमेश्वर या गृहस्थ जमकर या घर बसाकर बैठने अर्थात् प्रतिष्ठा देने वाली नीचे की आधार दिशा से मेरी रक्षा करे । शेष पूर्ववत् ।

बृहस्पतिर्मा विश्वैर्देवैरूर्ध्वायां दिशः पातु तस्मिन् क्रमे तस्मिञ्छ्रये तां पुरं प्रैमि । स मा रक्षतु स मा गोपायतु तस्मा आत्मानं परि दद्मे स्वाहा ॥ १० ॥

भा०—वेदवाणी का पालक या महान् लोकों का पालक समस्त दिव्य पदार्थों द्वारा ऊपर की दिशाओं से मेरी रक्षा करे । शेष पूर्ववत् ।

(१८) रक्षा की प्रार्थना ।

अथर्वा ऋषिः । मन्त्रोक्ता देवताः । १, ७ साम्नीत्रिष्टुभौ । २, ६ आर्च्यनुष्टुभौ । ५ सम्राट् = स्वराड् । ७, ९, १० प्राजापत्यास्त्रिष्टुभः । दशर्चं सूक्तम् ।

अग्निं ते वसुवन्तमृच्छन्तु ।
ये माघायवः प्राच्या दिशोऽभिदासात् ॥ १ ॥

वायुं तेऽन्तरिक्षवन्तमृच्छन्तु ।

ये माघायव एतस्या दिशोऽभिदासात् ॥ २ ॥

भा०—जो मुझ पर वध का प्रयोग करने वाले दस्यु लोग पूर्व की दिशा से हिंसाकारी आघात करें वे नवयुवक योद्धाओं सहित अग्रणी सेनापति को पहुंच कर विनष्ट हो जावें ।

और जो मेरे द्रोही, आक्रामक लोग इसी दिशा से आवें वे अन्तरिक्ष को वश करने वाले वायु के समान सेनापति को प्राप्त होकर नष्ट हो जायं ।

सोमं ते रुद्रवन्तमृच्छन्तु ।

ये माघायवो दक्षिणाया दिशोऽभिदासात् ॥ ३ ॥

वरुणं त आदित्यवन्तमृच्छन्तु ।

ये माघायव एतस्या दिशोऽभिदासात् ॥ ४ ॥

भा०—जो मेरे द्रोही, दक्षिण दिशा से या दायें से आक्रमण करें वे रोदनकारी योद्धाओं के स्वामी, उनके प्रेरक राजा को प्राप्त होकर विनाश को प्राप्त हों ।

इसी प्रकार वे इसी दिशा के आक्रमक लोग आदित्य के समान तेजस्वी तथा चमचमाते अग्निमय अस्त्रों के स्वामी तथा शत्रुवारक सेनापति को प्राप्त होकर नष्ट हो जायं ।

सूर्यं ते द्यावापृथिवीवन्तमृच्छन्तु ।

ये माघायवः प्रतीच्या दिशोऽभिदासात् ॥ ५ ॥

अपस्त ओषधीमतीर्ऋच्छन्तु ।

ये माघायव एतस्या दिशोऽभिदासात् ॥ ६ ॥

भा०—जो मेरे द्रोही, मुझ पर पश्चिम दिशा से आक्रमण करें वे आकाश और पृथिवी पर वश करने वाले 'सूर्य' नाम अधिकारी को प्राप्त

होकर नष्ट हो जायं। और वे इसी दिशा से आक्रमण करने वाले ओषधियों से समृद्ध जलों के समान सर्वरोग और कष्ट दूर करने में समर्थ पुरुषों को प्राप्त होकर नष्ट हो जायं।

विश्वकर्माणं ते सप्तऋषिवन्तमृच्छन्तु ।
ये माघायव उदीच्या दिशोऽभिदासात् ॥ ७ ॥
इन्द्रं ते मरुत्वन्तमृच्छन्तु ।
ये माघायव एतस्या दिशोऽभिदासात् ॥ ८ ॥

भा०—जो द्रोही मेरे ऊपर उत्तर दिशा से आक्रमण करें वे सात ऋषियों से युक्त विश्वकर्मा को प्राप्त होकर नष्ट हो जायं। जो द्रोही इसी दिशा से मुझ पर आक्रमण करते हैं वे वायु के समान वेगवान् सैनिकों से सम्पन्न सेनापति को प्राप्त होकर नष्ट हों।

प्रजापतिं ते प्रजननवन्तमृच्छन्तु ।
ये माघायवो ध्रुवाया दिशोऽभिदासात् ॥ ९ ॥
बृहस्पतिं ते विश्वदेववन्तमृच्छन्तु ।
ये माघायव ऊर्ध्वाया दिशोऽभिदासात् ॥ १० ॥

भा०—जो द्रोही लोग मुझ पर नीचे की दिशा, पृथ्वी की ओर से आक्रमण करें वे सन्तानोत्पादन की शक्ति से युक्त प्रजा पालक गृहस्थ जन को प्राप्त होकर नाश हों। जो द्रोही लोग मुझ पर ऊपर की दिशा से आक्रमण करें वे समस्त विद्वान् पुरुषों से युक्त वेदज्ञ विद्वान् के पास प्राप्त होकर नष्ट हों।

(१९) रक्षा की प्रार्थना।

अथर्वा ऋषिः। चन्द्रमा उत मन्त्रोक्ता देवताः। १, ३, ९ भुरिग् बृहत्यः। १० स्वराट्। २, ४–८, ११ अनुष्टुब्गर्भाः शेषाः पंक्तयः। एकादशर्चं सूक्तम्।

मित्रः पृथिव्योदक्रामत् तां पुरं प्र णयामि वः ।
तामा विशत तां प्र विशत सा वः शर्म च वर्म च यच्छतु ॥१॥

भा०—प्रजा के साथ स्नेह करने वाला, प्रजा को व्याधि शत्रु आदि जन्म मरण से बचाने वाला राजा पृथिवी के द्वारा उच्च पद प्राप्त करता है, मैं उसको तुम लोगों के लिये पालक और रक्षक दुर्ग के समान बनाता हूँ। हे पुरुषो! उस के आश्रय में आकर बसो। उसमें प्रवेश करो। वह तुमको सुख और दुःखों से बचने की ढाल के तुल्य करे।

वायुरन्तरिक्षेणोदक्रामत् तां० । ० ॥ २ ॥ सूर्यो दिवोदक्रामत् तां० । ० ॥ ३ ॥ चन्द्रमा नक्षत्रैरुदक्रामत् तां० । ० ॥ ४ ॥ सोम ओषधीभिरुदक्रामत् तां० । ० ॥ ५ ॥ यज्ञो दक्षिणाभिरुदक्रामत् तां० । ० ॥ ६ ॥ समुद्रो नदीभिरुदक्रामत् तां० । ० ॥७॥ ब्रह्म ब्रह्मचारिभिरुदक्रामत् तां० । ० ॥ ८ ॥ इन्द्रो वीर्येणोदक्रामत् तां० । ० ॥ ९ ॥ देवा अमृतेनोदक्रामंस्तां० । ० ॥ १० ॥ प्रजापतिः प्रजाभिरुदक्रामत् तां पुरं प्र णयामि वः । तामा विशत तां प्र विशत सा वः शर्म च वर्म च यच्छतु ॥ ११ ॥

भा०—(२) वायु, अन्तरिक्षस्थ मेघ, विद्युत् आदि शक्तियों द्वारा उच्च पद को प्राप्त है, उसको भी मैं तुम्हारे लिये पालक दुर्ग के समान बनाता हूँ, उसमें आश्रित होकर रहो, उसमें प्रवेश करो, वह तुमको दुःख और विपत्तियों से बचने का कवच या साधन प्रदान करे। (३) सूर्य तेजोमय सूक्ष्मतत्व द्वारा उच्च शक्ति को प्राप्त है। उसको भी हे जीव! एक दुर्ग के समान बनाता हूँ। इत्यादि पूर्ववत्। (४) चन्द्रमा नक्षत्रों के संग द्वारा उत्तम पद को प्राप्त है, इत्यादि पूर्ववत्। (५) सोम-लता ओषधियों के संग से उन्नत पद को प्राप्त है। हे प्रजाओ! इत्यादि पूर्ववत्। (६) यज्ञ दक्षिणाओं के संग से उन्नति को प्राप्त होता है,

इत्यादि पूर्ववत् । (७) समुद्र नदियों के द्वारा उच्चगति को प्राप्त है, इत्यादि पूर्ववत् । (८) वेद, ब्रह्मचर्य का पालन करने वाले ब्रह्मचारी पुरुषों के योग से उन्नति को प्राप्त होता है, इत्यादि पूर्ववत् । (९) ऐश्वर्यवान् राजा वीर्य से उन्नत पद को प्राप्त है, इत्यादि पूर्ववत् । (१०) विद्वान् जन परमात्मा के ज्ञान या मोक्ष बल से उन्नति को प्राप्त होते हैं, इत्यादि पूर्ववत् । (११) प्रजा का पालक परमेश्वर या गृहस्थ उत्कृष्ट सन्ततियों द्वारा उत्तम पद को प्राप्त होता है, इत्यादि पूर्ववत् ।

(२०) रक्षा की प्रार्थना

अथर्वा ऋषिः । नाना देवताः । १ त्रिष्टुप् । २ जगती । ३ पुरस्ताद् बृहती । ४ अनुष्टुप् । चतुर्ऋचं सूक्तम् ।

अप॒ न्य॑धुः पौरु॑षेयं व॒धं यमि॑न्द्रा॒ग्नी धा॒ता स॑वि॒ता बृह॒स्पतिः॑ ।
सोमो॒ राजा॒ वरु॑णो अ॒श्विना॑ य॒मः पू॒षास्मान् परि॑ पातु मृ॒त्योः ॥१॥

भा०—जिन पुरुषों द्वारा किये जाने वाले मारने या घात-प्रतिघात के साधन शस्त्र-अस्त्रों को वे शत्रुगण गुप्त रूप में ला रखते हैं उस प्राण-घातक साधन से विद्युत् और अग्नि, पोषक वायु, सूर्य, वाणी का स्वामी, ओषधियों का स्वामी, प्रजा का स्वामी राजा, दुष्टों का वारक, स्त्री पुरुष या दिन और रात, नियन्ता तथा सबका पोषक परमेश्वर हमारी रक्षा करें ।

यानि॑ च॒कार॒ भुव॑नस्य॒ यस्पतिः॑ प्र॒जाप॑तिर्मा॒तरि॒श्वा प्र॒जाभ्यः॑ ।
प्र॒दिशो॒ यानि॑ वस॒ते दिश॑श्च॒ तानि॑ मे॒ वर्मा॑णि बहु॒लानि॑ सन्तु ॥२॥

भा०—संसार का जो पालक, उत्पन्न होने वाले प्राणियों का स्वामी, तथा सर्वनिर्मात्री प्रकृति के मूल परमाणुओं के भीतर भी व्यापक जिन रक्षासाधनों को प्रजाओं के लिये बनाता है और जो रक्षासाधन मुख्य दिशाओं और उपदिशाओं तक को आच्छादित कर रहे हैं, वे सभी बहुत प्रकार के पदार्थ कवच के समान मेरे जीवन के रक्षक हों ।

यत् ते तनूष्वनंह्यन्त देवा द्युराजयो देहिनः ।
इन्द्रो यच्चक्रे वर्म तदस्मान् पातु विश्वतः ॥ ३ ॥

भा०—ज्ञान से चमकने वाले शरीरधारी विद्वान् और योद्धा लोग जिस कवच को शरीरों में बांधते हैं वे कवच और राजा जिस रक्षा के समान दुर्ग आदि को बनवाता हैं, वह हमारी सब ओर से रक्षा करे ।

वर्म मे द्यावापृथिवी वर्माहर्वर्म सूर्यः ।
वर्म मे विश्वे देवाः क्रन् मा मा प्रापत् प्रतीचिका ॥ ४ ॥

भा०—आकाश और पृथिवी मेरे लिये रक्षाकारी कवच हों, दिन सूर्य, और समस्त दिव्य पदार्थ या विद्वान् जन मेरे रक्षाकारी कवच बनावें । जिससे मेरे विरुद्ध उठने वाली शत्रुसेना मुझ तक न पहुंच सके ।

इति द्वितीयोऽनुवाकः ।

[तत्रैकादश सूक्तानि द्वासप्ततिश्चर्चः]

(२१) छन्दों का वर्णन

ब्रह्मा ऋषिः । छन्दो देवता । एकावसाना द्विपदासाम्नी बृहती । एकर्चं सूक्तम् ।

गायत्र्यु१ष्णिगनुष्टुब् बृहती पङ्क्तिस्त्रिष्टुब् जगत्यै ॥ १ ॥

भा०—गायत्री छन्द, उष्णिग् छन्द, अनुष्टुप् छन्द, बृहती छन्द, पंक्ति छन्द, त्रिष्टुप् छन्द और जगती छन्द, इन समस्त छन्दों का ज्ञान विद्वानों को करना चाहिये । ये क्रम से २४, २८, ३२, ३६, ४०, ४४, ४८ अक्षरों वाले होते हैं ।

अध्यात्म में—सप्तप्राण, अधियाज्ञिक में सप्त सोमयाग, देह में सप्तधातु, राज्य में सप्त प्रकृति और त्रिभुवन में ५ सूक्ष्म भूत और महत् और अहंकार तत्व इत्यादि सात छन्दों को यथोचित रीति से जानना चाहिये ।

(२२) अथर्व सूक्तों का संग्रह

अंगिरा ऋषिः । मन्त्रोक्ता देवताः । १ साम्न्युष्णिक । ३, १९ प्राजापत्या गायत्री । ४,७,११,१७ दैव्यो जगत्यः । ५, १२, १३ दैव्यास्त्रिष्टुभः । २,६, १४–१६, २० दैव्यः पंक्तयः । ८–१० आसुर्यो जगत्यः । १८ आसुरी अनुष्टुप् । २१ चतुष्पदा त्रिष्टुप् । (१–२० एकावसानाः) । एकविंशत्यृचं प्रथमं समासस्कम् ।

आङ्गिरसानामाद्यैः पञ्चानुवाकैः स्वाहा ॥ १ ॥

भा०—आंगिरस वेद में कहे अनुवाकों में से आदि के पांच अनुवाकों [का० १ सू० १—२८] से उत्तम ज्ञान प्राप्त करो ।

पष्ठाय स्वाहा ॥ २ ॥ सप्तमाष्टमाभ्यां स्वाहा ॥ ३ ॥

भा०—छठे अनुवाक से उत्तम शिक्षा ग्रहण करो [का० १ । सू० २९–३५] सातवें और आठवें अनुवाकों से उत्तम ज्ञान प्राप्त करो । [का० २ । सू० १-५, ६-१०]

नीलनखेभ्यः स्वाहा ॥ ४ ॥

भा०—'नीलनख' नामक सूक्तों से उत्तम ज्ञान प्राप्त करो ।

हरितेभ्यः स्वाहा ॥ ५ ॥

भा०—हरितसूक्त जिनमें ओषधिलता, वनस्पतियों का वर्णन है उनसे उत्तम ज्ञान प्राप्त करो ।

क्षुद्रेभ्यः स्वाहा ॥ ६ ॥

भा०—क्षुद्र नामक सूक्त जिनमें अति सूक्ष्म ब्रह्म का विवेचन किया है उनसे भी तुम उत्तम ज्ञान का लाभ करो ।

पर्यायिकेभ्यः स्वाहा ॥ ७ ॥

भा०—पर्याय सूक्तों से भी उत्तम ज्ञान करो ।

प्रथमेभ्यः शङ्खेभ्यः स्वाहा ॥८॥ द्वितीयेभ्यः शङ्खेभ्यः स्वाहा ॥९॥ तृतीयेभ्यः शङ्खेभ्यः स्वाहा ॥ १० ॥

भा०—प्रथम, द्वितीय और तृतीय शंखसूक्तों का भी उत्तम ज्ञान प्राप्त करो। शंख सूक्त 'शंनोदेवी' आदि शान्तिगण में पठित सूक्त समझने चाहियें।

उपोत्तमेभ्यः स्वाहा ॥११॥ उत्तमेभ्यः स्वाहा ॥ १२ ॥
उत्तरेभ्यः स्वाहा ॥ १३ ॥

भा०—उत्तमों के समीप उपोत्तम, उत्तम और उत्तर इन तीन प्रकार के सूक्तों का भी ज्ञान करना चाहिये, मोक्ष विषयक सूक्त उत्तम, साधनाविषयक सूक्त उपोत्तम और कर्मकाण्ड विषयक या यज्ञविषयक सूक्त उत्तर प्रतीत होते हैं।

ऋषिभ्यः स्वाहा ॥ १४ ॥ शिखिभ्यः स्वाहा ॥ १५ ॥

भा०—वेदमन्त्रों के द्रष्टा ऋषियों के उत्तम ज्ञान को प्राप्त करो। ब्रह्मज्ञान के प्राप्त करने वाले ब्रह्मचारियों से प्राप्त होने योग्य ज्ञान को प्राप्त करो।

गणेभ्यः स्वाहा ॥ १६ ॥ महागणेभ्यः स्वाहा ॥ १७ ॥
सर्वेभ्योऽङ्गिरोभ्यो विदगणेभ्यः स्वाहा ॥ १८ ॥
पृथक्सहस्राभ्यां स्वाहा ॥ १९ ॥ ब्रह्मणे स्वाहा ॥ २० ॥

भा०—गणों में पढ़े गये सलिल, शान्ति सूक्त आदि का उत्तम रीति से ज्ञान प्राप्त करो। महागण, बड़े गणों में पढ़े गये पृथ्वी सूक्त आदि का भी उत्तम रीति से ज्ञान करो। समस्त आंगिरसवेद के जानने हारे विद्वान् पुरुषों द्वारा देखे गये ज्ञानसूक्तों का भी उत्तम रीति से मनन करो। 'पृथक् सूक्त' अर्थात् १८ वां काण्ड और 'सहस्र सूक्त' अर्थात् पुरुषसूक्त इनका भी ज्ञान उत्तम रीति से प्राप्त करो। समस्त ब्रह्मविषयक सूक्तों का स्वाध्याय करो।

ब्रह्मज्येष्ठा संभृता वीर्याणि ब्रह्माग्रे ज्येष्ठं दिवमा ततान।
भूतानां ब्रह्मा प्रथमोत जज्ञे तेनार्हति ब्रह्मणा स्पर्धितुं कः ॥२१॥

भा०—ब्रह्म में ही समस्त वीर्य एकत्र विद्यमान हैं। ब्रह्म ने ही तेजोमय नक्षत्रों से युक्त द्यौलोक को रचा। उत्पन्न होने वाले प्राणियों में से ब्रह्मज्ञान से युक्त पुरुष ही प्रथम उत्पन्न हुआ। अर्थात् आदि में जो लोग उत्पन्न हुए सबसे प्रथम ब्रह्मज्ञानी ऋषिगण ही हुए। उस महान् ब्रह्म की कौन बराबरी कर सकता है ?

(२३) अथर्ववेद के सूक्तों का संग्रह

अथर्वा ऋषिः। मन्त्रोक्ता उत चन्द्रमा देवता। १ आसुरी बृहती। २-७, २०, २३, २७ दैव्यस्त्रिष्टुभः। ८, १०-१२, १४-१६ प्राजापत्या गायत्र्यः। १७, १९, २१, २४, २५, २९ दैव्यः पंक्तयः। १३, १८, २२, २६, २८ दैव्यो जगत्यः (१-२९ एकावसानाः)। विंशर्चं द्वितीयं समासस्रक्तम्।

आथर्वणानां चतुर्ऋचेभ्यः स्वाहा ॥ १ ॥ पञ्चर्चेभ्यः स्वाहा ॥२॥ षळृचेभ्यः स्वाहा ॥३॥ सप्तर्चेभ्यः स्वाहा ॥४॥ अष्टर्चेभ्यः स्वाहा ॥ ५ ॥ नवर्चेभ्यः स्वाहा ॥ ६ ॥ दशर्चेभ्यः स्वाहा ॥ ७ ॥ एकादशर्चेभ्यः स्वाहा ॥ ८ ॥ द्वादशर्चेभ्यः स्वाहा ॥ ९ ॥ त्रयोदशर्चेभ्यः स्वाहा ॥ १० ॥ चतुर्दशर्चेभ्यः स्वाहा ॥ ११ ॥ पञ्चदशर्चेभ्यः स्वाहा ॥ १२ ॥ षोडशर्चेभ्यः स्वाहा ॥ १३ ॥ सप्तदशर्चेभ्यः स्वाहा ॥ १४ ॥ अष्टादशर्चेभ्यः स्वाहा ॥ १५ ॥ एकोनविंशतिः स्वाहा ॥ १६ ॥ विंशतिः स्वाहा ॥ १७ ॥ महत्काण्डाय स्वाहा ॥ १८ ॥ तृचेभ्यः स्वाहा ॥ १९ ॥ एकर्चेभ्यः स्वाहा ॥ २० ॥ क्षुद्रेभ्यः स्वाहा ॥ २१ ॥ एकानृचेभ्यः स्वाहा ॥ २२ ॥ रोहितेभ्यः स्वाहा ॥ २३ ॥ सूर्याभ्यां स्वाहा ॥ २४ ॥ व्रात्याभ्यां स्वाहा ॥ २५ प्राजापत्याभ्यां स्वाहा ॥ २६ ॥ विषासह्यै स्वाहा ॥ २७ ॥ मङ्गलिकेभ्यः स्वाहा ॥ २८ ॥ ब्रह्मणे स्वाहा ॥ २९ ॥

भा०—अथर्ववेद में आये सूक्तों में से चार चार ऋचा के बने सूक्तों का मनन करो। इसी प्रकार ५, ६, ७, ८, ९, १०, ११, १२, १३, १४, १५, १६, १७, १८, १९ और २० ऋचा वाले सूक्तों का भी ज्ञान करो। इसके अतिरिक्त बड़े काण्ड का स्वाध्याय करो। एक ऋचा के सूक्तों का स्वाध्याय करो। क्षुद्र सूक्त [का० १० । १०] अर्थात् स्कम्भ आदि सूक्तों का भी ज्ञान करो। एक चरण के मन्त्र जो 'अनृच' अर्थात् पूर्ण ऋचा नहीं और जिनमें पाद की व्यवस्था नहीं है जैसे व्रात्य सूक्त उनका स्वाध्याय करो। रोहित देवता विषयक सूक्तों [का० १३] का स्वाध्याय करो। 'सूर्या' देवता के दो अनुवाकों [का० १४] का स्वाध्याय करो। व्रात्य विषयक [का० १५] दो सूक्तों का स्वाध्याय करो। प्रजापति विषयक [का० १६] दो अनुवाकों का स्वाध्याय करो। विपासहि सूक्त [का०१७] का स्वाध्याय करो। स्वस्तिवाचन, शान्तिपाठ [का० १९] का भी स्वाध्याय करो (ब्रह्मणे स्वाहा) शेष ब्रह्मवेद [का० २०] का भी स्वाध्याय करो।

ये ज्ञानसूक्तों की आहुति स्वाध्यायमय ज्ञानयज्ञ है। इसलिये 'स्वाहा' शब्द का सर्वत्र 'अध्ययन करो' ऐसा ही अर्थ है।

ब्रह्मज्येष्ठा संभृता वीर्याणि ब्रह्माग्रे ज्येष्ठं दिवमा ततान।
भूतानां ब्रह्मा प्रथमोत जज्ञे तेनार्हति ब्रह्मणा स्पर्धितुं कः ॥३०॥

भा०—व्याख्या देखो सूक्त २२ का मन्त्र २१।

(२४) राजा के सहायक रक्षक और विशेष वस्त्र

येन देवं सवितारं परि देवा अधारयन्।
तेनेमं ब्रह्मणस्पते परि राष्ट्राय धत्तन ॥ १ ॥

भा०—जिस प्रयोजन से सर्व प्रेरक विजिगीषु राजा की, युद्धविजयी अन्य राजा लोग चारों ओर से रक्षा करते, उसी प्रयोजन से हे वेदज्ञ विद्वान्! आप लोग भी राष्ट्र की रक्षा के लिये उसकी रक्षा करो। अग्रणी

नेता की बल वृद्धि के लिये, योद्धाओं के समान वेदज्ञ विद्वान् भी, राजा की रक्षा करें।

परीममिन्द्रमायुषे महे क्षत्राय धत्तन ।
यथैनं जरसे नयां ज्योक् क्षत्रेऽधि जागरत् ॥ २ ॥

भा०—गुणैश्वर्य से सम्पन्न राजा को दीर्घ आयु और बड़े भारी क्षात्रबल को प्राप्त कराने के लिये हे विद्वान् पुरुषो ! सब प्रकार से पुष्ट करो। जिससे इसको हम वार्धक्य काल तक प्राप्त करा सकें। और वह राष्ट्र को क्षति से त्राण करने वाले बल के ऊपर चिरकाल तक जागृत होकर रहे।

परीमं सोममायुषे महे श्रोत्राय धत्तन ।
यथैनं जरसे नयां ज्योक् श्रोत्रेऽधि जागरत् ॥ ३ ॥

भा०—राज्य के प्रधान पुरुषो ! इस सौम्यगुण वाले राष्ट्र के संचालक न्यायाधीश को, राष्ट्र को दीर्घ आयु प्राप्त कराने और प्रजा के कष्टों के श्रवण करने के लिये नियत करो। जिससे इसको बुढ़ापे तक के लिये प्राप्त करावें और चिरकाल तक वह राष्ट्र की आवश्यकताओं, त्रुटियों और प्रजा के कष्टों के श्रवण के कार्य पर सदा सचेत रहे।

परि धत्त धत्त नो वर्चसेमं जरामृत्युं कृणुत दीर्घमायुः ।
बृहस्पतिः प्रायच्छद् वास एतत् सोमाय राज्ञे परिधातवा उ ॥४॥

भा०—हे राष्ट्र के नेता पुरुषो ! आप लोग राष्ट्र की रक्षा करें। और इस राजा को भी हमारे ही तेज, बल, प्रभाव और आतङ्क के लिये पुष्ट करो। और इसकी आयु को बुढ़ापे के अन्त में मृत्यु प्राप्त करने वाली और दीर्घ बनाओ। वेदवाणी का पालक पुरुष यह वस्त्र, राजा सोम को धारण करने के लिये प्रदान करता है। राजा आदि अधिकारियों की वेशभूषा अपनी अपनी नियत ढंग की हो।

जरां सु गच्छ परि धत्स्व वासो भवा गृष्टीनामभिशस्तिपा उ ।
शतं च जीव शरदः पुरूची रायश्च पोषमुप सं व्ययस्व ॥ ५ ॥

भा०—हे राजन् ! तू बुढ़ापे तक सुख से पहुंच । वस्त्र धारण कर । प्रजा के पुरुषों की चारों ओर से होने वाले हिंसाकारी आक्रमणों या दुष्ट अपवादों से रक्षा करने में समर्थ हो । तू सौ बरस तक प्राण धारण कर । बहुत से सुखों से पूर्ण धन की समृद्धि को अपने ऊपर धारण कर ।

परी॒दं वासो॑ अधिथाः स्व॒स्तये॑ऽभूर्वा॒पी॒नाम॑भिशस्ति॒पा उ॑ ।
श॒तं च॒ जीव॑ श॒रदः॑ पुरू॒चीर्वसू॑नि॒ चारु॒र्वि भ॑जासि॒ जीव॑न् ॥ ६ ॥

भा०—हे राजन् ! तू इस वस्त्र को धारण कर और बीजवपन द्वारा खेतियों को बोने वाले कृषकों के ऊपर चारों ओर से होने वाले हिंसामय चोर डाकुओं के आघातों से रक्षा करने वाला होकर तू उनके सुख कल्याण के लिये हो । और नाना अभिलाषाओं को पूर्ण करने वाले अनेक भोग्य पदार्थों से परिपूर्ण सौ बरसों तक प्राण धारण कर । और जीता हुआ भी तू पृथ्वी के उत्तम जीवनसुखों को यथावत् भोगता हुआ प्रजा के जीवन और आवास के उपयोगी नाना धन-सम्पत्तियों को विविध रूपों में बांटा कर ।

योगे॑योगे त॒वस्त॑रं॒ वाजे॑वाजे हवामहे । सखा॑य॒ इन्द्र॑मू॒तये॑ ॥ ७ ॥

भा०—हे मित्र जनो ! प्रत्येक नवीन पदार्थ के प्राप्त कर लेने के अवसर पर, और बल के प्रत्येक कार्य या संग्राम में, हम अपनी रक्षा के लिये, अति बलवान् राजा को रक्षा और शरण के लिये बुलावें ।

हिर॑ण्यवर्णो अ॒जरः॑ सु॒वीरो॑ ज॒रामृ॑त्युः प्र॒जया॒ सं वि॑शस्व ।
तद॒ग्निरा॑ह॒ तदु॒ सोम॑ आह॒ बृह॒स्पतिः॑ सवि॒ता तदिन्द्रः॑ ॥ ८ ॥

भा०—सुवर्ण आदि ऐश्वर्य का वरण करने वाला, जरा रहित, उत्तम वीर्यवान् या उत्तम वीर पुत्रों से युक्त या उत्तम वीर भटों से युक्त और स्वयं उत्तम वीर, बुढ़ापे के अनन्तर ही मृत्यु अर्थात् शरीर को त्याग करने वाला, प्रजा के साथ पृथ्वी पर बस, नगर बसा कर रह । ज्ञान-वान् पुरुषों का यही उपदेश है । शम, दम आदि सम्पन्न योगिजनों का

यही आदेश है । वेदवाणी का पालक, सबका प्रेरक और उत्पादक ऐश्वर्यवान् परमेश्वर भी उसी बात का उपदेश या आज्ञा करता है ।

(२५) अश्व या वेगवान् यन्त्र या मृत्यु का वर्णन ।

गोपथ ऋषिः । वाजी देवता । अनुष्टुप् । एकर्चं सूक्तम् ।

अश्रान्तस्य त्वा मनसा युनज्मि प्रथमस्य च ।
उत्कूलमुद्वहो भवोदुह्य प्रति धावतात् ॥ १ ॥

भा०—हे पुरुष ! अनथक और सबसे श्रेष्ठ पुरुष के मन के साथ तुझे जोड़ता हूँ । अपने किनारों को लांघकर नदी जिस प्रकार वेग से किनारों पर उमड़ आती है उसी प्रकार तू कार्यों का वेग से वहन करने वाला जन और कार्यों का भार लेकर उद्देश्य की ओर वेग से चल पड़ ।

(२६) वीर्यरक्षा और आत्मज्ञान

अथर्वा ऋषिः । अग्निर्हिरण्यं च देवते । १, २ त्रिष्टुभौ । ३ अनुष्टुप् । ४ पथ्या पंक्तिः । चतुर्ऋचं सूक्तम् ।

अग्नेः प्रजातं परि यद्धिरण्यममृतं दध्रे अधि मर्त्येषु ।
य एनद् वेद स इदेनमर्हति जरामृत्युर्भवति यो बिभर्ति ॥ १ ॥

भा०—जिस प्रकार हित और रमणीय स्वाभाविक बल, अग्नि या नेता पुरुष से अति उत्तम रूप में प्रकट होता है, उसी प्रकार प्राणियों के देहों में वीर्य या आत्मा के रूप में अविनाशी बल धारण किया जाता है । जो पुरुष इसको जान लेता है वह ही इसको प्राप्त करने और धारण करने योग्य होता है । और जो इस अमर आत्मा की शक्ति को स्वयं धारण कर लेता है वही बुढ़ापा भोगकर शरीर को छोड़ने वाला होता है ।

यद्धिरण्यं सूर्येण सुवर्णं प्रजावन्तो मनवः पूर्व ईषिरे ।
तत् त्वा चन्द्रं वर्चसा सं सृजात्यायुष्मान् भवति यो बिभर्ति ॥२॥

भा०—हे आत्मन् ! जिस रमणीय, हितकारी तथा सूर्य के समान उत्तम वर्ण वाली आत्मा की ज्योति को प्रजाओं वाले उत्तम श्रेणी के मनुष्य चाहते हैं, उस आह्लादजनक तुझ आत्मा को जो धारण करता है वह तेज से युक्त हो जाता है और दीर्घायु हो जाता है।

आयुषे त्वा वर्चसे त्वौजसे च बलाय च।
यथा हिरण्यतेजसा विभासासि जनाँ अनु ॥ ३ ॥

भा०—हे पुरुष ! आयु, तेज, ओज और बल के लिये तुझे वह परम आत्मा रूप सुवर्ण प्राप्त है जिसके कारण तू जनों के प्रति सुवर्ण के तेज से विशेष रूप से चमकने में समर्थ है।

यद् वेद राजा वरुणो वेद देवो बृहस्पतिः।
इन्द्रो यद् वृत्रहा वेद तत् त आयुष्यंभुवत्
तत् ते वर्चस्यंभुवत् ॥ ४ ॥

भा०—जिसको सर्वश्रेष्ठ राजा प्राप्त करता है। जिसको बड़े बड़े लोकों का पालक देदीप्यमान पुरुष प्राप्त करता है और जिसको पाप-नाशक आत्मा प्राप्त करता है, वह आत्मरूप सुवर्ण तेरे लिये दीर्घ आयु-प्रद हो और वही तुझे तेजस्वी बनाने वाला हो।

इति तृतीयोऽनुवाकः।

[तत्र सूक्तानि सप्त । पञ्चषष्टिश्चर्चः]

(२७) जीवन की रक्षा

भृग्वंगिरा ऋषिः। त्रिवृद् उत चन्द्रमा देवता। ३—९ त्रिष्टुभौ। १० जगती। ११ आर्ची उष्णिक्। १२ आर्च्यनुष्टुप्। १३ साम्नी त्रिष्टुप् (११—१३ एकावसानाः)। शेषा अनुष्टुभः। पञ्चदशर्चं सूक्तम्।

गोभिष्ट्वा पात्वृषभो वृषा त्वा पातु वाजिभिः।
वायुष्ट्वा ब्रह्मणा पात्विन्द्रस्त्वा पात्विन्द्रियैः ॥ १ ॥

भा०—हे मनुष्य ! श्रेष्ठ परमात्मा वेदवाणियों द्वारा तेरा पालन करे। मेघ अन्नों द्वारा तेरा पालन करे। वायु अपनी बड़ी शक्ति द्वारा तेरा पालन करे। जीवात्मा इन्द्रियों द्वारा तेरा पालन करे।

सोमस्त्वा पात्वोषधीभिर्नक्षत्रैः पातु सूर्यः।
माद्भ्यस्त्वा चन्द्रो वृत्रहा वातः प्राणेन रक्षतु ॥ २ ॥

भा०—सोमलता अपनी दोषनाशक शक्तियों से तेरी रक्षा करे। सूर्य तुझे नाश से त्राण करने वाले गुणों से पालन करे। आह्लादकारी चन्द्र तुझे अपने मासों से रक्षा करे। और आवरणकारी मेघों का नाशक, मेघों को छिन्न भिन्न करने वाला वायु तेरी रक्षा करे।

तिस्रो दिवस्तिस्रः पृथिवीस्त्रीण्यन्तरिक्षाणि चतुरः समुद्रान्।
त्रिवृतं स्तोमं त्रिवृत आप आहुस्तास्त्वा रक्षन्तु त्रिवृता त्रिवृद्भिः ३

भा०—तेज को तीन प्रकार का बतलाते हैं। पृथ्वी को भी तीन प्रकार का बतलाते हैं। अन्तरिक्ष अर्थात् वायु को भी तीन रूप का बतलाते हैं। समुद्रों को चार प्रकार का बतलाते हैं। स्तोम अर्थात् लोक, प्राण और वीर्य तीन प्रकार का है। आपः अर्थात् जल या प्रकृति के सूक्ष्म परमाणुओं को भी तीन प्रकार का कहते हैं। वे सब तुझको तीन तीन रूपों में परिणत होकर तीन तीन रूपों से तेरी रक्षा करें।

त्रीन्नाकांस्त्रीन् समुद्रांस्त्रीन् ब्रध्नांस्त्रीन् वैष्टपान्।
त्रीन् मातरिश्वनस्त्रीन्त्सूर्यान् गोप्तॄन् कल्पयामि ते ॥ ४ ॥

भा०—मैं तेरे लिये तीन सुखमय लोकों को, तीन समुद्रों को, तीन बन्धनशील पदार्थों को, तीन विशेष रूप से तपने वाले वा सर्वथा ताप रहित शान्ति पूर्ण लोकों को, तीन वायुओं को, तीन सूर्यों को हे पुरुष ! तेरे रक्षक बनाता हूँ।

घृतेन त्वा समुक्षाम्यग्न आज्येन वर्धयन्।
अग्नेश्चन्द्रस्य सूर्यस्य मा प्राणं मायिनो दभन् ॥ ५ ॥

भा०—हे अग्रणी राजन्! जिस प्रकार अग्नि को घृत से बढ़ाया जाता है उसी प्रकार आजि अर्थात् युद्ध की उपयोगी सामग्री और सेना-बल से तुझे बढ़ाता हुआ तुझको अभिषेचित करता हूँ। अग्नि के समान शत्रुतापक चन्द्र और सूर्य के समान मनोहर और तेजस्वी तुझ राजा के प्राण को मायावी लोग विनाश न करें।

मा वः प्राणं मा वोऽपानं मा हरो मायिनो दभन्।
भ्राजन्तो विश्ववेदसो देवा दैव्येन धावत ॥ ६ ॥

भा०—मायावी पुरुष आप लोगों के प्राण, अपान और बल का विनाश न करें। हे विद्वान् पुरुषो! आप लोग सब प्रकार ऐश्वर्यवान् और ज्ञानवान् एवं तेजस्वी होकर दिव्य वेग से शीघ्र कार्य किया करो।

प्राणेनाग्निं सं सृजति वातः प्राणेन संहितः।
प्राणेन विश्वतोमुखं सूर्यं देवा अजनयन् ॥ ७ ॥

भा०—जिस प्रकार मनुष्य अपने प्राणवायु से या फूंक से आग को उत्पन्न करता है, क्योंकि यह बाह्य वायु शरीरगत प्राण के साथ सम्बद्ध रहता है, ठीक इसी प्रकार दिव्य पदार्थ भी सब ओर प्रकाशमान सूर्य को प्रकृष्ट महावायु या महान् चैतन्य के बल से दीप्त रूप में प्रकट कर रहे हैं।

आयुषायुः कृतां जीवायुष्मान् जीव मा मृथाः।
प्राणेनात्मन्वतां जीव मा मृत्योरुदगा वशम् ॥ ८ ॥

भा०—आयु को दीर्घ बनाने वाले पदार्थों के जीवनवृद्धि करने वाले बल से, हे पुरुष! तू प्राण धारण कर। हे पुरुष! तू दीर्घायु होकर जीता रह, मर मत। आत्मशक्ति से युक्त शूरवीर पुरुषों के प्राण बल से तू प्राण धारण कर। मृत्यु के वश में मत जा।

देवानां निहितं निधिं यमिन्द्रोऽन्वविन्दत् पथिभिर्देवयानैः।
आपो हिरण्यं जुगुपुस्त्रिवृद्भिस्तास्त्वा रक्षन्तु त्रिवृता त्रिवृद्भिः॥ ९॥

भा०—इन्द्रियों, दिव्य शक्तियों के भीतर गुप्त रूप से रक्खे जिस ख़ज़ाने को ऐश्वर्यवान् आत्मा प्राणों द्वारा जाने योग्य मार्गों द्वारा प्राप्त करता है, उस अति रमणीय, आत्मारूप ख़ज़ाने को आप्त पुरुष तीन प्रकार के प्राणों द्वारा रक्षा करते हैं। वे आप्त जन तीन तीन गुणों से त्रिवृत् हुए प्राण से तेरी रक्षा करें।

त्रयस्त्रिंशद् देवतास्त्रीणि च वीर्याणि प्रियायमाणा जुगुपुरप्स्वन्तः।
अस्मिंश्चन्द्रे अधि यद्धिरण्यं तेनायं कृणवद् वीर्याणि ॥ १० ॥

भा०—दिव्य शक्तियां तेतीस हैं। और विशेष रूप से प्रेरक बल तीन हैं। वे प्रकृति के सूक्ष्म परमाणुओं के भीतर उस आत्मा को अति प्रिय बनाते हुए इस आह्लादकारी आत्मा में जिस हित और रमणीय तेज को सुरक्षित रखते हैं उससे यह आत्मा वीर्य को उत्पन्न करे।

त्रयस्त्रिंशद् देवताः—८ वसु, ११ रुद्र, १२ आदित्य, इन्द्र और प्रजापति। कायिक, वाचिक, मानस ये तीन वीर्य हैं।

ये देवा दिव्येकादश स्थ ते देवासो हविरिदं जुषध्वम् ॥ ११ ॥
ये देवा अन्तरिक्ष एकादश स्थ ते देवासो हविरिदं जुषध्वम् ॥ १२ ॥
ये देवाः पृथिव्यामेकादश स्थ ते देवासो हविरिदं जुषध्वम् ॥ १३ ॥

भा०—हे दिव्य पदार्थो! आप द्यौलोक में, अन्तरिक्ष में और पृथिवी में जो ग्यारह, ग्यारह, ग्यारह हो, वे आप दिव्य पदार्थ इस अन्न को सेवन करें। (११-१३)

यजुर्वेद (७ । १७) भाष्य में महर्षि दयानन्द के लेखानुसार द्यौ में ११ देव = प्राण, अपान, उदान, समान, व्यान, नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त, धनंजय और जीव। अप्सुक्षित् एकादश देव = श्रोत्र, त्वक्, चक्षु, रसन, घ्राण, वाक्, पाणि, पाद, पायु, उपस्थ और मन। भूमि पर एकादश देव = पृथिवी, अप्, तेज, वायु, आकाश, आदित्य, चन्द्र, नक्षत्र, अहंकार, महत्तत्त्व और प्रकृति।

असपत्नं पुरस्तात् पश्चान्नो अभयं कृतम् ।
सविता मा दक्षिणत उत्तरान्मा शचीपतिः ॥१४॥

भा०—हमारे आगे और पीछे से शत्रुओं से रहित अभय बना रहे। मेरे दायें तरफ सर्वप्रेरक राजा और मेरे उत्तर या बायें तरफ शक्तिवाली सेना का स्वामी सेनापति रहे।

दिवो मादित्या रक्षन्तु भूम्या रक्षन्त्वग्नयः ।
इन्द्राग्नी रक्षतां मा पुरस्तादश्विनावभितः शर्म यच्छताम् ।
तिरश्चीनघ्न्या रक्षतु जातवेदा भूतकृतो मे सर्वतः सन्तु वर्म ॥१५॥

भा०—१२ मास मुझे आकाश की ओर से रक्षा करें। भूमि की ओर से अग्नि के समान शत्रुसंतापक वीर और विद्वान् लोग मेरी रक्षा करें। राजा और सेनापति मुझे आगे से रक्षा करें। दोनों ओर से दिन रात के समान दो अश्वारोही मुझे शान्ति प्रदान करें। विद्वान् पुरुष तिर्यग् योनियों में गये न मारने योग्य पालतू पशुओं की रक्षा करें। पञ्च-भूतों के बने यन्त्रों आदि द्वारा प्राणियों के हितकारक विद्वान् पुरुष सब प्रकार से मेरे शरीर के कवच के समान रक्षक हों।

(२८) शत्रुनाशक सेनापति दर्भमणि का वर्णन ।

सपत्नक्षयकामो ब्रह्माऋषिः । मन्त्रोक्तो दर्भमणिर्देवता । अनुष्टुभः । दशर्चं सूक्तम् ।

इमं बध्नामि ते मणिं दीर्घायुत्वाय तेजसे ।
दर्भं सपत्नदम्भनं द्विषतस्तपनं हृदः ॥ १ ॥

भा०—हे राजन् ! और प्रजाजन ! मैं तेरे दीर्घ जीवन और तेज तथा पराक्रम के कार्य के लिये, शत्रुनाशक, शत्रु के हृदय को तपाने वाले, दुष्टों के हिंसक मननशील पुरुष को नियुक्त करता हूँ।

द्विषतस्तापयन् हृदः शत्रूणां तापयन् मनः ।
दुर्हार्दः सर्वांस्त्वं दर्भ घर्म इवाभीन्त्संतापयन् ॥ २ ॥

घर्म इवाभितपन् दर्भ द्विषतो नि तपन् मणे ।
हृदः सपत्नानां भिन्द्धीन्द्र इव विरुजं बलम् ॥ ३ ॥

भा०—प्रेम न करने वाले पुरुष के हृदय को सन्तप्त करता हुआ और शत्रुओं के मन को सन्तप्त करता हुआ और सभी दुष्ट हृदय वाले भय रहित पुरुषों को, घाम के समान खूब प्रचण्ड होकर, खूब तपाता हुआ, हे मननशील नररत्न ! बहुत से शत्रुओं को भी खूब तपाता हुआ, मेघ को सूर्य या प्रचण्ड वायु या विद्युत् के समान नाना प्रकार से छिन्न भिन्न करता हुआ राजा शत्रुओं के हृदयों को भेदे और उनके सेनाबल को तोड़ डाले ॥ २, ३ ॥

भिन्द्धि दर्भ सपत्नानां हृदयं द्विषतां मणे ।
उद्यन् त्वचमिव भूम्याः शिर एषां वि पातय ॥ ४ ॥

भा०—हे शत्रुहिंसक मननशील सेनापते ! तू हमारे राष्ट्र पर अपना अधिकार करने वाले और द्वेष करने वाले पुरुषों के हृदय को तोड़ दे। और ऊपर उठता हुआ सूर्य जिस प्रकार पृथिवी के घेरने वाले मेघ को नीचे बरसा देता है, उसी प्रकार तू ऊपर उठता हुआ इन शत्रुओं के शिर को नाना प्रकार से नीचे गिरा दे ।

भिन्द्धि दर्भ सपत्नान् मे भिन्द्धि मे पृतनायतः ।
भिन्द्धि मे सर्वान् दुर्हार्दो भिन्द्धि मे द्विषतो मणे ॥ ५ ॥

भा०—हे शत्रु नाशकारी पुरुष ! तू मेरे शत्रुओं और मेरे राष्ट्र पर सेना लेकर चढ़ने वाले शत्रुओं को तोड़ दे । और हे मननशील पुरुष ! तू मेरे प्रति सब दुष्ट हृदय वाले और द्वेषकारी पुरुषों को विनाश कर ।

छिन्द्धि दर्भ सपत्नान् मे छिन्द्धि मे पृतनायतः ।
छिन्द्धि मे सर्वान् दुर्हार्दान् छिन्द्धि मे द्विषतो मणे ॥ ६ ॥

भा०—हे शत्रुनाशक सेनापते ! तू मेरे पर सेना लेकर चढ़ने वाले और द्वेष करने वाले पुरुषों को काट डाल, उनको फोड़ डाल । हे

शिरोमणि पुरुष ! सब दुष्ट हृदय वाले शत्रुओं को भी काट डाल या फोड़ डाल ।

वृश्च दर्भ सपत्नान् मे वृश्च मे पृतनायतः ।
वृश्च मे सर्वान् दुर्हार्दो वृश्च मे द्विषतो मणे ॥ ७ ॥
कृन्त दर्भ सपत्नान् मे कृन्त मे पृतनायतः ।
कृन्त मे सर्वान् दुर्हार्दो कृन्त मे द्विषतो मणे ॥ ८ ॥
पिंश दर्भ सपत्नान् मे पिंश मे पृतनायतः ।
पिंश मे सर्वान् दुर्हार्दः पिंश मे द्विषतो मणे ॥ ९ ॥
विध्य दर्भ सपत्नान् मे विध्य मे पृतनायतः ।
विध्य मे सर्वान् दुर्हार्दो विध्य मे द्विषतो मणे ॥ १० ॥

भा०—हे शत्रुनाशक सेनापते ! मेरे शत्रुओं को और मेरे ऊपर सेना से चढ़ाई करने वालों को फरसा जिस प्रकार लकड़ी को काटता है उस प्रकार काट डाल । कैंची जिस प्रकार कपड़े को काट डालती है उस प्रकार काट डाल । चक्की जिस प्रकार दानों को पीस डालती है उस प्रकार पीस डाल । इसी प्रकार समस्त द्वेष करने वाले, दुष्ट हृदयों से युक्त, कुटिल पुरुषों को भी फरसे के समान काट, कैंची के समान कतर, चक्की के समान पीस, बाण के समान वेध ।

(२९) शत्रु का उच्छेदन

सपत्नक्षयकामो ब्रह्मा ऋषिः । दर्भो देवता । अनुष्टुभः । नवर्चं सूक्तम् ।

निक्ष दर्भ सपत्नान् मे निक्ष मे पृतनायतः ।
निक्ष मे सर्वान् दुर्हार्दो निक्ष मे द्विषतो मणे ॥ १ ॥
तृन्द्धि दर्भ सपत्नान् मे तृन्द्धि मे पृतनायतः ।
तृन्द्धि मे सर्वान् दुर्हार्दस्तृन्द्धि मे द्विषतो मणे ॥ २ ॥

रुन्द्धि दर्भ सपत्नान् मे रुन्द्धि मे पृतनायतः ।
रुन्द्धि मे सर्वान् दुर्हार्दो रुन्द्धि मे द्विषतो मणे ॥ ३ ॥
मृण दर्भ सपत्नान् मे मृण मे पृतनायतः ।
मृण मे सर्वान् दुर्हार्दो मृण मे द्विषतो मणे ॥ ४ ॥
मन्थ दर्भ सपत्नान् मे मन्थ मे पृतनायतः ।
मन्थ मे सर्वान् दुर्हार्दो मन्थ मे द्विषतो मणे ॥ ५ ॥
पिण्ड्ढि दर्भ सपत्नान् मे पिण्ड्ढि मे पृतनायतः ।
पिण्ड्ढि मे सर्वान् दुर्हार्दः पिण्ड्ढि मे द्विषतो मणे ॥ ६ ॥
ओष दर्भ सपत्नान् मे ओष मे पृतनायतः ।
ओष मे सर्वान् दुर्हार्द ओष मे द्विषतो मणे ॥ ७ ॥
दह दर्भ सपत्नान् मे दह मे पृतनायतः ।
दह मे सर्वान् दुर्हार्दो दह मे द्विषतो मणे ॥ ८ ॥
जहि दर्भ सपत्नान् मे जहि मे पृतनायतः ।
जहि मे सर्वान् दुर्हार्दो जहि मे द्विषतो मणे ॥ ९ ॥

भा०—हे शत्रुहिंसन करने में कुशल पुरुष ! तू मेरे शत्रुओं और मुझसे सेना द्वारा युद्ध करने वालों को नाग के समान डंस डाल । हे नरमणे ! मेरे से द्वेष करने वालों को और समस्त दुष्ट हृदय वालों को भी डंस डाल, मूर्छित कर ॥ १ ॥ उनको तिनके की तरह तोड़ डाल ॥ २ ॥ उनको हाथी के समान पैरों तले रौंद डाल ॥ ३ ॥ कुम्हार जिस प्रकार मट्टी को मसलता है उस प्रकार मसल डाल ॥ ४ ॥ जिस प्रकार मक्खन के लिये दही को मथा जाता है उसी प्रकार मथ डाल या आटे के समान गूंध डाल ॥ ५ ॥ सिल पर चटनी के समान पीस डाल या कुम्हार के समान गीली मिट्टी की तरह मल मल कर पिण्डे बना डाल

॥ ६ ॥ हांडी में दाल की तरह पका डाल ॥ ७ ॥ भट्टी में लकड़ी के समान जला डाल ॥ ८ ॥ उनको नाना प्रकार से हनन कर ॥ ९ ॥

(३०) शत्रु का उच्छेदन

सपत्नक्षयकामो ब्रह्मा ऋषिः । दर्भो देवता । अनुष्टुभः । पञ्चर्चं सूक्तम् ।

यत् ते दर्भ ज़रामृत्युः शतं वर्मसु वर्म ते ।
तेनेमं वर्मिणं कृत्वा सपत्नान् जहि वीर्यैः ॥ १ ॥

भा०—हे शत्रुनाशक सेनापते ! जो तेरे सैकड़ों प्रकार के कवचों में सबसे उत्तम कवच अर्थात् रक्षा साधन है जो कि वृद्धावस्था के पश्चात् मृत्यु प्राप्त कराने वाला है, उस रक्षाकारी कवच से इस पुरुष को कवचवान् करके नाना सामर्थ्यों से इसके शत्रुओं का नाश कर ।

शतं ते दर्भ वर्माणि सहस्रं वीर्याणि ते ।
तमस्मै विश्वे त्वां देवा जरसे भर्तवा अदुः ॥ २ ॥

भा०—हे शत्रुनाशक सेनापते ! तेरे सैकड़ों कवच अर्थात् रक्षा-साधन हैं । तेरे सामर्थ्य भी सहस्रों हैं । इसीलिये समस्त विद्वान् पुरुष उस तुझ वीर्यवान् पुरुष को इस राजा के प्रति वृद्धावस्था तक भरण पोषण के निमित्त सौंपते हैं ।

त्वामाहुर्देववर्म त्वां दर्भ ब्रह्मणस्पतिम् ।
त्वामिन्द्रस्याहुर्वर्म त्वं राष्ट्राणि रक्षसि ॥ ३ ॥

भा०—हे शत्रुहिंसक पुरुष ! तुझको राजा और विद्वानों के कवच के समान कहते हैं । और तुझे वेद या विशाल राष्ट्र का पालक कहते हैं । तुझको ऐश्वर्यवान् राजा या धनवान् समृद्ध राष्ट्र का रक्षक कहते हैं, क्योंकि तू राष्ट्रों की रक्षा करता है ।

सपत्नक्षयणं दर्भ द्विषतस्तपनं हृदः ।
मणिं क्षत्रस्य वर्धनं तनूपानं कृणोमि ते ॥ ४ ॥

भा०—हे शत्रुओं का नाश करने वाले पुरुष ! शत्रु के हृदय को तपाने और शत्रु का क्षय करने वाले और क्षत्रियों के क्षात्र-बल को बढ़ाने वाले तुझ शिरोमणि पुरुष को, हे राजन् ! तेरे शरीर की रक्षा करने वाला नियत करता हूँ ।

यत् समुद्रो अभ्यक्रन्दत् पर्जन्यो विद्युता सह ।
ततो हिरण्ययो बिन्दुस्ततो दर्भो अजायत ॥ ५ ॥

भा०—जिस प्रकार जलों का बरसाने वाला मेघ विद्युत् के साथ खूब गरजता है, उससे हिमतम और रमणीय जलबिन्दु उत्पन्न होता है और उससे कुशा घास उत्पन्न होता है, उसी प्रकार प्रजाओं पर नाना उपकारों की वर्षा करने वाला, समुद्र के समान गम्भीर और विशेष शोभा के साथ प्रजा को सन्तुष्ट करने वाला राजा गर्जना करता है और उससे हितकारी राजा उत्पन्न होता है और उससे शत्रुनाशक पुरुष भी उत्पन्न होता है ।

(३१) औदुम्बर मणि के रूप में अन्नाध्यक्ष, पुष्टपति का वर्णन ।

पुष्टिकामः सविता ऋषिः । मन्त्रोक्त उदुम्बरमणिर्देवता । ५, १२ त्रिष्टुभौ । ६ विराट् प्रस्तार पंक्तिः । ११, १३ पन्चपदे शक्वर्यौ । १४ विराड् आस्तार-पंक्तिः । शेषा अनुष्टुभः । चतुर्दशर्चं सूक्तम् ॥

औदुम्बरेण मणिना पुष्टिकामाय वेधसा ।
पशूनां सर्वेषां स्फातिं गोष्ठे मे सविता करत् ॥ १ ॥

भा०—उत्तम पुष्टि करने वाले या पापों से ऊंचे उठाने वाले या अन्नाध्यक्ष, विद्वान् नरशिरोमणि द्वारा सर्वप्रेरक राजा, पुष्टि की कामना करने वाला जो मैं हूँ उसकी गोशाला में समस्त पशुओं की वृद्धि करे । राजा अपने राज्य में राष्ट्र के पशुओं की वृद्धि और पुष्टि का काम पशु-पुष्टिवित् विद्वान् द्वारा संचालित करे ।

सोऽब्रवीत् अयं वाव स मा सर्वस्मात् पाप्मन उद् अभार्षीत् ।

तस्मात् उदुम्भरः । उदुम्बर इति आचक्षते परोक्षम् ॥श० ७।५।१।२२॥
अन्नं वा ऊर्ग् उदुम्बरः ॥ श० ३ । २ । १ । ३३ ॥

यो नो अग्निर्गार्हपत्यः पशूनामधिपा असत् ।
औदुम्बरो वृषा मणिः स मा सृजतु पुष्ट्या ॥ २ ॥

भा०—जो अग्रणी गृहपति हमारे पशुओं का अधिष्ठाता है वही पुष्टिकारक अन्न उत्पन्न करने में कुशल, सब सुखों का वर्षक नरश्रेष्ठ, मुझको धन-ऐश्वर्य और पशु सम्पत्ति की वृद्धि से युक्त करे ।

करीषिणीं फलवतीं स्वधामिरां च नो गृहे ।
औदुम्बरस्य तेजसा धाता पुष्टिं दधातु मे ॥ ३ ॥

भा०—पोषक राजा अपने नियत किये हुए अन्न और पुष्टि के अध्यक्ष के प्रयत्न से, हमारे घरों में, समृद्धि से युक्त और खूब उत्तम फल से युक्त अन्न और जल को प्रदान करे और मुझे पशु-समृद्धि प्रदान करे ।

पुरीष्य इति वै तमाहुः यः श्रियं गच्छति । समानं वै पुरीषं च करीषं च ॥ श० २ । १ । १ । ७ ॥

यद् द्विपाच्च चतुष्पाच्च यान्यन्नानि ये रसाः ।
गृह्णेऽहं त्वेषां भूमानं बिभ्रदौदुम्बरं मणिम् ॥ ४ ॥

भा०—मैं 'औदुम्बर' नामक पुरुष को नियुक्त करता हुआ, जो दोपाये और चौपाये जन्तु हैं और जितने अन्न और जितने रस हैं, उन सबकी बहुत भारी संख्या को प्राप्त करने में समर्थ हूँ ।

पुष्टिं पशूनां परि जग्रभाहं चतुष्पदां द्विपदां यच्च धान्यम् ।
पयः पशूनां रसमोषधीनां बृहस्पतिः सविता मे नि यच्छात् ॥५॥

भा०—सबका प्रेरक, बड़ों बड़ों का स्वामी, राजा या परमेश्वर, मुझे पशुओं के दूध और ओषधियों के रस का प्रदान करे । मैं पशुओं और दोपाये और चौपायों की पुष्टि और जो उनके खाने योग्य धान्य है वह सब प्रकार से प्राप्त करूँ ।

अहं पशूनामधिपा असानि मयि पुष्टं पुष्टपतिर्दधातु ।
मह्यमौदुम्बरो मणिर्द्रविणानि नि यच्छतु ॥ ६ ॥

भा०—मैं पशुओं का स्वामी होऊं। पोषणकारी अन्न आदि पालक पुरुष मुझ में पोषणकारी अन्न आदि पदार्थ प्रदान करे। वही अन्न का वृद्धिकारी सर्वश्रेष्ठ अध्यक्ष मुझे नाना प्रकार के धन प्रदान करे।

उप मौदुम्बरो मणिः प्रजया च धनेन च ।
इन्द्रेण जिन्वितो मणिरा मागन्त्सह वर्चसा ॥ ७ ॥

भा०—ऐश्वर्यवान् राजा द्वारा वेतन आदि द्वारा सन्तुष्ट करके नियुक्त किया शिरोमणि पुरुष, तेज सहित मुझे प्राप्त हो। वह 'अन्नाध्यक्ष' नरश्रेष्ठ उत्तम सन्तान और धन के सहित मुझे प्राप्त हो।

देवो मणिः सपत्नहा धनसा धनसातये ।
पशोरन्नस्य भूमानं गवां स्फातिं नि यच्छतु ॥ ८ ॥

भा०—प्रदाता नरशिरोमणि पुरुष शत्रुओं का नाशकारी और नाना प्रकार के धन ऐश्वर्यों का प्रदाता होकर, हमें ऐश्वर्यलाभ के लिये उपयोगी हो। वह हमें पशु, अन्न और गौ आदि नाना पशुओं की बहुत भारी समृद्धि प्रदान करे।

यथाग्रे त्वं वनस्पते पुष्ट्या सह जज्ञिषे ।
एवा धनस्य मे स्फातिमा दधातु सरस्वती ॥ ९ ॥

भा०—हे वनों के पालक! जिस प्रकार तू सबसे प्रथम स्वयं पोषणकारी शक्ति के साथ प्रकट होता है, उसी प्रकार समस्त रसों का प्रदान करने वाली, पुष्टि की स्वामिनी, स्त्री वा समिति भी मुझे धन की समृद्धि प्रदान करे।

सरस्वती पुष्टिः पुष्टिपत्नी ॥ तै० २। ५। ७। ४ ॥

आ मे धनं सरस्वती पयस्फातिं च धान्यम् ।
सिनीवाल्युपा वहादयं चौदुम्बरो मणिः ॥ १० ॥

भा०—उत्तम रस प्रदान करने वाली और अन्न प्रदान करने वाली स्त्री, मुझे धन, खूब अधिक पुष्टिकारक दूध, घी आदि पदार्थ और अन्न आदि धान्य प्राप्त करावे। और इसी प्रकार यह अन्नों और रसों का स्वामी मुझे धन, दूध, अन्नादि प्रदान करे।

त्वं म॑णी॒नाम॑धि॒पा वृषा॑सि॒ त्वयि॑ पु॒ष्टं पु॑ष्ट॒पति॑र्जजान।
त्वयी॒मे वाजा॑ द्रवि॑णानि॒ सर्वौदु॑म्बरः॒ स त्वम॒स्मत् स॑हस्वा॒-
राद॒राति॒मम॑तिं॒ क्षुधं॑ च ॥ ११ ॥

भा०—हे नरशिरोमणि ! तू नर-रत्नों का भी पालक और अन्नादि पदार्थों का मेघ के समान उदारता से देने वाला है। पोषणकारी समस्त पदार्थों का स्वामी अर्थात् राजा तेरे बल पर पोषणकारी पदार्थों को उत्पन्न करता है। तेरे बल पर ये सब अन्न, समस्त धन, ऐश्वर्य उत्पन्न किये जाते हैं। इसलिये तू प्रजा को बहुत पुष्ट करने वाला अधिकारी होकर कृपणता, अविवेक और मूर्खता और भूख प्यास को हमसे दूर कर।

ग्रा॒म॒णीर॑सि ग्राम॒णीरु॒त्थाया॒भिषि॑क्तो॒ऽभि मा॑ सिञ्च॒ वर्च॑सा।
तेजो॑ऽसि॒ तेजो॒ मयि॑ धार॒याधि॑ र॒यिर॑सि र॒यिं॑ मे॑ धेहि ॥ १२ ॥

भा०—हे शिरोमणि पुरुष ! तू ग्राम का नेता है, तू उच्च पद प्राप्त करके स्वयं 'ग्रामणी' अर्थात् ग्राम के प्रमुख नेतृत्व के पद पर अभिषेक किया जाता है। तू मुझ राजा को भी तेज से युक्त कर। तू स्वयं तेजःस्वरूप है तू मुझ में भी तेज धारण करा। तू साक्षात् 'रयि', धनैश्वर्यमय है। तू मुझे ऐश्वर्य प्रदान कर।

पु॒ष्टिर॑सि पु॒ष्ट्या मा॒ सम॑ङ्ग्धि गृहमे॒धी गृ॒हप॑तिं मा कृणु।
औदु॑म्बरः॒ स त्वम॒स्मासु॑ धेहि र॒यिं च॑ नः॒ सर्व॑वीरं॒ नि य॑च्छ।
रा॒यस्पोषा॑य॒ प्रति॑ मुञ्चे॒ अ॒हं त्वाम् ॥ १३ ॥

भा०—तू साक्षात् पुष्टि है, मुझको पोषणकारी अन्न आदि की समृद्धि से युक्त कर । तू गृह की वृद्धि करने वाला है मुझको गृह का स्वामी बना । तू बहुतों को अन्न आदि से पुष्ट करने में समर्थ, अति बलवान् है तू हममें भी बहुतों का पालन और भरण पोषण करने का सामर्थ्य स्थापन कर, और हमें समस्त वीर पुरुषों से युक्त ऐश्वर्य प्रदान कर । मैं तुझको धन-ऐश्वर्य की वृद्धि के लिये धारण करता हूँ, अपने राष्ट्र में नियुक्त करता हूं ।

अयमौदुम्बरो मणिर्वीरो वीराय बध्यते ।

स नः सनिं मधुमतीं कृणोतु रयिं च नः सर्ववीरं नि यच्छात् ॥१४॥

भा०—यह बहुतों के पालन पोषण में समर्थ शिरोमणि पुरुष वीर्यवान् होकर वीर्यवान् राजा के उपकार के निमित्त बांधा जाता है, वेतन आदि द्वारा नियुक्त किया जाता है । वह हमारी धन प्राप्ति को आनन्द और सुख से युक्त करे । और हमें सब सामर्थ्यों से युक्त धन ऐश्वर्य प्रदान करे ।

(३२) शत्रु दमनकारी 'दर्भ' नामक सेनापति ।

सर्वकाम आयुष्कामो भृगुर्ऋषिः । मन्त्रोक्तो दर्भो देवता । ८ पुरस्तात् बृहती । ९ त्रिष्टुप् । १० जगती । शेषा अनुष्टुभः । दशर्चं सूक्तम् ।

शतकाण्डो दुश्च्यवनः सहस्रपर्ण उत्तिरः ।

दर्भो य उग्र ओषधिस्तं ते बध्नाम्यायुषे ॥ १ ॥

भा०—सैकड़ों काम्य पदार्थों से सम्पन्न, अथवा सैकड़ों बाणों से युक्त, संग्राम में शत्रु द्वारा न डिगाये जाने वाला सहस्रों शीघ्रगामी बाणों, रथों, विमानों वाला, शत्रुओं को उखाड़ देने में समर्थ, भयानक शत्रुओं के संतापकारी पराक्रम को धारण करने वाला, उनका हिंसक 'दर्भ' नामक सेनापति है । हे राजन् ! उसको तेरे जीवन की रक्षा के लिये नियुक्त करता हूँ ।

नास्य केशान् प्र वपन्ति नोरसि ताडमा घ्नते ।
यस्मा अच्छिन्नपर्णेन दर्भेण शर्म यच्छति ॥ २ ॥

भा०—निरन्तर चलने वाले वाणों, रथों, विमानों से युक्त तथा शत्रुहिंसक सेनापति द्वारा जिसको सुख प्रदान किया जाता है, उसके सम्बन्धी लोग परस्पर के बाल नहीं नोंचते और न छाती पीट पीट कर दुहत्थड़ मार कर रोया करते हैं अर्थात् वे सुखी रहते हैं ।

दिवि ते तूलमोषधे पृथिव्यामसि निष्ठितः ।
त्वया सहस्रकाण्डेनायुः प्र वर्धयामहे ॥ ३ ॥

भा०—हे शत्रुओं को सन्तापदायक पुरुष ! तेरा अग्रभाग, मुख्य बल आकाश में सूर्य के समान, सभा में विद्यमान है । और तू स्वयं पृथिवी में दृढ़ता से स्थित है । सहस्रों वाणों से युक्त तेरे द्वारा हम राष्ट्र के जीवन को बढ़ाते हैं ।

तिस्रो दिवो अत्यतृणत् तिस्र इमाः पृथिवीरुत ।
त्वयाहं दुर्हार्दो जिह्वां नि तृणद्मि वचांसि ॥ ४ ॥

भा०—शत्रुनाशकारी पुरुष तीनों द्यौलोक और इन तीनों पृथिवियों को पार कर जाता है । तेरे बल से मैं राजा दुष्ट हृदय वाले पुरुष की जीभ और वचनों को सर्वथा नाश करूं ।

त्वमसि सहमानोऽहमस्मि सहस्वान् ।
उभौ सहस्वन्तौ भूत्वा सपत्नान् सहिषीवहि ॥ ५ ॥

भा०—हे शिरोमणे ! तू शत्रुओं को निरन्तर दबाता रहता है । और मैं राजा भी शत्रुओं को पराजित करने वाले बल से युक्त हूँ । हम दोनों बलवान् होकर शत्रुओं को उनकी सेनाओं सहित दबाने में समर्थ हों ।

सहस्व नो अभिमातिं सहस्व पृतनायतः ।
सहस्व सर्वान् दुर्हार्दः सुहार्दो मे बहून् कृधि ॥ ६ ॥

भा०—हे शत्रुओं को स्तम्भन करने हारे पुरुष ! तू हमारे प्रति अभिमान करने वाले, गर्वीले शत्रु को पराजित कर और सेना से आक्रमण करने वाले शत्रुओं को भी पराजित कर । समस्त दुष्ट चित्त वालों को भी पराजित कर । मेरे बहुत से उत्तम चित्त वाले मित्रों को उत्पन्न कर, बना ।

दर्भेण देवजातेन दिवि ष्टम्भेन शश्वदित् ।
तेनाहं शश्वतो जनाँ असनं सनवानि च ॥ ७ ॥

भा०—महान् आकाश में जिस प्रकार सूर्य अपनी शक्ति से समस्त ग्रहों को थामे रहता है उसी प्रकार निरन्तर राष्ट्र के उत्तम भाग में स्थित होकर सबको थामने वाले, शत्रु नाशक उस पुरुष द्वारा, निरन्तर रहने वाले, प्रजाजनों को प्राप्त करूं और अपने वश किये रहूँ ।

प्रियं मा दर्भ कृणु ब्रह्मराजन्याभ्यां शूद्राय चार्याय च ।
यस्मै च कामयामहे सर्वस्मै च विपश्यते ॥ ८ ॥

भा०—हे शत्रुनाशक ! तू मुझको ब्राह्मणों और क्षत्रियों, शूद्रों और वैश्यों, और जिसको हम चाहते हैं और जो अपने विपरीत शत्रुभाव से हमें देखते हैं उन सबका भी मुझे प्रिय बना ।

यो जायमानः पृथिवीमदृंहद् यो अस्तभ्नादन्तरिक्षं दिवं च ।
यं बिभ्रतं ननु पाप्मा विवेद स नोऽयं दर्भो वरुणो दिवा कः ॥ ९ ॥

भा०—जो उत्पन्न होता हुआ स्वयं पृथिवी को दृढ़ करता है, और जो अन्तरिक्ष को अपने वश करता और विद्वानों की सभा को सूर्य के समान प्रकाशित करता है, भरण पोषण करने वाले जिसको पाप नहीं छूता, वह शत्रुनाशक सेनापति सब पापों का निवारक होकर, दिन के समान प्रकाश करता है, अर्थात् अन्याय-अन्धेर मिटाकर व्यवस्थित राज्य की स्थापना करता है ।

सपत्नहा शतकाण्डः सहस्वानोषधीनां प्रथमः सं बभूव ।
स नोऽयं दर्भः परि पातु विश्वतस्तेन साक्षीय पृतनाः पृतन्यतः १०

भा०—जो शत्रुओं का हनन करने वाला, सैकड़ों बाणों से युक्त, शत्रुओं को पराजय करने में समर्थ होकर, शत्रु और दुष्टों को सन्ताप देने में सर्वश्रेष्ठ है, वह यह 'दर्भ' नाम से विख्यात शत्रुनाशक अधिकारी पुरुष हमारी सब ओर से और सब प्रकार से रक्षा करे। उसके बल से मैं सेना द्वारा आक्रमण करने वाले शत्रु की सेनाओं को विजय करने में समर्थ होऊं।

(३३) 'दर्भ, अग्नि' नामक अभिषिक्त राजा

सर्वकामो भृगुर्ऋषिः। दर्भो देवता। १ जगती। २, ५ त्रिष्टुभौ। ३ आर्षी पंक्तिः। ४ आस्तारपंक्तिः। पञ्चर्चं सूक्तम्।

सहस्रार्घः शतकाण्डः पयस्वानपामग्निर्वीरुधां राजसूयम्।
स नोऽयं दर्भः परि पातु विश्वतो देवो मणिरायुषा सं सृजाति नः ॥ १ ॥

भा०—सहस्रों पुरुषों और राजाओं से सहस्रों प्रकार से सम्मान प्राप्त करने वाला, सैकड़ों बाणों या बाणधारियों का स्वामी, समुद्र के समान गम्भीर और स्वयं 'पयः' अर्थात् पुष्टिकारक सामर्थ्य वाला, समुद्र के जलों के बीच में भी दहकने वाले और्वानल के समान प्रजाओं के बीच में भी अग्रणी और बढ़ते शत्रु दलों को विशेष रूप से रोकने वाले योद्धाओं का राजारूप से प्रेरक यह शत्रुनाशक सेनापति, हमें सब ओर से रक्षा करे और वह मननशील शत्रुस्तम्भन में समर्थ होकर हमें दीर्घ आयु से युक्त करे।

घृतादुल्लुप्तो मधुमान् पयस्वान् भूमिदृंहोऽच्युतश्च्यावयिष्णुः।
नुदन्त्सपत्नानधरांश्च कृण्वन् दर्भारोह महतामिन्द्रियेण ॥ २ ॥

भा०—तेज से आवृत, अन्न आदि समृद्धि से युक्त, पुष्ट वीर्य से समर्थ, राष्ट्र को दृढ़ करने वाला, युद्ध में स्वयं अविचलित, शत्रुओं को पदच्युत करने वाला, शत्रुओं को पीछे हटाता हुआ और उनको नीचे

गिराता हुआ, हे शत्रुनाशक सेनापते ! तू बड़े बड़े नरपतियों के बल वीर्य से सबसे ऊंचे पद पर आरूढ़ हो ।

त्वं भूमिमत्येष्योजसा त्वं वेद्यां सीदसि चारुरध्वरे ।

त्वां पवित्रमृषयोऽभरन्त त्वं पुनीहि दुरितान्यस्मत् ॥ ३ ॥

भा०—तू भूमि को अपने पराक्रम से अतिक्रमण कर जाता है। और तू अहिंसामय राष्ट्र-पालनरूप यज्ञ में अति उत्तम होकर यज्ञवेदि या पृथिवी पर विराजता है। सबको पवित्र करने वाले तुझको मन्त्रद्रष्टा ऋषिगण पुष्ट करते तथा सत्यासत्य विवेक करने के लिये न्यायासन पर ला बिठलाते हैं। तू दुष्टाचरणों को हमसे दूर करके हमें पवित्र कर ।

तीक्ष्णो राजा विषासही रक्षोहा विश्वचर्षणिः ।

ओजो देवानां बलमुग्रमेतत् तं ते बध्नामि जरसे स्वस्तये ॥ ४ ॥

भा०—अति तीक्ष्ण, सर्वोपरि राजमान, विविध उपायों से शत्रु को पराजय करने वाला, राष्ट्रव्यवस्था में विघ्नकारी पुरुषों का नाशक, समस्त राष्ट्र का द्रष्टा, विद्वान् पुरुषों का पराक्रमस्वरूप और मूर्तिमान् उग्र भयंकर बल यह सेनापति है। उसको हे राजन् ! तेरे वृद्धावस्था तक के कल्याण के लिये नियुक्त करता हूँ ।

दर्भेण त्वं कृणवद् वीर्याणि दर्भं बिभ्रदात्मना मा व्यथिष्ठाः ।

अतिष्ठाया वर्चसाधान्यान्त्सूर्य इवा भाहि प्रदिशश्चतस्रः ॥ ५ ॥

भा०—हे राजन् ! तू शत्रुनाशक सेनापति के बल से पराक्रम के कार्य करता हुआ और अपने बल से उस शत्रु नाशक सेनापति का भरण-पोषण करता हुआ, कभी दुःखित मत हो। और अपने तेज से अन्य शत्रु राजाओं पर प्रबल राजा होकर चारों दिशाओं को सूर्य के समान प्रकाशित कर ।

इति चतुर्थोऽनुवाकः ।

[तत्र सप्त सूक्तानि, अष्टाषष्टिश्च ऋचः ।]

(३४) जंगिड नामक रक्षक का वर्णन

अंगिरा ऋषिः । वनस्पतिर्लिंगोक्ता वा देवता । अनुष्टुभः । दशर्चं सूक्तम् ॥

जङ्गिडोऽसि जङ्गिडो रक्षितासि जङ्गिडः ।
द्विपाच्चतुष्पादस्माकं सर्वं रक्षतु जङ्गिडः ॥ १ ॥

भा०—हे जंगिड ! तू जंगिड अर्थात् शत्रुओं का निगलने वाला, अतएव तू सचमुच 'जंगिड' है । तू जंगिड़ होकर ही प्रजा का रक्षक है । हमारे दोपाये और चौपाये सबका जंगिड़ ही रक्षा करे ।

'जातानां' निगरणकर्त्ता असि अतो 'जंगिड़' इत्युच्यते । यद्वा जंगम्यते शत्रून् बाधितुम् इति जंगिडः । अथवा जनेर्जयतेर्वा डप्रत्यये 'ज' इति भवति । जं गिरतीति जंगिरः । कपिलकादित्वात् लत्वम् । पूर्वपदस्थस्य सुपो लुगभावश्छान्दसः । खच् प्रत्ययो वा द्रष्टव्यः इति सायणः ॥

उत्पन्न हुए प्राणियों को निगलने वाला या शत्रुओं पर चढ़ाई करने वाला या विजयी लोगों को भी निगलने वाला, वीर पुरुष 'जंगिड़' कहाता है ।

या गृत्स्यस्त्रिपञ्चाशीः शतं कृत्याकृतश्च ये ।
सर्वान् विनक्तु तेजसोऽरसां जङ्गिडस्करत् ॥ २ ॥

भा०—जो तिरेपन (५३) या १५० प्रकार की या सैकड़ों लोभकारिणी या विषय-विलास में फंसी स्त्रियें या जन श्रेणियां और सौ प्रकार के या बहुत से घातक प्रयोग करने वाले जो दुष्ट पुरुष हैं, उन सबको, अपने तेज से जंगिड नामक सेनापति हमसे दूर करे और उनको निर्बल करे ।

या 'त्रि-पञ्चाशीः गृत्स्यः'—१५० या ५३ लोभ की चालें चलने वाली मनुष्यों की श्रेणियां हैं, जो जुएखोरी का पेशा करती हों । देखो ऋ० १० । ३४ । ९ ॥

अरसं कृत्रिमं नादमरसाः सप्त विस्रसः ।
अपेतो जङ्गिडामतिमिषुमस्तेव शातय ॥ ३ ॥

भा०—हे शत्रुनाशक ! तू कृत्रिम साधनों द्वारा उत्पन्न किये विस्फोटक अस्त्रों के नाद को निर्बल कर देता है, तेरे सामने विविध दिशाओं से आने वाले सातों शत्रु निर्बल हो जाते हैं । अदम्य शत्रु को भी यहां से धनुर्धारी जिस प्रकार बाण को दूर फेंक देता है, उसी प्रकार दूर मार भगा ।

कृत्यादूषण एवायमथो अरातिदूषणः ।
अथो सहस्वाञ्जङ्गिडः प्र ण आयूंषि तारिषत् ॥ ४ ॥

भा०—यह घातक गुप्त प्रयोगों का नाश करने वाला और शत्रुओं का नाश करने वाला है । और शत्रुओं को निगलने में समर्थ वीर राजा शक्तिशाली होकर हमारे जीवनों को बढ़ावे ।

स जङ्गिडस्य महिमा परि णः पातु विश्वतः ।
विष्कंधं येन सासह संस्कन्धमोज ओजसा ॥ ५ ॥

भा०—वह पूर्वोक्त शत्रुविजयी राजा का महान् सामर्थ्य है जो हमारी सब ओर से रक्षा करे । जिस सामर्थ्य से सेना के पृथक् पृथक् दस्तों को और शत्रु सेना के संयुक्त सेनाबल के वीर्य को भी अपने वीर्य से धर दबाता है ।

त्रिष्ट्वा देवा अजनयन् निष्ठितं भूम्यामधि ।
तमु त्वाङ्गिरा इति ब्राह्मणाः पूर्व्या विदुः ॥ ६ ॥

भा०—हे शत्रुनाशक राजन् ! युद्धक्रीड़ी पुरुष भूमि पर तुझको तीन बार स्थापित करते हैं । उस तुझको ही तुझ से पूर्व विद्यमान, वृद्ध विद्वान् पुरुष "अङ्गिराः" अङ्गार के समान प्रदीप्त या अङ्ग अर्थात् शरीर में रस के समान प्राण रूप जानते हैं ।

न त्वा पूर्वा ओषधयो न त्वा तरन्ति या नवाः ।
विबाध उग्रो जङ्गिडः परिपाणः सुमङ्गलः ॥ ७ ॥

भा०—तुझसे पूर्व उत्पन्न हुई सन्तापदायी शक्तियां, और जो नयी शक्तियां भी उत्पन्न हैं, वे भी तुझको पार नहीं करतीं । तू स्वयं उग्र होकर शत्रुओं की शक्तियों को निगल जाने वाला, सब ओर से राष्ट्र की रक्षा करता हुआ और मङ्गलस्वरूप होकर शत्रुओं को विविध प्रकार से पीड़ित करने हारा है ।

अथोपदान भगवो जङ्गिडामितवीर्य ।
पुरा त उग्रा ग्रसत उपेन्द्रो वीर्यं ददौ ॥ ८ ॥

भा०—और हे अपने समीप प्राप्तों के रक्षक !, हे ऐश्वर्यशील !, हे शत्रुओं को अपने भीतर निगल जाने में समर्थ !, हे असीम बलशालिन् ! उग्र होकर पहले ही से शत्रुओं को ग्रास कर जाने में समर्थ होते हुए तुझे, तेरी रक्षा के लिये, राष्ट्र के समृद्धिमान् लोग अपना बल भी तुझे प्रदान करता है ।

उग्र इत् ते वनस्पत इन्द्र ओज्मानमा दधौ ।
अमीवाः सर्वाश्चातयं जहि रक्षांस्योषधे ॥ ९ ॥

भा०—उग्र राजा, हे महावृक्ष के समान प्रजापालक ! तुझे बल प्रदान करता है । तू समस्त पीड़ाकारी शत्रुओं को विनाश करता हुआ, हे रोगनाशक ओषधि के समान ! तू भी विघ्नकारियों का विनाश कर ।

आशरीकं विशरीकं बलासं पृष्ट्यामयम् ।
तक्मानं विश्वशारदमरसां जङ्गिडस्करत् ॥ १० ॥

भा०—शत्रुनाशक वीर चारों ओर से राष्ट्र पर आघात करने वाले, नाना प्रकार से पीड़ा देने वाले, बल के नाशक, पीठ में विद्यमान रोग के समान राष्ट्र के धारण करने में असमर्थ, पीठ की पसुलियों के समान दृढ़ राज्य के मुख्य पुरुषों में रोग के समान विद्यमान, ज्वर के समान पीड़ा-

कारी, समस्त आयु भर लगे हुए या समस्त वर्ष भर दुःखदायी, शत्रु को भी निर्बल कर।

इस सूक्त में साथ ही 'जङ्गिड' नामक ओषधि का वर्णन भी किया है। जङ्गिड ओषधि का दूसरा नाम 'अर्जुन' है (दारिल)।

(३५) पूर्वोक्त जङ्गिड सेनापति का वर्णन।

अंगिरा ऋषिः। जंगिडो वनस्पतिर्देवता। ३ पथ्यापंक्तिः। ४ निचृत् त्रिष्टुप्। शेषा अनुष्टुभः। पञ्चर्चं सूक्तम्।

इन्द्र॑स्य नाम॑ गृ॒ह्णन्त॒ ऋष॑यो जङ्गि॒डं द॑दुः।
दे॒वा यं च॒क्रुर्भे॑ष॒जमग्रे॑ विष्कन्ध॒दूष॑णम् ॥ १ ॥

भा०—जङ्गिड अर्थात् शत्रुनाशक सेनापति के लिये 'इन्द्र' की उपाधि स्वीकार करते हुए तत्वदर्शी लोग शत्रुनाशक उस पुरुष को ही वह पद प्रदान करते हैं। जिसे कि विद्वान् पुरुष सर्वप्रथम शत्रु के विविध सेनास्कन्धों को नाश करने वाला उपाय बनाते हैं।

स नो॑ रक्षतु जङ्गि॒डो ध॑नपा॒लो ध॒नेव॑।
दे॒वा यं च॒क्रुर्ब्रा॑ह्म॒णाः प॑रि॒पाण॑मराति॒हम् ॥ २ ॥

भा०—धनाध्यक्ष जिस प्रकार धनों की रक्षा करता है ऐसे ही वह शत्रु नाशक पुरुष हमारी रक्षा करे, जिसको वेद के विद्वान् और दानशील राजा लोग चारों ओर से रक्षा करने और शत्रुओं को नाश करने में समर्थ बनाते हैं।

दु॒र्हार्दः॒ संघो॑रं॒ चक्षुः॑ पाप॒कृत्वा॑न॒माग॑मम्।
तांस्त्वं॑ स॑हस्रचक्षो प्रती॒बो॒धेन॑ नाशय परि॒पाणो॑ऽसि जङ्गि॒डः ॥ ३ ॥

भा०—यदि मैं दुष्ट हृदय के पुरुष की घोर चक्षु को, और अत्याचार करने वाले को प्राप्त हो जाऊं तो हे हजारों गुप्तचरों की चक्षुओं से युक्त राजन्! तू उन दुष्ट हृदय वाले, अत्याचारी पुरुषों का उन पर सदा सतर्क

रहने की प्रवृत्ति से विनाश कर, क्योंकि तू शत्रुनाश करने वाला और सब ओर से रक्षा करने हारा है ।

परि मा द्विवः परि मा पृथिव्याः पर्यन्तरिक्षात् परि मा वीरुद्भ्यः ।
परि मा भूतात् परि मोत भव्याद् दिशोदिशो जङ्गिडः पात्वस्मान् ॥ ४ ॥

भा०—जङ्गिड नाम राजा मुझको सुदूर आकाश की ओर से, पृथिवी की ओर से, अन्तरिक्ष से, जंगलों से रक्षा करे । मुझे अतीत से, और भावी काल से रक्षा करे, और हम सबकी प्रत्येक दिशा से रक्षा करे ।

य ऋष्णवो देवकृता य उतो ववृतेऽन्यः ।
सर्वास्तान् विश्वभेषजोऽरसां जङ्गिडस्करत् ॥ ५ ॥

भा०—जो राजा या विद्वानों द्वारा बनाये गये या नियुक्त किये हुए हिंसाकारी पदार्थ या पुरुष हैं, और जो हमारा शत्रु है, उन सबका उपाय करने वाला शत्रुनिवारक पुरुष, उनको निर्बल करे ।

(३६) 'शतवार' नामक वीर सेनापति का वर्णन ।

ब्रह्मा ऋषिः । शतवारो देवता । अनुष्टुभः । षड्टचं सूक्तम् ॥

शतवारो अनीनशद् यक्ष्मान् रक्षांसि तेजसा ।
आरोहन् वर्चसा सह मणिर्दुर्णामचातनः ॥ १ ॥

भा०—सैकड़ों शत्रुओं को वारण करने में समर्थ, शत्रुओं का स्तम्भन करने वाला और दुष्ट ख्याति वाले बदनाम पुरुषों का नाशकारी, अपने तेज से उन्नति को प्राप्त होकर, पराक्रम और तेज से पीड़ाकारी और विघ्नकारी पुरुषों को ओषधि के तुल्य विनाश करे ।

शृङ्गाभ्यां रक्षो नुदते मूलेन यातुधान्यः ।
मध्येन यक्ष्मं बाधते नैनं पाप्माति तत्रति ॥ २ ॥

भा०—वह 'शतवार' नाम पुरुष सींगों के समान हिंसाकारी दो साधनों द्वारा दुष्ट पुरुषों को भगाता है । और अपने मूलबल द्वारा प्रजा को पीड़ाकारी स्त्रियों वा शत्रुसेनाओं से बचाता है । अपने बीच के भाग

से रोगजनक कारणों को दूर करता है, और इसको कोई भी पापकारी पुरुष नहीं दबा सकता ।

ये यक्ष्मासो अर्भका महान्तो ये च शब्दिनः ।

सर्वान् दुर्णामहा मणिः शतवारो अनीनशत् ॥ ३ ॥

भा०—जो दुःखदायी कारण छोटे हैं, और जो बड़े, और विकराल शब्द करने में कारणभूत हैं, उन सब दुष्ट नाम वाले, दुर्दान्त पुरुषों का सैकड़ों को वारण करने में समर्थ शत्रुस्तम्भक पुरुष नाश करे ।

शतं वीरानजनयच्छतं यक्ष्मानपावपत् ।

दुर्णाम्नः सर्वान् हत्वाव रक्षांसि धूनुते ॥ ४ ॥

भा०—वह सैकड़ों वीर पुरुषों को उत्पन्न करता है, और सैकड़ों कष्टदायी पुरुषों को उखाड़ने में समर्थ है । वह समस्त बदनाम पुरुषों को मारकर विघ्नकारी पुरुषों को धुन डालता है ।

हिरण्यशृङ्ग ऋषभः शातवारो अयं मणिः ।

दुर्णाम्नः सर्वांस्तृड्ढ्वाव रक्षांस्यक्रमीत् ॥ ५ ॥

भा०—धातु के बने अति प्रदीप्त शृङ्ग अर्थात् हिंसा साधन शस्त्रों वाला नरश्रेष्ठ, सैकड़ों का वारण करने में समर्थ, शत्रुस्तम्भक पुरुष, समस्त दुर्दमनीय पुरुषों का नाश करके प्रजा के कार्यों में विघ्नकारी पुरुषों को भी दबाता है ।

शतमहं दुर्णाम्नीनां गन्धर्वाप्सरसां शतम् ।

शतं च श्वन्वतीनां शतवारेण वारये ॥ ६ ॥

भा०—सैकड़ों दुर्दान्त कामी पुरुष और कामिनी स्त्रियों को, और सैकड़ों कुत्तों के दोष, गुण, कर्म, स्वभाव वाली अति कामुक स्त्रियों को, मैं प्रजापालक पुरुष सैकड़ों को वरण करने में समर्थ पुरुष के द्वारा वारण करूं ।

ओषधि पक्ष में—शतवार नामक ओषधि सैकड़ों रोगों को वारण

करती, तथा मूल द्वारा पीड़ाओं को और काण्ड द्वारा राजयक्ष्मा को नाश करती है। वह बुरे नाम के कुष्ठ आदि त्वचा के रोगों को भी दूर करती है। वह गन्धर्व और अप्सरा अर्थात् गन्ध या वायु द्वारा या जल द्वारा मनुष्य को लग जाने वाली बीमारियों को और श्वन्वती अर्थात् कुत्तों द्वारा फैल जाने वाले रोगों को भी दूर करती है।

'शतवार' नामक ओषधि कदाचित् 'शतावरी' या 'सतावर' हो।

(३७) वीर्य, बल की प्राप्ति।

अथर्वा ऋषिः। अग्निर्देवता। १ त्रिष्टुप्। २ आस्तारपंक्तिः। ३ त्रिपदा महाबृहती। ४ पुर उष्णिक्। चतुर्ऋचं सूक्तम्॥

इदं वर्चो अग्निना दत्तमागन् भर्गो यशः सह ओजो वयो बलम्।
त्रयस्त्रिंशद् यानि च वीर्याणि तान्यग्निः प्र ददातु मे॥ १॥

भा०—यह तेज जो अग्नि ने प्रदान किया है वह मुझे तेज, यश, शत्रुधर्षक बल, ओज, दीर्घ आयु और बल रूप में प्राप्त हो। जो तेंतीस वीर्य, अधिकार हैं उन सबको वह अग्नि अर्थात् परमेश्वर, राजा, आचार्य और विद्युत् मुझे प्रदान करे।

वर्च आ धेहि मे तन्वां सह ओजो वयो बलम्।
इन्द्रियाय त्वा कर्मणे वीर्याय प्रति गृह्णामि शतशारदाय॥ २॥

भा०—हे अग्ने! तू मेरे शरीर में ब्रह्मवर्चस, सहनशक्ति, ओज, जीवनशक्ति और बल प्रदान कर। तुझको मैं इन्द्रियों के बल के लिये क्रियाशक्ति को प्राप्त करने और वीर्य प्राप्त के लिये और सौ वर्ष के जीवन के लिये, स्वीकार करता हूँ।

ऊर्जे त्वा बलाय त्वौजसे सहसे त्वा।
अभिभूयाय त्वा राष्ट्रभृत्याय पर्यूहामि शतशारदाय॥ ३॥

भा०—हे अग्ने! राजन्! तुझको अन्न से पुष्टि, बल, पराक्रम, शत्रु-

धर्षण, शत्रुओं का पराजय, राष्ट्र के भरण-पोषण और प्रजाओं के सौ सौ वर्षों तक के दीर्घजीवन के लिये स्वीकार करता हूँ।

ऋतुभ्य॑ष्ट्वार्त॒वेभ्यो॑ मा॒द्भ्यः सं॑वत्स॒रेभ्यः॑ ।
धा॒त्रे वि॑धा॒त्रे स॒मृधे॑ भू॒तस्य॒ पत॑ये यजे ॥ ४ ॥

भा०—हे अग्ने ! राजन् ! तुझको ऋतुओं, ऋतुविभागों, मासों तथा वर्षों अर्थात् कालगणना को नियत करने के लिये वरण करता हूँ। और राष्ट्र के धारण करने वाले, सृष्टि के आदि में कानून देने वाले, सबको सम्पन्न करने वाले, तथा प्रजाओं के पालक उस परमेश्वर का मैं संगति लाभ करूं। देखो अथर्व० ५। २८। १३॥

(३८) राजयक्ष्मा नाशक 'गुल्गुलु' ओषधि

अथर्वा ऋषिः । मन्त्रोक्तो गुल्गुलुर्देवता । १ अनुष्टुप । २ चतुष्पदा उष्णिक् । ३ एकावसाना प्राजापत्यानुष्टुप । तृचं सूक्तम ॥

न तं यक्ष्मा॒ अरु॑न्धते॒ नैनं॑ श॒पथो॑ अश्नुते ।
यं भे॑ष॒जस्य॑ गुल्गु॒लोः सु॑र॒भिर्ग॒न्धो अ॑श्नु॒ते ॥ १ ॥
विष्व॑ञ्च॒स्तस्मा॒द् यक्ष्मा॑ मृ॒गा अश्वा॑ इवेरते ।

भा०—जिसके शरीर को रोग नाशक गूगल का उत्तम गन्ध व्यापता है उसको राजयक्ष्मा के रोग नहीं घेरते। और उसको दूसरे का निन्दा-वचन भी नहीं लगता है। वह सदा स्वस्थ, प्रसन्न रहने से दूसरे के कहे बुरे वचनों को भी बुरा नहीं मानता। उससे सब प्रकार के राजयक्ष्मा आदि रोग शीघ्रगामी हिरणों के समान डरकर भागते हैं।

यद गु॑ल्गुलु सैन्ध॒वं यद् वा॒प्यासि॑ समु॒द्रिय॑म् ॥ २ ॥
उ॒भयो॑रग्रभं॒ नामा॒स्मा अ॑रि॒ष्टता॑तये ॥ ३ ॥

भा०—जो गूगल नदी के तटों पर उत्पन्न होता है और जो समुद्र के तट पर उत्पन्न होता है उन दोनों के स्वरूप का इस पुरुष के कल्याण के लिये उपदेश करता हूँ।

(३९) कुष्ठ नामक ओषधि

भृग्वङ्गिरा ऋषिः । मन्त्रोक्तः कुष्ठो देवता । २, ३ त्र्यवसाना पथ्यापंक्तिः । ४ षट्पदा जगती । ५ सप्तपदा शक्वरी । ६—८ अष्टयः (५—९ चतुरवसानाः) । शेषा अनुष्टुभः । दशर्चं सूक्तम् ।

ऐतु देवस्त्रायमाणः कुष्ठो हिमवतस्परि ।
तक्मानं सर्वं नाशय सर्वाश्च यातुधान्यः ॥ १ ॥

भा०—रक्षा करने वाला दिव्य गुणवान् कुष्ठ नामक वनस्पति हिम वाले पर्वत से हमें प्राप्त हो । हे कुष्ठ ! सब प्रकार के पीड़ादायी ज्वरों को और सब प्रकार की पीड़ाकारिणी यातनाओं को नष्ट कर ।

त्रीणि ते कुष्ठ नामानि नद्यमारो नद्यारिषः । नद्यायं पुरुषो रिषत् ।
यस्मै परिब्रवीमि त्वा सायंप्रातरथो दिवा ॥ २ ॥

भा०—हे कुष्ठ ! तेरे तीन प्रकार के रोगों को दमन करने के सामर्थ्य हैं । एक तो पुरुष को कभी मरने नहीं देता, दूसरा कभी कोई अरिष्ट या रोग नहीं होने देता । अथवा कुष्ठ के तीन नाम हैं कुष्ठ, नद्य, मार और नद्यारिष । इसी कारण हे कुष्ठ ! जिस पुरुष को भी तेरा मैं उपदेश करूं वह पुरुष चाहे सायंकाल, प्रातःकाल, मध्याह्न हो, कभी भी, पीड़ा आदि कष्ट को प्राप्त नहीं होता ।

जीवला नाम ते माता जीवन्तो नाम ते पिता । नद्यायं पु० । ० ॥ ३ ॥

भा०—तेरी रचना करने वाली शक्ति प्राण धारण कराने वाली होने से 'जीवला' कहाती है । इसी प्रकार तेरी पालक शक्ति भी जीवनप्रद होने से 'जीवन्त' नाम से कहाती है । शेष पूर्ववत् ।

उत्तमो अस्योषधीनामनड्वान् जगतामिव व्याघ्रः श्वपदामिव । नद्यायं पुरुषो रिषत् । यस्मै परिब्रवीमि त्वा सायंप्रातरथो दिवा ॥ ४ ॥

भा०—हे कुष्ठ नामक ओषधे ! तू दोषों को नाश करने वाली ओषधियों में से उत्तम है। और जंगम संसार में बैल जिस प्रकार हृष्ट पुष्ट एवं गाड़ी खींचने में समर्थ होता है उसी प्रकार यह ओषधि शरीर को चलाने में समर्थ है। कुत्ते के से पैरों वाली जाति के प्राणियों में से जिस प्रकार सिंह बलवान् होने से सबसे श्रेष्ठ है उसी प्रकार बलकारी यह ओषधि भी सबसे श्रेष्ठ है। इत्यादि पूर्ववत्।

त्रिः शाम्बुभ्यो अङ्गिरेभ्यस्त्रिरादित्येभ्यस्परि। त्रिर्जातो विश्वदेवेभ्यः। स कुष्ठो विश्वभेषजः। साकं सोमेन तिष्ठति। तक्मानं सर्वं नाशय सर्वाश्च यातुधान्यः ॥ ५ ॥

भा०—वह कूठ नामक समस्त रोगों को दूर करने वाली ओषधि, साम्बु अर्थात् जल सहित नदी, समुद्र और मेघ इनसे तीन प्रकार का उत्पन्न होता है। इसी प्रकार अग्नियों या रस के भेदों से भी वह तीन प्रकार का होता है। मासों के भी तीन प्रकार ग्रीष्म, वर्षा और शीत ऐसे ऋतुभेद होने से वह कुष्ठ तीन प्रकार का हो जाता है। और समस्त अन्य देव अर्थात् जल, वायु, पृथिवी आदि भेद से भी वह तीन प्रकार का हो जाता है। इसी कारण से वह कुष्ठ ओषधि सभी रोगों के औषध हो जाते हैं। यह उत्तेजक रस के साथ विद्यमान है। इसकी सहायता से हे पुरुष ! तू सब कष्टदायी रोगों को और सब प्रकार की पीड़ा प्रदान करने वाली दशाओं को भी विनाश कर।

अश्वत्थो देवसदनस्तृतीयस्यामितो दिवि।
तत्रामृतस्य चक्षणं ततः कुष्ठो अजायत०। ० ॥ ६ ॥

भा०—दिव्य गुणों तथा अग्नि का आश्रय सूर्य, इस लोक से तीसरे द्यौलोक में विद्यमान है। वहां ही परम जीवनप्रद रस का स्रोत है। उससे ही कुष्ठ नाम ओषधि उत्पन्न होती है। इत्यादि पूर्ववत्।

हिरण्ययी नौरचरद्धिरण्यबन्धना दिवि।
तत्रामृतस्य चक्षणं ततः कुष्ठो अजायत०। ० ॥ ७ ॥

भा०—व्याख्या देखो का० ५ । ४ । ४ ॥

यत्र नावप्रभ्रंशनं यत्र हिमवतः शिरः ।
तत्रामृतस्य चक्षणं ततः कुष्ठो अजायत ।
स कुष्ठो विश्वभेषजः साकं सोमेन तिष्ठति ।
तक्मानं सर्वं नाशय सर्वाश्च यातुधान्यः ॥ ८ ॥

भा०—जहां नीचे फिसलना अर्थात् हिम का पिघलना नहीं होता, अथवा जहां 'नौ' अर्थात् सूर्य का 'प्रभ्रंशन' अर्थात् उसका तेज अति न्यून हो जाता है, जहां हिम वाले पर्वत का शिखर भाग है, वहां अमृत का स्रोत है । वहां कुष्ठ उत्पन्न होता है ।

यं त्वा वेद पूर्व इक्ष्वाको यं वा त्वा कुष्ठ काम्यः ।
यं वायसो यं मात्स्यस्तेनासि विश्वभेषजः ॥ ९ ॥

भा०—हे कुष्ठ ! जिस तुझको पूर्व का 'इक्ष्वाक' नामक पक्षी प्राप्त करता है और या जिस तुझको कामना वाला पुरुष या 'काम्य' नाम पक्षी प्राप्त करता है । और या जिस तुझको वायस नाम पक्षी और जिसको 'मात्स्य' नामक पक्षी जानता है, उससे तू सब रोगों को दूर करने वाला औषध है ।

वाचस्पत्य और शब्द कल्पद्रुम महाकोशों के अनुसार मात्स्यरंग 'मच्छरंग' नाम जल पक्षी है । काम्य वा कामान्ध नाम श्येन का है । कामी नाम चकवा, कबूतर, चटक और सारस का वाचक है । वायस कौआ है । इक्ष्वाकु भी एक गृध्र जाति के तीव्रगति वाले पक्षी का नाम है ।

गले सड़े माँस खाने वाले गीध आदि, मलिन पदार्थ के खाने वाले काक, मत्स्य खाने वाला मछरंगा आदि और इसी जाति के जल-जन्तु और विषाक्त कीटों को खाने वाला पक्षी पारावत आदि उस कुष्ठ

ओषधि का ज्ञान रखते हैं। उनके द्वारा मनुष्य को कुष्ठ ओषधि का ज्ञान करना चाहिये।

शीर्षलोकं तृतीयकं सदन्दिर्यश्च हायनः।
तक्मानं विश्वधावीर्याधराञ्चं परा सुव ॥ १० ॥

भा०—सिर के रोग को, तीसरे दिन आने वाले ज्वर को और निरन्तर चढ़े रहने वाला, और जो एक वर्ष पुराना रोग हो उस कठिन ज्वर को भी हे सब प्रकार के वीर्य वाली ओषधे! तू नीचे गति वाला करके सर्वथा दूर कर।

(४०) निर्दोष, मेधावी, ज्ञानी होने की प्रार्थना।

ब्रह्मा ऋषिः। बृहस्पतिर्विश्वेदेवाश्च देवताः। १ परानुष्टुप् त्रिष्टुप्। २ पुरः ककुम्मती उपरिष्टाद् बृहती। ३ बृहतीगर्भा अनुष्टुप्। ४ त्रिपदा आर्षी गायत्री। चतुर्ऋचं सूक्तम् ॥

यन्मे छिद्रं मनसो यच्च वाचः सरस्वती मन्युमन्तं जगाम।
विश्वैस्तद् देवैः सह संविदानः सं दधातु बृहस्पतिः ॥ १ ॥

भा०—मेरे मन का जो दोष और वाणी का जो दोष हो जब कि मेरी वाणी क्रोध वाले मुझ को प्राप्त हो, उस दोष को, समस्त विद्वान् पुरुषों के साथ विचार करके वेदवाणी का विद्वान् ठीक कर दे।

मा न आपो मेधां मा ब्रह्म प्र मथिष्टन।
सुष्यदा यूयं स्यन्दध्वमुपहूतोऽहं सुमेधा वर्चस्वी ॥ २ ॥

भा०—हमारी मेधा को हे आप्त पुरुषो! आप लोग विनष्ट मत होने दो। हमारा वेदाभ्यास भी मत नष्ट करो। तुम सुख से बहते जलों के समान उत्तम ज्ञान-प्रवाह से युक्त होकर मेरे समीप आओ। मैं आप लोगों द्वारा अनुगृहीत होकर उत्तम बुद्धि से युक्त और तेजस्वी होकर रहूं।

मा नो मेधां मा नो दीक्षां मा नो हिंसिष्टं यत् तपः।
शिवा नः शं सन्त्वायुषे शिवा भवन्तु मातरः ॥ ३ ॥

भा०—हे माता और पिता ! आप लोग हमारी बुद्धि को, व्रत ग्रहण की प्रतीक्षा को और जो तप हम कर रहे हैं उसको नष्ट मत करो । हमारे कल्याण चाहने वाले हितैषी जन हमारे लिये शान्तिप्रद सिद्ध हों । और हमारी माताएं हमारे दीर्घ जीवन के लिये हमारे कल्याणचिन्तक हों ।

या नः पीपरदश्विना ज्योतिष्मती तमस्तिरः ।
तामस्मे रासतामिषम् ॥ ४ ॥ ऋ० १ । ४६ । ६ ॥

भा०—हे माता पिताओ ! जो प्रकाशवती प्रज्ञा अन्धकार को चीर कर हमें पार करदे उस प्रज्ञा को हमें अन्नवत् प्रदान करो ।

(४१) लोकोपकारी महापुरुषों का कर्त्तव्य ।

ब्रह्मा ऋषिः । मन्त्रोक्ता तपो देवता । त्रिष्टुप । एकर्चं सूक्तम् ॥

भद्रमिच्छन्त ऋषयः स्वर्विदस्तपो दीक्षामुपनिषेदुरग्रे ।
ततो राष्ट्रं बलमोजश्च जातं तदस्मै देवा उप संनमन्तु ॥ १ ॥

भा०—ज्ञान और प्रकाश को प्राप्त करने वाले मन्त्रद्रष्टा पुरुष, संसार का कल्याण और सुख चाहते हुए, सबसे प्रथम स्वयं तपस्या और व्रत पालन की दीक्षा लेकर परमेश्वर की उपासना करते हैं । उस तप और दीक्षा से राष्ट्र बल और ओज उत्पन्न होता है । तब इसके लिये विद्वान् पुरुष भी आदर करें ।

(४२) ईश्वरोपासना ।

ब्रह्मा ऋषिः । ब्रह्म देवता । १ अनुष्टुप् । २ त्र्यवसाना ककुम्मती पथ्यापंक्तिः । ३ त्रिष्टुप् । ४ जगती । चतुर्ऋचं सूक्तम् ॥

ब्रह्म होता ब्रह्म यज्ञा ब्रह्मणा स्वरवो मिताः ।
अध्वर्युर्ब्रह्मणो जातो ब्रह्मणोऽन्तर्हितं हविः ॥ १ ॥

भा०—ब्रह्म होता अर्थात् संसार की आहुति अपने भीतर लेने

वाला है। यज्ञ ब्रह्म के ही स्वरूप, ब्रह्म की नाना शक्तियों के अनुकरण हैं। जितने तेजोमय सूर्य हैं सब ब्रह्म ने रचे हैं। यज्ञों का अनुष्ठाता अध्वर्यु भी ब्रह्म से ही उत्पन्न होता है। समस्त हवि ब्रह्म की जीवनप्रद शक्ति से व्याप्त है।

ब्रह्म स्रुचो घृतवतीर्ब्रह्मणा वेदिरुद्धिता।
ब्रह्म यज्ञस्य तत्त्वं च ऋत्विजो ये हविष्कृतः। शमिताय स्वाहा २

भा०—यज्ञ में घृत चुआने वाले स्रुचों के समान घृत आदि से सम्पन्न पृथिवी आदि लोक ब्रह्म की शक्ति द्वारा निर्माण किये हैं। यह वेदीरूप पृथिवी उस महान् ब्रह्म ने थाम रक्खी है। यज्ञों का वास्तविक स्वरूप ही ब्रह्म है। और जो हवि के सम्पादन करने वाले प्रतिऋतु में यज्ञ करने वाले ब्राह्मणों के समान ही प्रतिऋतु में प्रवृत्त होकर मेघ, वायु आदि ऋतु-अनुकूल पदार्थ जो पृथिवी पर अन्न उत्पन्न करने हारे हैं वे सब उसी की रचना हैं। यह शान्ति प्रदान करने वाले परमेश्वर की ही सुख्याति है।

अंहोमुचे प्र भरे मनीषामा सुत्राव्णे सुमतिमावृणानः।
इदमिन्द्र प्रति हव्यं गृभाय सत्याः सन्तु यजमानस्य कामाः ॥३॥

भा०—मैं उत्तम मति चाहता हुआ सबसे उत्तम रक्षक, सब पापों और कष्टों से छुड़ाने वाले परमात्मा के लिये अपनी मानस इच्छा या स्तुति को भेटरूप में रखता हूँ। हे ऐश्वर्यवान् परमेश्वर ! तू इस स्तुति को स्वीकार कर। देवोपासना करने वाला जो मैं उसकी सब कामनाएं सत्य रूप से सफल हों।

अंहोमुचं वृषभं यज्ञियानां विराजन्तं प्रथममध्वराणाम्।
अपां नपातमश्विना हुवे धिय इन्द्रियेण तं इन्द्रियं दत्तमोजः ॥४॥

भा०—सब पापों और कष्टों से मुक्त करने वाले, पूजनीय माता पिता, गुरु, आचार्य इत्यादियों में से भी सबसे श्रेष्ठ, समस्त यज्ञों

में सर्वोत्तम पद पर विराजमान, प्रजाओं को न नाश होने देने हारे परमेश्वर की ज्ञानमय स्तुतियों का उच्चारण करता हूँ । हे माता पिताओ ! तुम दोनों आत्मासम्बन्धी बल के साथ साथ इन्द्र अर्थात् ईश्वर के दिये बल को और तेज को धारण करो ।

(४३) ईश्वर से परमपद की प्रार्थना ।

ब्रह्मा ऋषिः । ब्रह्म, बहवो वा देवताः । त्र्यवसानाः । ककुम्मत्यः पथ्यापंक्तयः । अष्टर्चं सूक्तम् ॥

यत्र॑ ब्रह्म॒विदो॒ यान्ति॑ दी॒क्षया॒ तप॑सा स॒ह ।
अ॒ग्निर्मा॒ तत्र॑ नयत्व॒ग्निर्मे॒धा द॑धातु मे । अ॒ग्नये॒ स्वाहा॑ ॥ १ ॥

भा०—जिस पद पर दृढ़ व्रत पालन की प्रतिज्ञा और तपस्या के साथ ब्रह्मवेत्ता लोग जाते हैं, उसी पद पर सर्वप्रकाशक परमेश्वर मुझे ले जाय । वही ज्ञानस्वरूप परमेश्वर मुझे नाना उत्तम वाक्शक्ति और बुद्धियें धारण करावे । उस ज्ञानवान् परमेश्वर से मैं यह उत्तम प्रार्थना करता हूँ ।

यत्र॑० । वा॒युर्मा॒ तत्र॑ नयतु वा॒युः प्रा॒णान् द॑धातु मे । वा॒यवे॒ स्वाहा॑ ॥ २ ॥ यत्र॑० । सूर्यो॑ मा॒ तत्र॑ नयतु॒ चक्षुः॒ सूर्यो॑ दधातु मे । सूर्या॑य॒ स्वाहा॑ ॥ ३ ॥ यत्र॑० । च॒न्द्रो मा॒ तत्र॑ नयतु॒ मन॑-श्च॒न्द्रो द॑धातु मे । च॒न्द्राय॒ स्वाहा॑ ॥ ४ ॥ यत्र॑० । सोमो॑ मा तत्र॑ नयतु॒ पय॒ः सोमो॑ दधातु मे । सोमा॑य॒ स्वाहा॑ ॥ ५ ॥ यत्र॑० । इन्द्रो॑ मा॒ तत्र॑ नयतु ब॒लमिन्द्रो॑ दधातु मे । इन्द्रा॑य॒ स्वाहा॑ ॥ ६ ॥ यत्र॑ । आपो॑ मा॒ तत्र॑ नयन्त्व॒मृतं॒ मोप॑ तिष्ठतु । अ॒द्भ्यः स्वाहा॑ ॥ ७ ॥ यत्र॑ ब्रह्म॒विदो॒ यान्ति॑ दी॒क्षया॒ तप॑सा स॒ह । ब्र॒ह्मा मा॒ तत्र॑ नयतु ब्र॒ह्मा ब्रह्म॑ दधातु मे । ब्र॒ह्मणे॒ स्वाहा॑ ॥ ८ ॥

भा०—जहां ब्रह्मवेत्ता लोग दीक्षा और तप के सहित जाते हैं वहां सूर्य के समान प्रकाशमान परमेश्वर मुझे ले जाय। और वह सूर्य के समान ही मुझे चक्षु प्रदान करे। (३) चन्द्र के समान आह्लादकारी परमेश्वर मुझे वहां ले जाय, वह आह्लादकारी प्रभु मुझे मननशक्ति प्रदान करे। उस आह्लादकारी की मैं स्तुति करता हूँ। (४) सोमलता के समान सब लोकों का प्रेरक प्रभु मुझे उस पद पर ले जावे, सर्वप्रेरक प्रभु मुझे पय अर्थात् पुष्टिकारक अन्न, ओषधि, वीर्य, तेज प्रदान करे। उस सर्वप्रेरक की मैं उत्तम स्तुति करता हूँ। (५) ऐश्वर्यवान् ईश्वर मुझे उस पद पर ले जावे। वह ही मुझे बल प्रदान करे। उस की मैं उत्तम गुणस्तुति करता हूँ। (६) जलों के समान स्वच्छ परमेश्वर मुझे उस पद पर ले जाय और मुझे अमृत प्राप्त हो। परमेश्वर की व्यापक शक्तियों की मैं स्तुति करता हूँ। (७) मुझे उस पद पर वेद का परम विद्वान् ले जाय और चतुर्वेदज्ञ परमेश्वर मुझे ब्रह्मज्ञान का उपदेश करे। उस ब्रह्म की मैं स्तुति करता हूँ।

(४४) तारक 'आञ्जन' का वर्णन

भृगुर्ऋषिः। मन्त्रोक्तमाञ्जनं देवता। ८, ९ वरुणो देवता। ४ चतुष्पदा शङ्कुमती उष्णिक्। ५ त्रिपदा निचृद्विषमा गायत्री। १—३, ६—१० अनुष्टुभः। दशर्चं सूक्तम्॥

आयुषोऽसि प्रतरणं विप्रं भेषजमुच्यसे।
तदाञ्जन त्वं शंताते शमापो अभयं कृतम्॥ १॥

भा०—हे नयनों में आंजने के योग्य अंजन के बने औषध के समान चक्षुर्दोष के नाशक! तू जीवन को दीर्घ करने वाला उत्कृष्ट पथ पर ले जाने वाला है। तू विविध रूप से कामनाओं को पूर्ण करने वाला, सब रोगों को दूर करने में समर्थ कहा जाता है। हे ज्ञानप्रकाशक, हे कल्याणकारिन्! हे आप्त स्वरूप! तू शान्तिदायक और भयरहित शरणरूप बनाया गया है।

यो हरिमा जायान्योऽङ्गभेदो विसल्पकः ।
सर्वं ते यक्ष्ममङ्गेभ्यो बहिर्निर्हन्त्वाञ्जनम् ॥ २ ॥

भा०—हे पुरुष ! तेरे शरीर में जो पीलिया का रोग है और स्त्रियों से प्राप्त होने वाला तपेदिक और विशेष रूप से फैलने वाला, विसर्पक [एग्ज़ीमा], अंगों के फूटने की तीव्र वेदना आदि रोग हैं, उन सब रोगों को तेरे शरीर से वह अञ्जन की बनी औषध बाहर निकाल दे ।

आञ्जनं पृथिव्यां जातं भद्रं पुरुषजीवनम् ।
कृणोत्वप्रमायुकं रथजूतिमनागसम् ॥ ३ ॥

भा०—पृथिवी में उत्पन्न हुआ यह अंजन सुखकारक है । वह मुझे मरण से रहित, रमण साधन इस देह में वेग से युक्त पापों से रहित और पूर्ण जीवन प्राप्त करने वाला करे ।

प्राण प्राणं त्रायस्वासो असवे मृड ।
निर्ऋते निर्ऋत्या नः पाशेभ्यो मुञ्च ॥ ४ ॥

भा०—हे जगत् को प्राण धारण कराने हारे ! हमारे प्राण की रक्षा कर । हे सब दुःखों को दूर फेंकने हारे ! तू हमारी प्राण-शक्ति को सुखी कर । हे दुष्टों को दुःख देने वाले प्रभो ! तू हमें दुःखदायिनी प्रकृति के पाशों से छुड़ा ।

सिन्धोर्गर्भोऽसि विद्युतां पुष्पम् ।
वातः प्राणः सूर्यश्चक्षुर्दिवस्पयः ॥ ५ ॥

भा०—हे प्रभो ! तू नदियों और समुद्रों का गर्भाशय है । प्रस्रवण करने में तू बिजुलियों को विकसित करने वाला है । तू महान् वायु रूप, सबका प्राण, साक्षात् प्रकाशमय सूर्य, सबकी आंख और द्युलोक का सार है ।

देवाञ्जन त्रैककुदं परि मा पाहि विश्वतः ।
न त्वा तरन्त्योषधयो बाह्याः पर्वतीया उत ॥ ६ ॥

भा०—हे सर्वकान्तिमय परमेश्वर ! आप तीनों लोकों में सर्वश्रेष्ठ हैं । मुझको सब प्रकार से पालन करो, बचाओ । भूमि के बाहर के पृष्ठ भाग पर उत्पन्न होने वाली और पर्वत के गर्भ से खोदकर प्राप्त की जाने वाली रोगनाशक समस्त ओषधियां भी तुमसे बढ़कर नहीं हैं ।

वी॒इदं मध्य॒मवा॑सृपद् र॒क्षोहामी॑व॒चात॑नः ।
अमी॑वाः सर्वा॑श्चा॒तय॑न् ना॒शय॑दभि॒भा इतः ॥ ७ ॥

भा०—यह दुष्ट भावों का नाश करने वाला, समस्त रोगों का नाशक होकर, इस अन्तःकरण के बीच में विशेष रूप से घुस गया है । वह सब रोगों का नाश करता हुआ इस हृदय से मुझे सब तरफ़ से दबाने वाले विषय विकारों को दूर करे ।

ब॒ह्वि॒दं रा॑जन् वरु॒णानृ॑तमाह॒ पूरु॑षः ।
तस्मा॑त् सहस्रवीर्य मु॒ञ्च नः॒ पर्यंह॑सः ॥ ८ ॥

भा०—हे पापनिवारक परमेश्वर ! यह पुरुष इस प्रकार का तुच्छ तुच्छ बहुत सा असत्य बोला करता है, हे सहस्रों बलों से युक्त ! हमें उस पाप से छुड़ा ।

यदापो॑ अघ्न्या इति॒ वरु॒णेति॒ यदू॑चि॒म ।
तस्मा॑त् सहस्रवीर्य मु॒ञ्च नः॒ पर्यंह॑सः ॥ ९ ॥

भा०—आप्त पुरुष जलों के समान स्वच्छ अन्तःकरण वाले हैं, ये कभी भी न मारने योग्य, सदा आदरणीय लोग हमारे साक्षी हैं तथा हे सर्वश्रेष्ठ प्रभो ! तू ही हमारे समस्त कार्यों का साक्षी है, इस प्रकार जब हम जो कुछ अपना अपराध स्वीकार करें, तो उस अपराध से, हे सहस्रों शक्तियों वाले ! तू हमें मुक्त कर ।

मि॒त्रश्च॑ त्वा॒ वरु॑णश्चानु॒प्रेय॑तुराञ्जन ।
तौ त्वा॑नु॒गत्य॑ दू॒रं भो॒गाय॒ पुन॒रोह॑तुः ॥ १० ॥

भा०—हे ज्ञानप्रकाशक ब्रह्मन् ! सबका मित्र न्यायाधीश और

सबको पापों से वारण करने वाला दण्डकर्त्ता दोनों, तेरे ही पीछे पीछे गमन करते हैं। वे दोनों तेरे पीछे पीछे चलकर बहुत दूर तक सुखभोग के लिये या राष्ट्र के परिपालन के लिये बार बार तुझे अपने ऊपर अधिष्ठाता रूप से वहन करते या धारण करते हैं।

(४५) रक्षक और विद्वान् 'आञ्जन' ।

भृगुर्ऋषिः । आञ्जनं दवता । १, २ अनुष्टुभौ । ३—५ त्रिष्टुभः । ६—१० एकावसानाः महाबृहत्यः (६ विराट । ७—१० निचृत्) । दशर्चं सूक्तम् ॥

ऋणाद् ऋणमिव संनयन् कृत्यां कृत्याकृतो गृहम् ।
चक्षुर्मन्त्रस्य दुर्हार्दः पृष्टीरपि शृणाञ्जन ॥ १ ॥

भा०—हे ज्ञानप्रकाशक ! विद्वन् ! जिस प्रकार लिये ऋण में से ऋण को ऋणदाता के पास पुनः लौटा दिया जाता है, उसी प्रकार घातक प्रयोग करने वाले के हिंसा के प्रयोग को भी उसी के घर पुनः लौटाता हुआ तू, आंख के इशारों से गुप्त मन्त्रणा करने वाले तथा दुष्ट हृदय के पुरुष की पीठ की पसुलियों को भी तोड़ डाल।

यदस्मासु दुष्वप्न्यं यद् गोषु यच्च नो गृहे ।
अनामगस्तं च दुर्हार्दः प्रियः प्रति मुञ्चताम् ॥ २ ॥

भा०—जो हम में और जो गौओं में और जो हमारे घर में दुःखपूर्वक सोने आदि का कष्ट है, उसको वह पुरुष प्राप्त करे जो कि परमात्मा का नाम नहीं लेता और दुष्ट हृदय वालों का जो कि प्रिय है, मित्र है।

अपामूर्ज ओजसो वावृधानमग्नेर्जातमधि जातवेदसः ।
चतुर्वीरं पर्वतीयं यदाञ्जनं दिशः प्रदिशः करदिच्छिवास्ते ॥३॥

भा०—आप्त पुरुषों का बलरूप तेज की निरन्तर वृद्धि करने वाला भी वेद के ज्ञानैश्वर्य से सम्पन्न आचार्य से प्रकट होने वाला, चार प्रकार

के वीर्यों से युक्त तथा पूर्ण ज्ञान देने वाले गुरु से प्राप्त जो ज्ञान प्रकाशक ब्रह्मज्ञान है वह दिशाओं और उपदिशाओं को तेरे लिये कल्याणकारी करे।

चतुर्वीरं बध्यत आञ्जनं ते सर्वा दिशो अभयास्ते भवन्तु।
ध्रुवस्तिष्ठासि सवितेव चार्य इमा विशो अभि हरन्तु ते बलिम् ॥४॥

भा०—चारों दिशाओं में वीर्यवान् या चारों प्रकार के वीर पुरुषों से युक्त तथा तेजस्वी पुरुष को, हे राजन्! तेरे हित के लिये नियुक्त किया जाता है, जिससे तेरे लिये समस्त दिशाएं भय रहित हो जावें। सूर्य के समान तेजस्वी और सर्वश्रेष्ठ स्वामी तू, स्थिर होकर राज्यासन पर विराजमान हो और ये समस्त प्रजाएं तेरे लिये बलि अर्थात् कर प्रदान करें।

'चतुर्वीरं'—चतुरंग सेना अर्थात् पदाति, अश्व, रथ और गज।

आक्ष्वैकं मणिमेकं कृणुष्व स्नाह्येकेना पिबैकमेषाम्।
चतुर्वीरं नैर्ऋतेभ्यश्चतुर्भ्यो ग्राह्या बन्धेभ्यः परि पात्वस्मान् ॥५॥

भा०—एक वीर को सर्वत्र विचारने की आज्ञा दे और एक को सबका शिरोमणि बना, एक के बल पर अपना राज्याभिषेक कर और इनमें से एक का पान या पालन कर अर्थात् प्रजारूप से उपयोग कर। चार वीरों से युक्त हमारा राष्ट्र चार प्रकार के कष्टों तथा पकड़ लेने वाली कैद आदि बन्धनों से हमें सुरक्षित रक्खे।

अध्यात्म में—धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष इन चार सामर्थ्यों से युक्त प्रभु 'आंजन' है। चारों में से धर्म से प्रसिद्धि प्राप्त करे, अर्थ से लक्ष्मी संग्रह करे, मोक्ष से स्नान कर पवित्र हो और एक काम का भोग करे। और चारों सामर्थ्य प्राप्त करके ग्राही अर्थात् अविद्या के चतुर्विध बन्धनों से मुक्त रहे।

अग्निर्माग्निनावतु प्राणायापानायायुषे वर्चस।
ओजसे तेजसे स्वस्तये सुभूतये स्वाहा ॥ ६ ॥

भा०—आचार्य या अग्रणी नेता, या शत्रुसंतापक सेनापति, या ज्ञानमय प्रभु, अपने अपने सामर्थ्य द्वारा, प्राण, अपान, दीर्घ जीवन, ब्रह्मवर्चस्, ओज, तेज, सुखपूर्वक जीवन और उत्तम विभूति के लिये मेरी रक्षा करे। वह हमारी उत्तम प्रार्थना सफल हो।

इन्द्रो मेन्द्रियेणावतु प्राणाया० ॥ ७ ॥ सोमो मा सौम्येनावतु० ॥ ८ ॥ भगो मा भगेनावतु० ॥ ९ ॥ मरुतो मा गणैरवन्तु प्राणायापानायायुषे वर्चस ओजसे तेजसे स्वस्तये सुभूतये स्वाहा ॥१०॥

भा०—ऐश्वर्यवान् पुरुष अपने ऐश्वर्य से, सोम अपने सौम्यगुण से, भग सौभाग्य गुण से, मरुत् अपने गणों से, आयुषे, वर्चसे, ओजसे, प्राण, अपान, आयु, वर्चस्, ओज, तेज, सुखपूर्वक जीवन और उत्तम ऐश्वर्य प्राप्त करने के लिये मेरी रक्षा करें, यह हमारी उत्तम प्रार्थना है।

राष्ट्र में अग्नि = अग्रणी सेनापति। सोम = न्यायाधीश। भग = संग्राहक। मरुतः = सेना के सैनिक या प्रजागण। ईश्वर में भी ये सब गुण घटित हैं।

इति पञ्चमोऽनुवाकः।

[तत्र द्वादश सूक्तानि। पञ्चसप्ततिश्च ऋचः]

(४६) अस्तृत नाम वीर पुरुष की नियुक्ति।

प्रजापतिर्ऋषिः। अस्तृतमणिर्देवता। १ पञ्चपदा मध्येज्योतिष्मती त्रिष्टुप्। २ षट्पदा भुरिक् शक्वरी। ३, ७ पञ्चपदे पथ्यापंक्ती। ४ चतुष्पदा। ५ पञ्चपदा अतिशक्वरी। पञ्चपदा उष्णिग्गर्भा विराड् जगती। सप्तर्चं सूक्तम्।

प्रजापतिष्ट्वा बध्नात् प्रथममस्तृतं वीर्याय कम्।
तत् ते बध्नाम्यायुषे वर्चस ओजसे च बलाय चास्तृतस्त्वाभि रक्षतु ॥ १ ॥

भा०—हे वीर पुरुष ! प्रजा का पालक स्वामी वीर कर्म के लिये सर्वश्रेष्ठ तथा शत्रु से न मारे जाने वाले तुझको बांधता, नियुक्त करता है। हे राजन् ! उस वीर पुरुष को मैं तेरी आयु, वर्चस्, ओज और बल की वृद्धि के लिये तेरे अधीन नियुक्त करता हूँ। वह कभी न मरने वाला बलवान् पुरुष तेरी रक्षा करे।

ऊर्ध्वस्तिष्ठतु रक्षन्नप्रमादमस्तृतेमं मा त्वा दभन् पुणयो यातुधानाः। इन्द्र इव दस्यूनव धूनुष्व पृतन्यतः सर्वाञ्छत्रून् वि षहस्वास्तृतस्त्वाभि रक्षतु ॥ २ ॥

भा०—हे कभी न मारे जाने वाले पुरुष ! तू सबसे ऊपर रह कर इस राजा और राष्ट्र की रक्षा करता हुआ, बिना प्रमाद के रहे। इस तुझको पीड़ादायी व्यवहार कुशल लोग विनष्ट न करें। और सेना द्वारा आक्रमण करने वाले नाशकारी डाकू लोगों को विद्युत् के समान या प्रबल वायु के समान धुन डाल। और तू अखण्डित रह कर समस्त शत्रुओं को खूब परास्त कर। हे राजन् ! वह 'अस्तृत' नाम का वीर योद्धा तेरी रक्षा करे।

शतं च न प्रहरन्तो निघ्नन्तो न तस्तिरे।
तस्मिन्निन्द्रः पर्यदत्त चक्षुः प्राणमथो बलमस्तृत स्त्वाभि रक्षतु ॥३॥

भा०—सैकड़ों आदमी भी प्रहार करते हुए और मारते हुए जिसको न मार सकें ऐसे वीर्यवान् पुरुष के प्रति ऐश्वर्यवान् राजा निरीक्षण कार्य, अपनी प्राणरक्षा का कार्य और सेना समूह सौंप देता है। हे राजन् ! वह अहिंसनीय पुरुष तेरी रक्षा करे।

इन्द्रस्य त्वा वर्मणा परि धापयामो यो देवानामधिराजो बभूव।
पुनस्त्वा देवाः प्र णयन्तु सर्वेऽस्तृतस्त्वाभि रक्षतु ॥ ४ ॥

भा०—हे वीर पुरुष ! ऐश्वर्यवान् अधिराजा के रक्षाकारी कवच से तुझको ढांपते हैं, जो राजाओं का भी अधिराज अर्थात् राजाधिराज है।

समस्त विजिगीषु राजा लोग तुझको फिर एक बार अपना प्रमुख बनावें। हे राजाधिराज ! अखण्डित वीर पुरुष तेरी रक्षा करे।

अस्मिन् मणावेकशतं वीर्याणि सहस्रं प्राणा अस्मिन्नस्तृते।
व्याघ्रः शत्रूनभि तिष्ठ सर्वान् यस्त्वा पृतन्यादधरः सो अस्त्व-स्तृतस्त्वाभि रक्षतु ॥ ५ ॥

भा०—इस शिरोमणि 'अस्तृत' नामक पुरुष में एकसौ एक या सैकड़ों वीरकर्म करने के सामर्थ्य हैं। और इस अखण्ड वीर पुरुष में हज़ारों प्राणियों को जीवित रखने का सामर्थ्य है या हज़ारों प्राणियों के बराबर कार्य करने का बल है। हे वीरपुरुष ! तू व्याघ्र के समान शूरवीर होकर समस्त शत्रुओं पर आक्रमण कर और जो तुझ पर सेना द्वारा आक्रमण करे वह तेरे नीचे आ पड़े। ऐसे अवसर में अखण्डित उक्त वीर पुरुष तेरी रक्षा करे।

घृतादुल्लुप्तो मधुमान् पयस्वान्त्सहस्रप्राणः शतयोनिर्वयोधाः।
शंभूश्च मयोभूश्चोर्जस्वांश्च पयस्वांश्चास्तृतस्त्वाभि रक्षतु ॥ ६ ॥

भा०—तेज से सम्पन्न, वीर्यवान्, सहस्र गुणा जीवनशक्ति से युक्त, सैकड़ों अपने आश्रय-स्थानों का स्वामी, अन्न को अपने भण्डार में सञ्चित करके रखने वाला वा दीर्घायु, शान्ति और कल्याण का उत्पादक, सुख का उत्पादक, अन्नादि से सम्पन्न या बलयुक्त और पुष्टिमान् होकर अखण्ड वीर पुरुष 'अस्तृत' तेरी रक्षा करे।

यथा त्वमुत्तरोऽसो असपत्नः सपत्नहा।
सजातानामसद् वशी तथा त्वा सविता करदस्तृतस्त्वाभि रक्षतु ७

भा०—जिस प्रकार से हे राजन् ! तू सबसे उत्कृष्ट, शत्रुरहित और शत्रुओं का नाश करने वाला होकर रहे और समान बल वीर्य वाले समस्त राजाओं को अपने वश में करने वाला हो, उस प्रकार से सर्व-प्रेरक परमेश्वर तुझे बनावे और वह अखण्ड वीर पुरुष तेरी रक्षा करे।

'अस्तृत' अर्थात् अखण्डित, अहिंसित इत्यादि विशेषण अध्यात्म में परब्रह्म पर भी लगते हैं। जैसे (अथर्व० ५ । ९ । ७) सूर्यो मे चक्षुर्वातः प्राणोऽन्तरिक्षमात्मा पृथिवी शरीरम्। अस्तृतो नामाहमयमस्मि स आत्मानं नि दधे द्यावापृथिवीभ्यां गोपीथाय ॥

(४७) रात्रिरूप ब्रह्मशक्ति और राष्ट्रशक्ति।

गोपथ ऋषिः। मन्त्रोक्ता रात्रिर्देवता। १ पथ्याबृहती। २ पञ्चपदा अनुष्टुब्गर्भा परातिजगती। ६ पुरस्ताद् बृहती। ७ त्र्यवसाना षट्पदा जगती। शेषा अनुष्टुभः।
नवर्चं सूक्तम्।

आ रात्रि पार्थिवं रजः पितुरप्रायि धामभिः।
दिवः सदांसि बृहती वि तिष्ठस आ त्वेषं वर्तते तमः ॥ १ ॥

भा०—हे रात्रि ! समस्त प्राणियों को रमण कराने हारी ! पृथिवीलोक पिता परमात्मा के बनाये तेजों से पूर्ण है। और तू बड़ी भारी शक्ति वाली होकर समस्त द्यौलोक में विविध प्रकार से विराजमान है, दीप्तिमान् चन्द्र तथा तारागणों से सुशोभित अन्धकार सर्वत्र व्याप रहा है।

समस्त प्राणियों को जीवन देने वाली समष्टि प्रकृति भी रात्रि है।

ब्रह्मणो वै रूपग्रहः। क्षत्रस्य रात्रिः। तै० ३ । ९ । १४ । ३। इस प्रमाण से प्रजा की पालक राज्यव्यवस्था का भी नाम 'रात्रि' है। उस पक्ष में हे रात्रि ! राजशक्ते ! पालक राजा के तेजों से यह पृथ्वीलोक व्याप्त है। तू महान् होकर उच्च ज्ञान-प्रकाश के विद्वानों पर शासन करती है, तेरा चमकीला प्रभाव सर्वत्र व्याप्त है।

न यस्याः पारं ददृशे न योयुवद् विश्वमस्यां नि विशते यदेजति।
अरिष्टासस्त उर्वि तमस्वति रात्रि पारमशीमहि भद्रे पारमशीमहि ॥ २ ॥

भा०—रात्रि का स्वरूप। जिस अनन्त प्रकृति का पार दिखाई

नहीं देता । इसमें जो भी लोक गति कर रहा है वह समस्त लोक ही इससे पृथक् न रहता हुआ इसमें आश्रय ले रहा है । हे पृथ्वी के समान आश्रय देने वाली ! हे तमोगुण से युक्त, हे जीवों को अपने में रमण कराने वाली भोगदात्रि ! हम बिना दुःख कष्ट प्राप्त किये तेरे पार अर्थात् पालन करने वाले सामर्थ्य का भोग करें । हे कल्याणकारिणि ! सुख-दायिनि ! तेरे पालन सामर्थ्य को हम प्राप्त करें ।

ये ते रात्रि नृचक्षसो द्रष्टारो नवतिर्नव ।

अशीतिः सन्त्यष्टा उतो ते सप्त सप्ततिः ॥ ३ ॥

भा०—हे समस्त प्रजा को रमण कराने एवं सुख प्रदान करने वाली राजशक्ते ! तेरे जो मनुष्यों को देखने वाले और राज्यव्यवहारों को देखने वाले ९९ या ८८ या ७७ व्यक्ति हैं ।

षष्टिश्च षट् च रेवति पञ्चाशत् पञ्च सुम्नयि ।

चत्वारश्चत्वारिंशच्च त्रयस्त्रिंशच्च वाजिनि ॥ ४ ॥

द्वौ च ते विंशतिश्च ते रात्र्येकादशावमाः ।

तेभिर्नो अद्य पायुभिर्नु पाहि दुहितर्दिवः ॥ ५ ॥

भा०—हे धनवति ! ऐश्वर्यवती राजशक्ते ! हे प्रजा को सुख देने-हारी ! हे अन्न और बल से सम्पन्न ! हे आदित्य की पुत्री उषा के समान प्रकाश करने वाली राजसभे ! राजशक्ते ! तेरे जो प्रजा के व्यवहारों के देखने वाले संख्या में ६६, या ५५, या ४४, या ३३, या २२, या कम से कम ग्यारह विद्वान् पुरुष हैं, निरन्तर उन पालन करने वाले देशपालक पुरुषों द्वारा हमारा पालन कर ।

अर्थात् राजसभा में ९९, ८८, ७७, ६६, ५५, ४४, ३३, २२ या कमसे कम ११ विद्वान् हों उन पर राज्यकार्यों को देखने का भार हो । उन सभासदों का नाम 'नृचक्षाः' है । इन्द्र की राजसभा में १०००ऋषि थे । इसी से वह सहस्राक्ष कहाता था । अर्थशास्त्र कौटल्य ।

'योनिरेव वरुणा'। श० १२।९।१।१७॥ इस प्रमाण से 'अस्तृत सूक्त मं० ६ में शतयोनि का तात्पर्य 'शतवरुण' समझना चाहिये अर्थात् जिसके अधीन सौ प्रजा के स्वयंवृत नेता हों। वे प्रजा को संभालें, इसी से वे 'शतधाम' कहाते हैं। राजा 'सोम' के ७७ अंशु देखो। कां० १९। सू० ६। १६॥

रक्षा माकिर्नो अघशंस ईशत मा नो दुःशंस ईशत।
मा नो अद्य गवां स्तेनो मावीनां वृक ईशत॥ ६॥
माश्वानां भद्रे तस्करो मा नृणां यातुधान्यः।
परमेभिः पथिभिस्तेनो धावतु तस्करः।
परेण दत्वती रज्जुः परेणाघायुरर्षतु॥ ७॥

भा०—हे राजशक्ते! तू हमारा ऐसा पालन कर कि हम पर हत्या और पाप कार्यों की चर्चा करने वाला दुष्ट पुरुष कभी अधिकार प्राप्त न करे। दुष्ट कार्यों की प्रेरणा करने वाला पुरुष भी हम पर कभी प्रभुत्व न करे। चोर हमारी गौवों पर अपना प्रभुत्व न करे। भेड़िये के समान छुप-कर आक्रमण करने वाला चोरवृत्ति पुरुष हमारी भेड़ों या रक्षा के पदों पर प्रभुत्व न करे। हे सुखदायिनि राजव्यवस्थे! अमुक अमुक नाना प्रकार के निन्द्य कार्य करने वाला चोर हमारे घोड़ों पर भी प्रभुत्व न जमावे। और प्रजाओं को पीड़ा देने वाली स्त्रियां हमारे नेता लोगों और मनुष्यों पर भी अपना अधिकार न जमावें। परद्रव्य का अपहरण करने वाला और छुपकर निन्दनीय नाना कार्यों को करने वाला पुरुष दूर मार्गों से ही दौड़ जाय। दांतों वाली रस्सी अर्थात् सांप या शस्त्रों वाली सेना दूर मार्ग से ही चली जाय, और हम पर हत्या की चेष्टा करने वाला दुष्ट पुरुष भी दूर ही रहे।

अध रात्रि तृष्टधूममशीर्षाणमहिं कृणु।
हनू वृकस्य जम्भयास्तेन तं द्रुपदे जहि॥ ८॥

भा०—हे प्रजा को सुख और दुष्टों को दण्ड देनेहारी राजशक्ते ! तू प्यास लगाने वाले फुंकारों को लेने वाले सांप को, और सांप के स्वभाव वाले पुरुष को जो गले को सुखा देने वाले धूम का दूसरों पर प्रयोग करे उसको शिर से रहित करदे । और भेड़ियों के या भेड़िये के स्वभाव वालों के जबाड़ों को तोड़ डाल । और परद्रव्य पर डाका डालने वाले उस डाकू को खूंटे में बांध कर दण्ड दे ।

त्वयि रात्रि वसामसि स्वपिष्यामसि जागृहि ।
गोभ्यो नः शर्म यच्छाश्वेभ्यः पुरुषेभ्यः ॥ ६ ॥

भा०—हे प्रजा को सुख देने वाली और दुष्टों को दण्ड देने वाली राजशक्ते ! हम तेरे आधार पर निवास करते हैं । हम निश्चिन्त होकर सोते हैं और तू हमारी रक्षा के लिये जाग । तू हमारी गौओं, अश्वों और पुरुषों के लिये सुखमय शरण प्रदान कर ।

(४८) राष्ट्रशक्ति का रूप 'रात्रि'

गोपथ ऋषिः । रात्रिर्देवता । १ त्रिपदा आर्षी गायत्री । २ त्रिपदा विराड् अनुष्टुप् । ३ बृहती गर्भा अनुष्टुप् । ५ पथ्यापंक्तिः । शेषा अनुष्टुभः । षडृचं सूक्तम् ।

अथो यानि च यस्मा ह यानि चान्तः परीणहि । तानि ते परि दद्मसि ॥ १ ॥

भा०—और जिन पदार्थों का हम संग्रह करते हैं, जिन वस्तुओं को भीतर सब ओर से बन्द सन्दूक आदि में रखते हैं, उन सब धन, वस्त्र आदि को तेरे ही अधीन हम धारण करते हैं ।

रात्रि मातरुषसे नः परि देहि ।
उषा नो अह्ने परि ददात्वहस्तुभ्यं विभावरि ॥ २ ॥

भा०—हे माता के समान पालन करने वाली, तथा प्रजा को सुख देने वाली रात्रि ! तू हमको उषा के प्रति सौंप दे । अर्थात् हम सुख से रात में सोकर स्वस्थ रूप में प्रातःकाल उठें ।

राजा के पक्ष में—हे राजशक्ते ! तू हमें उषा अर्थात् दुष्टों का दहन करने वाली पोलिस के अधीन करदे या प्रकाशमयी विद्वत् सभा के अधीन करदे। और जिस प्रकार उषा समस्त जीवों को दिन के अधीन कर देती है उसी प्रकार वह विद्वत्सभा हमें न दण्ड देने योग्य ब्राह्मणगण के अधीन सौंप दे। और हे विशेष रूप से तेजस्विनि ! दिन जिस प्रकार जीवों को रात्रि के अधीन कर देता है उसी प्रकार वह ब्राह्मणगण फिर तुझ राजशक्ति के अधीन सौंप दे।

यत् किं चेदं पतयति यत् किं चेदं सरीसृपम्।
यत् किं च पर्वतायासत्वं तस्मात् त्वं रात्रि पाहि नः ॥३॥

भा०—जो यह प्राणिवर्ग उड़ा करते हैं और जो सरकने वाले सांप आदि प्राणी हैं और जो प्राणी पर्वतों में विद्यमान हैं, हे राजशक्ते ! उन सब प्राणियों से तू हमारी रक्षा कर।

सा पश्चात् पाहि सा पुरः सोत्तरादधरादुत।
गोपाय नो विभावरि स्तोतारस्त इह स्मसि ॥ ४ ॥

भा०—वह तू पीछे से या पश्चिम दिशा से हमारी रक्षा कर। वह तू आगे से या पूर्व दिशा से हमारी रक्षा कर। वह तू उत्तर दिशा से या बायीं ओर से या ऊपर से हमारी रक्षा कर। और नीचे से या दायीं ओर से भी रक्षा कर। हे विशेष तेज से सम्पन्न रात्रि ! तू हमारी रक्षा कर, तेरे हम यहां स्तुति करने वाले, यथार्थ गुण कहने वाले हैं।

ये रात्रिमनुतिष्ठन्ति ये च भूतेषु जाग्रति।
पशून् ये सर्वान् रक्षन्ति ते न आत्मसु जाग्रति
ते नः पशुषु जाग्रति ॥ ५ ॥

भा०—जो सुखप्रद और दुष्टों को दण्ड देने वाली व्यवस्था को ठीक प्रकार से चलाते हैं और जो भूतों और प्राणियों में सदा सावधान रहते हैं और जो समस्त पशुओं की रक्षा करते हैं, वे व्यवस्थापक पुरुष हम

में सावधान हो जागते हैं और वे हमारे पशुओं के रक्षा-कार्य में भी सावधान होकर रहते हैं।

वेद वै रात्रि ते नाम घृताची नाम वा असि ।
तां त्वां भरद्वाजो वेद सा नो वित्तेऽधि जाग्रति ॥ ६ ॥

भा०—हे समस्त जगत् को अपने भीतर लेने वाली सर्वोपरि शक्ते ! तेरा नाम मैं जानता हूँ कि तू 'घृताची' नामक है। भरद्वाज अर्थात् अन्न और बलों को धारण करने वाला उस तुझको जानता या प्राप्त करता है वह हमारे समस्त प्राप्त करने योग्य पदार्थों पर जागती है, सावधान होकर रहती है ।

'घृताची'—घृ क्षरणदीप्त्योः (चुरादिः) गृ घृ सेचने (भ्वादिः) एताभ्यामौणादिकः कः । जिघर्त्ति सञ्चलति दीप्यते वा तद् घृतम् । उदकं सर्पिः प्रदीप्तं वा । इति दया० अर्थात् घृत जल है । इससे मेघ पृथ्वी को सींचता है या घृत तेज है। उसके तत्व को 'भरद्वाज' अर्थात् अन्नोत्पादक विद्वान् जानते हैं ।

अध्यात्म में—मनो वै भरद्वाज ऋषिः । अन्नं वाजः । यो वै मनो बिभर्त्ति सो अन्नं वाजं बिभर्त्ति । तस्मान्मनो भरद्वाज ऋषि है। मन भरद्वाज है । अन्न वाज है । वही शरीर में रहकर समस्त प्राणों को धारण करता है । वह आत्मा की घृताची शक्ति को जानता है ।

(४९) 'रात्रि' परम शक्ति का वर्णन ।

गोपथो भरद्वाजश्च ऋषी । रात्रिर्देवता । १-५, ८ त्रिष्टुभः । ६ अस्तारपंक्तिः । ७ पथ्यापंक्तिः । १० त्र्यवसाना षट्पदा जगती । दशर्चं सूक्तम् ।

इषिरा योषा युवतिर्दमूना रात्री देवस्य सवितुर्भगस्य ।
अश्वक्षभा सुहवा संभृतश्रीरा पप्रौ द्यावापृथिवी महित्वा ॥ १ ॥

भा०—जिस प्रकार युवती स्त्री पुत्रोत्पादन करने में समर्थ पुरुष की इच्छा करने वाली होती है और उसी के अधीन अपने चित्त को वश

करके रहती है, उसी प्रकार समस्त जगत् को व्यक्त रूप प्रदान करने वाली प्रकृतिशक्ति सबके भजन करने योग्य, सर्वैश्वर्यवान्, सर्वोत्पादक, सर्व जगत् के सञ्चालक, सर्व प्रकाशमान, सर्वज्ञानप्रद परमेश्वर के लिये उसकी इच्छाशक्ति द्वारा प्रेरित करने योग्य होती है। अर्थात् ईश्वर अपनी कामना या इच्छा से प्रकृति को जगत्-सृष्टि के लिये प्रेरित करता है। प्रकृति की अविकृत अवस्था अर्थात् जब जगत् अव्यक्तरूप में प्रकृति में लीन रहता है वेदोक्त 'रात्रि' है। उस दशा में विद्यमान प्रकृति में ईश्वर की प्रेरणा से सृष्टि का उत्पादक क्षोभ उत्पन्न होता है। वह स्वयं उस परमात्मा की स्त्री के समान नित्य निरन्तर संग करने वाली अर्थात् ईश्वर के सम्पर्क से उसकी शक्ति तेज या वीर्य से गर्भित होकर समस्त सृष्टि को उत्पन्न करने वाली सदा जवान और स्वयं दान्तमना अर्थात् मनन या चेतना से रहित केवल परमात्मा के ही संकल्प से चलने वाली है। वही प्रकृति अति शीघ्र व्यापकशक्ति से सृष्टि उत्पन्न करने में समर्थ हुई। उत्तम रीति से पति की आज्ञा में रहने वाली स्त्री के समान वह भी उत्तम रीति से उसके वशीभूत, समस्त शोभाओं को धारण करने वाली, अथवा एकत्र प्राप्त हुए समस्त विकृत पदार्थों, पञ्चभूतों का आश्रय स्थान है। वह प्रकृति अपने महान् सामर्थ्य से द्यौ और पृथिवी को व्याप रही है।

राजशक्ति के पक्ष में—वह दमनकारिणी, सबके सञ्चालक, ऐश्वर्यवान् राजा की निरन्तर बलवती इच्छा के अनुकूल प्रेरित, शीघ्रकारी तथा चतुर इन्द्रियों के समान उसके साथ जुड़े अध्यक्ष पुरुषों से शोभमान, उत्तम ज्ञान से पूर्ण अपनी महिमा से राजा और प्रजा दोनों को पूर्ण करती है। अर्थात् दोनों को सम्पन्न, समृद्ध करती है।

अति॒ विश्वा॑न्यरुहद् ग॒म्भी॒रो वर्षि॑ष्ठमरुहन्त॒ श्रवि॑ष्ठाः।
उ॒श॒ती रा॒त्र्यनु॒ सा भ॒द्राभि ति॑ष्ठते मि॒त्र इ॑व स्व॒धाभिः॑ ॥ २ ॥

भा०—गम्भीर पुरुष ही सब पर अधिष्ठातृ रूप से विराजता है।

और विश्रुत योगी पुरुष सबसे महान्, सबके प्रति आनन्दवर्षण करनेहारे परमेश्वर तक पहुंचते हैं। पति की कामना करने वाली, अति सुखकारिणी, पति की वशवर्त्तिनी स्त्री गृहस्थ को धारण करने की शक्तियों सहित होकर जिस प्रकार प्रियतम के पास आ जाती है उसी प्रकार परमेश्वरी शक्ति मित्र के समान होकर योगी के सन्मुख आ उपस्थित होती है।

राजशक्ति पक्ष में—गम्भीर राजा सबके ऊपर शासक हो, विद्वान् लोग उसके आश्रय पर रहें। वशकारिणी राजशक्ति अपने धारण सामर्थ्यों से राजा-प्रजा के मित्र के समान प्रकट होती है।

वर्ये॑ वन्दे॒ सुभ॑गे॒ सुजा॑त॒ आज॑ग॒न् रात्रि॒ सुमना॑ इह स्या॑म् ।
अ॒स्मांस्त्रा॑यस्व॒ नर्या॑णि॒ जा॒ता अथो॒ यानि॒ गव्या॑नि पु॒ष्ट्या ॥३॥

भा०—हे वरण करने योग्य ! हे स्तुति करने योग्य ! हे उत्तम ऐश्वर्य से सम्पन्न ! हे शुभरूपे ! राजशक्ते और ईश्वरीय शक्ते ! तू निरन्तर आती है। मैं इस लोक में उत्तम चित्तवाला होकर रहूँ। तू मनुष्यों से उत्पादित शिल्प द्वारा उत्पन्न पदार्थों और पशुओं से प्राप्त दुग्ध, घृत आदि पदार्थों की पुष्टि के द्वारा हमारा पालन कर।

सिं॒हस्य॒ रात्र्यु॑श॒ती पीं॒षस्य॑ व्या॒घ्रस्य॑ द्वी॒पिनो॒ वर्च॒ आ द॑दे ।
अश्व॑स्य ब्र॒ध्नं पुरु॑षस्य मा॒युं पु॒रु रू॒पाणि॑ कृणुषे वि॒भा॒ती ॥ ४ ॥

भा०—सबको वश करने वाली राजशक्ति सिंह के, सबको चूर्ण कर देने वाले हाथ के और व्याघ्र तथा चीते के तेज को ग्रहण कर लेती है। और वही नाना प्रकार से प्रकाशित होने वाली राजशक्ति इन्द्रियरूपी अश्वों को बांधने या उन्हें संयम में रखने का साधन है, वही देहपुरी में निवास करने वाले आत्मा की वाक्शक्ति का भी निर्माण करती है। और राष्ट्र में नाना रूपों को रचती है। अर्थात् राजशक्ति शिक्षा का प्रबन्ध करती और नाना प्रकार के शिल्पसाध्य पदार्थों को उत्पन्न करती है।

शिवां रात्रिमनुसूर्यं च हिमस्य माता सुहवा नो अस्तु ।
अस्य स्तोमस्य सुभगे नि बोध येन त्वा वन्दे विश्वासु दिक्षु ॥५॥

भा०—हे उत्तम ऐश्वर्यवति ! तू शत्रुओं का हनन करने वाले राजा की माता के समान राजा को बनाने वाली हो। तू हमें ज्ञान-उपदेश देने में समर्थ हो। तू इस 'स्तोम' अर्थात् वीर पुरुषों के उत्पन्न करने के कार्य को भली प्रकार जान जिससे कि हम समस्त दिशाओं में तुझ कल्याणकारिणी राज्यशक्ति के और उसके अनुकूल अनुगमन करने वाले सूर्य के समान उदयशील तेजस्वी राजा के गुणों का और यश का गान करें।

१–'हिमस्य'–हन्तेर्हि च । १ । २० ॥

२–वीर्यं वै स्तोमाः ॥ श० ५ । ४ । वीरजननं वै स्तोमः ॥ ता० २१ । ९ । ३ ॥ राजा का बल या सेनाबल स्तोम कहाता है।

स्तोमस्य नो विभावरि रात्रि राजेव जोषसे ।
असाम सर्ववीरा भवाम सर्ववेदसो व्युच्छन्तीरनुषसः ॥ ६ ॥

भा०—हे तेजस्विनि ! सुखदात्रि ! राजशक्ते ! तू राजा के समान हमारे सामूहिक वीर्य और वीरसमूहों को अपने प्रयोग में लाती है। इसलिये निरन्तर प्रकट होने वाली उषाओं अर्थात् शत्रुदाहक सेनाओं के रूप में हम लोग सदा सर्व प्रकार से वीर होकर रहें और समस्त ऐश्वर्यों से युक्त हों।

शम्या ह नाम दधिषे मम दिप्सन्ति ये धना ।
रात्री हि तानसुतपा य स्तेनो न विद्यते यत् पुनर्न विद्यते ॥ ७ ॥

भा०—हे राजशक्ते ! तू शत्रुओं को शमन करने से 'शम्या' नाम धारण करती है। जो पुरुष मेरे धनों को बलात् छीन लेना चाहते हैं उन दुष्टों को दण्ड देनेहारी और शत्रुओं के प्राणों को संतप्त करने वाली

होकर तू मुझे प्राप्त हो, जिससे चोर या लुटेरा पुरुष राष्ट्र में न रह जाय और जिससे फिर दुबारा चोर न पैदा हो ।

भद्रासि रात्रि चमसो न विष्टो विश्वं गोरूपं युवतिर्बिभर्षि ।
चक्षुष्मती मे उशती वपूंषि प्रति त्वं दिव्या न क्षामंमुक्थाः ॥८॥

भा०—हे राजशक्ते ! तू कल्याण और सुख की देने वाली है । तू परसे हुए थाल के समान अन्न से भरपूर है । तू शक्ति शालिनी होकर समस्त पृथ्वी का रूप धारण करती है । सबको वश करने हारी और सब पर अपनी आंख रखने वाली तथा दिव्य गुणवाली होकर तू मेरी प्रजाओं के शरीरों को और उन की निवासभूत इस पृथिवी को कभी त्याग मत कर ।

यो अद्य स्तेन आयत्यघायुर्मर्त्यो रिपुः ।
रात्री तस्य प्रतीत्य प्र ग्रीवाः प्र शिरो हनत् ॥ ९ ॥

भा०—जो आज चोर और डाकू तथा हत्या करने वाला शत्रु आता है, उसके प्रति आकर या उसे पहचान कर राजशक्ति उन की गर्दनों को और शिरों को तोड़ दे, कुचल दे ।

प्र पादौ न यथायति प्र हस्तौ न यथाशिषत् ।
यो मलिम्लुरुपायति स संपिष्टो अपायति ।
अपायति स्वपायति शुष्के स्थाणावपायति ॥ १० ॥

भा०—वह राजशक्ति उस शत्रु के दोनों पैर तोड़ डाले जिससे वह आगे न बढ़ सके । उसके दोनों हाथ तोड़ डाले जिससे वह फिर हिंसा या हत्या का कार्य न कर सके । जो प्रजा में मारामारी करने वाला, हत्यारा, चोर, डाकू हमारे समीप आवे वह खूब पीसा जाकर, खूब दण्डित होकर नाश कर दिया जाय । ऐसा नष्ट किया जाय कि अच्छी प्रकार से नष्ट हो जावे और वह सूखे ठूंट पर या बल्ले टांग कर या उससे बांधकर मारा जाय ।

[५०] 'रात्रि' रूप राजशक्ति से दुष्ट दमन करने की प्रार्थना।

गोपथभरद्वाजावृषी । रात्रिर्देवता । अनुष्टुभः । सप्तर्चं सूक्तम् ।

अध॑ रात्रि तृ॒ष्टधू॑ममशी॒र्षाण॒महिं॑ कृणु ।
अ॒क्ष्यौ वृक॑स्य॒ निर्ज॒ह्यास्तेन॒ तं द्रु॑प॒दे ज॑हि ॥ १ ॥

भा०—और हे राजशक्ते ! तू कुटिलगामी अथवा खूनी पुरुष को प्यास लगने वाले धूम से दण्डित कर और उसको शिर से रहित कर। जंगल में घेर कर मारने वाले डाकू, चोर लोगों की दोनों आंखों को सर्वथा निकलवा डाल । और उसी अपराध के कारण उसको वृक्ष के बने खूंटे के साथ बांध कर दण्ड दे ।

ये ते॑ रात्र्यन॒ड्वाह॒स्तीक्ष्ण॑शृङ्गाः स्वा॒शवः॑ ।
तेभि॑र्नो अ॒द्य पा॑रया॒ति॑ दु॒र्गाणि॑ वि॒श्वहा॑ ॥ २ ॥

भा०—हे राजशक्ते ! तेरे जो राजतन्त्र के भार उठाने वाले धुरन्धर, तीखे हिंसासाधन वाले, खूब तीव्रगति वाले बुद्धिमान् हैं, उन द्वारा हमें सब प्रकार के कठिन संकटों से शीघ्र पार करा ।

रात्रिं॑रात्रि॒मरि॑ष्यन्त॒स्तरे॑म त॒न्वा॑ व॒यम् ।
ग॒म्भी॒रम॑प्ल॒वा इ॑व॒ न त॑रेयु॒ररा॑तयः ॥ ३ ॥

भा०—प्रत्येक राजशक्ति या राज्यव्यवस्था का प्रयोग करते हुए हम लोग, अपने शरीर से अति गम्भीर कार्य के भी पार पहुंच जायं । और वे जहाज़ के लोग जिस प्रकार गहरे जल को नहीं तैर पाते उसी प्रकार हमारे शत्रु लोग गम्भीर संकटों को पार न कर सकें ।

यथा॑ शा॒म्याकः॑ प्र॒पत॑न्नप॒वान् नानु॑वि॒द्यते॑ ।
ए॒वा रा॑त्रि॒ प्र पा॑तय॒ यो अ॒स्माँ अ॑भ्यघा॒यति॑ ॥ ४ ॥

भा०—जिस प्रकार सांवा नामक धान गिरकर उड़ता उड़ता फिर उसका कुछ पता नहीं चलता कि कहां है, उसी प्रकार हे राजशक्ते ! जो

हम पर अत्याचार या बलात्कार करना चाहता है उसको भी तू ऐसा गिराकर नष्ट करदे कि उसका पता न चले ।

अप स्तेनं वासो गोअजमुत तस्करम् ।
अथो यो अर्वतः शिरोऽभिधाय निनीषति ॥ ५ ॥

भा०—हे राजशक्ते ! जो हमारे वस्त्रों और गायों, बकरियों को चुरा ले जाना चाहता है उस चोर को तू हमसे दूर रख । और जो हमारे घोड़ों के शिर बांधकर उनको हर ले जाना चाहता है उस को भी हमसे दूर कर ।

यदद्या रात्रि सुभगे विभजन्त्ययो वसु ।
य देतदस्मान् भोजय यथेदन्यान्नोपायति ॥ ६ ॥

भा०—हे राजशक्ते ! हे उत्तम ऐश्वर्यवति ! तू सुवर्ण आदि धन को विभाग करती हुई हमें प्राप्त हो । तब हमें उस धन को इस प्रकार उपभोग करा कि जिस प्रकार वह किसी प्रकार हमारे शत्रुओं को प्राप्त न हो ।

उषसे नः परि देहि सर्वान् रात्र्यनागसः ।
उषा नो अह्ने आ भजादहस्तुभ्यं विभावरि ॥ ७ ॥

भा०—हे राजशक्ते ! तू पाप और अपराधों से रहित हम सबको शत्रु को भस्म करने वाली समिति के अधीन कर । और वह समिति दिन के समान उज्ज्वल, विज्ञानवान् ब्राह्मणों के अधीन रख दे । और वह अहन्तव्य ब्राह्मणवर्ग हमें पुनः, हे विशेष दीप्ति वाली राजशक्ति ! तुझे सौंप दे ।

[५१] आत्म-साधना ।

ब्रह्मा ऋषिः । १ आत्मा । २ सविता च देवते । १ एकपदा ब्राह्मी अनुष्टुप् । २ त्रिपदा यवमध्योष्णिक् (१, २ एकावसाने) । द्वयृचं सूक्तम् ।

अयुतोऽहमयुतो म आत्मायुतं मे चक्षुरयुतं मे श्रोत्रमयुतो ।
मे प्राणोऽयुतो मेऽपानोऽयुतो मे व्यानोऽयुतोऽहं सर्वः ॥ १ ॥

भा०—मैं जुदा न होऊं । मेरी आत्मा पृथक् न हो । मेरी आंख पृथक् न हो । मेरा कान पृथक् न हो । मेरा प्राण पृथक् न हो । मेरा अपान भी पृथक् न हो । मेरा व्यान वायु पृथक् न हो । मैं सारा पृथक् न होकर पूर्ण होकर रहूँ ।

देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां ।
पूष्णो हस्ताभ्यां प्रसूत आ रभे ॥ २ ॥

भा०—सर्वोत्पादक, सर्वप्रेरक परमेश्वरदेव के शासन में और दोनों स्त्री पुरुषों की बाहुओं से और पुष्टिकारक पुरुष के हाथों से प्रेरित होकर, मैं अपना कार्य प्रारम्भ करूं ।

[५२] 'काम' परमेश्वर ।

ब्रह्मा ऋषिः । मन्त्रोक्तः कामो देवता । कामसूक्तम् । १, २, ४ त्रिष्टुभः । ३ चतुष्पदा उष्णिक् । ५ उपरिष्टाद् बृहती । पञ्चर्चं सूक्तम् ।

कामस्तदग्रे समवर्तत मनसो रेतः प्रथमं यदासीत् ।
स काम कामेन बृहता सयोनी रायस्पोषं यजमानाय धेहि ॥१॥

प्र० द्वि० ऋ० १० । १२९ । ४ प्र० द्वि० ॥

भा०—सृष्टि के उत्पन्न होने के पूर्व वह ब्रह्म सृष्टि को उत्पन्न करने की इच्छा या कामना करने हारा विद्यमान था । जिस ज्ञानमय ब्रह्म का सबसे प्रथम जगत्-उत्पादन-सामर्थ्य विद्यमान था । वह कामनामय परमेश्वर अपने बड़े भारी सृष्टि उत्पत्ति करने के संकल्प के साथ एक ही स्थान पर विराजमान रहता है । अर्थात् वह महान् संकल्प और संकल्प करने वाला भिन्न भिन्न न रह कर सर्वत्र दोनों एक रूप से ही विद्यमान थे । हे परमेश्वर ! वह तू सृष्टि का उत्पादक परमेश्वर यज्ञशील आत्मा को ऐश्वर्य की समृद्धि प्रदान कर ।

त्वं काम सहसासि प्रतिष्ठितो विभुर्विभावा सख आ सखीयते।
त्वमुग्रः पृतनासु सासहिः सह ओजो यजमानाय धेहि ॥ २ ॥

भा०—हे महान् कामनामय प्रभो ! तू अपने सर्व-दमनकारी बल से सबसे ऊपर शासकरूप से विराजमान है। हे मित्र ! तू सर्व व्यापक, विविध पदार्थों को प्रकाशित करने वाला, मित्र के अभिलाषी आत्मा के लिये सर्वत्र समस्त जीवों में अति बलवान् होकर, निरन्तर शत्रुओं को वश में करने वाला, बलस्वरूप होकर, विद्यमान है। तू अपने को तेरे प्रति समर्पण करने वाले, अथवा तुझे देव मानकर पूजा करने वाले उपासक आत्मा को पराक्रम प्रदान कर।

दूराच्चकमानाय प्रतिपाणायाक्षये।
आस्मा अशृण्वन्नाशाः कामेनाजनयन्त्स्वः ॥ ३ ॥

भा०—दूर दूर तक प्रबल कामना करने वाले, प्रत्येक पदार्थ की रक्षा करने में समर्थ, अनश्वर इस परमेश्वर की आज्ञाओं को, उसके संकल्प के बल से समस्त दिशाएं सर्वत्र श्रवण करती हैं, उसकी आज्ञा को मानती हैं। और उसी प्रभु के सामर्थ्य से वे सर्वत्र सुख को प्रकट करती हैं।

कामेन मा काम आगन् हृदयाद्धृदयं परि।
यदमीषामदो मनस्तदैतूप मामिह ॥ ४ ॥

भा०—उस संकल्पमय परमेश्वर के द्वारा ही मुझको भी वह दृढ़ संकल्प प्राप्त होता है, जो एक हृदय से दूसरे हृदय के प्रति हुआ करता है। इन प्रजा जनों का जो संकल्प है वह मुझे प्राप्त हो। अर्थात् हम सब के संकल्प परस्पर अनुकूल हों।

यत्काम कामयमाना इदं कृण्मसि ते हविः।
तन्नः सर्वं समृध्यतामथैतस्य हविषो वीहि स्वाहा ॥ ५ ॥

भा०—हे संकल्पमय प्रभो ! हम जिस पदार्थ की कामना करते हुए तेरी यह स्तुति या साधना करते हैं, हमारा वह सब खूब सफल हो । और इस स्तुति व साधना को तू स्वीकार कर । यह हमारी प्रार्थना स्वीकृत हो ।

[५३] 'काल' परमेश्वर ।

भृगुर्ऋषिः । सर्वात्मकः कालो देवता । १–४ त्रिष्टुभः । ५ निचृत् पुरस्ताद् बृहती । दशर्चं सूक्तम् ।

कालो अश्वो वहति सप्तरश्मिः सहस्राक्षो अजरो भूरिरेताः ।
तमा रोहन्ति कवयो विपश्चितस्तस्य चक्रा भुवनानि विश्वा ॥१॥

भा०—जिस प्रकार घोड़ा रथ को खींच ले जाता है उसी प्रकार काल सबको खींच कर ले जा रहा है । वह काल महत्तत्व, अहंकार, ५ तन्मात्रारूपी, सात रासों वाला, हज़ारों का क्षय करने वाला और बहुत बल से युक्त है । उस पर क्रान्तदर्शी तथा नाना कर्मों और ज्ञान का संचय करने हारे विद्वान् चढ़ते हैं, उसको काबू कर लेते हैं । उसके ही ये समस्त लोक उसके महान् रथ में लगे चक्रों के समान गति करते हैं । इससे समस्त लोकों की वृत्ताकार गति और सबकी गोलाकार आकृति का भी वर्णन हो गया ।

सप्त चक्रान् वहति काल एष सप्तास्य नाभीरमृतं न्वक्षः ।
स इमा विश्वा भुवनान्यञ्जत् कालः स ईयते प्रथमो नु देवः ॥२॥

भा०—वह काल सात ग्रहरूपी या ऋतुरूपी चक्रों को प्रेरित करता है । उसकी सात नाभियां हैं । उसकी धुरा कभी नष्ट होने वाली नहीं है । वह सर्व संहारकारी इन समस्त भुवनों को चलाता है । सर्वद्रष्टा वह क्रीड़ा करता हुआ गति कर रहा है ।

पूर्णः कुम्भोऽधि काल आहितस्तं वै पश्यामो बहुधा नु सन्तः ।
स इमा विश्वा भुवनानि प्रत्यङ् कालं तमाहुः परमे व्योमन् ॥३॥

भा०—काल में यह संपूर्ण आकाशमय ब्रह्माण्ड रक्खा है। उसको हम सज्जन पुरुष बहुत रूपों में देखते हैं। वह इन समस्त भुवनों, लोकों में व्यापक है, वह सर्वोच्च आकाश में भी विद्यमान है। उसको 'काल' नाम से विद्वान् लोग कहते हैं।

स एव सं भुवनान्याभरत् स एव सं भुवनानि पर्यैत्।
पिता सन्नभवत् पुत्र एषां तस्माद् वै नान्यत् परमस्ति तेजः ॥४॥

भा०—वह काल ही समस्त लोकों को भली प्रकार पालन पोषण करता या उत्पन्न करता है और वह ही समस्त उत्पन्न लोकों में व्यापक है। वह इन लोकों का पिता होकर पुत्र भी है। सूर्य चन्द्र आदि की गति से दिन, मास, ऋतु, पक्ष, संवत्सर आदि उत्पन्न होते हैं, इस नाते वह काल इन लोकों का 'पुत्र' भी है। निश्चय ही उस काल से दूसरा उत्कृष्ट सामर्थ्य और तेज नहीं है, क्योंकि परमात्मा भी काल के अनुसार ही सर्जन और प्रलय करता है।

कालोऽमूं दिवमजनयत् काल इमाः पृथिवीरुत।
काले हं भूतं भव्यं चेषितं ह वि तिष्ठते ॥ ५ ॥

भा०—काल उस द्यौलोक और उसमें विद्यमान समस्त लोकों को उत्पन्न करता है। इन पृथिवियों को भी काल उत्पन्न करता है। अतीत और भविष्यत् में उत्पन्न होने वाला जगत् दोनों काल में ही विद्यमान रहते हैं। और गतिमान् पदार्थ उसी काल द्वारा प्रेरित होकर विविध दशाओं में स्थित हैं।

कालो भूतिमसृजत काले तपति सूर्यः।
काले ह विश्वा भूतानि काले चक्षुर्वि पश्यति ॥ ६ ॥

भा०—काल समस्त जगत् की सत्ता को या समस्त जगत् की विभूति को बनाता है। सूर्य काल के अधीन होकर तपता है। समस्त प्राणीगण निश्चय से 'काल' के ही अधीन हैं। देखने वाला इन्द्रिय चक्षु भी उस काल के अधीन होकर विविध पदार्थों को देखता है।

कुाले मनः कुाले प्राणः कुाले नाम सुमाहितम् ।
कुालेन् सर्वा नन्दुन्त्यागतेन प्रुजा इमाः ॥ ७ ॥

भा०—काल में मनन क्रियाएं होती हैं। काल में समष्टि प्राण विद्यमान हैं। पदार्थों के नाम भी काल में ही विद्यमान हैं। अनुकूल रूप से आये हुए काल से ही ये समस्त प्रजाएं समृद्ध और आनन्द प्रसन्न होती हैं।

कुाले तपः कुाले ज्येष्ठं कुाले ब्रह्म सुमाहितम् ।
कुालो ह सर्वस्येश्वरो यः पितासीत् प्रुजापतेः ॥ ८ ॥

भा०—काल में ही तप विद्यमान है। ज्येष्ठता तथा कनिष्ठता काल में आश्रित है। वेदज्ञान वा महान् ब्रह्माण्ड उस काल में ही विद्यमान है। काल ही सबका मालिक है। वह 'काल' प्रजा के पालक राजाओं का भी पिता है।

तेनेषितं तेन जातं तदु तस्मिन् प्रतिष्ठितम् ।
कुालो ह ब्रह्म भूत्वा बिभर्ति परमेष्ठिनम् ॥ ९ ॥

भा०—यह जगत् उसने चला रक्खा है, उस द्वारा उत्पन्न हुआ है, उस काल के आश्रय पर ही प्रतिष्ठित है। काल ही निश्चय से बृहत् स्वरूप होकर परम सत्य पर आश्रित समस्त ब्रह्माण्ड को धारण कर रहा है।

कुालः प्रुजा असृजत कुालो अग्रे प्रुजापतिम् ।
स्वयम्भूः कुश्यपः कुालात् तपः कुालादजायत ॥ १० ॥

भा०—काल ही प्रजाओं का सर्जन करता है। काल सृष्टि के आदि में प्रजा की पालक शक्तियों को उत्पन्न करता है। स्वयं अपनी शक्ति से विद्यमान, सबका द्रष्टा सूर्य काल से उत्पन्न हुआ सूर्यों में विद्यमान तपनशक्ति काल से उत्पन्न होती है।

(५४) कालरूप परम शक्ति

भृगुर्ऋषिः । कालो देवता । २ त्रिपदा गायत्री । ५ त्र्यवसाना षट्पदा विराड् अष्टिः । शेषाः अनुष्टुभः । पञ्चर्चं सूक्तम् ।

कालादापः समभवन् कालाद् ब्रह्म तपो दिशः ।
कालेनोदेति सूर्यः काले नि विशते पुनः ॥ १ ॥

भा०—काल से जल तथा प्रकृति के सूक्ष्म परमाणु उत्पन्न होते हैं । काल से वेद अथवा यह बृहत् ब्रह्माण्ड उत्पन्न होता है । उसी से तापकारी अग्नि, तपस्या और दिशाएं उत्पन्न होती हैं । काल के बल से सूर्य उदय होता है और वह फिर काल में अस्त होता है ।

कालेन वातः पवते कालेन पृथिवी मही ।
द्यौर्मही काल आहिता ॥ २ ॥

भा०—काल से वायु बहता है, काल से यह बड़ी पृथ्वी गति कर रही है और काल के आश्रय में विशाल द्यौः अर्थात् नक्षत्रचक्र भी आश्रित है ।

कालो ह भूतं भव्यं च पुत्रो अजनयत् पुरा ।
कालादृचः समभवन् यजुः कालादजायत ॥ ३ ॥

भा०—पूर्व सूक्त के ४र्थ मन्त्र में कहा पुत्ररूप काल निश्चय से सबसे प्रथम अतीत और भविष्यत् काल को उत्पन्न करता है । काल से ऋग्वेद के मन्त्र प्रादुर्भूत हुए और यजुर्वेद के मन्त्र भी काल से ही प्रकट हुए ।

कालो यज्ञं समैरयद्देवेभ्यो भागमक्षितम् ।
काले गन्धर्वाप्सरसः काले लोकाः प्रतिष्ठिताः ॥ ४ ॥

भा०—काल में ही यज्ञों की विधियां व्यवस्थित हैं । और काल से ही देवयज्ञों द्वारा देवों को यज्ञिय अक्षय भाग मिलता है । जो

नर मादा सभी काल के आश्रय पर विराजते हैं। लोक भी काल में प्रतिष्ठित हैं।

कालेऽयमङ्गिरा देवोऽथर्वा चाधि तिष्ठतः ।
इमं च लोकं परमं च लोकं पुण्यांश्च लोकान् विधृतीश्च पुण्याः ।
सर्वांल्लोकानभिजित्य ब्रह्मणा कालः स ईयते परमो नु देवः ॥५॥

भा०—काल पर यह अग्निमय सूर्य और वायु आश्रित हैं। वह काल अपने महान् सामर्थ्य से इस लोक को, उस दूर स्थित लोक को, समस्त पुण्य लोकों को, समस्त पुण्य मर्यादाओं को और समस्त लोकों को विजय करके, सर्वोच्च सर्वप्रकाशक जाना जाता है।

इति षष्ठोऽनुवाकः ।

[तत्र नव सूक्तानि, त्रिषष्टिर्ऋचः]

(५५) परमेश्वर की प्रातः सायं उपासना ।

भृगुर्ऋषिः । अग्निर्देवता । २ आस्तारपंक्तिः । ५ त्र्यवसाना पञ्चपदा पुरस्ताज्ज्योतिष्मती । शेषास्त्रिष्टुभः । षडृचं सूक्तम् ।

रात्रिंरात्रिमप्रयातं भरन्तोऽश्वायेव तिष्ठते घासमस्मै ।
रायस्पोषेण समिषा मदन्तो मा ते अग्ने प्रतिवेशा रिषाम ॥१॥
यजु० ११ । ७५ ॥ अथर्व० ३ । १५ । ८ ॥

भा०—हे विद्वान् राजन् ! घुड़साल में खड़े घोड़े के लिये जिस प्रकार विना प्रमाद के घास दिया जाता है उसी प्रकार प्रतिदिन भोग्य पदार्थों को साक्षात् तेरे लिये लाते हुए हम तेरे पड़ोसी, अन्न और ज्ञान से और धनैश्वर्य की पुष्टि द्वारा आनन्द प्रसन्न रहते हुए, कभी क्लेशित न हों।

या ते वसोर्वात इषुः सा त एषा तया नो मृड ।
रायस्पोषेण समिषा मदन्तो मा ते अग्ने प्रतिवेशा रिषाम ॥ २ ॥

भा०—हे विद्वन् ! जो तेरी धन के प्राप्त करने में इच्छा है वह तेरी प्रसिद्ध है, उस द्वारा हमें सुखी कर। हे ज्ञानवन् ! तेरे आश्रय में रहने वाले हम अन्न और धनैश्वर्य की पुष्टि से आनन्द प्रसन्न होते हुए कभी क्लेशित न हों।

सायंसायं गृहपतिर्नो अग्निः प्रातःप्रातः सौमनसस्य दाता ।
वसोर्वसोर्वसुदान एधि वयं त्वेन्धानास्तन्वं पुषेम ॥ ३ ॥

भा०—हमारे गृह का स्वामी परमेश्वर प्रत्येक सायंकाल और प्रत्येक प्रातःकाल उत्तम मनः-स्थिति अर्थात् मानसिक स्वस्थता का देने वाला है। हे परमेश्वर ! आप प्रत्येक प्रकार के ऐश्वर्य के प्रदाता हो। हम तेरे गुणों का प्रकाश करते हुए अपने शरीर को पुष्ट करें।

प्रातःप्रातर्गृहपतिर्नो अग्निः सायंसायं सौमनसस्य दाता ।
वसोर्वसोर्वसुदान एधीन्धानास्त्वा शतं हिमा ऋधेम ॥ ४ ॥

भा०—हमारे गृहों का पालक ईश्वर प्रति प्रातः सायम् शुभ चित्त, विचारों और सुखों का प्रदाता है। वह आप प्रत्येक ऐश्वर्य का उत्तम रूप से दान करने वाले रहें। हे ईश्वर ! हम आपको प्रज्वलित करते हुए सौ वर्षों तक समृद्ध हों।

अपश्चा दग्धान्नस्य भूयासम् ।
अन्नादायान्नपतये रुद्राय नमो अग्नये ।
सभ्यः सभां मे पाहि ये च सभ्याः सभासदः ॥ ५ ॥

भा०—हे परमेश्वर ! मैं जीर्ण अन्न के पीछे न रहूँ। अर्थात् मैं मंदाग्नि न रहूँ। अन्न को स्वीकार करने वाले, अन्न के परिपालक, दुष्टों को रुलाने वाले ज्ञानवान्, दुष्ट-संतापक राजा के लिये नमस्कार है।

हे राजन् ! तू स्वयं सभा में सबसे उत्तम है। तू मेरी सभा का पालन कर। और जो सभा में विराजने वाले, सभा में साधु, विद्वान् पुरुष हैं उनकी तू रक्षा कर।

त्वमि॑न्द्रा पुरुहूत॒ विश्व॒मायु॒र्व्य॑श्नवत् ।
अह॑रह॒र्ब॒लिमि॒त्ते हर॒न्तोऽश्वा॑येव॒ तिष्ठ॑ते घा॒सम॑ग्ने ॥ ६ ॥

भा०—हे बहुत से राजाओं से आदर पूर्वक निमन्त्रण करने योग्य या प्रजाओं द्वारा अपनी आपत्तियों के अवसर पर बुलाये जाने वाले ऐश्वर्यवन् राजन् ! तू अपने सम्पूर्ण जीवन का भोग कर । और हे नेतः ! सदा जागृत होकर रक्षार्थ खड़े रहते हुए तेरे लिये प्रतिदिन अश्व के निमित्त चारे के समान, नाना खाद्यों और उपभोग्य पदार्थों को बलि या राष्ट्र-कर के रूप में लाते हुए हम तुझे सदा पुष्ट करते रहें ।

(५६) दिव्य स्वप्न

यम ऋषिः । दुःस्वप्ननाशनो देवता । त्रिष्टुभः । षडृचं सूक्तम् ।

य॒मस्य॑ लो॒कादध्या ब॑भूवि॒थ प्रम॑दा मर्त्या॑न् प्र यु॑नक्ति॒ धीरः॑ ।
ए॒का॒कि॒ना॑ स॒रथं॑ यासि वि॒द्वान्त्स्वप्नं॒ मिमा॑नो॒ असु॑रस्य॒ योनौ॑ ॥१॥

भा०—हे संयमी पुरुष ! तू सहवास से सर्वनियन्ता प्रभु के प्राणों पर अधिष्ठातारूप से प्रकट हुआ है । तू धीर होकर प्रसन्नता से सब मनुष्यों को उत्तम मार्ग में लगा । तू विद्वान् अकेले रहने वाले प्रभु के साथ एक शरीररथ द्वारा विचर रहा है । और उस प्राणदाता की गोद में रह कर दिव्यस्वप्नों का निर्माण करता है ।

ब॒न्धस्त्वाग्रे॑ वि॒श्वच॑या अपश्यत् पु॒रा रात्र्या॒ जनि॑तो॒रेके॒ अह्नि॑ ।
तत॑ः स्वप्ने॒दमध्या ब॑भूविथ भि॒षग्भ्यो॑ रू॒पम॑प॒गूह॑मानः ॥२॥

भा०—हे दिव्य आध्यात्मिक स्वप्न ! मृत्यु की रात्रि से पूर्व किसी सौभाग्यशाली दिन में विश्व को चमन करने वाला प्रभु तेरा बन्धु होकर तुझे कृपा दृष्टि से देखता है तब हे स्वप्न ! तू शरीर में प्रकट होता है । तेरे उस स्वरूप को वैद्य नहीं समझ पाते ।

बृ॒हद्गा॒वासु॑रे॒भ्योऽधि॑ दे॒वानु॒पाव॑र्तत महि॒मान॑मि॒च्छन् ।
तस्मै॒ स्वप्ना॑य दधु॒राधि॑पत्यं त्रय॒स्त्रिंशासः॒ स्व॑ऽरानशा॒नाः ॥३॥

भा०—बड़ी गति देने वाला यह आध्यात्मिक स्वप्न भी प्राणमयी शक्तियों से उठकर दिव्य शक्ति वाले को प्राप्त होता है और उनकी महिमा को बढ़ाता है। वे ३३ दिव्य शक्तियां इस दिव्य स्वप्न के प्रति आत्मसमर्पण कर देती हैं और स्वर्गीय सुख का भोग करने लगती हैं।

नैतां विदुः पितरो नोत देवा येषां जल्पिश्चरत्यन्तरेदम्।
त्रिते स्वप्नमदधुराप्त्ये नर आदित्यासो वरुणेनानुशिष्टाः ॥ ४ ॥

भा०—पितृगण और देवगण भी इस दिव्य स्वप्न के स्वरूप को नहीं जानते जो कि जल्पवाद के बखेड़े में विचरा करते हैं। वरुण परमात्मा के अनुशासन में रहने वाले तेजस्वी गुरु लोग परम आप्त और संसार सागर से तरे हुए व्यक्ति में इस दिव्य स्वप्न का आधान करते हैं। सूर्य के समान तेजस्वी पुरुष सर्वश्रेष्ठ परमात्मा से उपदेश प्राप्त करके आलस्य-प्रमादयुक्त स्वप्न को आप्तों के हितकारी त्रित, तीनों वेदों के ज्ञाता पुरुष पर या आप्त=आत्मा के हितकारी ज्ञानेन्द्रिय, कर्मेन्द्रिय और मन सब पर वश करने वाले प्राण में धारण करते हैं। अर्थात् प्राण पर वश करने से स्वप्न वृत्ति पर भी वशीकार हो जाता है।

यस्य क्रूरमभजन्त दुष्कृतोऽस्वप्नेन सुकृतः पुण्यमायुः।
स्वर्मदसि परमेण बन्धुना तप्यमानस्य मनसोऽधि जज्ञिषे ॥५॥

भा०—दुष्ट काम करने वाले पापभागी लोग स्वप्न के क्रूर स्वरूप को अर्थात् प्राकृतिकस्वरूप को भोगते हैं और उत्तम काम करने वाले पुण्यात्मा लोग ऐन्द्रियिक स्वप्नों के त्याग द्वारा पुण्य आयु प्राप्त करते हैं। हे दिव्य स्वप्न! तू तपस्या करने वाले के मन से जन्म लेता है। और परमबन्धु परमात्मा के साथ सुख में मस्त हो जाता है।

विद्म ते सर्वाः परिजाः पुरस्ताद् विद्म स्वप्न यो अधिपा इहा ते।
यशस्विनो नो यशसेह पाह्याराद् द्विषेभिरप याहि दूरम् ॥६॥

भा०—हे आध्यात्मिक स्वप्न ! तेरी सब साथ साथ उत्पन्न होने वाली प्रवृत्तियों को हम पहले ही से जानते हैं। और जो तेरा अधिष्ठाता तुझे अपने वश में रखने वाला है उसको भी हम जानते हैं। इस लोक में हम यशस्वी पुरुषों का यश द्वारा पालन कर और द्वेष भावनाओं से तू परे रह।

(५७) आलस्य प्रमाद को दूर करने का उपाय

यम ऋषिः। दुःस्वप्ननाशनो देवता। १ अनुष्टुप्। २, ३ त्र्यवसाना चतुष्पदा त्रिष्टुप्। ४ उष्णिग् बृहतीगर्भा विराड् शक्वरी च। ५ त्र्यवसाना पञ्चपदा परशाक्वराति जगती। मन्चर्चं सूक्तम्।

यथा॑ क॒लां यथा॑ श॒फं य॒थर्णं॑ सं॒ नय॑न्ति।
ए॒वा दु॒ष्वप्न्यं॒ सर्व॑मप्रि॒ये सं नया॑मसि ॥ १ ॥

भा०—जिस प्रकार एक एक कला करके चन्द्र नामशेष हो जाता है और जिस प्रकार एक एक पैर रखते रखते मार्ग तय हो जाता है और जिस प्रकार थोड़ा थोड़ा करके ऋण चुक जाता है, उसी प्रकार हम आलस्य त्याग दें। आलस्य को अप्रिय पक्ष का जान कर उसे हम त्याग दें।

सं राजा॑नो अगुः॒ समृ॒णान्य॑गुः॒ सं कु॒ष्ठा अ॑गुः॒ सं क॒ला अ॑गुः।
सम॒स्मासु॒ यद् दु॒ष्वप्न्यं॒ निर्द्वि॑ष॒ते दु॒ष्वप्न्यं॑ सुवाम ॥ २ ॥

भा०—जैसे राजा लोग युद्ध काल में एक एक करके बहुत से एकत्र हो जाते हैं, जैसे ऋण जुड़ते जुड़ते बहुत से एकत्र हो जाते हैं, जैसे कुत्सित त्वचा के रोग जमा होते होते एकत्र हो जाते हैं और जिस प्रकार चन्द्र में कलाएं जुड़ती जुड़ती एकत्र हो जाती हैं, उसी प्रकार जो दुःखदायी स्वप्न, निद्रा या आलस्य की मात्रा है वह भी क्रम से हममें एकत्र होती जाती है। हम उस दुःखदायी स्वप्न या आलस्य को द्वेषपक्ष का जान कर उसे त्याग दें।

देवानां पत्नीनां गर्भ यमस्य कर यो भद्रः स्वप्न।
स मम यः पापस्तद् द्विषते प्र हिण्मः।
मा तृष्टानामसि कृष्णशकुनेर्मुखम् ॥ ३॥

भा०—हे निद्रा प्रमाद! तू विषयों में खेलने वाली इन्द्रियों की शक्तियों या वृत्तियों से उत्पन्न होता है। और तू बन्धनकारी प्रभाव का उत्पन्न करने वाला है। हे स्वप्न! जो तेरा रूप कल्याण और सुखकारी है उस रूप में तू मुझे प्राप्त हो और जो पापजनक रूप है उसको द्वेषपक्ष में हम रखते हैं। हे स्वप्न! तू हमें प्राप्त न हो तू विषय-तृष्णालुओं को प्राप्त होता है और काले तथा शक्तिशाली पाप का मुख अर्थात् प्रवर्त्तक है।

तं त्वा स्वप्न तथा सं विद्म स त्वं स्वप्नाश्व इव कायमश्व इव नीनाहम्। अनास्माकं देवपीयुं पियारुं वप ॥ ४॥

भा०—हे आध्यात्मिक स्वप्न! उस तुझको हम भली प्रकार जान गये हैं। इसलिये जिस प्रकार घोड़ा अपने शरीर को कंपा कर धूल झाड़ देता है और जिस प्रकार घोड़ा अपने पर बंधी काठी आदि को कंपा कर गिरा देता है, उसी प्रकार तू उन दुर्भावों को' हमसे दूर कर जो कि हमारे नहीं हैं, देवों को कष्ट देने वाले हैं, और हिंसाकारी हैं।

यदस्मासु दुष्वप्न्यं यद् गोषु यस्य नो गृहे।
अनास्माकस्तद् देवपीयुः पियारुर्निष्कमिव प्रति मुञ्चताम्।
नवारत्नीनपमया अस्माकं ततः परि।
दुष्वप्न्यं सर्वं द्विषते निर्दयामसि ॥ ५॥

भा०—जो हममें, जो हमारे गौ आदि पशुओं या इन्द्रियों में, और जो हमारे घर में या देह में दुःख पूर्वक शयन आदि का कष्ट है, उसको हमारा शत्रु जो कि विद्वानों का पीड़क और हिंसक पुरुष है स्वर्ण के

आभूषण के समान धारण करे । हे स्वप्न ! आलस्य ! तू हमारे गृह आदि से नौ हाथों परे हट जा । हम अपने दुःखदायी आलस्य, प्रमाद और दुःखपूर्वक निद्रा आदि को द्वेषपक्ष में स्थापित करते हैं ।

(५८) दीर्घ और सुखी जीवन का उपाय

ब्रह्मा ऋषिः । मन्त्रोक्ता बहवो देवता उत यज्ञो देवता । १, ४, ६ त्रिष्टुभः । २ पुरोऽनुष्टुप् । ३ चतुष्पदा अतिशक्वरी । ५ भुरिक् । षड्‌चं सूक्तम् ।

घृतस्य॑ जू॒तिः सम॑ना सदे॑वा संवत्स॒रं ह॒विषा॑ व॒र्धय॑न्ती ।
श्रोत्रं॒ चक्षुः॑ प्रा॒णोऽच्छि॑न्नो नो अस्त्वच्छि॑न्ना व॒यमायु॑षो॒ वर्च॑सः ॥१॥

भा०—तेजःस्वरूप परमेश्वर की ज्योतिः ज्ञान से युक्त है । वह सूर्य, अग्नि, वायु आदि देवों के सहित हैं उनको अपने में धारण करने वाली है । वह ज्योति प्राणियों के निवास के एकमात्र आश्रय परमेश्वर को समस्त ज्ञानमय प्रपञ्च द्वारा उसकी महिमा को बढ़ाती हुई सर्वत्र व्याप्त है । उसकी कृपा से हमारे कान, आंखें और प्राण कभी विनष्ट न हों । और हम दीर्घ आयु और तेज से भी रहित न हों ।

(१) जूतिः—सर्वेषां गत्यर्थानां ज्ञानार्थत्वात् जूतिशब्देन सर्वत्र प्रसृतं ज्ञानमुच्यते अतएव ऐतरेयकाः मतिर्मनीषा जूतिः स्मृतिः सङ्कल्पः क्रतुरसुः कामो वश इति सर्वाण्येवैतानि प्रज्ञानस्य नामधेयानि भवन्ति । ऐ० आ० २ । ६ । १ ॥ घृतस्य जूतिरिति परमात्मनः स्वरूपविषयं ज्ञानम् । इति सायणः ।

(२) 'घृतस्य' दीप्तस्य परमतेजसः, इति सायणः ।

उपा॒स्मान् प्रा॒णो ह्व॑यता॒मुप॑ व॒यं प्रा॒णं ह॑वामहे ।
वर्चो॑ जग्राह पृथि॒व्य॑न्तरि॑क्षं॒ वर्चः॒ सोमो॒ बृह॒स्पति॑र्विध॒र्त्ता ॥२॥

भा०—प्राण हमें धारण करे और हम उस प्राण को धारण करें । सत्य अग्नि को धारण करती है । पिता तेज को धारण करता है । शिष्य और आचार्य दोनों भी तेज और ज्ञान को विशेष रूप से धारण करते हैं ।

वर्चसा द्यावापृथिवी संग्रहणी बभूवथुर्वर्चो गृहीत्वा पृथिवीमनु सं चरेम । यशसं गावो गोपतिमुप तिष्ठन्त्यायतीर्यशो गृहीत्वा पृथिवीमनु सं चरेम ॥ ३ ॥

भा०—माता और पिता दोनों तेज को उत्तम रीति से धारण किये रहते हैं, उसी प्रकार हम लोग तेज धारण करके पृथिवी पर विचरें । गौएं जिस प्रकार यशस्वी गोपालक को प्राप्त होती हैं, उसी प्रकार आती हुई गौओं को और यश को ग्रहण करके हम पृथिवी पर विचरें ।

व्रजं कृणुध्वं स हि वो नृपाणो वर्मा सीव्यध्वं बहुला पृथूनि ।
पुरः कृणुध्वमायसीरधृष्टा मा वः सुस्रोच्चमसो दृंहता तम् ॥४॥

भा०—हे मनुष्यो ! गौओं के रहने के लिये बड़ी बड़ी गोशाला बनाओ । यह गोशाला निश्चय से तुम्हारी सब पालना करने में समर्थ है । और बहुत से बड़े बड़े कवच सीयो । लोहे की दृढ़ नगरियां, जिन पर शत्रु अपना बल न जमा सकें, बनाओ । तुम्हारा पात्र अर्थात् अन्न जल आदि के रखने का साधन मत चूए । उसको खूब दृढ़ करो ।

यज्ञस्य चक्षुः प्रभृतिर्मुखं च वाचा श्रोत्रेण मनसा जुहोमि ।
इमं यज्ञं विततं विश्वकर्मणा देवा यन्तु सुमनस्यमानाः ॥ ५ ॥

भा०—व्याख्या देखो [अथर्व० २ । ३५ । ५ ॥] ।

ये देवानामृत्विजो ये च यज्ञिया येभ्यो हव्यं क्रियते भागधेयम् ।
इमं यज्ञं सह पत्नीभिरेत्य यावन्तो देवास्तविषा मादयन्ताम् ॥६॥

भा०—विद्वानों में से जो विद्वान् यज्ञसम्पादक पुरुष हैं, और जो यज्ञ में पूजा के योग्य हैं, और जिनके लिये विशेष अंश हवि रूप से तैयार किया जाता है, वे जितने भी महान्, विद्वान् पुरुष हैं वे अपनी धर्मपत्नियों सहित इस यज्ञ में आकर तृप्त हों, प्रसन्न हों ।

(५९) विद्वानों की सेवा और अनुसरण करने की आज्ञा

ब्रह्मा ऋषिः । अग्निर्देवता । १ गायत्री । २, ३ त्रिष्टुभौ । तृचं सूक्तम् ।

त्वमग्ने व्रतपा असि देव आ मर्त्येष्वा ।
त्वं यज्ञेष्वीड्यः ॥ १ ॥

भा०—हे परमेश्वर और ज्ञानी आचार्य ! तू व्रतों को पालन करने वाला है और मरणधर्मा मनुष्यों में भी तू उपास्य देव रूप से विख्यात है । तू ही यज्ञों में भी स्तुति किया जाता है ।

यद् वो वयं प्रमिनाम व्रतानि विदुषां देवा अविदुष्टरासः ।
अग्निष्टद् विश्वादा पृणातु विद्वान्त्सोमस्य यो ब्राह्मणाँ आविवेश २

भा०—हे विद्वान् पुरुषो ! आप लोगों के व्रतों और शुभकर्मों को सर्वथा न जानने वाले, उनसे बहुत ही अनभिज्ञ होकर हम लोग जो कुछ भी त्रुटि करदें उसको विद्वान् सब प्रकार से पूर्ण करे, हमारी त्रुटियों को दूर करे, जो विद्वान् कि सर्वप्रेरक परमेश्वर का जानने हारा होकर ब्राह्मणों में आदर पूर्वक विराजमान है ।

आ देवानामपि पन्थामगन्म यच्छक्नवाम तदनुप्रवोढुम् ।
अग्निर्विद्वान्त्स यजात् स इद्धोता सोध्वरान्त्स ऋतून् कल्पयाति ॥ ३ ॥

भा०—हम लोग विद्वान् पुरुषों के मार्ग का अनुसरण करें, जितना भी उनका अनुसरण करने में समर्थ हो सकें उतना अवश्य अनुसरण करें । ज्ञानवान् परमेश्वर ही सब कुछ जानता है । वह सब कुछ प्रदान करता है । वह सबको देने वाला और सबकी भक्ति को स्वीकार करने वाला है । वह समस्त हिंसारहित यज्ञों को और वही ऋतुओं को उत्पन्न करता है ।

(६०) शरीर के अंगों में शक्तियों की याचना

ब्रह्मा ऋषिः । मन्त्रोक्ता वागादयो देवताः । १ पथ्या बृहती । २ ककुम्मती पुर उष्णिक । द्वयृचं सूक्तम् ।

वाङ्म आसन्नसोः प्राणश्चक्षुरक्ष्णोः श्रोत्रं कर्णयोः ।
अपलिताः केशा अशोणा दन्ता बहु बाह्वोर्बलम् ॥ १ ॥

भा०—मेरे मुख में वाणी शक्ति रहे। दोनों नासिकाओं में प्राण बराबर चलें। दोनों आंखों में दर्शनशक्ति विद्यमान रहे। दोनों कानों में श्रवणशक्ति विद्यमान रहे। मेरे केश कभी पलित अर्थात् श्वेत न हों। दांत मेरे न झड़ें। बाहुओं में मेरे बहुत सा बल प्राप्त हो।

ऊर्वोरोजो जङ्घयोर्जवः पादयोः प्रतिष्ठा।
अरिष्टानि मे सर्वा [ऽङ्गान्या] त्मानिभृष्टः ॥ २ ॥

भा०—टांगों में बल प्राप्त हो, जंघाओं में वेग हो, पैरों में खड़े होने की शक्ति प्राप्त हो। मेरे सब अंग पीड़ा रहित हों। और मेरा समस्त देह और आत्मा नीचे न गिरने वाला, एवं संताप से रहित हो।

(६१) सुख, शक्ति की प्रार्थना

ब्रह्मा ऋषिः। ब्रह्मणस्पतिर्देवता। विराट् पथ्या बृहती। एकर्चं सूक्तम्।

तनूस्तन्वा मे सहे दतः सर्वमायुरशीय।
स्योनं मे सीद पुरुः पृणस्व पवमानः स्वर्गे ॥ १ ॥

भा०—हे परमेश्वर ! शरीर मेरे शरीरव्यापी बल के साथ रहे। इस शरीर से मैं सम्पूर्ण आयु का भोग करूं। हे ईश्वर ! तू मेरे शरीर को सुखपूर्वक रख। हे सबको पूर्ण करने वाला प्रभु ! तू पवित्र करता हुआ सुखमय लोक में मुझे पूर्ण व पालन कर।

(६२) सर्वप्रिय होने की प्रार्थना

ब्रह्मा ऋषिः। ब्रह्मणस्पतिर्देवता। अनुष्टुप्। एकर्चं सूक्तम्।

प्रियं मा कृणु देवेषु प्रियं राजसु मा कृणु।
प्रियं सर्वस्य पश्यत उत शूद्र उतार्ये ॥ १ ॥

भा०—हे परमेश्वर ! मुझको ज्ञानमद पुरुषों के बीच में प्रिय बना। राजाओं के बीच में मुझे प्रिय बना। सबके देखते हुए, चाहे वे शूद्र हों, चाहे वे आर्य हों, सबके बीच में मुझे सबका प्रिय बना दे।

(६३) ज्ञान और आयु आदि सम्पदाओं की वृद्धि की याचना

ब्रह्मा ऋषिः । ब्रह्मणस्पतिर्देवता । विराड् उपरिष्टाद् बृहती । एकर्चं सूक्तम् ।

उत् तिष्ठ ब्रह्मणस्पते देवान् यज्ञेन बोधय ।
आयुः प्राणं प्रजां पशून् कीर्तिं यजमानं च वर्धय ॥ १ ॥

भा०—हे वेदों और ब्रह्माण्ड के पालक प्रभो ! और वेद के पालक विद्वान् ! तू उठ, उदय हो । विद्वानों को देव की उपासना से परिचित कर, सबको उपासना का उपदेश कर । और आयु, प्राण, प्रजा, पशुगण, कीर्ति और यजमान को भी बढ़ा ।

(६४) आचार्य और परमेश्वर से ज्ञान और दीर्घायु की प्राप्ति

ब्रह्मा ऋषिः । अग्निर्देवताः । अनुष्टुभः । चतुर्ऋचं सूक्तम् ।

अग्ने समिधमाहार्षं बृहते जातवेदसे ।
स मे श्रद्धां च मेधां च जातवेदाः प्र यच्छतु ॥ १ ॥

भा०—हे ज्ञानवान् आचार्य ! अति विद्वान् होने के लिये, अग्नि के प्रति काष्ठ के समान, भली प्रकार तेरी संगति से ज्ञान द्वारा प्रज्वलित होने वाले अपने आत्मा को तेरे पास मैं लाया हूँ । वेदों को जानने हारा विद्वान् तू मुझे श्रद्धा अर्थात् सत्य ज्ञान धारण करने का सामर्थ्य और पवित्र ज्ञान समझने और प्रकट करने वाली प्रतिभा शक्ति प्रदान कर ।

इध्मेन त्वा जातवेदः समिधा वर्धयामसि ।
तथा त्वमस्मान् वर्धय प्रजया च धनेन च ॥ २ ॥

भा०—हे ज्ञानवन् गुरो ! जिस प्रकार अच्छी प्रकार प्रदीप्त होने वाले काष्ठ द्वारा अग्नि की दीप्ति को बढ़ा दिया जाता है, उसी प्रकार हम तेरी संगति लाभ करके ज्ञान द्वारा प्रदीप्त हुई आत्मा से तुझे बढ़ाते हैं, तेरे ही गौरव की वृद्धि करते हैं । तू भी हमको उत्तम सन्तान और धन से बढ़ा ।

यदग्ने यानि कानि चिदा ते दारूणि दध्मसि ।
सर्वं तदस्तु मे शिवं तज्जुषस्व यविष्ठ्य ॥ ३ ॥

(प्र० द्वि० च०) ऋ० ९ । १०२ । २० ॥ यजु० ९ । ७३ ॥

भा०—हे ज्ञानवन् परमेश्वर या आचार्य ! तेरे प्रति हम जो कुछ भी, अग्नि में काष्ठों के समान, पदार्थ या आदरपूर्वक स्तुतियां उपस्थित करते हैं, उस सब को हे पूज्यतम ! आप प्रेम से स्वीकार करो । वह सब मुझे कल्याणकारी हो ।

एतास्ते अग्ने समिधस्त्वमिद्धः समिद् भव ।
आयुरस्मासु धेह्यमृतत्वमाचार्याय ॥ ४ ॥

भा०—हे परमेश्वर ! तेरे ये सब महान् तेज हैं । तू देदीप्यमान होकर हृदय में प्रकाशित हो । हमें दीर्घ आयु प्रदान कर और आचार्य को मोक्ष प्रदान कर ।

(६५) उच्चपद प्राप्ति के साधन का उपदेश

ब्रह्मा ऋषिः । जातवेदाः सूर्यश्च देवते । जगती । एकर्चं सूक्तम् ।

हरिः सुपर्णो दिवमारुहोऽर्चिषा ये त्वा दिप्सन्ति दिवमुत्पतन्तम् ।
अव तां जहि हरसा जातवेदोऽबिभ्यदुग्रोऽर्चिषा दिवमा रोह सूर्य ॥ १ ॥

भा०—हे प्रज्ञावान् ! ऐश्वर्यवान् ! हे सूर्य के समान तेजस्विन् ! तू अन्धकार को नाश करके उत्तम ज्ञानवान् होकर अपनी ज्ञानमय दीप्ति से तेजोमय पद, मोक्ष या ईश्वर को प्राप्त हो । उस समय जो भी उस तेजोमय ब्रह्मपद को प्राप्त करते हुए तुझको विनाश करते हों, तुझे अपने उत्तम मार्ग से भ्रष्ट करना चाहते हैं, तू उनको अपने संहारकारी तेज से विनष्ट कर डाल । और निर्भय होकर प्रचण्ड रहकर अपने तेजोबल से सूर्य जिस प्रकार अपने प्रचण्ड ताप सहित मध्य आकाश में चढ़ जाता है उसी प्रकार तू भी उस महान्, उच्च, परम तेजोमय ब्रह्मपद को प्राप्त हो ।

इसी प्रकार राजा को भी यही उपदेश है। तू शत्रुओं का संहारक होने से 'हरि', उत्तम पालन शक्ति से युक्त होने से 'सुपर्ण' है। वह तू अपने तेज से सूर्य के समान उच्च पद को प्राप्त हो। जो तेरा नाश करना चाहते हैं, उनको अपने क्रोध से विनष्ट कर और तू स्वयं निर्भय, बलवान् होकर, अपने तेज से उच्च पद पर आरूढ़ हो।

(६६) दुष्ट दमन और प्रजा पालन

ब्रह्मा ऋषिः। जातवेदाः सूर्यः वज्रश्च देवताः। अतिजगती। एकर्चं सूक्तम्।

अयोजाला असुरा मायिनोऽयस्मयैः पाशैरङ्किनो ये चरन्ति। तांस्ते रन्धयामि हरसा जातवेदः सहस्रऋष्टिः सपत्नान् प्रमृणन् पाहि वज्रः ॥ १ ॥

भा०—लोहे के जाल धारण करने वाले, विद्या के जानने वाले शक्तिशाली लोग, अङ्कों से युक्त होकर लोहे के बने पाशों सहित विचरते हैं। हे राजन्! तेरे तेजोमय बल से उनको वश करूं, भून डालूं। और तू हज़ारों भालों या 'ऋष्टि' नामक घातक शस्त्रों से सुसज्जित होकर, शत्रुओं को विध्वंस करता हुआ हमारी रक्षा कर।

(६७) दीर्घ जीवन की प्रार्थना

ब्रह्मा ऋषिः। सूर्यो देवता। प्राजापत्या गायत्र्यः। अष्टर्चं सूक्तम्।

पश्येम शरदः शतम् ॥ १ ॥ जीवेम शरदः शतम् ॥ २ ॥ बुध्येम शरदः शतम् ॥ ३ ॥ रोहेम शरदः शतम् ॥ ४ ॥ पूषेम शरदः शतम् ॥ ५ ॥ भवेम शरदः शतम् ॥ ६ ॥ भूयेम शरदः शतम् ॥ ७ ॥ भूयसीः शरदः शतात् ॥ ८ ॥

भा०—हम सौ बरसों तक देखें ॥ १ ॥ सौ बरसों तक जीवें ॥२॥ सौ बरसों तक ज्ञान प्राप्त करें ॥३॥ सौ बरसों तक वृद्धि को प्राप्त हों। ॥४॥ सौ बरसों तक पुष्टि प्राप्त करें ॥५॥ सौ बरसों तक समर्थ होकर

रहें ॥६॥ सौ बरसों तक सत्तावान् होकर रहें ॥७॥ सौ से भी बहुत अधिक वर्षों तक हम देखें, जीवें, समझें, बढ़ें, पुष्ट हों, समर्थ रहें और सत्तावान् बने रहें ॥ ८ ॥

(६८) वेदज्ञान-प्राप्ति का उपदेश

ब्रह्मा ऋषिः । कर्म देवता । अनुष्टुप् । एकर्चं सूक्तम् ।

अव्यसश्च व्यचसश्च बिलं वि ष्यामि मायया ।
ताभ्यामुद्धृत्य वेदमथ कर्माणि कृण्महे ॥ १ ॥

भा०—अव्यापक और व्यापक के मर्म या सूक्ष्मभेद को मैं बुद्धि द्वारा विवेचन करूं। और उन व्यापक और अव्यापक दोनों प्रकार के पदार्थों को जानने के लिये वेद को लेकर उसके बाद हम लोग उत्तम कर्मों का सम्पादन करें ।

(६९) पूर्णायु प्राप्ति का उपदेश

ब्रह्मा ऋषिः । आपो देवताः । १ आसुरी अनुष्टुप । २ साम्नी अनुष्टुप् । ३ आसुरी गायत्री । ४ साम्नी उष्णिक । १—४ एकावसानाः । चतुर्ऋचं सूक्तम् ।

जीवा स्थ जीव्यासं सर्वमायुर्जीव्यासम् ॥ १ ॥ उपजीवा स्थोप जीव्यासं सर्व० ॥ २ ॥ संजीवा स्थ सं जीव्यासं सर्व० ॥ ३ ॥ जीवला स्थ जीव्यासं सर्वमायुर्जीव्यासम् ॥ ४ ॥

भा०—हे जलों के समान आप्तजनो ! आप जीवन अर्थात् प्राण धारण कराने में समर्थ हो । जीवन को और भी अधिक बढ़ाने में समर्थ हो । मैं और भी अधिक जीवन धारण करूं । आप भली प्रकार जीवनप्रद हो । मैं उत्तम रीति से जीवन धारण करूं । तुम जीवनतत्व को प्राप्त करा देने वाले हो । मैं जीता रहूँ और सम्पूर्ण आयु जीवित रहूँ ।

(७०) पूर्णायु प्राप्ति

ब्रह्मा ऋषिः । इन्द्रसूर्यादयो देवताः । गायत्री । एकर्चं सूक्तम् ।

इन्द्र जीव सूर्य जीव देवा जीवा जीव्यासमहम् ।
सर्वमायुर्जीव्यासम् ॥ १ ॥

भा०—हे ऐश्वर्यवान् परमेश्वर ! या वायो ! तू हमें जीवन धारण करा । हे सूर्य ! और हे पृथिवी, अग्नि, विद्युत् आदि पदार्थो ! आप सब भी जीवन प्रदान करो । मैं जीता रहूँ और सम्पूर्ण आयु भर जीवन धारण करूं ।

(७१) वेदमाता की स्तुति, आयु आदि की प्राप्ति

ब्रह्मा ऋषिः । गायत्री देवता । त्र्यवसाना पञ्चपदी अतिजगती । एकर्चं सूक्तम् ।

स्तुता मया वरदा वेदमाता प्र चोदयन्तां पावमानी द्विजानाम् ।
आयुः प्राणं प्रजां पशुं कीर्तिं द्रविणं ब्रह्मवर्चसम् ।
मह्यं दत्त्वा व्रजत ब्रह्मलोकम् ॥ १ ॥

भा०—ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य को जन्म और विद्याध्ययन से पवित्र करने वाली, उत्तम वरण करने योग्य माता या वेदमय ज्ञानों को भी उत्पन्न करने वाली परमेश्वरी शक्ति का मैं गुणानुवाद करता हूँ । समस्त विद्वान्गण भी उसी का भली प्रकार उपदेश करें । हे विद्वान् पुरुषो ! आप लोग मुझे दीर्घ जीवन, प्राणशक्ति, उत्तम सन्तान, उत्तम पशु, कीर्त्ति और धन-ऐश्वर्य और ब्रह्मतेज इन सब का उपदेश करके आप भी उस महान् परमेश्वर पद को प्राप्त होओ ।

(७२) परमात्मा का वर्णन

भृग्वंगिराः ब्रह्मा ऋषिः परमात्मा देवता । त्रिष्टुप् । एकर्चं सूक्तम् ।

यस्मात् कोशादुदभराम वेदं तस्मिन्नन्तरव दध्म एनम् ।
कृतमिष्टं ब्रह्मणो वीर्येण तेन मा देवास्तपसावतेह ॥ १ ॥

भा०—जिस अक्षय कोश या ज्ञान के भण्डार परम प्रभु से हम लोग वेद को लेते हैं पुनः उस ही के भीतर उसको फिर धर देते हैं ।

हम उसके प्रति उस ज्ञान को भेट कर देते हैं। वेद और परमेश्वर के जिस वीर्य से समस्त कर्म किये जाते और यज्ञ, याग और उपासना किया जाता है, उस तप से ही हे विद्वान् पुरुषो! इस लोक में मेरी भी रक्षा करो।

इति सप्तमोऽनुवाकः ।

[तत्र अष्टादश सूक्तानि त्रिपञ्चाशद् ऋचः]

इत्येकोनविंशं काण्डं समाप्तम् ।

सप्तानुवाका एकोनविंशे सूक्तानि संख्यया ।
द्व्यधिका सप्ततिः प्रोक्ता ब्रह्मवेदविचक्षणैः ॥

बाणवस्वङ्कचन्द्राब्द-फाल्गुणासितपक्षके ।
रवौ प्रतिपदायां चैकोनविंशं समाप्यत ॥

इति प्रतिष्ठितविद्यालंकारमीमांसातीर्थविरुदोपशोभित-श्रीमत्पण्डितजयदेवशर्मणा विरचितेऽथर्वणो ब्रह्मवेदस्यालोकभाष्ये एकोनविंशं काण्डं समाप्तम् ।

॥ ओ३म् ॥

अथ विंशं काण्डम्

(१) राजा और परमेश्वर का वर्णन

ऋचा क्रमतो विश्वामित्रगोतमौविरूपा ऋषयः। इन्द्रमरुदग्नयो देवताः। गायत्र्यः। तृचं सूक्तम्।

इन्द्र॑ त्वा वृष॒भं व॒यं सु॒ते सोमे॑ हवामहे।
स पा॑हि॒ मध्वो॒ अन्ध॑सः ॥ १ ॥

भा०—हे परमेश्वर ! योगाभ्यास के अवसर पर ब्रह्मानन्द रस के उत्पन्न होने पर सुखों की वर्षा करने वाले आनन्दघन तुझको हम अभ्यासी जन पुकारते हैं। वह तू प्राण के पालक और धारण करने वाले परमानन्द रस की रक्षा करता है।

राजा के पक्ष में—राष्ट्र के बन जाने पर हे राजन् ! तुझ महाबलवान् को हम आदर से बुलाते हैं। वह तू मधुर अन्न आदि भोग्य पदार्थों और प्राणधारी जीवों, प्रजाओं का पालन कर।

मरु॑तो॒ यस्य॒ हि क्षये॑ पा॒था दि॒वो वि॑महसः।
स सु॑गो॒पात॑मो॒ जनः॑ ॥ २ ॥

भा०—वह पुरुष उत्तम रक्षक है जिसकी शरण में रहकर तेजोमय महान् सामर्थ्य वाले तथा शत्रुओं को मारने में समर्थ, वायुओं के समान तीव्र गति वाले सैनिक लोग राष्ट्र की रक्षा करते हैं।

परमेश्वर के पक्ष में—जिस परमेश्वर के आश्रय में रहते हुए प्राणगण समस्त प्राणियों और लोकों की रक्षा करते हैं। वह सर्वोत्पादक परमेश्वर सबसे उत्तम पालक है।

उ॒क्षान्ना॑य व॒शान्ना॑य॒ सोम॑पृष्ठाय वे॒धसे॑। स्तोमै॑र्वि॒धेमा॒ग्नये॑ ॥३॥

भा०—जिसका अन्न तृप्त करने में और सबको अपने वश करने में समर्थ है और शान्ति आदि गुण वाले विद्वान् जिसके पृष्ठ रूप हैं या जिसकी पीठ पर उसके प्रेरकरूप से हैं, ऐसे राज्य के विधाता और अग्नि के समान शत्रुतापक राजा की हम सामर्थ्यों द्वारा सेवा करें।

ईश्वर पक्ष में—उक्षा अर्थात् सूर्य और वशा अर्थात् पृथिवी दोनों जिसके अन्न हैं, ज्ञान ही जिसका स्वरूप है, उस तेजोमय परमेश्वर की हम स्तुतियों द्वारा परिचर्या करें।

(२) परमेश्वर की उपासना

गृत्समदो मेधातिथिर्वा ऋषिः। मरुदिन्द्राग्निर्द्रविणोदा देवताः। १, २ विराड् गायत्र्यौ। ३ आर्च्युष्णिक्। ४ साम्नी त्रिष्टुप्। चतुर्ऋचं सूक्तम्।

मरुतः पोत्रात् सुष्टुभः स्वर्कादृतुना सोमं पिबतु ॥ १ ॥

भा०—विद्वान् पुरुष, पवित्र करने वाले और उत्तम रूप से स्तुति करने योग्य, तथा उत्तम अर्चनीय परमेश्वर से प्राप्त करके, ऋतु ऋतु में, ब्रह्मानन्दरस का पान करें।

अग्निराग्नीध्रात् सुष्टुभः स्वर्कादृतुना सोमं पिबतु ॥ २ ॥

भा०—अग्नि के समान तेजोमय विद्वान् पुरुष अग्नि, विद्युत्, सूर्य आदि को धारण करने वाले या समस्त अग्नियों को प्रदीप्त करने वाले, उत्तम स्तुति योग्य, परम पूजनीय परमेश्वर से प्राप्त करके ऋतु ऋतु में ब्रह्मानन्दरस का पान करे।

इन्द्रो ब्रह्मा ब्राह्मणात् सुष्टुभः स्वर्कादृतुना सोमं पिबतु ॥३॥

भा०—ऐश्वर्यवान् ब्रह्मज्ञानी पुरुष, वेद-प्रतिपादित, उत्तम स्तुति करने योग्य तथा परम अर्चनीय परमेश्वर से प्राप्त करके ऋतु ऋतु में ब्रह्मानन्द रस का पान करे।

देवो द्रविणोदाः पोत्रात् सुष्टुभः।
स्वर्कादृतुना सोमं पिबतु ॥ ४ ॥

भा०—ज्ञान और धन का प्रदाता विद्वान् पुरुष, उत्तम स्तुति योग्य, परम पूजनीय, अर्चनीय, परमपावन परमेश्वर से प्राप्त करके ऋतु ऋतु में ब्रह्मानन्दरस का पान करे ।

(३) परमेश्वर और राजा का वर्णन

इरिम्बिठिर्ऋषिः । इन्द्रो देवता । गायत्र्यः । तृचं सूक्तम् ।

आ याहि सुषुमा हि त इन्द्र सोमं पिबा इमम् ।
एदं बर्हिः सदो मम ॥ १ ॥

भा०—हे इन्द्र, परम ऐश्वर्यवन् प्रभो ! तेरे लिये ही राष्ट्र का हम सेवन करते हैं । तू हमें प्राप्त हो । तू इसकी रक्षा कर । यह मेरा हृदय तेरा आसन है । इस पर आ, विराज । अथवा हे राजन् ! आ, तेरे लिये राष्ट्र का अभिषेक द्वारा प्रदान करते हैं । इसका पालन कर । यह बड़ा भारी सभा-भवन है ।

आ त्वा ब्रह्मयुजा हरी वहतामिन्द्र केशिना ।
उप ब्रह्माणि नः शृणु ॥ २ ॥

भा०—हे परमेश्वर, ब्रह्म के साथ योगसाधना से लगे हुए, प्रकाशमान तथा हरणशील हमारे दो प्रकार के इन्द्रिय-घोड़े तेज वहन करते हैं । हे परमेश्वर ! आप हमारी ब्रह्मविषयक स्तुतियों का श्रवण करो ।

राजा के पक्ष में—ज्ञान प्रकाशक वेद के गद्य और पद्यरूपी दो घोड़े तेरे रथ को चलावें । तू हमारे मन्त्रों का श्रवण कर ।

ब्रह्माणस्त्वा वयं युजा सोमपामिन्द्र सोमिनः ।
सुतावन्तो हवामहे ॥ ३ ॥

भा०—हम ज्ञान से सम्पन्न ब्रह्म के ज्ञानी पुरुष, योगसमाधि द्वारा शुद्ध ब्रह्मानन्द रस के पान करने हारे प्रभु को, ब्रह्मरस से सम्पन्न होकर बुलाते हैं ।

(४) ईश्वर की उपासना

इरिम्बिठिर्ऋषिः । इन्द्रो देवता । गायत्र्यः । तृचं सूक्तम् ।

आ नो याहि सुतावतोऽस्माकं सुष्टुतीरुप ।
पिबा सु शिप्रिन्नन्धसः ॥ १ ॥

भा०—हे परमेश्वर ! योगसमाधि द्वारा अध्यात्मज्ञान का प्रसव करने वाले हम लोगों को तू साक्षात् प्राप्त हो । हमारी उत्तम स्तुतियों को अति समीप होकर श्रवण कर । हे उत्तम ज्ञानवन् ! आप ही अमृत-रस का हमें पान करावें ।

आ ते सिञ्चामि कुक्ष्योरनु गात्रा वि धावतु ।
गृभाय जिह्वया मधु ॥ २ ॥

भा०—हे पुरुष ! तेरी कोखों में इस अमृतरस का सेचन करता हूँ । वह तेरे गात्रों में व्याप्त हो जाय । जिह्वा द्वारा जैसे रस का आस्वादन किया जाता है वैसे ही तू मधुर अमृतरस का ग्रहण कर ।

स्वादुष्टे अस्तु संसुदे मधुमान् तन्वे३ तव ।
सोमः शमस्तु ते हृदे ॥ ३ ॥

भा०—हे पुरुष ! उत्तम दानशील तेरे लिये, मधुर गुणयुक्त यह आनन्दरस स्वादिष्ट हो, और तेरे शरीर के लिये तथा तेरे हृदय के लिये शान्तिदायक हो ।

(५) ईश्वर और राजा का वर्णन

इरिम्बिठिर्ऋषिः । इन्द्रो देवता । गायत्र्यः सप्तर्चं सूक्तम् ।

अयमु त्वा विचर्षणे जनीरिवाभि संवृतः ।
प्र सोम इन्द्र सर्पतु ॥ १ ॥

भा०—हे प्रजाओं को नाना प्रकार से देखने वाले ! हे ऐश्वर्यवन् परमेश्वर ! वस्त्र पहिने पति जैसे अपनी पत्नी के पास जाता है उसी प्रकार यह तेरी सर्वोत्पादक शक्ति भी तुझे ही प्राप्त है ।

तुविग्रीवो वपोदरः सुबाहुरन्धसो मदे ।
इन्द्रो वृत्राणि जिघ्नते ॥ २ ॥

भा०—उत्तम बाहुशाली, दृढ़ गर्दन और विस्तीर्ण छाती वाला राजा अन्न से शक्ति पा कर जैसे शत्रुओं का नाश करता है, वैसे ही परमेश्वर हमारे आध्यात्मिक शत्रुओं का नाश करता है ।

इन्द्र प्रेहि पुरस्त्वं विश्वस्येशान ओजसा ।
वृत्राणि वृत्रहं जहि ॥ ३ ॥

भा०—हे विघ्नों का नाश करने हारे परमेश्वर ! पराक्रम से विश्व को अपने वश करने और उसको संचालन करने में समर्थ होकर तू ही सबसे आगे चल और समस्त विघ्नों का नाश कर ।

राजा या सेनापति राष्ट्र के विघ्नकारी लोगों का नाश करने हारा होने से 'वृत्रहा' है । वह अपने पराक्रम से समस्त राष्ट्र का स्वामी होकर सबसे आगे आगे चले और बली शत्रु का नाश करे ।

दीर्घस्ते अस्त्वङ्कुशो येना वसु प्रयच्छसि ।
यजमानाय सुन्वते ॥ ४ ॥

भा०—हे परमेश्वर ! तेरा अंकुश सबसे बड़ा है । उस द्वारा तू ऐश्वर्य सम्पादन करने वाले, यज्ञशील को नाना प्रकार का ऐश्वर्य प्रदान करता है ।

अयं त इन्द्र सोमो निपूतो अधि बर्हिषि ।
एहीमस्य द्रवा पिब ॥ ५ ॥

भा०—हे परमेश्वर ! तेरा यह अत्यन्त पवित्र सर्वोत्पादक वीर्य इस आकाश में, यज्ञ में सोम के समान विद्यमान है । इसको तू ही प्राप्त कर, इसमें व्याप्त हो, तू ही इसको अपने में ग्रहण कर ।

शाचिगो शाचिपूजनायं रणाय ते सुतः ।
आखण्डल प्र हूयसे ॥ ६ ॥

भा०—हे शक्तिशाली पुरुषों से भी पूजने योग्य ! हे शक्तिशाली पृथिवी आदि लोकों के स्वामिन् ! यह उत्पादित संसार तेरे ही रमण करने के लिये है । इसलिये हे खण्ड खण्ड में भी व्यापक ! तू ही सबसे अधिक स्तुति किया जाता है ।

राजा के पक्ष में—हे शक्ति से गमन करने वाले ! हे शक्ति द्वारा पूजने के योग्य ! यह राष्ट्र तेरे रमण करने के लिये है । हे शत्रुनाशक ! तू भली प्रकार आदर पूर्वक स्तुति किया जाता है ।

यस्ते शृङ्गवृषो नपात् प्रणपात् कुण्डपाय्यः ।
न्यस्मिन् दध्र आ मनः ॥ ७ ॥

भा०—हे परमेश्वर ! जो तेरा लोकसंहारक और साथ ही सकल सुखों का वर्षक, अगम्य तथा अति अधिक अगम्य, दाहकारी तथा रक्षण करने वाला सामर्थ्य है । तू अपना मानस व्यापार इसमें ही लगा रहा है । ईश्वर के संकल्प से ही जगत् का प्रलय और सर्ग का कार्य हो रहा है ।

(६) राजा और परमेश्वर का वर्णन

विश्वामित्र ऋषिः । इन्द्रो देवता । गायत्र्यः । नवर्चं सूक्तम् ।

इन्द्र त्वा वृषभं वयं सुते सोमे हवामहे ।
स पाहि मध्वो अन्धसः ॥ १ ॥

भा०—व्याख्या देखो अथर्व० २० । १ । १ ॥

इन्द्र क्रतुविदं सुतं सोमं हर्य पुरुष्टुत ।
पिबा वृषस्व तातृपिम् ॥ २ ॥

भा०—हे परमेश्वर ! तू क्रिया और ज्ञान के प्राप्त कराने वाले अपने उत्पादक सामर्थ्य को स्वयं चाह, स्वयं अपने वश कर । और सबको तृप्त करने हारे उस सामर्थ्य का तू पान कर और उसका सर्वत्र सेचन कर ।

इन्द्र प्र णो धितावानं यज्ञं विश्वेभिर्देवेभिः।
तिर स्तवान विश्पते ॥ ३ ॥

भा०—हे प्रशंसा के भाजन ! हे प्रजा के पालक परमेश्वर ! हमारे धन धान्य से समृद्ध अथवा हितकारी यज्ञ को समस्त देवों द्वारा बढ़ा।

इन्द्र सोमाः सुता इमे तव प्र यन्ति सत्पते।
क्षयं चन्द्रास इन्दवः ॥ ४ ॥

भा०—हे परमेश्वर ! हे सज्जनों के प्रतिपालक ! ये ऐश्वर्यवान्, चन्द्र के समान परम आह्लादजनक, समाधि के अंगों द्वारा निष्पन्न ज्ञाननिष्ठ विद्वान् पुरुष तेरी ही शरण में आते हैं।

राजा के पक्ष में—चन्द्र के समान आह्लादकारी, शासक राजा लोग तेरी शरण, तेरे राजभवन, सभाभवन में आते हैं।

दधिष्वा जठरे सुतं सोममिन्द्र वरेण्यम्।
तव द्युक्षास इन्दवः ॥ ५ ॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन् प्रभो ! तू उत्पादित तथा श्रेष्ठ सूर्य को सृष्टि को उत्पन्न करने के महान् कार्य में स्थापित करता है, दीप्तिमान् समस्त लोक तेरे ही अधीन हैं।

गिर्वणः पाहि नः सुतं मधोर्धाराभिरज्यसे।
इन्द्र त्वादातमिद् यशः ॥ ६ ॥

भा०—हे वाणियों द्वारा स्तुति करने योग्य ! साधनों से निष्पन्न हमारे इस आत्मा को स्वीकार कर। तू मधुर अमृतमय परमानन्द की धाराओं से सर्वत्र प्रकाशमान है। हे परमेश्वर ! यह तेजोमय विभूति तेरी ही प्रदान की हुई है।

राजा के पक्ष में—हे स्तुत्य राजन् ! हमारे उत्पादित इस अन्नादि

पदार्थ का पालन कर। तू शत्रु को तपाने हारे बल की धारणा शक्तियों से प्रकाशित है। यह समस्त ऐश्वर्य तेरा ही दिया हुआ है।

अभि द्युम्नानि वनिन इन्द्रं सचन्ते अक्षिता।
पीत्वी सोमस्य वावृधे ॥ ७ ॥

भा०—ईश्वर के भजन करने वाले पुरुष के समस्त अक्षय धन उस परमेश्वर के ही भेंट जाते हैं और वह इस संसार का पान करके स्वयं बढ़ा हुआ है, स्वयं सबसे महान् होकर रहता है।

राजा के पक्ष में—धनाढ्यों के समस्त ऐश्वर्य उस राजा को ही प्राप्त हैं, वह राष्ट्र को स्वयं स्वीकार करके सबसे बढ़ा चढ़ा है।

अर्वावतो न आ गहि परावतश्च वृत्रहन्।
इमा जुषस्व नो गिरः ॥ ८ ॥

भा०—हे आवरणकारी विघ्नों के नाशक प्रभो! तू हमें समीप के देश से और दूर देश से भी प्राप्त हो, और हमारी इन वाणियां को स्वीकार कर।

राजा के पक्ष में—तू हम प्रजाजनों की प्रार्थनाओं को सुन। दूर और समीप जहां भी हो, वहां से हमारी रक्षार्थ हमें प्राप्त हो।

यदन्तरा परावतमर्वावतं च हूयसे।
इन्द्रेह तत आ गहि ॥ ९ ॥

भा०—हे परमेश्वर! तू दूर के देश और समीप के देश और उन दोनों के बीच के देशों में भी जब पुकारा जाता है, हे प्रभो! तू वहां से यहां हमें प्राप्त हो। ईश्वर सर्वत्र है, सर्वत्र उसका स्मरण करें और वह सर्वत्र ही प्राप्त होता है।

राजा के पक्ष में—दूर, पास और बीच के देशों में भी तुझे पुकारें तो वहां ही प्रजा के दुःख शमनार्थ प्राप्त हो।

(७) परमेश्वर और राजा

१-३ सुकक्षः । ४ विश्वामित्रः । इन्द्रो देवता । गायत्र्यः । चतुर्ऋचं सूक्तम् ।

उद् घेद॒भि श्रु॒ताम॑घं वृष॒भं नर्या॑पसम् ।
अस्ता॑रमेषि सूर्य ॥ १ ॥

भा०—हे सूर्य के समान तेजस्वी योगिन् ! तू प्रसिद्ध ऐश्वर्य वाले, सब सुखों के वर्षक, समस्त मनुष्यों के हितकारी कर्म या व्यापार करने वाले, सबके प्रेरक उस परमेश्वर को लक्ष्य करके निश्चय से उदित होता है ।

नव॒ यो न॑व॒तिं पुरो॑ बि॒भेद॑ बा॒ह्वोजसा ।
अहिं॑ च वृ॒त्रहाव॑धीत् ॥ २ ॥

स न॒ इन्द्रः॑ शि॒वः सखाश्वा॑व॒द् गोम॒द् यव॑मत् ।
उ॒रुधा॑रेव दोहते ॥ ३ ॥

भा०—जो अज्ञानावरण का नाश करने वाला, मानो अपने बाहुबल द्वारा हृदय पर आवरण करने वाले अज्ञानावरण को विनष्ट करता है और ९९ देहों को भी तोड़ डालता है, अर्थात् जो ९९ देह-बन्धनों से मुक्त करता है वह ऐश्वर्यवान्, कल्याणकारी, परम मित्र, समस्त व्यापक गुणों से युक्त, सूर्यादि लोकों से युक्त, तथा प्रकृति के परमाणुओं का संयोग विभाग करने वाली शक्ति से युक्त परमेश्वर, हमें बहुत सी दुग्ध धारा बहाने वाली कामधेनु के समान ही आनन्दरस एवं सुखों को प्रदान करता है । [२, ३]

राजा के पक्ष में—जो राजा नगर को घेरने वाले तथा चारों तरफ़ फैले या सर्प के समान कुटिल शत्रु का नाश करता है और जो शत्रु के ९९ दुर्गों को तोड़ता है, वह 'इन्द्र' कहाने योग्य राजा हमारे लिये कल्याणकारी मित्र, अश्वों, गौओं की सम्पत्ति से समृद्ध अन्नादि भोग्य पदार्थों से युक्त होकर, कामधेनु के समान सुख प्रदान करता है ।

इन्द्रं क्रतुविदं सुतं सोमं हर्य पुरुष्टुत।
पिबा वृषस्व तातृपिम् ॥ ४ ॥

भा०—व्याख्या देखो अथर्व० २०। ६। २ ॥

(८) परमेश्वर और राजा

क्रमशो भरद्वाजः कुत्सो विश्वामित्रश्च ऋषयः। इन्द्रो देवता। त्रिष्टुभः। तृचं सूक्तम्।

एवा पाहि प्रत्नथा मन्दतु त्वा श्रुधि ब्रह्म वावृधस्वोत गीर्भिः।
आविः सूर्यं कृणुहि पीपिहीषो जहि शत्रूँरभि गा इन्द्र तृन्धि ॥१॥

भा०—हे परमेश्वर ! पूर्व के समान ही तू विश्व का पालन व धारण करता है। वह विश्व तुझे आनन्दित करता है। तू वेदमन्त्रों का श्रवण करता है। और स्तुतिवाणियों से कीर्त्ति को प्राप्त होता है। तू सूर्य को प्रकट करता है। तू अन्नों को समृद्ध करता है। तू हमारे मनोरथों का नाश करने वालों का विनाश कर और ज्ञानरश्मियों को प्रकट कर।

राजा के पक्ष में—राजा पूर्व के समान राष्ट्र का पालन करे। वह विज्ञानवान् पुरुषों की वाणियों को सुने और उन की वाणियों से वृद्धि को प्राप्त हो। आदित्य ब्रह्मचारियों को प्रकट करें, शत्रुओं की भूमियों को छीन ले।

अर्वाङेहि सोमकामं त्वाहुरयं सुतस्तस्य पिबा मदाय।
उरुव्यचा जठर आ वृषस्व पितेव नः शृणुहि हूयमानः ॥ २ ॥

भा०—हे परमेश्वर ! तू साक्षात् प्राप्त हो, तुझको विद्वान् पुरुष 'सोम-काम' कहते हैं। अर्थात् संसार में कामना या संकल्प रूप से प्रेरक होकर तू सर्वत्र विद्यमान है। यह तैयार किया हुआ संसार तेरे ही लिये है। उसका तू हर्ष के लिये पान कर। तू सर्वव्यापक है। तू अपने ही उत्पादक सामर्थ्य में इसको समस्त रसों से पूर्ण कर।

और जब भी तुझे पुकारा जाय तभी पिता के समान हमारी पुकार श्रवण कर ।

राजा के पक्ष में—हे राजन् ! तू हमारे पास आ । तुझे "राष्ट्र की कामना" वाला कहते हैं । तू इसका भोग कर । तू महान् सामर्थ्यवान् होकर अपने ही अधिकार में इसको पुष्ट कर । और हम प्रजाओं की पुकार पिता के समान सुन ।

आपूर्णो अस्य कुलशः स्वाहा सेक्तेव कोशं सिसिचे पिबध्यै ।
समु प्रिया आववृत्रन् मदाय प्रदक्षिणिदभि सोमास इन्द्रम् ॥३॥

भा०—इस परमेश्वर का यह कलश उत्तम रीति से पूर्ण है । अर्थात् परमेश्वर की शक्ति से यह ब्रह्माण्ड पूर्ण है । प्यालों को भरने वाला जिस प्रकार उंडेल उंडेल कर प्याले भरा करता है उसी प्रकार वह भी आनन्द-रस पान करने के लिये इस भुवन-कोष को और अध्यात्म में हृदय को अपने आनन्दरस से सींचता है । उसके प्यारे उपासकजन हर्ष आनन्द प्राप्त करने के लिये उस ऐश्वर्यवान् प्रभु के चारों तरफ उसको घेरते हुए एक साथ ही घेर कर बैठे हैं ।

राजा के पक्ष में—इसका राष्ट्ररूप कलश सदा पूर्ण रहे । वह प्रजा के उपभोग के लिये अपने कोश—खजाने भरा करे । और प्रिय विद्वान् पुरुष या राजा लोग उसके दाहिनी तरफ से उसे महान् सम्राट् को घेरकर बैठें ।

(९) परमेश्वर और राजा

१, २ नोधाः । ३, ४ मेधातिथिर्ऋषिः । १, २ त्रिष्टुभौ । ३, ४ प्रगाथः (विषया बृहती-सतो बृहती च) । चतुर्ऋचं सूक्तम् ।

तं वो दुस्मसृतीषहं वसोर्मन्दानमन्धसः ।
अभि वत्सं न स्वसरेषु धेनव इन्द्रं गीर्भिर्नवामहे ॥ १ ॥

भा०—दिनों की समाप्ति के अवसर पर बछड़े को लक्ष्य करके जिस

प्रकार गौवें हंभारती हैं, उसी प्रकार हम प्रेम से बद्ध होकर उसका रस-पान करने हारे उपासक लोग, सबके भीतर वास करने वाले, दर्शनीय, समस्त दुःखों के नाशक, प्राण धारण करने वाले और परम आनन्द प्राप्त कराने हारे परमैश्वर्यवान् प्रभु की स्तुति-वाणियों से स्तुति करें ।

द्युक्षं सुदानुं तविषीभिरावृतं गिरिं न पुरुभोजसम् ।
क्षुमन्तं वाजं शतिनं सहस्रिणं मक्षू गोमन्तमीमहे ॥ २ ॥

भा०—दीप्तिमान् उत्तम उत्तम पदार्थों के दाता, पर्वत के समान कन्द, मूल, फल आदि, हिरण्य रत्न आदि नाना भोग्य पदार्थों को देने हारे, बड़ी बड़ी शक्तियों से घिरे हुए परमेश्वर से ऐश्वर्य की निरन्तर याचना करते हैं। जो ऐश्वर्य कि अन्न सम्पत्ति से युक्त है, बल देने वाला है, सैकड़ों और सहस्रों ऐश्वर्यों से युक्त है तथा गौ आदि पशुओं से समृद्ध है।

तत् त्वा यामि सुवीर्यं तद् ब्रह्म पूर्वचित्तये ।
येना यतिभ्यो भृगवे धने हिते येन प्रस्कण्वमाविथ ॥ ३ ॥

भा०—हे परमेश्वर ! पूर्ण प्रज्ञान प्राप्त करने के लिये बलशाली महान् की मैं उपासना करूं। जिससे तपस्वी पुरुषों को और पापों के भूननेहारे पुरुष को तू हितकर ऐश्वर्य में स्थापित करता है और जिससे परम मेधावी पुरुष की रक्षा करता है।

राजा के पक्ष में—पूर्व निर्धारित परस्पर के समझौते के अनुसार हे राजन् ! मैं तुझसे उत्तम वीर्यजनक बड़े भारी ऐश्वर्य की प्रार्थना करता हूँ, जिससे तू नियमों में बद्ध प्रजाओं और ज्ञानवान् विद्वान् के निमित्त वेतन रूप से बंधे धन में उनको सन्तुष्ट करता है और जिससे उत्तम उत्तम ज्ञानी पुरुषों को भी अपने राष्ट्र में पालन करता है।

येना समुद्रमसृजो महीरपस्तदिन्द्र वृष्णि ते शवः ।
सद्यः सो अस्य महिमा न संनशे यं क्षोणीरनुचक्रदे ॥ ४ ॥

भा०—हे परमेश्वर ! जिस महान् सामर्थ्य से तू समुद्र को उत्पन्न करता है और उसमें अनन्त जलों को पैदा करता है, हे ऐश्वर्यवान् प्रभो ! तेरा वह सकल सुखों का वर्षक, सबसे अधिक बल है । हे पुरुषो ! उस प्रभु की वह महिमा है जो कभी पार नहीं की जा सकती, तथा जिसको जगत् के समस्त प्राणी बराबर कहा करते हैं ।

(१०) परमेश्वर की उपासना

मेधातिथिर्ऋषिः । इन्द्रो देवता । प्रगाथः द्व्यृचं सूक्तम् ।

उदु॒ त्ये मधु॑मत्तमा॒ गिर॒ स्तोमा॑स ईरते ।
स॒त्रा॒जितो॑ धन॒सा अक्षि॑तोतयो वाज॒यन्तो॒ रथा॑ इव ॥ १ ॥

भा०—हे परमेश्वर ! सदा विजयी, ऐश्वर्यों के देने वाले, अक्षय, रक्षा करने में समर्थ, वीर्यशाली, महारथी लोग जिस प्रकार उठ खड़े होते हैं, उसी प्रकार वे अत्यन्त मधुर स्तुतिमय वाणियें हृदय से उठती हैं ।

कण्वा॑ इ॒वा भृग॑व॒ः सूर्या॑ इ॒व॒ विश्व॒मिद् धी॒तमा॑नशुः ।
इन्द्रं॒ स्तोमे॑भिर्म॒हय॑न्त आ॒यव॑ः प्रि॒यमे॑धासो अस्वरन् ॥ २ ॥

भा०—जिस प्रकार मेधावी पुरुष और मलों को भून डालने वाले निष्पाप, और जिस प्रकार सूर्य के समान ज्ञान प्रकाश से युक्त विद्वान् पुरुष ध्यान द्वारा उपासित विश्व के समस्त पदार्थों को यथार्थ रूप से जान लेते हैं और वे ही उत्तम स्तुतियों द्वारा परमेश्वर की पूजा करते हुए उसका गुणगान करते हैं, मेधा को प्रिय मानने वाले पुरुष भी उस परमेश्वर की स्तुति करते एवं उसका उपदेश करते हैं ।

'कण्वा' कणनिमीलने, अस्मात् क्वन् प्रत्ययः । बाह्येन्द्रियों को निमीलित करके ध्यान करने वाले ध्यानी 'कण्व' हैं ।

'भृगवः'—'भ्रस्ज पाके' इत्यतः उः, सम्प्रसारणं, सलोपश्च । अति परिपक्व ज्ञानवान् अर्थात् अपने सुदीर्घ अनुभव से ज्ञान को परिपक्व करने वाले ज्ञानी 'भृगु' कहाते हैं ।

'सूर्याः'—आदित्य के समान तेजस्वी, ज्ञान के भण्डार, आदित्य योगी 'सूर्य' कहाते हैं।

[११] परमेश्वर और राजा

विश्वामित्र ऋषिः। इन्द्रो देवता। त्रिष्टुभः। एकादशर्चं सूक्तम्।

इन्द्रः पूर्भिदातिरद् दासमर्कैर्विदद्वसुर्दयमानो वि शत्रून्।
ब्रह्मजूतस्तन्वावावृधानो भूरिदात्र आपृणद् रोदसी उभे ॥१॥

भा०—परमेश्वर इस देहपुरी को तोड़नेहारा अर्थात् मुक्तिप्रद, वेद शास्त्रों द्वारा अज्ञान के नाशक जीव को अधिक शक्तिमान् कर देता है। और वही ऐश्वर्य को प्राप्त करनेहारा प्रभु, आत्मा की शक्तियों का नाश करने वाले बाधक कारणों को मारता हुआ, महान् शक्ति से सम्पन्न, अपनी विस्तृत शक्ति से अत्यन्त महान्, बहुत बड़ा दानी आकाश और पृथ्वी को व्याप रहा है।

मखस्य ते तविषस्य प्र जूतिमियर्मि वाचममृताय भूषन्।
इन्द्र क्षितीनामसि मानुषीणां विशां दैवीनामुत पूर्वयावा ॥ २ ॥

भा०—हे परमेश्वर! साधारण मनुष्यों, प्रजाओं और सूर्य चन्द्रादि प्रजाओं में भी सबसे प्रथम सत् रूप में प्राप्त होने योग्य तू ही रहा है और होगा। मोक्षपद के लिये मैं योग्य होने की इच्छा करता हुआ, पूजनीय और महान् तेरी वेगवती शक्ति को और वेदज्ञानमयी वाणी को प्राप्त होता हूँ।

राजा के पक्ष में—तू समस्त साधारण और विशेष विद्वान्, दानशील प्रजाओं का अग्रणी है। तुझ पूजनीय, महान्, बलशाली तथा शक्तिशाली की आज्ञाओं का दीर्घ जीवन के प्राप्त करने के लिये मैं पालन करूं।

'मखः'—'मख मखि' गत्यर्थौ (भ्वादी)। 'तविषस्य'—तवः बलं तद्वतः।

इन्द्रो॑ वृ॒त्रम॑वृणो॒च्छर्ध॑नीतिः॒ प्र मा॒यिना॑ममिना॒द् वर्प॑णीतिः ।
अह॒न् व्यं॑समु॒शध॒ग् वने॑ष्वा॒विर्धेना॑ अकृणोद् रा॒म्याणा॑म् ॥ ३ ॥

भा०—बली परमेश्वर आवरणकारी अज्ञान को दूर करता है । और रूप को प्राप्त कराने वाला होकर प्राणों के बन्धन को भली प्रकार नाश करता है । जंगलों को अग्नि जिस प्रकार जला कर भस्म कर देता है, वह परमेश्वर भी भजन करने वाले परम भक्तों में उनकी बुरी कामनाओं को भस्म करने वाला होकर, उनके पीड़ाजनक कष्टों को दूर करके उनको प्राप्त हो जाता है । और तब ब्रह्म में रमण करने हारे तत्व-ज्ञानियों की स्तुतिमयी वाणियों को प्रकट करता है ।

राजा के पक्ष में—शत्रुहिंसक बल को प्रयोग करने वाला, राष्ट्र घेरने वाले को छिन्न-भिन्न करे । नाना रूपों के शस्त्रादि संचालन में चतुर होकर मायावी का नाश करे । अग्नि के समान शत्रुओं को उनके कन्धे आदि या सेना के अंग काट काट कर मारे और तब रमण करने योग्य प्रजाओं की हर्ष भरी वाणियों को प्रकट करे ।

इ॒न्द्रः॑ स्व॒र्षा ज॒नय॒न्नहा॑नि जि॒गायो॒शिग्भिः॒ पृत॑ना अ॒भिष्टिः॑ ।
प्रारो॑चय॒न् मन॑वे के॒तुमह्ना॒मवि॑न्द॒ज्ज्योति॑र्बृह॒ते रणा॑य ॥ ४ ॥

भा०—परम सुख का प्रदान करने वाला परमेश्वर दिनों को उत्पन्न करता हुआ, साक्षात् कामनामय होकर सर्व वशकारी सामर्थ्यों द्वारा प्रजाओं को जीतता है । मननशील पुरुष के लिये तमोनाशक तेजों के ज्ञापक सूर्य को दीप्त करता है और बड़े भारी रमणीय मोक्ष-सुख की प्राप्ति के लिये वह स्वयं परम ज्योति को धारण करता है ।

राजा के पक्ष में—वह राजा उत्तम सुखों का दाता, सर्वत्र गति-शील होकर, अहन्तव्य सेनाबलों को प्राप्त करके वशकारी सेनापतियों द्वारा सेनाओं को विजय करे, समस्त मनुष्यों को और समस्त सेनाओं के आज्ञापक सेनापति को सबसे उन्नत करे । बड़े रमणीय राष्ट्र के लिये धन को प्राप्त करे ।

इन्द्रस्तुजो बर्हणा आ विवेश नृवद् दधानो नर्या पुरूणि।
अचेतयद् धियं इमा जरित्रे प्रेमं वर्णमतिरच्छुक्रमासाम् ॥ ५॥

भा०—परमात्मा महान् नेता के समान जीवों के बसने और कर्म-फल भोगने योग्य लोकों को स्वयं धारण करता हुआ, वेगवती महती शक्तियों में आविष्ट है और वह स्तुति करने हारे पुरुष की नाना धारण शक्तियों को चेतन करता है। और इनके कान्तिमय शुद्ध स्वरूप को बढ़ाता है।

राजा के पक्ष में—वह प्रजा के मानवसंघों या ऐश्वर्यों को धारण करता हुआ वृद्धिशील प्रजाओं में प्रविष्ट होता है। विद्वान् पुरुषों को उनके समस्त कर्म बतलाता है। इन प्रजाओं के शुद्ध निष्पाप स्वरूप को बढ़ाता है।

महो महानि पनयन्त्यस्येन्द्रस्य कर्म सुकृता पुरूणि।
वृजनेन वृजिनान्त्सं पिपेष मायाभिर्दस्यूँरभिभूत्योजाः ॥ ६ ॥

भा०—इस महान् परमेश्वर के बहुत से उत्तम रीति से रचे हुए कर्मों की विद्वान् लोग स्तुति करते हैं। पाप से निवृत्त करने वाले श्रेयो-मार्ग या ज्ञान से वर्जन करने योग्य पापाचारियों को वह विनाश कर देता है। और शत्रुनाशक सामर्थ्य से युक्त वह ज्ञानशक्तियों वा हिंसक शक्तियों से दुष्ट पुरुषों को चूर्ण कर डालता है।

युधेन्द्रो मह्ना वरिवश्चकार देवेभ्यः सत्पतिश्चर्षणिप्राः।
विवस्वतः सदने अस्य तानि विप्रा उक्थेभिः कवयो गृणन्ति ॥७॥

भा०—सत्पुरुषों का पालक, मनुष्यों की कामनाएं पूर्ण करने में समर्थ परमेश्वर, युद्ध द्वारा जिस प्रकार राजा धन उत्पन्न करता है उसी प्रकार अपने समस्त विश्व के प्रेरक अथवा दुष्टों को प्रहार करने वाले महान् सामर्थ्य से विद्वानों, सत्पुरुषों के लिये सर्वोत्तम ऐश्वर्य उत्पन्न करता है। विविध ऐश्वर्यों से सम्पन्न सूर्य के समान तेजस्वी, इसके

सुखरूप आश्रय में आये हुए बुद्धिमान्, क्रान्तदर्शी पुरुष नाना वेदमन्त्र-रूप स्तुति वचनों से उस के उन उन नाना कर्मों का उपदेश करते हैं।

सत्रासाहं वरेण्यं सहोदां ससवांसं स्वरपश्च देवीः।
ससान यः पृथिवीं द्यामुतेमामिन्द्रं मदन्त्यनु धीरणासः ॥ ८ ॥

भा०—जो परमेश्वर पृथिवी और आकाश को धारण करता है, उस सबको सहन करने वाले, सबके वरण करने योज्य, सबको बल देने वाले, तेजोमय सूर्य आदि लोक को और दिव्यगुण वाली क्रियाओं और प्रज्ञाओं को धारण करने वाले परमेश्वर को साक्षात् करके, ध्यान-शील योगी पुरुष उसके आनन्दरस के साथ स्वयं भी आनन्द अनुभव करते हैं।

ससानात्याँ उत सूर्यं ससानेन्द्रः ससान पुरुभोजसं गाम्।
हिरण्ययमुतभोगं ससान हत्वी दस्यून् प्रार्यं वर्णमावत् ॥ ९ ॥

भा०—परमेश्वर हम को गतिशील अश्वों के समान इन्द्रियों का प्रदान करता है। और सूर्य के समान प्रकाश भी प्रदान करता है। वह नाना भोग्य पदार्थों से सम्पन्न गाय और पृथ्वी का भी हमें प्रदान करता है। वह हमें हित और रमणीय सुवर्ण आदि ऐश्वर्य और भोग करने की शक्ति प्रदान करता है। और दुष्ट पुरुषों को नाश करके श्रेष्ठ वर्ण ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र आदि उत्तम कार्य करने वाले सच्चरित्र पुरुषों की अच्छी प्रकार रक्षा करता है।

राजा भी प्रजा को उत्तम घोड़े, उत्तम विद्वान्, भूमि, हिरण्य, नाना भोग देता और भले आचार व्यवहार के आर्य पुरुषों की रक्षा करता है।

इन्द्र ओषधीरसनोदहानि वनस्पतींरसनोदन्तरिक्षम्।
बिभेद वलं नुनुदे विवाचोऽथाभवद् दमिताभिक्रतूनाम् ॥ १० ॥

भा०—ऐश्वर्यवान् परमात्मा धान, जौ आदि ओषधियाँ हमें प्रदान

करता है। वह हमें प्रकाश वाले दिन प्रदान करता है। वह बड़े बड़े वृक्ष प्रदान करता है। वह हमें विहार करने के लिये अन्तरिक्ष प्रदान करता है। वह परमेश्वर आत्मा को घेर लेने वाले अन्धकार को छिन्न-भिन्न कर देता है। वह विविध वेदवाणियों को हमारे प्रति प्रेरित करता है। वह कर्मों और ज्ञानों को साक्षात् करने वाले पुरुषों का दमनकारी है।

शुनं हुवेम मघवानमिन्द्रमस्मिन् भरे नृतमं वाजसातौ।
शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु घ्नन्तं वृत्राणि संजितं धनानाम् ॥११॥

भा०—वीर्य प्राप्त कराने वाले इस ब्रह्मोपासना के अवसर में, सुखप्रद, सर्वैश्वर्यवान्, सर्वोत्तम नायक रक्षा के लिये भक्तों की प्रार्थनाओं को श्रवण करने वाले, भयंकर योग समाधि से उत्पन्न आनन्द-लाभ के अवसरों में आत्मा का आवरण करने वाले अज्ञानों का विनाश करने वाले, ऐश्वर्यों को विजय करने वाले परमेश्वर की हम स्तुति करें।

राजा के पक्ष में—सब पुरुषों में श्रेष्ठ, अति शीघ्रकारी सेनापति को हम इस वीर्य लाभ कराने वाले संग्राम में अपनी रक्षा के निमित्त बुलावें।

[१२] परमेश्वर का वर्णन

१–६ वसिष्ठः। ७ अत्रिर्ऋषिः। इन्द्रो देवता। त्रिष्टुभः। सप्तर्चं सूक्तम्।

उदु ब्रह्माण्यैरत श्रवस्येन्द्रं समर्ये महया वसिष्ठ।
आ यो विश्वानि शवसा ततानोपश्रोता म ईवतो वचांसि ॥१॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो! आप लोग वेद ज्ञान से युक्त वेद मन्त्रों का नित्य उच्चारण करो। हे व्रत में उत्तम रीति से स्थित पुरुष तू एकत्र सर्व पुरुषों के बीच में उसकी ही उपासना कर। जो कि समस्त

पदार्थों को अपने बल से रच कर विस्तृत करता है और मुझ उपासक के समस्त स्तुति वचनों को श्रवण करता है।

अयामि घोषं इन्द्र देवजामिरिरज्यन्त यच्छुरुधो विवाचि ।
नहि स्वमायुश्चिकिते जनेषु तानीदंहांस्यति पर्ष्यस्मान् ॥ २॥

भा०—हे परमेश्वर ! तू दिव्य वेदवाणी के घोष की न्याई सबको संयम में रख रहा है। विविध वाणियों से स्तुति करने योग्य तुझ में, शीघ्र गतिशील प्राणों को रोकने हारे तपस्वी लोग, बड़ी स्पर्द्धा से सेवा में लग्न हो जाते हैं, इन पुरुषों में से कोई भी पुरुष अपनी आयु को नहीं जानता कि कब वह मौत के मुंह में चला जाय, तो भी हे परमेश्वर ! तू हमें उन नाना प्रकार के पापों से अवश्य पार कर देता है।

युजे रथं गवेषणं हरिभ्यामुप ब्रह्माणि जुजुषाणमस्थुः ।
वि बाधिष्ट स्व रोदसी महित्वेन्द्रो वृत्राण्यप्रती जघन्वान् ॥३॥

भा०—मैं साधक पुरुष, हरणशील प्राण और अपान द्वारा, इन्द्रियों को प्रेरण करने में समर्थ रसरूप आत्मा को योग समाधि द्वारा समाहित करता हूँ। उसी वेदमन्त्रों को मुख्य तात्पर्य रूप से स्वयं ग्रहण करते हुए परमेश्वर की सभी विद्वान् पुरुष उपासना करते हैं। वही परमेश्वर आवरणकारी अज्ञानों को सदा के लिये विनाश कर देने हारा है। वही अपने महान् सामर्थ्य से आकाश और पृथिवी को विविध रूपों से थामे हुए है।

आपश्चित् पिप्युस्तर्यो३ न गावो नक्षन्नृतं जरितारस्त इन्द्र ।
याहि वायुर्न नियुतो नो अच्छा त्वं हि धीभिर्दयसे वि वाजान् ॥४॥

भा०—जिस प्रकार गौवें जलों को प्राप्त होकर वृद्धि को प्राप्त होती हैं उसी प्रकार हे परमेश्वर ! वेद वाणियें तुझको प्राप्त होती हैं और उपासक तेरे सत्यज्ञानस्वरूप को प्राप्त होते हैं। वायु जिस प्रकार समस्त वेगों को प्राप्त है। उसी प्रकार तू भी समस्त बलों को प्राप्त है। तू ही

अपने कर्मों और ज्ञानों से हमें अन्नों और बलों को भली प्रकार विविध रूपों में प्रदान करता है ।

ते त्वा मदा इन्द्र मादयन्तु शुष्मिणं तुविराधसं जरित्रे ।
एको देवत्रा दयसे हि मर्तानस्मिञ्छूर सवने मादयस्व ॥ ५ ॥

भा०—हे परमेश्वर ! वे आनन्दरस, सर्वशक्तिमान् तथा बहुत ऐश्वर्यवान् तुझको, उपासक के संतोष के लिये, पूर्ण कर रहे हैं । तू देवों के बीच अकेला ही समस्त मरणधर्मा प्राणियों की रक्षा करता है । हे सर्वशक्तिमन् ! तू इस संसार में सदा तृप्त रहने वाला है ।

एवेदिन्द्रं वृषणं वज्रबाहुं वसिष्ठासो अभ्यर्चन्त्यर्कैः ।
स नं स्तुतो वीरवद् धातु गोमद् यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥६

भा०—उपासक ज्ञानी पुरुष, ज्ञानवज्र को अपने हाथ में लिये हुए सुखों के वर्षक परमेश्वर की नाना स्तुतियों से अर्चना करते हैं । वह स्तुति करने योग्य परमेश्वर हमें वीर पुत्रों से युक्त ऐश्वर्य प्रदान करें । हे पुरुषो ! आप लोग हमें सदा कल्याणकारी साधनों और उपायों द्वारा पालन करो ।

ऋजीषी वज्री वृषभस्तुराषाट् छुष्मी राजा वृत्रहा सोमपावा ।
युक्त्वा हरिभ्यामुप यासदर्वाङ् माध्यंदिने सवने मत्सदिन्द्रः ॥७॥

भा०—अर्जन करने योग्य धन-ऐश्वर्यों से सम्पन्न, पाप और अज्ञान का वर्जन करने वाला, सुखों का वर्षक, हिंसक शत्रुओं का विजेता, बलवान्, सबका महाराज, आवरणकारी विघ्नों का नाशक, सोमरस के समान समस्त प्रेरक बल का स्वयं धारक, अपने धारण और आकर्षण बलों से समाधि द्वारा युक्त होकर साक्षात् हमें प्राप्त हो । वह ऐश्वर्यवान् प्रभु दिन के मध्य भाग में सूर्य के समान प्रखर कान्तिमान् होकर हमारे हृदयाकाश में भी प्रबल तेज से प्रकाशित हो ।

[१३] राजा के राज्य की व्यवस्था ।

क्रमशः बामदेव गोतम-कुत्स विश्वामित्रा ऋषयः । १ इन्द्राबृहस्पती । २ मरुतः । ३–४ अग्निश्च देवताः । १–३ जगत्यः । ४ त्रिष्टुप् । चतुऋचं सूक्तम् ।

इन्द्रश्च सोमं पिबतं बृहस्पतेऽस्मिन् यज्ञे मन्दसाना वृषण्वसू ।
आ वां विशन्त्विन्दवः स्वाभुवोऽस्मे रयिं सर्ववीरं नि यच्छतम् ॥१॥

भा०—हे वेदवाणी के पालक, एवं बड़े भारी राष्ट्र के पालक राजन् और सेनापति ! आप दोनों ऐश्वर्यों का वर्षण करने वाले हो । आप दोनों इस राष्ट्र के व्यवस्था के कार्य में अपने को परम प्रसन्न रखते हुए शासन या राज्यपद का उपभोग करो । उत्तम रीति से सब प्रकार से होने वाले ऐश्वर्य तुम दोनों को प्राप्त हों । आप दोनों हम राष्ट्र-वासियों को समस्त वीर पुरुषों सहित ऐश्वर्य का प्रदान करो ।

आ वो वहन्तु सप्तयो रघुष्यदो रघुपत्वानः प्र जिगात बाहुभिः ।
सीदता बर्हिरुरु वः सदस्कृतं मादयध्वं मरुतो मध्वो अन्धसः ॥२॥

भा०—हे वायु के समान गति वाले या शत्रुओं को मारने में समर्थ वीर पुरुषो ! तुम लोगों को अति वेग वाले सर्पणशील अश्व सर्वत्र सवारी दें । और वेग युक्त पहियों से दौड़ते हुए आप लोग, अपनी बाहुओं से अच्छी प्रकार विजय करो । आप लोग आसनों पर विराजें । आप लोगों के लिये विशाल भवन बनाया जाय । आप लोग मधुर अन्न आदि उपभोग्य पदार्थों से सदा तृप्ति लाभ करें ।

इमं स्तोममर्हते जातवेदसे रथमिव सं महेमा मनीषया ।
भद्रा हि नः प्रमतिरस्य संसद्यग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ॥३॥

भा०—पूजनीय, वेदों के विद्वान् राजा के लिये, जिस प्रकार रथ को सजाया जाता है उसी प्रकार हम लोग बुद्धि पूर्वक इस स्तुतिसमूह को भी भक्ति आदर पूर्वक सुसज्जित करें । इस विद्वान् और अग्रणी की राजसभा या सत्संग में हमारी कल्याणमयी मनन शक्ति हो । और

हे अग्रणी राजन् ! तेरे मित्रभाव में रहते हुए हम लोग कभी पीड़ित न हों ।

एभिरग्ने सरथं याह्यर्वाङ् नानारथं वा विभवो ह्यश्वाः ।

पत्नीवतस्त्रिंशतं त्रींश्च देवाननुष्वधमा वह मादयस्व ॥ ४॥

भा०—हे अग्रणी राजन् ! इन बीर पुरुषों सहित तू अपने रथ द्वारा और वीरों के नाना रथों से युक्त होकर आगे प्रयाण कर । तेरे अश्वारोही गण विशेष शक्तिशाली हों । तू ३३ विजिगीषु राजाओं को, उनकी पालन करने हारी सेना सहित या उनकी स्त्रियों सहित, उनके भरण पोषणोचित धन अन्न आदि के अनुसार अपने साथ रख और उनको सुखी प्रसन्न रख ।

इति प्रथमोऽनुवाकः ॥

(१४) राजा का वर्णन

सौभरिर्ऋषिः । इन्द्रो देवता । प्रगाथः । चतुर्ऋचं सूक्तम् ।

वयमु त्वामपूर्व्य स्थूरं न कच्चिद् भरन्तोऽवस्यवः ।

वाजे चित्रं हवामहे ॥ १ ॥

भा०—हे अपूर्वशक्ति वाले ! हम रक्षा चाहने वाले प्रजाजन तेरा अन्न आदि पदार्थों से भरण-पोषण करते हुए ही, अति पूजनीय तुझको बलवान् महापुरुष के समान संग्राम में पुकारते हैं ।

उप त्वा कर्मन्नूतये स नो युवोग्रश्चक्राम यो धृषत् ।

त्वामिद्ध्यवितारं ववृमहे सखाय इन्द्र सानसिम् ॥ २ ॥

भा०—हे राजन् ! हम में से जो शत्रुओं को धर्षण करने में समर्थ और अति बलवान्, सदा जवान, वीर्यवान् है वह तू है । हम लोग प्रत्येक कर्म में अपनी रक्षा के लिये तेरी ही शरण आते हैं । परस्पर समान आख्यान या नामरूप वाले, परस्पर के स्नेही हम हे राजन् !

सबको सब प्रकार के ऐश्वर्य, पदाधिकार और भूमि आदि का विभाग देने वाले तुझको ही अपना रक्षक वरण करते हैं।

यो न इदमिदं पुरा प्र वस्य आनिनाय तमु व स्तुषे ।
सखाय इन्द्रमूतये ॥ ३ ॥

भा०—हे समान नाम, यश, कीर्त्ति वाले, परस्पर स्नेही मित्रजनो! जो हमें यह नाना प्रकार के गौ, अश्व, सुवर्ण आदि अति उत्तम जीवनोपयोगी ऐश्वर्य सबसे पहले अच्छी प्रकार प्राप्त कराता है, आप लोगों की रक्षा के लिये, उसही राजा की मैं स्तुति करता हूं।

हर्यश्वं सत्पतिं चर्षणीसहं स हि ष्मा यो अमन्दत ।
आ तु नः स वयति गव्यमश्व्यं स्तोतृभ्यो मघवा शतम् ॥ ४ ॥

भा०—तेज अश्वों वाले, सज्जनों के पालक, सब मनुष्यों को वश करने में समर्थ पुरुष के मैं गुण बतलाता हूँ। यह वह है जो सदा प्रसन्न और तृप्त रहता है। वह गौ और अश्व आदि सैकड़ों धन हम स्तुति कर्त्ता लोगों को प्राप्त कराता है।

(१५) परमेश्वर का वर्णन

गोतम ऋषिः । इन्द्रो देवता । त्रिष्टुभः । षड्ऋचं सूक्तम् ।

प्र मंहिष्ठाय बृहते बृहद्रये सत्यशुष्माय तवसे मतिं भरे ।
अपामिव प्रवणे यस्य दुर्धरं राधो विश्वाय शवसे अपावृतम् ॥१॥

भा०—सबसे अधिक पूजनीय, सबसे बड़े, सत्य के बल से युक्त, बलस्वरूप परमेश्वर के बड़े भारी वेग के सम्बन्ध में उपदेश करता हूँ। नीचे की तरफ आते हुए जलों के भारी बल के समान जिस परमेश्वर का दुर्धर बल सब ओर बल-कार्य करने के लिये प्रकट होता है।

अध ते विश्वमनु हासदिष्टय आपो निम्नेव सवना हविष्मतः ।
यत् पर्वते न समशीत हर्यत इन्द्रस्य वज्रः श्नथिता हिरण्ययः ॥२॥

भा०—ज्ञानी पुरुष के जैसे यज्ञ आदि कर्म आप्त पुरुषों के आश्रय पर होते हैं, इसी प्रकार हे परमेश्वर ! समस्त जगत् के कार्य अपने इष्ट प्रयोजन के लिये तुझ पर निर्भर हैं। परमेश्वर का सर्व-चूर्णकारी बल पर्वत, दुर्ग आदि की रक्षा पर भी नहीं रुकता, उसको भी तोड़ डालता है।

अस्मै भीमाय नमसा समध्वर उषो न शुभ्र आ भरा पनीयसे।
यस्य धाम श्रवसे नामेन्द्रियं ज्योतिरकारि हरितो नायसे ॥३॥

भा०—हे पुरुष ! उषाकाल के समान तेजोमय तथा हिंसा से रहित परमेश्वर के आश्रय में वर्तमान तू इस स्तुतियोग्य, पराक्रमी परमेश्वर को हवि आदि सत्कार से पूर्ण कर। जिसका तेज, नमनकारी बल और ऐश्वर्य प्रसिद्ध है। और जिसका प्रकाश मानो दूर दूर दिशाओं तक फैलने के लिये उत्पन्न होता है।

इमे त इन्द्र ते वयं पुरुष्टुत ये त्वारभ्य चरामसि प्रभूवसो।
नहि त्वदन्यो गिर्वणो गिरः सघत् क्षोणीरिव प्रति नो हर्य तद् वचः

भा०—हे परम ऐश्वर्यवन् ! हे बहुत प्रकारों से वर्णित ! हे अति सामर्थ्यवान् सर्ववासी ! जो लोग तुझको आरम्भ करके, तुझको मुखिया बनाकर विचरते हैं वे ये हम तेरे ही उपासक हैं। हे समस्त वाणियों के सेवन करने वाले ! तुझसे दूसरा कोई और हमारी वाणियों को नहीं सहन करता, कोई नहीं प्राप्त करता। तू पृथिवी के समान सहिष्णु होकर हमारे नाना प्रकार के वचनों का श्रवण करता है।

भूरि त इन्द्र वीर्यं तव स्मस्यस्य स्तोतुर्मघवन् काममा पृण।
अनु ते द्यौर्बृहती वीर्यं मम इयं च ते पृथिवी नेम ओजसे ॥ ५ ॥

भा०—हे परमेश्वर ! तेरा सामर्थ्य महान् है। हम तेरे हैं। हे ऐश्वर्यवन् ! तू इस स्तुतिशील विद्वान् पुरुष की अभिलाषा को पूर्ण कर। तेरे ही बल पर यह बड़ी भारी द्यौ बनी है। और यह पृथिवी भी तेरे ही पराक्रम के आगे झुकती है।

राजा, विद्युत्, ईश्वर सबके पक्ष में समान है ।

त्वं तमिन्द्र पर्वतं महामुरुं वज्रेण वज्रिन् पर्वशश्चकर्तिथ ।
अवासृजो निवृताः सर्तवा अपः सत्रा विश्वं दधिषे केवलं सहः ॥६॥

भा०—हे ईश्वर ! तू अपने ज्ञानवज्र से पर्वत के समान दृढ़ मूल वाले अज्ञान का नाश करता है। समस्त ज्ञानों को आत्मा में प्रेरित करता है। तू सब बल को एकमात्र धारण करता है।

(१६) परमेश्वर की उपासना और वेदवाणियों का प्रकाश और उपदेश

अयास्य ऋषिः । बृहस्पतिर्देवता । त्रिष्टुभः । द्वादशर्चं सूक्तम् ।

उदप्रुतो न वयो रक्षमाणा वावदतो अभ्रियस्येव घोषाः ।
गिरिभ्रजो नोर्मयो मदन्तो बृहस्पतिमभ्यर्का अनावन् ॥१॥

भा०—जल से ऊपर उठकर उड़ने वाले, अपनी जान बचाकर दौड़ते हुए पक्षी जिस प्रकार फड़ फड़ शब्द करते हुए उड़ते हैं और निरन्तर गर्जना करते हुए मेघ जिस प्रकार ध्वनि करते हैं और पर्वत से झरने वाली जलधाराएं जिस प्रकार ध्वनि करती हैं, उसी प्रकार अर्चनशील विद्वान् पुरुष मिलकर वेद-ध्वनि करते हुए अति हृष्ट होकर वेद वाणी और महती शक्ति के पालक परमेश्वर की साक्षात् स्तुति करते हैं।

सं गोभिराङ्गिरसो नक्षमाणो भग इवेदर्यमणं निनाय ।
जने मित्रो न दम्पती अनक्ति बृहस्पते वाजयाशूँरिवाजौ ॥ २ ॥

भा०—अंग अर्थात् शरीर में रहने वाला प्राण, देह में व्याप्त होकर, अन्न के समान आत्मा को चलाता है, परस्पर मैत्री वाले पति-पत्नी के समान वर्तमान प्राण अपान दो, आंख दो, नाक दो, जिह्वा और रसना दो, गुदा और लिङ्ग दो इन सब युगलों को जीवित रखता है और सबको चलाता है जैसे कि सारथि घोड़ों को ।

साध्वर्या अतिथिनीरिषिरा स्पार्हाः सुवर्णा अनवद्यरूपाः ।
बृहस्पतिः पर्वतेभ्यो वितूर्या निर्गा ऊपे यवमिव स्थिविभ्यः ॥३॥

भा०—वेदवाणियों के पति परमेश्वर से वेदवाणियां इस प्रकार प्रकट होती हैं जिस प्रकार कि पर्वतों से जलधाराएं निकलती हैं और स्थिर पृथिवी से जौ निकलते हैं। वे वेदवाणियां उत्तम स्वामी वाली हैं, उन में अतिथियज्ञ आदि का वर्णन है, अभीष्ट और स्पृहणीय हैं, उनमें उत्तम उत्तम वर्णन है, उनका स्वरूप अदूषित है।

आप्रुषायन् मधुन ऋतस्य योनिमवक्षिपन्नर्क उल्कामिव द्योः ।
बृहस्पतिरुद्धरन्नश्मनो गा भूम्या उद्नेव वि त्वचं बिभेद ॥ ४ ॥

भा०—सूर्य जिस प्रकार जल से भूमि को सींचता हुआ जल के आश्रय मेघ को नीचे फेंकता है और भूमि की त्वचा को जल द्वारा भेद देता है या जिस प्रकार सूर्य आकाश से उल्का को फेंकता है, इसी प्रकार बृहस्पति परमेश्वर सत्य स्वरूप वेद की वाणियों को अपने व्यापक स्वरूप से प्रकट करता हुआ वेद-भक्तों के अज्ञानावरण को छिन्न-भिन्न कर देता है।

अप ज्योतिषा तमो अन्तरिक्षादुद्नः शीपालमिव वात आजत् ।
बृहस्पतिरनुमृश्या वलस्याभ्रमिव वात आ चक्र आ गाः ॥ ५ ॥

भा०—जिस प्रकार प्रचण्ड वायु जल के पृष्ठ से सैवाल को फाड़-कर दूर कर देता है उसी प्रकार बृहती वेदवाणी का स्वामी परमेश्वर हृदय के अन्तरिक्ष में से अज्ञानतम को वेद के प्रकाश से दूर करता है और जिस प्रकार वायु आवरणकारी मेघ को छिन्न-भिन्न करके सूर्य की किरणों को प्रकट करता है उसी प्रकार वेद वाणी का पालक परमेश्वर तामस-आवरण को अपने ज्ञानबल से छिन्न-भिन्न करके वेद-वाणियों को प्रकट करता है।

यदा वलस्य पीयतो जसुं भेद् बृहस्पतिरग्नितपोभिरर्कैः ।
दद्भिर्न जिह्वा परिविष्टमाददाविर्निधीरँकृणोदुस्रियाणाम् ॥ ६ ॥

भा०—जब विनाशकारी और आवरणकारी तमस के नाशकारी बल को अग्नि के समान प्रकाशमान वेदमन्त्रों के द्वारा वेद का पति परमात्मा तोड़ डालता है, तब जिस प्रकार जीभ दांतों द्वारा परोसे अन्न को ग्रस लेती है उसी प्रकार वह तामस बल का नाश कर देता है। तत्पश्चात् हृदय में उठने वाली वेदवाणियों के छुपे ज्ञान-भण्डारों को साक्षात् करा देता है।

बृहस्पतिरमत हि त्यदासां नाम स्वरीणां सदने गुहा यत् ।
आण्डेव भित्वा शकुनस्य गर्भमुदुस्रियाः पर्वतस्य त्मनाजत् ॥७॥

भा०—जब वेदज्ञ गुह्यहृदय में गूंजने वाली वेद-वाणियों के उस परम स्वरूप को जान लेता है तब अण्डों को फोड़कर जिस प्रकार भीतर के गर्भ में स्थित बच्चे को पक्षिणी-माता बाहर निकाल लेती है उसी प्रकार वह विद्वान् स्वयं पूर्ण सामर्थ्य वाले परमेश्वर के भीतर विद्यमान वेदवाणियों को प्राप्त कर लेता है।

कुरान में कुरान की आयतों को पर्वत की गुफा (लामहफूज़) में से प्राप्त करने का जो वर्णन है वह इसी की छाया है।

अश्नापिनद्धं मधु पर्यपश्यन् मत्स्यं न दीन उदनि क्षियन्तम् ।
निष्टज्जभार चमसं न वृक्षाद् बृहस्पतिर्विरवेणा विकृत्य ॥ ८ ॥

भा०—थोड़े जल में निवास करने वाली मछली को जिस प्रकार लोग देख लेते हैं उसी प्रकार वेदवाणी का पालक विद्वान् पुरुष भी व्यापक परमात्मा द्वारा ढके हुए मधुर वेद को सब प्रकार से साक्षात् करता है। और जिस प्रकार वृक्ष के लकड़ से औज़ारों से काट काट कर कारीगर पात्र को निकाल लेता है उसी प्रकार वेदज्ञ विद्वान् विशेष

शब्द-विज्ञान द्वारा वेदमन्त्रों की विविध व्याख्या करके उस परम ज्ञान को निकाल लेता है।

सोषाम॑विन्द॒त् स स्वः॑ सो अ॒ग्निं सो अ॒र्केण॒ वि ब॑बाधे॒ तमां॑सि।
बृह॒स्पति॒र्गोव॑पुषो व॒लस्य॒ निर्म॒ज्जानं॒ न पर्व॑णो जभार ॥ ६ ॥

भा०—वह वेदज्ञ अज्ञान का दाह कर देने वाली प्रातःकाल की प्रभा के समान, ज्योति को प्राप्त करता है। वह प्रकाशस्वरूप तथा सुखस्वरूप परमेश्वर को प्राप्त करता है। वह ज्ञानस्वरूप परमेश्वर का साक्षात् करता है। वह वेदमन्त्रों द्वारा अन्धकारों को विविध प्रकार से विनष्ट करता है। वह वेद वाणी का पालक विद्वान् वेदवाणियों के शरीर के एक एक पर्व अर्थात् खण्ड से आत्मज्ञान को प्राप्त करता है। मज्जा = मत् + ज्ञान = आत्मज्ञान।

हि॒मेव॑ प॒र्णा मु॑षि॒ता वना॑नि॒ बृह॒स्पति॑नाकृपयद् व॒लो गाः।
अ॒नानुकृ॒त्यम॑पु॒नश्च॑कार॒ यात् सू॒र्यामासा॒ मि॒थ उ॒च्चरा॑तः ॥१०॥

भा०—हिम अर्थात् पाले से जिस प्रकार वन और पत्र नष्ट हो जाते हैं, उसी प्रकार वेद के पति परमात्मा द्वारा वेदवाणियों का पड़दा फाड़ कर उन्हें प्रकट कर दिया जाता है। इस प्रकार वार वार न किया जा सकने वाला यह कर्म सृष्टि में वार वार नहीं किया जाता प्रत्युत एक ही वार किया जाता है जब तक कि सूर्य और चन्द्रमा इस सृष्टि में रहते हैं अर्थात् वेदों का प्रकाश सृष्टि में एक वार ही होता है, वार वार नहीं।

अ॒भि श्या॒वं न कृश॑नेभि॒रश्वं॒ नक्ष॑त्रेभिः पि॒तरो॒ द्याम॑पिंशन्।
रात्र्यां॒ तमो॒ अद॑धु॒र्ज्योति॒रह॒न् बृह॒स्पति॑र्भि॒नदद्रिं॑ वि॒दद् गाः ॥११॥

भा०—लोग जिस प्रकार श्याम अश्व को सुफ़ैद आभूषणों द्वारा सजाएँ उसी प्रकार संसार की पालक शक्तियों ने आकाश को नक्षत्रों द्वारा स्थान स्थान पर सुसज्जित किया है। वे रात्रि में अन्धकार को

स्थापित करती है और दिन में सूर्य को वेदवाणी का पति अभेद्य अन्धकार को तोड़ देता है और वेदवाणियों को प्राप्त करता है ।

इदमकर्म नमो अभ्रियाय यः पूर्वीरन्वानोनवीति ।
बृहस्पतिः स हि गोभिः सो अश्वैः स वीरेभिः स नृभिर्नो वयो धात् ॥ १२ ॥

भा०—जो वेदपति अनादि वेदवाणियों का यथाक्रम उपदेश करता है उस मेघ के समान सबको ज्ञानजल वितरण करने में समर्थ को हम नमस्कार करें । वही वेदवाणियों का पालक गौओं, घोड़ों, वीरपुरुषों और नेताओं सहित हमें ज्ञान, कर्म और आयु धारण करावे ।

(१७) परमेश्वरोपासना ।

१—११ कृष्ण ऋषिः [ऋ० १२ वसिष्ठः] । इन्द्रो देवता । १—१० जगत्यः । ११, १२ त्रिष्टुभौ । द्वादशर्चं सूक्तम् ।

अच्छा म इन्द्रं मतयः स्वर्विदः सध्रीचीर्विश्वा उशतीरनूषत ।
परि ष्वजन्ते जनयो यथा पतिं मर्यं न शुन्ध्युं मघवानमूतये ॥ १ ॥

भा०—कामनायुक्त स्त्रियें जिस प्रकार सुन्दर मनुष्य को पतिरूप से प्राप्त करके अपनी रक्षा के किये आलिङ्गन करती हैं, उसी प्रकार एक ही साथ समान अर्थ को कहने वाली, अभिलाषाओं वाली, सुखमय परमात्मा को प्राप्त करने वाली समस्त मेरी ज्ञानमय वाणियें ऐश्वर्यवान् उस परमेश्वर की स्तुति करती हैं ।

न घा त्वद्रिगप वेति मे मनस्त्वे इत् कामं पुरुहूत शिश्रय ।
राजेव दस्म नि षदोऽधि बर्हिष्यस्मिन्त्सु सोमेऽवपानमस्तु ते ॥ २ ॥

भा०—हे परमेश्वर ! हे प्रजाओं द्वारा पुकारे गये ! मेरा मन तेरी तरफ जाकर फिर निश्चय ही तुझसे दूर नहीं जाता । तुझ में ही वह कामनाओं और आशाओं को रख देता है । हे दर्शनीय ! आसन पर जिस प्रकार राजा विराजता है उस प्रकार इस महान् ब्रह्माण्ड में तू

अधिष्ठाता रूप से विराजता है। इस सोमस्वरूप आत्मा में तेरा ज्ञानरस प्राप्त हो।

विषूवृदिन्द्रो अमतेरुत क्षुधः स इद् रायो मघवा वस्व ईशते।
तस्येदिमे प्रवणे सप्त सिन्धवो वयो वर्धन्ति वृषभस्य शुष्मिणः॥३॥

भा०—परमेश्वर दुर्मति और भूख का सब प्रकार से नाश करने हारा है। वह ही धनैश्वर्य का स्वामी है। ये सात लोक उस बलशाली, तथा सुखों के वर्षक परमेश्वर की ही शक्ति का बखान करते हैं।

वयो न वृक्षं सुपलाशमासदन्त्सोमास इन्द्रं मन्दिनश्चमूषदः।
प्रैषामनीकं शवसा दविद्युतद् विदत् स्वर्मनवे ज्योतिरार्यम्॥४॥

भा०—वृक्ष पर जिस प्रकार पक्षी विराजते हैं, उसी प्रकार परमेश्वर में, ब्रह्मास्वाद में निरत, आनन्दरस से तृप्त, सौम्य स्वभाव वाले मुक्त-जीव आ विराजते हैं। इनका मुख ज्ञान से प्रकाशित होता है। वह परमेश्वर मननशील पुरुष को सुख और सर्वश्रेष्ठ ज्योति प्रदान करता है।

कृतं न श्वघ्नी वि चिनोति देवने संवर्गं यन्मघवा सूर्यं जयत्।
न तत् ते अन्यो अनु वीर्यं शकन्न पुराणो मघवन् नोत नूतनः॥५॥

भा०—जूए में जिस प्रकार अपने भविष्य का नाश करने वाला जुआखोर अपने संचित धन को खो देता है उसी प्रकार जब ऐश्वर्यवान् प्रभु सबको अपने साथ मिलाये रखने वाले सूर्य को अपने वश करता है तब हे परमेश्वर! तेरे वीर्य को न कोई पुरातन और न कोई नवीन शक्ति ही जीत सकती है।

विशंविशं मघवा पर्यशायत जनानां धेना अवचाकशद् वृषा।
यस्याह शक्रः सवनेषु रण्यति स तीव्रैः सोमैः सहते पृतन्यतः॥६॥

भा०—वह परमेश्वर प्रत्येक प्रजा में शयन कर रहा है। वह सुखों का वर्षक मनुष्यों की स्तुतियों पर दृष्टि रखता है। जिस भक्त के युद्ध के अवसरों में वह शक्तिशाली परमेश्वर रमण करता है वह तीव्र ज्ञान-

रसों द्वारा सेना द्वारा आक्रमण करने वाले भीतरी शत्रुओं पर विजय पाता है ।

आपो न सिन्धुमभि यत् समक्षरन्त्सोमास इन्द्रं कुल्या इव ह्रदम् ।
वर्धन्ति विप्रा महो अस्य सादने यवं न वृष्टिर्दिव्येन दानुना ॥७॥

भा०—समुद्र के प्रति जिस प्रकार नदियां बहती हैं और जिस प्रकार ताल में जलधाराएं आकर पड़ती हैं, उसी प्रकार जब सौम्य-स्वभाव वाले मुमुक्षु जीव परमेश्वर की शरण आते हैं तब वे मुमुक्षु इस की शरण में जाकर उसकी ही कीर्त्ति को बढ़ाते हैं, जैसे वर्षा आकाश से आये जल से जौ को बढ़ाया करती है ।

वृषा न क्रुद्धः पतयद् रजःस्वा यो अर्यपत्नीरकृणोदिमा अपः ।
स सुन्वते मघवा जीरदानवेऽविन्दज्ज्योतिर्मनवे हविष्मते ॥ ८ ॥

भा०—जो परमेश्वर गुस्से में आये हुए महावृषभ के समान अति वेगवान् होकर लोकों पर शासन कर रहा है और जो इन समस्त प्रकृति की व्यापक शक्तियों को अपनी पत्नियों के समान उत्पादक शक्तियां बना लेता है, वह परमैश्वर्यवान्, स्तुति करने हारे, मननशील, ज्ञानवान्, प्राणधारी जीव को परम ज्योति प्राप्त कराता है ।

उज्जायतां परशुर्ज्योतिषा सह भूया ऋतस्य सुदुघा पुराणवत् ।
वि रोचतामरुषो भानुना शुचिः स्व१र्ण शुक्रं शुशुचीत सत्पतिः ॥९॥

भा०—परशु अर्थात् आत्मा से परे अनात्म पदार्थों को काटने में समर्थ ज्ञानरूप वज्र अपने आत्मप्रकाश के साथ उदित हो । और सत्य-ज्ञान को अच्छे प्रकार देने वाली 'ऋतम्भरा' नाम की प्रज्ञा पुराणपुरुष परमेश्वर के समान शुद्ध होकर उसके साथ तन्मय होकर रहे । और दीप्तिमान शुद्ध आत्मा भासमान ज्ञान के प्रकाश से विशेष रूप से चमके । वह सच्चा पति आदित्य के समान शुभज्ञान को और भी उज्ज्वल करे ।

गोभिष्टरेमामतिं दुरेवां यवेन क्षुधं पुरुहूत विश्वाम्।
वयं राजभिः प्रथमा धनान्यस्माकेन वृजनेना जयेम॥ १०॥

भा०—हे प्रजाओं से आहृत परमेश्वर ! हम गौओं और भूमियों द्वारा दुःखदायी दरिद्रता दूर करें। और वेदवाणियों द्वारा अज्ञान को पार करें। जौ द्वारा सब प्रकार की भूख को पार करें। हम अति श्रेष्ठ होकर अपनी सेना द्वारा पुष्ट होकर अपने राजाओं सहित ऐश्वर्यों पर विजय करें।

बृहस्पतिर्नः परि पातु पश्चादुतोत्तरस्मादधरादघायोः।
इन्द्रः पुरस्तादुत मध्यतो नः सखा सखिभ्यो वरिवः कृणोतु॥११॥

भा०—महान् संसार का पालक हमें पीछे से, उत्तर से या दायें से या ऊपर से और नीचे से हम पर आघात करने की इच्छा करने वाले दुष्ट पुरुष से, आगे और हमारे बीच में से भी हम पर आघात करने वाले दुष्ट पुरुष से हमारी रक्षा करे। और वह हमारा मित्र होकर हमारे स्नेही मित्रों को धन ऐश्वर्य प्रदान करे।

बृहस्पते युवमिन्द्रश्च वस्वो दिव्यस्येशाथे उत पार्थिवस्य।
धत्तं रयिं स्तुवते कीरये चिद्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः॥१२॥

भा०—हे वेदवाणी के पालक ! और हे जीवात्मन् ! तुम दोनों आकाश में विद्यमान समस्त ऐश्वर्यों को वश कर रहे हो। आप दोनों स्तुतिशील, ज्ञानवान् पुरुष को ऐश्वर्य प्रदान करो। और हे विद्वान् पुरुषो ! आप कल्याणकारी उपायों द्वारा हमारी सदा रक्षा करें।

इति द्वितीयोऽनुवाकः।

(१८) परमेश्वर की स्तुति।

१–३ काण्वो मेधातिथिरांगिरसः प्रियमेधश्च ऋषी। ४–६ वसिष्ठः। इन्द्रो देवता। गायत्री। षड्चं सूक्तम्।

वयमु त्वा तदिदर्था इन्द्र त्वायन्तः सखायः ।
कण्वा उक्थेभिर्जरन्ते ॥ १ ॥

भा०—हे परमेश्वर ! हम उस लोक और इस लोक अर्थात् पारलौकिक और ऐहिक प्रयोजनों की इच्छा करने वाले, तुझे प्राप्त होने की इच्छा करते हुए तेरे मित्र ज्ञानी पुरुष, तेरी स्तुतिवचनों और वेद के सूक्तों द्वारा स्तुति करते हैं ।

न घेमन्यदा पपन वज्रिन्नपसो नविष्टौ ।
तवेदु स्तोमं चिकेत ॥ २ ॥

भा०—हे पापों से निवृत्त करने वाले ज्ञानवज्र के धारक प्रभो ! कर्म के प्रारम्भ में और कुछ भी मैं स्तुति नहीं करता, प्रत्युत तेरी ही स्तुति करना जानता हूँ ।

इच्छन्ति देवाः सुन्वन्तं न स्वप्नाय स्पृहयन्ति ।
यन्ति प्रमादमतन्द्राः ॥ ३ ॥

भा०—दिव्यगुण वाले पुरुष काम करने हारे यत्नशील पुरुष को चाहते हैं । वे सोने वाले प्रमादी पुरुष से प्रेम नहीं करते । आलस्य रहित पुरुष प्रकृष्ट आनन्द को प्राप्त करते हैं ।

वयमिन्द्र त्वायवोऽभि प्र णोनुमो वृषन् ।
विद्धी त्वस्य नो वसो ॥ ४ ॥

भा०—हे परमेश्वर ! हे समस्त सुखों के वर्षक ! हम तेरी ही प्राप्ति की अभिलाषा करते हुए तेरी साक्षात् स्तुति करते हैं । हे समस्त संसार के बसाने वाले ! हमारी इस स्तुति को तू जानता है ।

मा नो निदे च वक्तवेऽर्यो रन्धीरराव्णे ।
त्वे अपि क्रतुर्मम ॥ ५ ॥

भा०—हे परमेश्वर ! आप स्वामी होकर हमें निन्दक पुरुष के अधीन मत कर । और अदानशील कंजूस और अपशब्द-भाषी पुरुष के

वश में भी हमें मत कर। और मेरा सब संकल्प और विचार आपके ही लिये है।

त्वं वर्मासि सप्रथः पुरोयोधश्च वृत्रहन्।
त्वया प्रति ब्रुवे युजा ॥ ६ ॥

भा०—हे आवरक अन्धकार के नाशक परमेश्वर! तू आगे बढ़कर प्रहार करने वाले योद्धा के समान हमारा विशाल कवच है। तुझ साथी के बल द्वारा मैं अपने प्रतिद्वन्द्वी लोगों को उत्तर देने में समर्थ होऊं।

(१६) परमेश्वर और राजा की शरण प्राप्ति।

विश्वामित्र ऋषिः। इन्द्रो देवता। गायत्र्यः। सप्तर्चं सूक्तम्।

वार्त्रहत्याय शवसे पृतनाषाह्याय च।
इन्द्र त्वा वर्तयामसि ॥ १ ॥

भा०—हे राजन्! हे ऐश्वर्यवन्! वृत्र, नगरों को घेरने वाले शत्रुओं को हनन कर देने वाले और संग्रामों और शत्रु सेनाओं की पराजय कर देने वाले बल के कारण ही हम प्रजाजन तेरे शरण आते हैं।

अर्वाचीनं सु ते मन उत चक्षुः शतक्रतो।
इन्द्र कृण्वन्तु वाघतः ॥ २ ॥

भा०—हे सैकड़ों कर्मों वाले! हे ऐश्वर्यवन्! स्तुति करने हारे भक्त जन! तेरे चित्त और दृष्टि को उत्तम रीति से अपने अभिमुख करें।

नामानि ते शतक्रतो विश्वाभिर्गीर्भिरीमहे।
इन्द्राभिमातिषाह्ये ॥ ३ ॥

भा०—हे सैकड़ों बलों से युक्त! और हे ऐश्वर्यवन्! अभिमान आदि शत्रुओं के विजय करने के निमित्त हम समस्त वाणियों से तेरे अनेक नामों का मनन करते हैं।

पुरुष्टुतस्य धामभिः शतेन महयामसि।
इन्द्रस्य चर्षणीधृतः ॥ ४ ॥

भा०—प्रजाओं द्वारा स्तुति किये जाने वाले, ऐश्वर्यवान् तथा धारण सामर्थ्यों द्वारा मनुष्यों को धारण करने हारे प्रभु की हम पूजा करें।

इन्द्रं वृत्राय हन्तवे पुरुहूतमुप ब्रुवे ।
भरेषु वाजसातये ॥ ५ ॥

भा०—शत्रु के नाश करने के लिये और देवासुर संग्रामों में शक्ति प्राप्त करने के लिये प्रजाओं से स्तुति करने योग्य परमेश्वर की हम प्रार्थना करें।

वाजेषु सासहिर्भव त्वामीमहे शतक्रतो ।
इन्द्र वृत्राय हन्तवे ॥ ६ ॥

भा०—हे अनेक सामर्थ्यों वाले प्रभो ! वृत्र के नाश के लिये तुझसे हम प्रार्थना करते हैं। तू संग्रामों में शत्रुओं का सदा पराजय करने में समर्थ है।

द्युम्नेषु पृतनाज्ये पृत्सु तूर्षु श्रवःसु च ।
इन्द्र साक्ष्वाभिमातिषु ॥ ७ ॥

भा०—ऐश्वर्यों को प्राप्त करने में, संग्रमों में विजय करने में, संग्राम में खड़ी शत्रु-सेनाओं के वध करने के उपायों में, यश के कार्यों में, हे ऐश्वर्यवन् ! तू अभिमानी शत्रुओं पर विजयी हो।

(२०) परमेश्वर से प्रार्थना और सेनापति और राजा के कर्त्तव्य।

१—४ विश्वामित्रः । ५—७ गृत्समद्रः । इन्द्रो देवता । गायत्र्यः । सप्तर्चं सूक्तम् ।

शुष्मिन्तमं न ऊतये द्युम्निनं पाहि जागृविम् ।
इन्द्र सोमं शतक्रतो ॥ १ ॥

भा०—हे परमेश्वर या हे सेनापते ! हे सैकड़ों बलों से युक्त ! तू हमारी रक्षा के लिये, अधिक बलशाली, रक्षा के कार्य में सदा सावधान, यशस्वी, सबके प्रेरक शासक राजा की रक्षा कर।

इन्द्रियाणि शतक्रतो या ते जनेषु पञ्चसु ।
इन्द्र तानि त आ वृणे ॥ २ ॥

भा०—हे सैकड़ों सामर्थ्यों वाले ! हे ऐश्वर्यवन् ! पांचों प्रकार के जनों में तेरे जितने सामर्थ्य हैं उन सब सामर्थ्यों को मैं स्वीकार करता हूँ, आदर भाव से देखता हूँ ।

अगन्निन्द्र श्रवो बृहद् द्युम्नं दधिष्व दुष्टरम् ।
उत् ते शुष्मं तिरामसि ॥ ३ ॥

भा०—हे राजन् ! तू बड़े भारी ऐश्वर्य को प्राप्त है । तू अपार धन धारण कर । तेरे बल को हम खूब बढ़ावें ।

अर्वावतो न आ गह्यथो शक्र परावतः ।
उ लोको यस्ते अद्रिव इन्द्रेह तत आ गहि ॥ ४ ॥

भा०—हे अभेद्य शक्ति वाले राजन् ! तू हमारे पास समीप के और दूर के देश से भी आ । हे शक्तिमन् ! तेरा जो भी स्थान हो वहां से ही यहां आ, हमें प्राप्त हो ।

इन्द्रो अङ्ग महद् भयमभी षदप चुच्यवत् ।
स हि स्थिरो विचर्षणिः ॥ ५ ॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो ! राजा बड़े भय का पराभव करता है और उसको दूर करता है । क्योंकि वह स्थिर विश्व का या समस्त प्रजा का साक्षात् द्रष्टा अधिष्ठाता है ।

इन्द्रश्च मृलयाति नो न नः पश्चादघं नशत् ।
भद्रं भवाति नः पुरः ॥ ६ ॥

भा०—राजा और परमेश्वर हमें सुखी करे । हमारे पीछे पाप या दुःख न लगे । हमारे आगे सदा कल्याण और सुख हो ।

इन्द्र आशाभ्यस्परि सर्वाभ्यो अभयं करत् ।
जेता सत्रून् विचर्षणिः ॥ ७ ॥

भा०—प्रजाओं को विविध प्रकार से देखने हारा और शत्रुओं का विजेता राजा समस्त दिशाओं से हमें अभय करे ।

(२१) परमेश्वर और राजा ।

सव्य आंगिरस ऋषिः । इन्द्रो देवता । १–९ जगत्यः । १०, ११ त्रिष्टुभौ ।

एकादशर्चं सूक्तम् ।

न्यू३षु वाचं प्र महे भरामहे गिर इन्द्राय सदने विवस्वतः ।
नू चिद्धि रत्नं ससतामिवाविदन्न दुष्टुतिर्द्रविणोदेषु शस्यते ॥१॥

भा०—हम महान् परमेश्वर के लिये प्रार्थना वाणी का नित्य प्रयोग करें । ईश्वर की उपासना करने वाले के गृह में परमेश्वर के लिये वाणियां कही जाती हैं । वह परमेश्वर सोते हुए आलसी लोगों के रमण योग्य धन को बहुत शीघ्र हर लेता है । धनैश्वर्य के दाता पुरुषों के सम्बन्ध में निन्दा वचन नहीं कहे जाते ।

दुरो अश्वस्य दुर इन्द्र गोरसि दुरो यवस्य वसुन इनस्पतिः ।
शिक्षानरः प्रदिवो अकामकर्शनः सखा सखिभ्यस्तमिदं गृणीमसि ॥ २ ॥

भा०—हे परमेश्वर ! तू अश्वों, गौओं, जौ आदि अन्नों का दाता है और धन ऐश्वर्य का स्वामी है । तू मनुष्यों को अभिमत दान देने हारा, उत्कृष्ट व्यवहार वाला, कामना या आशा का विघात न करने वाला और मित्रों के लिये सखा है । तेरी हम इस प्रकार स्तुति करते हैं ।

शचीव इन्द्र पुरुकृद् द्युमत्तम तवेदिदमभितश्चेकिते वसु ।
अतः संगृभ्याभिभूत आ भर मा त्वायतो जरितुः काममूनयीः ॥३॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन् ! हे प्रज्ञावन् या हे शक्तिमन् ! हे बहुत से धनों, जनों और लोकों के कर्त्ता ! हे सबसे अधिक धनशालिन् ! यह सब, सब ओर पसरा हुआ ऐश्वर्य या बसा हुआ जगत् तेरा ही प्रतीत होता है । हे चारों ओर की विभूति के स्वामिन् ! तू हमें ऐश्वर्य संग्रह

करके प्रदान कर । तुझको चाहने वाले तथा तेरी स्तुति करने वाले पुरुष की आशा को कम न कर ।

एभिर्द्युभिः सुमना एभिरिन्दुभिर्निरुन्धानो अमतिं गोभिरश्विना ।
इन्द्रेण दस्युं दरयन्त इन्दुभिर्युतद्वेषसः समिषा रभेमहि ॥ ४ ॥

भा०—उत्तम चित्त वाला राजा इन तेजों, धनादि ऐश्वर्यों, गौ आदि पशुओं और अश्व वाले सैन्य से, दारिद्र्य, अदम्य शत्रु और अज्ञान को रोकता रहे । हम लोग ऐश्वर्य वाले राजा और युद्ध में द्रुतगति से जाने वाले वीरपुरुषों के द्वारा दस्यु को भयभीत करते हुए, परस्पर सब द्वेषों से रहित होकर अन्न, बल और ज्ञान से एकत्र होकर रहें ।

समिन्द्र राया समिषा रभेमहि सं वाजेभिः पुरुश्चन्द्रैरभिद्युभिः ।
सं देव्या प्रमत्या वीरशुष्मया गोअग्रयाश्वावत्या रभेमहि ॥५॥

भा०—हे राजन् ! परमेश्वर ! हम धन, अन्न और बल, बहुत आह्लादक पदार्थों, कान्तियों, बलों और ऐश्वर्यों से युक्त हों । वीर सैनिकों के बलवाली, गौ आदि पशुओं को मुख्य धन रूप से या उद्देश्य रूप से रखने वाली, घोड़ों से युक्त, विजयशील तथा शत्रुओं का अच्छी प्रकार स्तम्भन करने में समर्थ सेना से युक्त हों ।

ते त्वा मदा अमदन् तानि वृष्ण्या ते सोमासो वृत्रहत्येषु सत्पते ।
यत् कारवे दश वृत्राण्यप्रति बर्हिष्मते नि सहस्राणि बर्हयः ॥६॥

भा०—हे सज्जनों के पालक ! वे हर्षकारी, उत्साही वीर, वे नाना बल और वे नाना ऐश्वर्य तुझे विघ्नकारी दुष्टों के नाश के अवसरों में उत्साहित करें । जिससे तू वृद्धिशील तथा क्रियाशील राजकर्त्ता के आगे आने वाले हज़ारों विघ्नों और विघ्नकारियों के सैन्यों को भी विना रुकावट के विनाश करने में समर्थ हो ।

युधा युधमुप घेदेषि धृष्णुया पुरा पुरं समिदं हंस्योजसा ।
नम्या यदिन्द्र सख्या परावति निबर्हयो नमुचिं नाम मायिनम् ७

भा०—हे राजन् ! तू शत्रु को धर्षण करने में समर्थ अपनी प्रहार-शक्ति से शत्रु के प्रहार साधन को निश्चय ही प्राप्त होता है, उसको सहता और वश करता है। और शत्रु को विजय करने में समर्थ अपने गढ़ और पराक्रम द्वारा सामने स्थित इस शत्रु के गढ़ को अच्छी प्रकार नाश करता है। और दूर देश में भी हे सेनापते ! शत्रु को दबा देने में समर्थ और अपने समक्ष विनीत, मित्रभूति राजा द्वारा कभी जीता न छोड़ने योग्य मायावी शत्रु को तू सर्वथा नष्ट करता है।

त्वं करञ्जमुत पर्णयं वधीस्तेजिष्ठयातिथिग्वस्य वर्तनी ।
त्वं शता वङ्गृदस्याभिनत् पुरोऽनानुदः परिषूता ऋजिश्वना ॥८॥

भा०—हे इन्द्र ! तू अतिथि के प्रति गौ, भूमि आदि प्रदान करने वाले पुरुष के मार्ग में बाधक होने वाले, कुत्सित स्वभाव वाले और गतिशील रथों से प्रयाण करने वाले शत्रु को भी अपनी अति तेजस्विनी शक्ति से विनाश करता है। तू मर्यादाओं के विनाशक शत्रु के सैकड़ों किलों को तोड़। सरल मार्ग से जाने वाले धर्मात्मा पुरुष द्वारा घेरे हुए कर प्रदान न करने वाले शत्रु के सैकड़ों किलों को तोड़।

त्वमेतां जनराज्ञो द्विर्दशाबन्धुना सुश्रवसोपजग्मुषः ।
षष्टिं सहस्रा नवतिं नव श्रुतो नि चक्रेण रथ्या दुष्पदावृणक् ॥९॥

भा०—हे सेनापते ! बन्धु और सहायक से रहित, परन्तु उत्तम कीर्तिमान् धर्मात्मा राजा के साथ युद्ध में लड़ने वाले बीसियों जन राजाओं, एवं उनके ६००९९ सैनिकों को भी रथ के चक्र के समान बने दुर्गम चक्रव्यूह द्वारा वर्जन करने में समर्थ हो। ऐसा वेद से जाना जाता है।

२० सेनानायकों के अधीन ६००९९ सैनिक एक रथचक्र बनाते हैं।

त्वमाविथ सुश्रवसं तवोतिभिस्तव त्रामभिरिन्द्र तूर्वयाणम् ।
त्वमस्मै कुत्समतिथिग्वमायुं महे राज्ञे यूने अरन्धनायः ॥१०॥

भा०—हे राजन् ! तू अपने रक्षासाधनों द्वारा उत्तम कीर्त्ति से सम्पन्न पुरुष की रक्षा कर। और तू अपने त्राण करने वाले सामर्थ्यों द्वारा शीघ्रकारी यानों के स्वामी अथवा शीघ्र शत्रु पर चढ़ाई करने वाले जन की भी रक्षा कर। तू इस बड़े भारी युवा राजा के लिये, निन्दनीय और पूज्य पुरुषों के आदर करने हारे दोनों प्रकार के पुरुषों को वश में कर।

य उद्दचीन्द्र देवगोपाः सखायस्ते शिवतमा असाम।
त्वां स्तोषाम त्वया सुवीरा द्राघीय आयुः प्रतरं दधानाः ॥११॥

भा०—हे राजन् ! हम तुझ राजा द्वारा परिपालित होकर, इस उत्तम भूलोक के विजय कर लेने पर, तेरे मित्र होकर सबसे अधिक कल्याणकारी हों। हम तेरी स्तुति करें और तेरे साथ हम भी उत्तम वीर होकर, अति दीर्घ और अति उत्कृष्ट जीवन को धारण करने वाले हों।

इति तृतीयेऽनुवाके प्रथमः पर्यायः।

[२२] राजा के कर्त्तव्य।

१—३ त्रिशोकः काण्वः। ४—६ प्रियमेधः काण्वः। गायत्र्यः। षड्टचं सूक्तम्।

अभि त्वा वृषभा सुते सुतं सृजामि पीतये।
तृम्पा व्यश्नुही मदम् ॥ १ ॥

भा०—हे बलवन् तथा सुखों के वर्षक ! अभिषिक्त हुए तेरे प्रति राष्ट्र का आनन्दप्रद ऐश्वर्य मैं पालन और उपभोग के लिये प्रदान करता हूँ। तू तृप्त हो। और आनन्ददायी इस ऐश्वर्य को प्राप्त कर।

मा त्वा मूरा अविष्यवो मोपहस्वान आ दभन्।
माकीं ब्रह्मद्विषो वनः ॥ २ ॥

भा०—हे राजन् ! मूढ़ लोग तेरे अधीन रक्षा चाहने का बहाना बनाने वाले तेरा विनाश न करें। तेरा उपहास करने वाले तेरा

विनाश न करें । वेद और वेदज्ञ विद्वानों के द्वेषी लोग तेरे ऐश्वर्य का भोग न करें ।

इह त्वा गोपरीणसा महे मन्दन्तु राधसे ।

सरो गौरो यथा पिब ॥ ३ ॥

भा०—हे राजन् ! इस राष्ट्र में पृथिवी[1] के सभी राजा बड़े भारी धनैश्वर्य की प्राप्ति के लिये तुझको प्रसन्न और तृप्त करें । जिस प्रकार गौर नामक प्यासा मृग तालाब पर पानी पीता है उसी प्रकार तू इस राष्ट्र के ऐश्वर्यरस का पान कर ।

अभि प्र गोपतिं गिरेन्द्रमर्च यथा विदे ।

सूनुं सत्यस्य सत्पतिम् ॥ ४ ॥

भा०—हे पुरुष ! तू अपनी वाणी से पृथ्वी के पालक, सत्य व्यवहार के उत्पादक और सज्जनों के पालक, ऐश्वर्यवान् राजा की ऐसी स्तुति कर, जिस प्रकार यह सर्वत्र जाना जाय ।

आ हरयः ससृज्रिरेऽरुषीरधि बर्हिषि ।

यत्राभि संनवामहे ॥ ५ ॥

भा०—जिस वृद्धिशील राजपद पर हम तेरी सब प्रकार से स्तुति करते हैं उसी पद पर तेजोमय किरणें जिस प्रकार सूर्य के साथ संगत हैं उसी प्रकार, वेगवान् अश्वारोहीगण तुझसे सुसंगत हों ।

इन्द्राय गाव आशिरं दुदुह्रे वज्रिणे मधु ।

यत् सीमुपह्वरे विदत् ॥ ६ ॥

भा०—गौवें जिस प्रकार स्वामी के लिये दूध उत्पन्न करती हैं उसी प्रकार वज्रधारी राजा के लिये भूमियें अन्न उत्पन्न करती हैं । जिसे कि वह खजानों में जमा करता है ।

१—गोपरीणसा = गो × परि × इन × असुक् ।

[२३] राजा के कर्त्तव्य ।

विश्वामित्र ऋषिः । इन्द्रो देवता । गायत्र्यः । नवर्चं सूक्तम् ।

आ तू न इन्द्र मद्र्यग्घुवानः सोमपीतये ।
हरिभ्यां याह्यद्रिवः ॥ १ ॥

भा०—हे राजन् ! हे वज्रवन् ! बुलाया गया तू मेरी ओर आ और राष्ट्र-ऐश्वर्य की रक्षा के लिये वेगवान् घोड़ों से हमें प्राप्त हो ।

सत्तो होता न ऋत्वियस्तिस्तिरे बर्हिरानुषक् ।
अयुज्रन् प्रातरद्रयः ॥ २ ॥

भा०—हे राजन् ! विशेष काल में यज्ञ करने वाला होता जिस प्रकार आसन पर बैठता है उसी प्रकार तू भी अपने राज्यासन पर यथावसर विराजमान हो । जिससे राज्य की प्रजा विस्तृत हो । प्रातः-काल न दीर्ण होने वाले वीरक्षत्रिय तेरा दर्शन किया करें ।

इमा ब्रह्म ब्रह्मवाहः क्रियन्त आ बर्हिः सीद ।
वीहि शूर पुरोलाशम् ॥ ३ ॥

भा०—हे वेद के विद्वानों का धारण करते वाले ! तेरे लिये ये वेदानुकूल नाना कर्म किये जाते हैं । तू उच्च आसन पर विराजमान हो । हे शूरवीर ! तू समक्ष स्थित राष्ट्र रूप 'पुरोडाश' अर्थात् पुरस्कृत ऐश्वर्य को स्वीकार कर ।

रारन्धि सवनेषु ण एषु स्तोमेषु वृत्रहन् ।
उक्थेष्विन्द्र गिर्वणः ॥ ४ ॥

भा०—हे वेदवाणियों के सेवन करने हारे विद्वन् ! हे ऐश्वर्यवन् ! हे शत्रु और विघ्नों के विनाशक ! तू परम पूजनीय हमारे इन कर्मों में और वेद वचनों में, ज्ञानों और स्तुतियों में रमण कर ।

मतयः सोमपामुरुं रिहन्ति शवसस्पतिम् ।
इन्द्रं वत्सं न मातरः ॥ ५ ॥

भा०—समस्त मतिशील पुरुष, बछड़ों को गायों के समान, बलशाली राष्ट्रपति राजा को प्रेम व आदर से छूते तथा उसके संग का आस्वादन लेते हैं ।

स मन्दस्वा ह्यन्धसो राधसे तन्वा महे ।
न स्तोतारं निदे करः ॥ ६ ॥

भा०—तू शरीर द्वारा कार्यों की महासिद्धि करने के लिये अश्व और जीवनोपयोगी भोग्य पदार्थों से सदा तृप्त रह । तू यथार्थ ज्ञान-प्रवक्ता विद्वान् को लोक-निन्दा का पात्र कभी न बनने दे ।

वयमिन्द्र त्वायवो हविष्मन्तो जरामहे ।
उत त्वमस्मयुर्वसो ॥ ७ ॥

भा०—हे परमेश्वर एवं राजन् ! हम तुझे चाहते हुए, ज्ञान एवं अन्नों से समृद्ध होकर, तेरी स्तुति करते हैं, प्रार्थना करते हैं । और हे सब में व्यापक और सबको बसानेहारे ! तू हमें चाहने वाला है, तू हमें प्रेम कर ।

मारे अस्मद् वि मुमुचो हरिप्रियार्वाङ् याहि ।
इन्द्र स्वधावो मत्स्वेह ॥ ८ ॥

भा०—हे ज्ञानशील पुरुषों के प्रिय ! तू साक्षात् दर्शन दे । हे परमेश्वर ! हमसे दूर तू कभी न छूट । हे शरीरों को धारण करने वाले समष्टिचैतन्य के स्वामिन् ! एवं अन्न और बल के स्वामिन् ! तू हमारे इस हृदय-मन्दिर में एवं राष्ट्र में राजा के समान आनन्द युक्त हो ।

अर्वाञ्चं त्वा सुखे रथे वहतामिन्द्र केशिना ।
घृतस्नू बर्हिरासदे ॥ ९ ॥

भा०—हे राजन् ! सुखकारी रथ में तुझको, तेज और बल का प्रस्रवण करने वाले तथा लम्बे लम्बे केशों या बालों से सजे दो घोड़े

वृद्धिशील राष्ट्र के ऊपर अधिष्ठातृ रूप से विराजने के लिये हमारे प्रति वहन करें।

[२४] राजा के कर्त्तव्य

विश्वामित्र ऋषिः । इन्द्रो देवता । गायत्र्यः । नवर्चं सूक्तम् ।

उप॑ नः सु॒तमा ग॑हि॒ सोम॑मिन्द्र॒ गवा॑शिरम् ।
हरि॑भ्यां॒ यस्ते॑ अस्म॒युः ॥ १ ॥

भा०—हे राजन् ! तू हमारे उत्पादित, पृथ्वी पर या गौ आदि पशुओं पर आश्रित ऐश्वर्यमय राष्ट्र को प्राप्त हो। जो शत्रु राजा के ऐश्वर्य को हरण करने वाले तेरे बल और उत्साह से हमें प्राप्त होने योग्य ऐश्वर्य है वह प्राप्त हो।

तमि॑न्द्र॒ मद॒मा ग॑हि ब॒र्हि॒ष्ठां ग्राव॑भिः सु॒तम् ।
कु॒विन्न्व॑स्य तृ॒प्णव॑ः ॥ २ ॥

भा०—हे राजन् ! तू उस तृप्तिकारक तथा ज्ञानोपदेशक विद्वानों द्वारा उत्पादित महाराष्ट्र को प्राप्त कर। इससे बहुत अधिक लोग तृप्त होते हैं।

इन्द्र॑मि॒त्था गिरो॒ ममाच्छा॑गुरिषि॒ता इ॒तः ।
आ॒वृते॒ सोम॑पीतये ॥ ३ ॥

भा०—सत्यस्वरूप मेरी वाणियां, इधर से प्रेरित होकर, ऐश्वर्यवान् राजा को, ऐश्वर्य प्राप्त करने और उपभोग करने के लिये तथा उसकी रक्षा करने के लिये भली प्रकार प्राप्त होती हैं।

इन्द्रं॒ सोम॑स्य पी॒तये॒ स्तोमै॑रि॒ह ह॑वामहे ।
उ॒क्थेभि॑ः कु॒विदा॒गम॑त् ॥ ४ ॥

भा०—राष्ट्र या अन्न आदि ऐश्वर्य के पान या पालन और उपभोग के लिये, स्तुति योग्य आदरवचनों से हम राजा को यहां अपने घरों पर बुलाते हैं, इन आदरवचनों द्वारा वह हमें बहुत बार प्राप्त हो।

इन्द्र सोमाः सुता इमे तान् दधिष्व शतक्रतो ।
जठरे वाजिनीवसो ॥ ५ ॥

भा०—हे राजन् ! ये नाना प्रकार के ऐश्वर्य उत्पन्न हैं । हे सैकड़ों शक्तियों और प्रजाओं से युक्त ! हे संग्रामकारिणी सेना को बसाने वाले ! तू उनको, पेट में अन्न के समान, अपने वश में धारण कर ।

विद्मा हि त्वा धनञ्जयं वाजेषु दधृषं कवे ।
अधा ते सुम्नमीमहे ॥ ६ ॥

भा०—हे राजन् ! हम तुझको संग्रामों में शत्रु के धन को जीतने हारा और शत्रु को परास्त करने हारा ही जानते हैं । हे दीर्घदर्शिन् ! तेरे लिये सुख शान्ति की प्रार्थना करते हैं ।

इममिन्द्र गवाशिरं यवाशिरं च नः पिब ।
आगत्या वृषभिः सुतम् ॥ ७ ॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन् ! राजन् ! तू पृथ्वी और गौ आदि पशुओं के आश्रय पर आश्रित और यव आदि अन्न तथा शत्रुओं के नाशक सेनाबलों के आश्रय पर आश्रित राष्ट्र का, बलवान् पुरुषों सहित, आकर पालन कर ।

तुभ्येदिन्द्र स्व ओक्ये सोमं चोदामि पीतये ।
एष रारन्तु ते हृदि ॥ ८ ॥

भा०—हे इन्द्र ! तेरे अपने ही निवासस्थान में, तेरे ही स्वीकार करने के लिये, समस्त राष्ट्र को तुझे अर्पण करता हूँ । वह तेरे हृदय में पिये शीतल जल के समान तुझे तृप्त करे ।

त्वां सुतस्य पीतये प्रत्नमिन्द्र हवामहे ।
कुशिकासो अवस्यवः ॥ ९ ॥

भा०—ऐश्वर्यों के प्राप्त करने के लिये, पुरातन पूजनीय तुझको हम अपनी रक्षा के इच्छुक धनों के स्वामी सर्दार लोग बुलाते हैं ।

वाग्मी, ऐश्वर्यवान्, धनी और तेजस्वी, ज्ञानी पुरुष 'कुशिक' कहाते हैं। निरु० २ । २५ ॥

[२५] राजा का कर्त्तव्य।

१—६ गोतमो राहूगण ऋषिः। ७ अष्टको वैश्वामित्रः । १—६ जगत्यः। ७ त्रिष्टुप्। षडृचं सूक्तम्।

अश्वा॑वति प्रथ॒मो गोषु॑ गच्छति सुप्रा॒वीरि॑न्द्र॒ मर्त्य॒स्तवो॒तिभिः॑ ।
तमित् पृ॑णक्षि॒ वसु॑ना॒ भवी॑यसा॒ सिन्धु॑मा॒पो॒ यथा॒भितो॒ विचे॑तसः॥१

भा०—हे राजन्! तेरे प्रस्तुत किये रक्षा-साधनों से, मनुष्य उत्तम रीति से रक्षा करने में समर्थ होकर, घोड़ों से युक्त संग्राम में सबसे प्रथम अग्रगण्य हो जाता है और गौ आदि पशुओं पर भी वह उत्कृष्ट स्वामी हो जाता है। विविध ज्ञानों से युक्त पुरुष! तुझे ही सब ओर से इस प्रकार प्राप्त होते हैं जैसे जलधाराएं समुद्र को प्राप्त होती हैं। तू उस पुरुष को प्रभूत धनैश्वर्य से संयुक्त करता है जो तेरी शरण आता है।

आपो॒ न दे॒वीरुप॑ यन्ति हो॒त्रिय॑म॒वः प॑श्यन्ति॒ वित॑तं॒ यथा॒ रजः॑ ।
प्रा॒चैर्दे॒वासः॒ प्र ण॑यन्ति देव॒युं ब्र॑ह्मप्रि॒यं जो॑षयन्ते व॒रा इ॑व ॥२॥

भा०—जल जिस प्रकार नीचे प्रदेश की ओर बह आते हैं इसी प्रकार सबको रक्षा देने में समर्थ तुझको दानशील, आप्त प्रजाएं प्राप्त होती हैं। और जिस प्रकार आकाश में सूर्य के फैले प्रकाश को लोग देखते हैं उसी प्रकार लोग तेरे विस्तृत रक्षणसामर्थ्य को भी देखते हैं, विद्वान् पुरुष विद्वानों के प्यारे तुझको उत्कृष्ट पद पर प्राप्त करते हैं। वर के सम्बन्धी जिस प्रकार अपने प्रिय वर को प्रीति से देखते हैं उसी प्रकार वेद और वेदज्ञ विद्वानों के प्यारे तुझको समस्त श्रेष्ठ पुरुष प्रेम से चाहते हैं।

अधि द्वयोरदधा उक्थ्यं१ वचो यतस्रुचा मिथुना या सपर्यतः ।
असंयत्तो व्रते ते क्षेति पुष्यति भद्रा शक्तिर्यजमानाय सुन्वते ॥३॥

भा०—हे राजन् ! परमेश्वर ! वीर्य की रक्षा करने वाले, अथवा अपने प्राणों की रक्षा करने वाले जो स्त्री पुरुष तेरी पूजा सत्कार करते हैं तू उन दोनों को उपदेश करने योग्य ज्ञानमय आज्ञा-वचन प्रदान करता है। तेरी नियम-व्यवस्था में नियम से न रहने वाला पुरुष विनाश को प्राप्त होता है। तेरी आज्ञा पालन करने वाले, तेरे प्रति कर-प्रदान या मनोयोग देने वाले या तेरी उपासना पूजा करने वाले पुरुष की सुख-दायिनी कल्याणी शक्ति पुष्ट होती है।

आदङ्गिराः प्रथमं दधिरे वय इद्धाग्नयः शम्या ये सुकृत्यया ।
सर्वं पणेः समविन्दन्त भोजनमश्वावन्तं गोमन्तमा पशुं नरः ॥४॥

भा०—मनुष्य जिस प्रकार शमी वृक्ष की लकड़ी द्वारा अग्नि प्रदीप्त करते हैं उसी प्रकार जो अपनी उत्तम धर्मानुकूल क्रिया द्वारा अपने अग्निहोत्रादि की अग्नियों को प्रज्वलित करते हैं वे ज्ञानवान् पुरुष सबसे उत्कृष्ट अन्न, ज्ञान और बल को धारण करते हैं। वे लोग व्यवहारशील लोगों के योग्य समस्त भोगों को प्राप्त करते हैं। वे पुरुष ही घोड़ों और गौओं से समृद्ध पशुधन को भी प्राप्त करते हैं।

यज्ञैरथर्वा प्रथमः पथस्तते ततः सूर्यो व्रतपा वेन आजनि ।
आ गा आजदुशना काव्यः सचा यमस्य जातममृतं यजामहे ॥५॥

भा०—प्रजाओं का अहिंसक राजा सबसे श्रेष्ठ होकर परस्पर संगति-कारक श्रेष्ठ उपायों द्वारा नाना उत्तम मार्गों को विस्तृत करता है। तब वह सूर्य के समान तेजस्वी, उत्तम नियमों का पालक, कान्तिमान् हो जाता है। वही कान्तिमान् क्रान्तदर्शी वाणियों को कवि के समान प्राप्त होने वाली प्रजाओं को उत्तम मार्ग पर चलाता है। उस नियन्ता

राजा के उत्पन्न हुए अमृतस्वरूप राष्ट्रसुख को या अन्न को हम सब एक साथ ही प्राप्त करें।

बर्हिर्वा यत् स्वपत्याय वृज्यतेर्को वा श्लोकमाघोषते दिवि।
ग्रावा यत्र वदति कारुरुक्थ्य१स्तस्येदिन्द्रो अभिपित्वेषु रण्यति ॥६॥

भा०—जिस राज्य में धान्य उत्तम सन्तानों की पुष्टि के लिये प्रदान किया जाता है और जहां अर्चना करने वाला या पूज्य विद्वान् प्रतिदिन वेदवाणी का प्रचार करता है और जिस राज्य में क्रियावान् तथा वेदों के सूक्तों का प्रवक्ता विवेकी पुरुष धर्म का निर्णय करता है, उसके ही प्रयत्नों में ऐश्वर्यवान् पुरुष भी सुखी होता है।

प्रोग्रां पीतिं वृष्ण इयर्मि सत्यां प्रयै सुतस्य हर्यश्व तुभ्यम्।
इन्द्र धेनाभिरिह मादयस्व धीभिर्विश्वाभिः शच्या गृणानः ॥७॥

भा०—समस्त सुखों के वर्षक और बलवान् परमेश्वर की भयदायिनी आदानशक्ति और पालन शक्ति को, हे वेनवान् घोड़े से युक्त राजन्! तेरे प्रति सुसम्पन्न राष्ट्र के प्राप्त करने के लिये भली प्रकार प्रेरणा करता हूं। हे राजन्! तू इस राष्ट्र में सबको रस देने वाली वेदवाणियों द्वारा समस्त कार्यों और बुद्धियों द्वारा और महती शक्ति द्वारा सबको सत्योपदेश देने हारा होकर सबको तृप्त एवं प्रसन्न कर।

इति तृतीयेऽनुवाके द्वितीयः पर्यायः।

[२६] राजा और ईश्वर का वर्णन

१—३ शुनःशेपः। ४—६ मधुच्छन्दा ऋषिः। इन्द्रो देवता। १६ गायत्र्यः। षड्चं सूक्तम्।

योगेयोगे तवस्तरं वाजेवाजे हवामहे।
सखाय इन्द्रमूतये ॥ १ ॥

भा०—प्रत्येक संग्राम में और प्रत्येक बल के कार्य में हम मित्र-

राजागण रक्षा के लिये अति बलवान् तथा ऐश्वर्यवान् महान् राजा को पुकारते हैं।

परमेश्वर के पक्ष में—प्रत्येक योग-समाधि में और प्रत्येक ज्ञान-कर्म में, हम अपनी रक्षा, ज्ञान, प्रीति, समृद्धि आदि के लिये परमात्मा की प्रार्थना करें।

आ घा॑ गम॒द् यदि॒ श्रव॑त् सह॒स्रिणी॑भिरू॒तिभिः॑ ।
वाजे॑भि॒रुप॑ नो॒ हव॑म् ॥ २ ॥

भा०—वह राजा यदि हमारी प्रार्थना सुन ले तो निश्चय से अवश्य सहस्रों पुरुषों व ऐश्वर्यों को अपने साथ लाने वाली रक्षाकारी सेनाओं के साथ आ जाय। और अपने समस्त वीर्यों, बलों और अन्नों सहित हमारे यज्ञ या संग्राम के स्थल में प्राप्त हो।

अनु॑ प्र॒त्नस्यौक॑सो हु॒वे तु॑विप्र॒तिं नर॑म् ।
यं ते॒ पूर्वं॑ पि॒ता हु॒वे ॥ ३ ॥

भा०—पुरातन काल से आए राष्ट्र के सेनानायक तथा बहुत से शत्रुओं का मुकाबला करने में समर्थ जिस तुझको पहिले मेरे पिता ने बुलाया था उस सेनापति को मैं भी अपनी सहायता के लिये याद करता हूँ।

यु॒ञ्जन्ति॑ ब्र॒ध्नम॑रु॒षं चर॑न्तं॒ परि॑ त॒स्थुषः॑ ।
रोच॑न्ते रोच॒ना दि॒वि ॥ ४ ॥

भा०—विद्वान् पुरुष, राष्ट्र को उत्तम व्यवस्था में बांधने वाले, अग्नि के समान देदीप्यमान, वृक्ष पर्वतादि पदार्थों के ऊपर वायु के समान बलपूर्वक विचरण करने वाले पुरुष को, राजपद पर नियुक्त करते हैं। उसके स्वर्ग के समान उत्तम राज्य में नक्षत्रों के समान तेजस्वी प्रजागण आनन्द पूर्वक निवास करते हैं।

युञ्जन्त्यस्य काम्या हरी विपक्षसा रथे ।
शोणा धृष्णू नृवाहसा ॥ ५ ॥

भा०—विद्वान् लोग इसके रमण करने योग्य राष्ट्र में, विविध पक्षों या मन्तव्यों को स्वीकार करने वाले तथा कान्तिमान् उभयपक्ष के दो ऐसे प्रमुख नेता-विद्वानों को नियुक्त करें जो बुद्धिमान् तथा पर-पक्ष को धर्षण करने में समर्थ और अन्य विद्वान् पुरुषों को अपने पीछे चलाने में समर्थ हों।

केतुं कृण्वन्नकेतवे पेशो मर्या अपेशसे ।
समुषद्भिरजायथाः ॥ ६ ॥

भा०—हे मनुष्यो! राजा अज्ञानी पुरुष को ज्ञान देता है और धनरहित पुरुष को धन प्रदान करता है। हे राजन्! उषाकालों से प्रकाशित सूर्य के समान तू शत्रु-संतापक होकर प्रकट होता है।

[२७] धनाढ्यों के प्रति राजा का कर्त्तव्य

गोपूक्त्यश्वसूक्तिनोवृषी । इन्द्रो देवता । गायत्र्यः । षड्चं सूक्तम् ।

यदिन्द्राहं यथा त्वमीशीय वस्व एक इत् ।
स्तोता मे गोषखा स्यात् ॥ १ ॥

भा०—हे राजन्! तेरे समान जब मैं ऐश्वर्य का एकमात्र स्वामी होऊं तब समस्त पृथ्वी का मित्र अथवा वाणी का विद्वान् पुरुष मुझे यथार्थ प्रवचन करने वाला हो।

शिक्षेयमस्मै दित्सेयं शचीपते मनीषिणे ।
यदहं गोपतिः स्याम् ॥ २ ॥

भा०—जब मैं भूमियों और गौवों का स्वामी होजाऊं तो मैं इस बुद्धिमान् विद्यार्थी को शिक्षा दूं और हे शक्ति के स्वामिन्! इसको मैं धन देने की भी इच्छा करूं।

धेनुष्ट इन्द्र सूनृता यजमानाय सुन्वते ।
गामश्वं पिप्युषी दुहे ॥ ३ ॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन् ! यज्ञ करने वाले दानशील एवं ईश्वरोपासना करने वाले पुरुष के लिये, अथवा ज्ञान प्रदान करने वाले पुरुष के लिये तेरी उत्तम, सत्यमयी वाणी ही कामधेनु के समान पुष्ट करनेहारी होकर नाना गौ, भूमि और अन्न आदि धन को भी प्रदान करती है ।

न ते वर्तास्ति राधस इन्द्र देवो न मर्त्यः ।
यद् दित्ससि स्तुतो मघम् ॥ ४ ॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन् ! जो तू स्तुति किया जाकर ऐश्वर्य प्रदान करना चाहता है, तब तेरे ऐश्वर्य या कार्य साधन के उपाय का कोई दिव्यशक्ति भी बाधक नहीं है और न कोई मनुष्य ही तेरा बाधक होता है ।

यज्ञ इन्द्रमवर्धयद् यद् भूमिं व्यवर्तयत् ।
चक्राण ओपशं दिवि ॥ ५ ॥

भा०—व्यवस्थित राष्ट्र राजा को बढ़ाता है, जब वह ज्ञानपूर्वक व्यवहार में सब प्रकार से स्थिति करता हुआ भूमि को विविध उपायों से काम में लाता है ।

वावृधानस्य ते वयं विश्वा धनानि जिग्युषः ।
ऊतिमिन्द्रा वृणीमहे ॥ ६ ॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन् ! समस्त धनों को विजय करनेहारे और नित्य वृद्धिशील जो तू है उससे रक्षा की हम प्रार्थना करते हैं ।

[२८] राजा का कर्त्तव्य ।

गोसूक्त्यश्वसूक्तिनावृषी । १, २ गायत्र्यौ । ३, ४ त्रिष्टुभौ । चतुर्ऋचं सूक्तम् ॥

व्यन्तरिक्षमतिरन्मदे सोमस्य रोचना ।
इन्द्रो यदभिनद् वलम् ॥ १ ॥

भा०—राजा जब राष्ट्र को घेरने वाले शत्रु को तोड़ डालता है, तब राष्ट्र के ऐश्वर्य के बल से, रुचिकर प्रदेश को भी विशेष रूप से विस्तृत कर देता है।

उद् गा आ॑ज॒दङ्गि॑रोभ्य आ॒विष्कृ॒ण्वन् गुहा॑ स॒तीः ।
अ॒र्वाञ्चं॑ नुनुदे व॒लम् ॥ २ ॥

भा०—राजा राष्ट्र के घेरने वाले को नीचे गिरा देता है। गुप्त स्थान में छुपी हुई गौ और भूमियों को प्रकट करता हुआ तेजस्वी पुरुषों को प्रदान करता है तथा परमेश्वर अन्तःकरण के आवश्यक तमस् को दूर करके, हृदय-गुहा में छुपी ज्ञानरश्मियों या वेदवाणियों को ज्ञानी पुरुषों के लिये प्रकट करता हुआ उनको प्रदान करता है।

इन्द्रे॑ण रोच॒ना दि॒वो दृ॒ह्लानि॑ दृंहि॒तानि॑ च ।
स्थि॒राणि॒ न प॑रा॒णुदे॑ ॥ ३ ॥

भा०—परमेश्वर ने ही आकाश के उज्वल पिण्ड, ग्रह, नक्षत्र आदि दृढ़ रूप से व्यवस्थित कर दिये हैं। वे सब फिर शीघ्र नष्टभ्रष्ट न होने की रीति से ही स्थिर हैं।

अ॒पामू॒र्मिर्मद॑न्निव॒ स्तोम॑ इन्द्राजिरायते ।
वि ते॒ मदा॑ अराजिषुः ॥ ४ ॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन्! राजन्! तेरी स्तुतियों का समूह समुद्र के तरङ्ग के समान मानो हर्ष से तरङ्गित सा होकर बड़े वेग से उमड़ा सा पड़ता है। तेरे आनन्द, प्रमोद और उत्साह के कार्य विविध रूपों में विराजते दीख रहे हैं।

[२६] राजा के कर्त्तव्य

ऋषिर्गृत्समदः । गायत्र्यः । इन्द्रः । पञ्चर्चं सूक्तम् ।

त्वं हि स्तो॑म॒वर्ध॑न॒ इन्द्रास्यु॑क्थ॒वर्ध॑नः ।
स्तो॒तॄ॒णामु॒त भ॑द्र॒कृत् ॥ १ ॥

भा०—हे राजन् ! प्रभो ! तू निश्चय से प्रजासमूहों को बढ़ाने वाला अथवा स्तुतिसमूहों से हृदय में वृद्धि को प्राप्त होने वाला है । तू प्रशंसनीय गुणों को बढ़ाने वाला एवं वेद के सूक्तों से जानने योग्य है । और स्तुतिकर्त्ता एवं यथार्थ प्रवक्ता विद्वानों का कल्याणकारी है ।

इन्द्रमित् केशिना हरी सोमपेयाय वक्षतः ।
उप यज्ञं सुराधसम् ॥ २ ॥

भा०—केशों वाले घोड़े उत्तम ऐश्वर्य से युक्त सुव्यवस्थित राष्ट्र जिस प्रकार ऐश्वर्य के प्राप्त कराने के लिये समर्थ हो सके इस निमित्त राजा को हमें प्राप्त कराते हैं ।

अपां फेनेन नमुचेः शिर इन्द्रोदवर्तयः ।
विश्वा यदजयः स्पृधः ॥ ३ ॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन् ! जब समस्त शत्रु-सेनाओं को विजय करो तब जीता न छोड़ने लायक शत्रु के शिर को जलों के फेनों के द्वारा अर्थात् आसानी से ही तू काट सकता है ।

मायाभिरुत्सिसृप्सत इन्द्र द्यामारुरुक्षतः ।
अव दस्यूँरधूनुथाः ॥ ४ ॥

भा०—हे राजन् ! नाना निर्माण कौशलों से ऊपर चढ़ने की इच्छा करने वाले और आकाश में चढ़ने वाले नाशकारी शत्रुओं को तू नाना विज्ञान-कौशलों से नीचे गिरा डाल ।

असुन्वामिन्द्र संसदं विषूचीं व्यनाशयः ।
सोमपा उत्तरो भवन् ॥ ५ ॥ ऋ० ८ । १४ । १५ ॥

भा०—हे राजन् ! तू राष्ट्र का पालक, शत्रु के बल से अधिक बलवान् होकर, कर प्रदान न करने वाली संस्था को छिन्न-भिन्न करके विनष्ट कर ।

[३०] राजा के कर्त्तव्य।

ऋषिर्वरुराङ्गिरसः सर्वहरिर्वा ऐन्द्रः। देवता हरिस्तुतिः। जगत्यः। पञ्चर्चं सूक्तम्।

प्र ते॑ म॒हे वि॒दथे॑ शंसिषं॒ हरी॒ प्र ते॑ वन्वे व॒नुषो॑ हर्य॒तं मद॑म्।
घृतं न यो हरि॑भि॒श्चारु॒ सेच॑त॒ आ त्वा॑ विशन्तु॒ हरि॑वर्पसं॒ गिरः॑ ॥१॥

भा०—बड़े भारी संग्राम में हे राजन्! तेरे हरणशील अश्वों और उत्साह और पराक्रम की मैं प्रशंसा करूं। और शत्रु के नाशकारी तेरे कमनीय आनन्द उत्सव का अच्छी प्रकार आनन्द लाभ करूं। जो ज्ञानवान् पुरुषों के साथ आकर जल के समान शान्तिप्रद एवं घृत के समान पुष्टिप्रद सुन्दर अन्न आदि प्रदान करता है। कमनीय शोभा से युक्त तुझे स्तुतियाँ प्राप्त हों।

हरि॒ हि योनि॑म॒भि ये स॒मस्व॑रन् हि॒न्वन्तो॒ हरी॑ दि॒व्यं यथा॒ सदः॑।
आ यं पृ॒णन्ति॒ हरि॑भि॒र्न धे॒नव॒ इन्द्रा॑य शू॒षं हरि॑वन्तमर्चत ॥२॥

भा०—जो विद्वान् सबके आश्रयभूत, दुःखों को हरण करने वाले, शूरवीर के दिव्य आश्रय-गृह के समान उत्साह और बल को बढ़ाते हुए साक्षात् उनकी स्तुति करते हैं और गौएं जिस प्रकार अपने स्वामी को तृप्त करती हैं उसी प्रकार जिस इन्द्र को वे विद्वान् पुरुष मनोहर पदार्थों और वेगवान् सैनिकों से सब तरह पुष्ट और पालन करते हैं, राजा के उस सैनिकों से युक्त बलवान् शत्रुओं के शोषक बल को आप लोग बढ़ाओ।

सो अ॒स्य॒ वज्रो॒ हरि॑तो॒ य आ॑य॒सो हरि॒र्निका॑मो॒ हरि॒रा गभ॑स्त्योः।
द्यु॒म्नी सु॑शि॒प्रो हरि॑मन्युसायक॒ इन्द्रे॒ नि रू॒पा हरि॑ता मिमिक्षिरे ॥३॥

भा०—इस राजा का जो लोहे का बना हुआ नीला खड्ग है वह सर्वथा मनोहर शत्रुओं के प्राणहर होने से 'हरि' कहे जाने योग्य है। राजा उसको अपने हाथों में लेता है। इस राजा का शत्रु के मद का हरण करने वाला 'मन्यु' रूप बाण भी अति तेजस्वी और उत्तम वेग

वाला है। राजा के आश्रय शत्रु नाशक नाना पदार्थ भी सर्व प्रकार से बनाते हैं।

दिवि न केतुरधि धायि हर्यतो विव्यचद् वज्रो हरितो न रंह्या।
तुददहिं हरिशिप्रो य आयसः सहस्रशोका अभवद्धरिंभरः ॥४॥

भा०—आकाश में ध्वजा के समान वह कान्तिमान् राजा सबके ऊपर अधिष्ठाता रूप में स्थिर किया जाता है। वह खड्ग को बड़े वेग से सूर्य के समान विविध दिशाओं में फैलाता है। जो लोहे का बना हुआ इन्द्र का बलस्वरूप सर्प के समान कुटिल पुरुष को व्यथित करता हुआ, हरणशील वीर पुरुषों को पुष्ट करने वाला, सहस्रों को संतापकारी एवं शहस्रों दीप्तियों से युक्त हो जाता है।

त्वंत्वमहर्यथा उपस्तुतः पूर्वेभिरिन्द्र हरिकेश यज्वभिः।
त्वं हर्यसि तव विश्वमुक्थ्यंमसामि राधो हरिजात हर्यतम् ॥५॥

भा०—हे रश्मिरूप केशों से युक्त, हे राजन्! पूर्व के यज्ञ के करने वाले देवोपासक विद्वान् पुरुषों से स्तुति किया जाकर तू ही तू सर्वत्र दिखाई देता है। तू सबको प्रीतिकर है। हे वेगवान् वीर पुरुषों में सर्वप्रसिद्ध! समस्त प्रशंसनीय रुचिकर सम्पूर्ण ऐश्वर्य तेरा ही है।

[३१] राजा के कर्त्तव्य

वरुराङ्गिरस सर्वहरिर्वा ऐन्द्र ऋषिः। हरिस्तुतिर्देवता। जगत्यः। पञ्चर्चं सूक्तम्।

ता वज्रिणं मन्दिनं स्तोम्यं मद इन्द्रं रथे वहतो हर्यता हरी।
पुरूण्यस्मै सवनानि हर्यत इन्द्राय सोमा हरयो दधन्विरे ॥ १ ॥

भा०—वे दोनों कमनीय तथा हरणशील, अश्वों के समान उत्साह और पराक्रम एवं दो प्रधान पुरुष, वज्र को धारण करने वाले और अति प्रसन्न एवं अन्यों को सन्तुष्ट रखने वाले स्तुतियोग्य ऐश्वर्यवान् राजा को,

रथ के समान रमण साधन इस राष्ट्र में आनन्द लाभ के लिये धारण करते हैं। इस कमनीय गुणों से युक्त परम ऐश्वर्य युक्त राजा को सौम्य गुण वाले, उत्तम पुरुष या अधीनस्थ माण्डलिक जन बहुत से ऐश्वर्य प्रदान करते हैं।

अरं कामा॑य हर॑यो दधन्विरे स्थि॒राय॑ हिन्व॒न् हर॑यो॒ हरी॑ तु॒रा।
अर्व॑द्भि॒र्यो हरि॑भि॒र्जोष॒मीय॑ते॒ सो अ॒स्य॒ काम॒ं हरि॑वन्तमानशे ॥२॥

भा०—वीर राजगण कमनीय राजा के लिये पर्याप्त ऐश्वर्यों को लाकर देते हैं। और वे वीरजन सुहृद सम्राट् के वेगवान् अश्वों या उत्साह, पराक्रम को युद्ध में उत्तेजित करते हैं। जो अश्वों और वीर योद्धाओं से तुष्टि को प्राप्त होता है वह राजा ही इस राष्ट्र के वीर योद्धाओं से सुसज्जित, सुन्दर, अभिलाषा करने योग्य राजपद को भोग करता है।

हरि॑श्मशारु॒र्हरि॑केश आ॒य॒सस्तु॑र॒स्पेये॒ यो ह॑रि॒पा अव॑र्धत।
अर्व॑द्भि॒र्यो हरि॑भि॒र्वाजिनी॑वसु॒रति॒ विश्वा॑ दुरि॒ता पारि॑ष॒द्धरी॑ ॥३॥

भा०—पीतवर्ण की श्मश्रुओं और दीप्तिमान् केशों वाला, लोहे का मानो बना हुआ, जो वीर सैनिकों का पति होकर, वेगवान् साधनों द्वारा राष्ट्र के पालनकार्य में शक्तिशाली हो जाता है, वह बलवती सेनाओं को बसाने हारा, वेगवान् अश्वारोहियों द्वारा अपने उत्साह और पराक्रम से समस्त विपत्तियों को पार कर जाता है।

स्रुवे॑व॒ यस्य॒ हरि॑णी वि॒पेत॒तुः शिप्रे॒ वाजा॑य॒ हरि॑णी॒ दवि॑ध्वतः।
प्र यत् कृ॒ते च॑म॒से मर्मृ॑ज॒द्धरी॑ पी॒त्वा मद॑स्य ह॒र्यत॒स्यान्ध॑सः ॥४॥

भा०—जिसके शीघ्र गतिशील दोनों बाजू की सेनाएं संग्राम कार्य के लिये स्रवणशील दो धाराओं के समान या दो हाथों के समान या यज्ञ के दो स्रुवों के समान विशेष रूप से या विविध प्रकारों से गति

करती हैं और वे दोनों सेनाएं संग्राम के लिये ही आगे बढ़ती हैं । जब अन्नादि से सजाये हुए पात्र में तृप्तिकारी मनोहर अन्न रस का पान करके जिस प्रकार पुरुष आगे बढ़ने वाली बाहुओं पर हाथ फेरता है उसी प्रकार वह सेनापति तृप्तिकारी तेजोमय राष्ट्र को भोग कर अपने उत्साह और पराक्रम को बलवान् करता है ।

उत स्म सद्म हर्यतस्य पस्त्योऽरत्यो न वाजं हरिवाँ अचिक्रदत् ।
मही चिद्धि धिषणाहर्यदोजसा बृहद् वयो दधिषे हर्यतश्चिदा ॥५॥

भा०—जिस प्रकार अश्व संग्राम को जाता है उसी प्रकार वीर-योद्धाओं से युक्त सेनापति कान्तिमान् राजा के और स्त्री पुरुषों के आश्रय और शरण भूत राष्ट्र को प्राप्त होता है । पराक्रम से ही बड़ी भारी सेना या भूमि भी उसको अपना स्वामी बनाना चाहती है । हे पृथिवि ! तू उस कमनीय राजा के ही निमित्त बड़ी भारी अन्नादि भोग्य सामग्री प्रदान करती है ।

[३२] परमेश्वर की स्तुति

बरुराङ्गिरसः सर्वहरिर्वैन्द्रः । हरिस्तुतिः । १ जगती । २, ३ त्रिष्टुभौ । तृचं सूक्तम् ।

आ रोदसी हर्यमाणो महित्वा नव्यंनव्यं हर्यसि मन्म नु प्रियम् ।
प्र पस्त्यमसुर हर्यतं गोराविष्कृधि हरये सूर्याय ॥ १ ॥

भा०—हे परमेश्वर ! अपने महान् सामर्थ्य से आकाश और पृथिवी को व्यापता हुआ तू सदा नये से नये अतिप्रिय मनन करने योग्य गुण को प्रकट करता है । हे बलवन् ! सूर्य के समान तेजस्वी ज्ञानी पुरुष के लिये वेदवाणी के कमनीय ज्ञाननिधि को अच्छी प्रकार प्रकट कर ।

आ त्वा हर्यन्तं प्रयुजो जनानां रथे वहन्तु हरिशिप्रमिन्द्र ।
पिबा यथा प्रतिभृतस्य मध्वो हर्यन् यज्ञं सधमादे दशोणिम् ॥२॥

भा०—हे परमेश्वर ! जनों के बीच में योगसमाधि करने हारे योगी-

जन, दुःखों के विनाशक, अति कमनीय तुझको आनन्दरस रूप में साक्षात् प्राप्त करें। हे प्रभो! तू भेट किये अमृत के समान कामना करता हुआ, एक संग आनन्द लाभ करने के अवसर में, दशों इन्द्रिय या प्राणों से युक्त यज्ञरूप आत्मा को स्वीकार कर, अपना। अर्थात् जिस प्रकार पूज्य अतिथि प्रेमपूर्वक भेट किये मधुपर्क को खाता है। उसी प्रकार वह परमेश्वर हमारे दशप्राणां से युक्त उसे समर्पित आत्मा को अपने आश्रय में लीन करे।

अपाः पूर्वेषां हरिवः सुतानामथो इदं सवनं केवलं ते।
ममद्धि सोमं मधुमन्तमिन्द्र सत्रा वृषं जठर आ वृषस्व ॥ ३ ॥

भा०—हे हरणशील प्रलयकारिणी शक्तियों से सम्पन्न! तू पूर्व उत्पन्न किये समस्त जगतों को और पूर्व काल में ज्ञानसम्पन्न जीवात्माओं को अपनी शरण में ले चुका है, अपने में प्रलीन कर चुका है। यह इस प्रकार का स्वीकार करना केवल तुम्हें ही शोभा देता है। हे ऐश्वर्यवन्! ब्रह्मानन्द रस वाले ब्रह्मवित् जीव को तू स्वीकार कर। एक साथ ही उस सुख के वर्षक योगी आत्मा को अपने भीतर ले।

[३३] परमेश्वर का वर्णन

अष्टको वैश्वामित्र ऋषिः। इन्द्रो देवता। त्रिष्टुभः। तृचं सूक्तम्।

अप्सु धूतस्य हरिवः पिबेह नृभिः सुतस्य जठरं पृणस्व।
मिमिक्षुर्यमद्रय इन्द्र तुभ्यं तेभिर्वर्धस्व मदमुक्थवाहः ॥ १ ॥

भा०—हे परमेश्वर! योगिजनों से शुद्ध रूप से निष्पादित, प्राणों के द्वारा योगसाधनों से परिशोधित आत्मा को स्वीकार कर। जिन आत्माओं को धर्ममेघ से सिद्ध और साधक जन आनन्द रसों से सेवन करते हैं, उनसे हे ज्ञानवन्! तू वृद्धि को प्राप्त हो।

प्रोग्रां पीतिं वृष्ण इयर्मि सत्यां प्रयै सुतस्य हर्यश्व तुभ्यम्।
इन्द्र धेनाभिरिह मादयस्व धीभिर्विश्वाभिः शच्या गृणानः ॥२॥

भा०—हे व्याप्त शक्तियों से युक्त परमेश्वर ! सब सुखों के वर्षक तेरे लिये, अपनी ही उत्कृष्ट गति की प्राप्ति के लिये मैं बलवती प्रीति अर्थात् स्नेहपूर्ण स्वीकृति को जगाता हूँ । महती शक्ति के कारण धारणावती बुद्धियों द्वारा स्तुति किया जाकर समस्त रस धाराओं से जीवों को तृप्त कर ।

ऊती शचीवस्तव वीर्येण वयो दधाना उशिज ऋतज्ञाः ।
प्रजावदिन्द्र मनुषो दुरोणे तस्थुर्गृणन्तः सधमाद्यासः ॥ ३ ॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन् ! हे शक्तिशालिन् ! तेरी रक्षणकारिणी शक्ति से और तेरे सर्वोत्पादक वीर्य से, सत्यज्ञान के ज्ञाता तेरे प्रिय भक्तजन प्रजा, पुत्र, पौत्रादि से युक्त दीर्घ जीवन को धारण करते हुए, तुझ में आनन्द लाभ करने हारे ध्यानी पुरुष, तेरी स्तुति करते हुए, मनुष्य के गृह के समान इस मनुष्यदेह में रहते हैं ।

इति तृतीयेऽनुवाके तृतीयः पर्यायः ।

इति तृतीयोऽनुवाकः ।

[३४] परमेश्वर और आत्मा का वर्णन ।

गृत्समद ऋषिः । इन्द्रो देवता । त्रिष्टुभः । सामसूक्तम् । पञ्चदशर्चं सूक्तम् ।

यो जात एव प्रथमो मनस्वान् देवो देवान् क्रतुना पर्यभूषत् ।
यस्य शुष्माद् रोदसी अभ्यसेतां नृम्णस्य मह्ना स जनास इन्द्रः ॥ १ ॥

भा०—जो सबसे श्रेष्ठ और सबसे आदि में विद्यमान्, मनन शक्ति से युक्त, प्रकाशस्वरूप, प्रकट होकर अपनी शक्ति से सूर्यादि लोकों को अपने वश कर रहा है, उनको सुशोभित और कान्तिमान् कर रहा है, जिसके बल से आकाश और पृथिवी दोनों मानो भय से कांपती हैं हे मनुष्यो ! बल के कारण वह ही 'इन्द्र' कहाता है ।

यः पृथिवीं व्यथमानामदृंहद् यः पर्वतान् प्रकुपिताँ अरम्णात् ।
यो अन्तरिक्षं विममे वरीयो यो द्यामस्तभ्नात् स जनास इन्द्रः ॥ २ ॥

भा०—जो आकाश में वेग से गति करती हुई पृथिवी को भी दृढ़ करता है, जो अग्नियों से धधकते हुए ज्वालामुखी पर्वतों को शान्त करता है, जो विशाल अन्तरिक्ष को बनाता या मापता है, जो सूर्य और उसके समान प्रकाशमान नक्षत्रादि से मण्डित आकाश को थामता है, हे मनुष्यो ! वह 'इन्द्र' अर्थात् परमेश्वर है ।

यो ह॒त्वाहि॒मरि॑णात् स॒प्त सिन्धू॒न् यो गा उ॒दाज॑दप॒धा व॒लस्य॑ ।
यो अश्म॑नोर॒न्तर॒ग्निं ज॒जान॑ सं॒वृक् स॒मत्सु॒ स ज॑नास॒ इन्द्रः॑ ॥३॥

भा०—जो अविनाशी प्रकृतितत्व को व्याप्त करके सात समष्टि महाप्राणों को अथवा महत्, अहंकार एवं ५ सूक्ष्म तन्मात्रा इनको प्रकट करता है, जो आवरणकारी अज्ञान और अन्धकार को या जड़ता को दूर करके ऋषियों के हृदय में ज्ञान-वाणियों को और संसार में सूर्य की किरणों या लोकों को चलाता है, जो द्यौ और पृथिवी के बीच में, रगड़ते दो पत्थरों के बीच में चमकने वाली अग्नि के समान, सूर्यरूप अग्नि को उत्पन्न करता है, वह समस्त व्यवहारों में विघ्नों को दूर करने हारा है । हे मनुष्यो ! वही 'इन्द्र' परमेश्वर है ।

येने॒मा विश्वा॒ च्यव॑ना कृ॒तानि॒ यो दा॒सं वर्ण॒मध॑रं॒ गुहाकः॑ ।
श्व॒घ्नीव॒ यो जि॑गी॒वां ल॒क्षमाद॑द॒र्यः पु॒ष्टानि॒ स ज॑नास॒ इन्द्रः॑ ॥४॥

भा०—जिसने ये समस्त गतिशील लोक बनाये हैं, जो विनाशी स्वभाव के स्थिर न रहने वाले जगत् को आकाश में स्थापित करता है, कुत्तों से शिकार करने वाला व्याध जिस प्रकार लक्ष्य को वेधता है उसी प्रकार जो समस्त दृश्यमान जगत् को अपने वश कर रहा है, जो पुष्टियुक्त पदार्थों को सबको देता है । हे मनुष्यो ! वह 'इन्द्र' परमेश्वर है ।

यं स्मा॑ पृ॒च्छन्ति॒ कुह॒ सेति॑ घो॒रमु॒तेमा॑हु॒र्नैषो अ॒स्तीत्ये॑नम् ।
सो अ॒र्यः पु॒ष्टीर्विज॑ इ॒वा मि॑नाति॒ श्रद॑स्मै धत्त॒ स ज॑नास॒ इन्द्रः॑ ॥५॥

भा०—जिस भयानक के विषय में लोग प्रश्न किया करते हैं कि वह कहां है ? और उसके विषय में कहा करते हैं कि वह है ही नहीं, वह अज्ञानी पुरुष के हृष्ट पुष्ट शरीरों को भी उद्वेगजनक सिंह के समान विनष्ट करता है। हे लोगो ! उस ईश्वर पर सत्य विश्वास करो कि वह 'सत्' है। और वह इन्द्र, परम ऐश्वर्यवान् परमेश्वर है।

यो रध्रस्य चोदिता यः कृशस्य यो ब्रह्मणो नाधमानस्य कीरेः।
युक्तग्राव्णो योऽविता सुशिप्रः सुतसोमस्य स जनास इन्द्रः ॥६॥

भा०—जो धनाढ्य और निर्धन दोनों को ऐश्वर्य का देने वाला है, जो प्रार्थना करने वाले ब्रह्मज्ञानी और कर्मशील का भी दाता है, जो उत्तम सामर्थ्य वाले, प्राणों को योग द्वारा लगाने वाले और ब्रह्मानन्द को प्राप्त हुए पुरुष का रक्षक है, हे मनुष्यो ! वह परमैश्वर्यवान् प्रभु है।

यस्याश्वासः प्रदिशि यस्य गावो यस्य ग्रामा यस्य विश्वे रथासः।
यः सूर्यं य उषसं जजान यो अपां नेता स जनास इन्द्रः ॥७॥

भा०—जिसके शासन में व्यापक शक्ति वाले सूर्य और जिसके शासन में समस्त पृथिवी गण हैं, जिसके शासन में समस्त इन्द्रियगण, जीवगण या लोक हैं, जिसके वश में समस्त रमणसाधन देह और आत्मा हैं, जो सूर्य को उत्पन्न करता है, जो उषा को प्रकट करता है, जो जलों का, समुद्रों का और आप्त पुरुषों के समस्त कर्मों, बुद्धियों का भी प्रवर्त्तक है, हे लोगो ! वह ऐश्वर्यवान् परमेश्वर है।

यं क्रन्दसी संयती विह्वयेते परेऽवर उभया अमित्राः।
समानं चिद् रथमातस्थिवांसा नाना हवेते स जनास इन्द्रः ॥८॥

भा०—जिसको नियम में बद्ध द्यौ और पृथिवी भी याद करते हैं। परमपद में प्राप्त और इस लोक के जन, तथा परस्पर स्नेह न करने वाले दोनों शत्रु जिसको विविध प्रकार से स्मरण करते हैं। जिस परमेश्वर

को देह में विराजमान प्राणी भी नाना प्रकार से स्मरण करते हैं। हे मनुष्यो! वही इन्द्र अर्थात् परमेश्वर है।

यस्मान्न ऋते विजयन्ते जनासो यं युध्यमाना अवसे हवन्ते ।
यो विश्वस्य प्रतिमानं बभूव यो अच्युतच्युत् स जनास इन्द्रः ॥९॥

भा०—जिसके विना लोग कभी किसी बात पर भी विजय नहीं पाते, सफल नहीं होते, युद्ध करते हुए लोग भी जिसको अपनी रक्षा के लिये बुलाते हैं, जो विश्व का प्रतिमान, उसके प्रत्येक पदार्थ का निर्माण करने वाला एवं समस्त विश्व को अपने में धारण करने वाला हो गया है, जो समस्त पदार्थों को भी कालवेग से विनाश कर देने वाला है, हे लोगो! वह इन्द्र, परमेश्वर है।

यः शश्वतो मह्येनो दधानानमन्यमानांछर्वा जघान ।
यः शर्धते नानुददाति शृध्यां यो दस्योर्हन्ता स जनास इन्द्रः ॥१०॥

भा०—जो बड़े बड़े पापों को लगातार करने वालों और तिस पर भी अपने अपराधों को त्यागने के लिये स्वीकार न करने वालों को अपने क्लेशदायी उपाय से दण्डित करता है। जो निन्दा करने वाले पुरुष को सहनशक्ति प्रदान नहीं करता। जो दूसरे का नाश करने वाले पुरुष का स्वयं नाशकारी, दण्डकर्त्ता है। हे मनुष्यो! वह इन्द्र, परमेश्वर है।

यः शम्बरं पर्वतेषु क्षियन्तं चत्वारिंश्यां शरद्यन्वविन्दत् ।
ओजायमानं यो अहिं जघान दानुं शयानं स जनास इन्द्रः ॥११॥

भा०—जो ४० वें वर्ष के पश्चात् पालनशक्ति एवं पूर्णज्ञान से युक्त विद्वानों में वरने योग्य ज्ञानराशि वेद को या ब्रह्मचर्य के पूर्ण बल को प्राप्त कराता है और जो बल पकड़ने वाले, सर्प के समान कुटिल, मर्म के काटने वाले, हृदय में सोने वाले कामविकार को नष्ट करता है, हे मनुष्यो! वह इन्द्र है, परमेश्वर है।

यः शम्बरं पर्यतरत् कसीभिर्योऽचारुकास्नापिबत् सुतस्य ।
अन्तर्गिरौ यजमानं बहुं जनं यस्मिन्नामूर्छत् स जनास इन्द्रः ॥१२॥

भा०—जो परमेश्वर अपनी ज्ञान दीप्तियों से आवरण करने वाले अज्ञान को पार कर जाता है। और जो कष्टदायी कालरूप मुख से उत्पादित जगत् का पान करता है, ग्रस लेता है। पर्वत के बीच में जिस प्रकार वायु मूर्छित हो जाता है उसी प्रकार जिस अपने स्वरूप में वह परमेश्वर ईश्वरोपासक बहुत से जनों को मोहित कर लेता है। हे लोगो ! वह परमैश्वर्यवान् प्रभु है।

कसीभिः—कसि गतिशासनयोः, कस इत्येके, कश इत्यन्ये । मूर्च्छा-मोहसमुच्छ्राययोः ।

यः सप्तरश्मिर्वृषभस्तुविष्मानवासृजत् सर्तवे सप्त सिन्धून् ।
यो रौहिणमस्फुरद् वज्रबाहुर्द्यामारोहन्तं स जनास इन्द्रः ॥१३॥

भा०—जो परमात्मा सात रश्मियों वाले सूर्य के समान तेजस्वी है, बड़ा बलवान्, मेघ के समान सुखों का वर्षण करने वाला है। वह सात प्राणों को शरीर में गति करने के लिये बनाता है। जो हाथ में वज्र लिये लकड़हारे के समान, आकाश की तरफ होकर फैलने वाले वट के समान विकट रूप से फैलने वाले संसाररूप रौहिण या वट को काट देता है। हे मनुष्यो ! वह इन्द्र, प्रभु है।

द्यावा चिदस्मै पृथिवी नमेते शुष्माच्चिदस्य पर्वता भयन्ते ।
यः सोमपा निचितो वज्रबाहुर्यो वज्रहस्तः स जनास इन्द्रः ॥१४॥

भा०—आकाश और पृथिवी दोनों लोक इसके आगे झुकते हैं। इसके बल से पर्वत, मेघ भी भय से कांपते हैं। जो जगत् का पालक होकर सर्वत्र व्यापक, तथा वज्र के समान सब को पापों से वर्जन करने में समर्थ है हे मनुष्यो ! वह इन्द्र, परमेश्वर है।

यः सुन्वन्तमवति यः पचन्तं यः शंसन्तं यः शशमानमूती ।
यस्य ब्रह्म वर्धनं यस्य सोमो यस्येदं राधः स जनास इन्द्रः ॥१५॥

भा०—जो परमेश्वर यज्ञ करने वाले की रक्षा करता है, जो पाचन करने हारे अर्थात् वीर्य, विद्या और बल को परिपक्व करने वाले की रक्षा करता है, जो अपनी रक्षाकारिणी शक्ति से स्तुति करने वाले और जो ऊंचे गति करने वाले की रक्षा करता है। जिसको वेद बढ़ाता है, जिसको सोमयज्ञ बढ़ाता है, जिसका यह समस्त ऐश्वर्य है। हे मनुष्यो ! वह परमेश्वर है।

जातो व्यख्यत् पित्रोरुपस्थे भुवो न वेद जनितुः परस्य ।
स्तविष्यमाणो नो यो अस्मद् व्रता देवानां स जनास इन्द्रः ॥१६॥

भा०—परमेश्वर प्रादुर्भूत होकर पालन करने वाली पृथिवी और आकाश इन दो रूपों में विविध प्रकार से दिखाई देता है, वह संसार की माता और पिता रूप में अपने से भिन्न किसी दूसरे को नहीं जानता अर्थात् वह स्वयं सब का माता पिता है। जो स्तुति किया जाकर हमें हमारे और सूर्य, वायु, अग्नि, जल, आकाश आदि पदार्थों और विद्वानों और शरीरस्थ इन्द्रियों के निश्चित धर्मों, कर्त्तव्यों और शक्तियों को प्रकट करता है। हे मनुष्यो ! वह 'इन्द्र' है।

यः सोमकामो हर्यश्वः सूरिर्यस्माद् रेजन्ते भुवनानि विश्वा ।
यो जघान शम्बरं यश्च शुष्णं य एकवीरः स जनास इन्द्रः ॥१७॥

भा०—जो परमेश्वर ब्रह्मानन्द रस की कामना करने वाले योगि-जनों को अतिप्रिय तथा वेगवान्, कान्तिमान्, सबका प्रेरक है। जिससे शक्तियें प्राप्त करके समस्त लोक चलायमान हैं। जो आवरणकारी अज्ञान को नाश करता और प्राणों के शोषण करने वाले क्षुत्-पिपासा आदि कष्टों को अन्न प्रदान करके नाश करता है, जो एकमात्र वीर्यवान्, सर्व-शक्तिमान् है, हे मनुष्यो ! वह परमेश्वर है।

यः सुन्वते पचते दुध्र आ चिद् वाजं दर्दर्षि स किलासि सत्यः ।
वयं त इन्द्र विश्वह प्रियासः सुवीरासो विदथमा वदेम ॥१८॥

भा०—जो बड़ा अजेय होकर दानशील और पाकशील पुरुष को वीर्य और अन्न प्रदान करता है वह तू अवश्य सत्य ही है, तेरे होने में कोई सन्देह नहीं है। नित्यप्रति हे परमेश्वर ! हम लोग, तेरे प्रिय और उत्तम वीर्यवान् होकर, तेरी ज्ञान-स्तुति का वर्णन करें।

[३५] परमेश्वर का वर्णन।

नोवा गौतम ऋषिः। इन्द्रो देवता। १, २, ७, ९, १४, १६ त्रिष्टुभः। शेषाः पंक्तयः। षोडशर्चं सूक्तम्।

अस्मा इदु प्र तवसे तुराय प्रयो न हर्मि स्तोमं माहिनाय।
ऋचीषमायाध्रिगव ओहमिन्द्राय ब्रह्माणि राततमा ॥ १ ॥

भा०—बड़े बलवान् शत्रुनाशक गुणों से महान्, वेदमन्त्रों में कहे स्वरूप के समान, बेरोक गति वाले सर्वव्यापक परमैश्वर्यवान् प्रभु के लिये मैं आहुति की न्याईं अति विचारणीय स्तुति प्रदान करता हूँ। और अति प्रेम से देने योग्य वेद मन्त्रोक्त स्तुति वचन निवेदन करता हूँ।

अस्मा इदु प्रयं इव प्र यंसि भराम्याङ्गूषं बाधे सुवृक्ति।
इन्द्राय हृदा मनसा मनीषा प्रत्नाय पत्ये धियो मर्जयन्त ॥ २ ॥

भा०—इस परमेश्वर के लिये अन्नाहुति के समान स्तुति को प्रदान करता हूँ। और अपनी सब पीड़ाओं को दूर करने के लिये सब विघ्नों के निवारक उसकी स्तुति को प्रस्तुत करता हूँ। इस पुरातन स्वामी के लिये विद्वान् लोग हृदय, मन और मननशक्ति के द्वारा अपनी बुद्धियों को पवित्र किया करते हैं।

अस्मा इदु त्यमुपमं स्वर्षां भराम्याङ्गूषमास्येन।
मंहिष्ठमच्छोक्तिभिर्मतीनां सुवृक्तिभिः सूरिं वावृधध्यै ॥ ३ ॥

भा०—इस इन्द्र के लिये ही उस आनन्ददायी अनुपम स्तुतिवचन को अपने मुख से प्रस्तुत करूं। और मनन करने हारों में सबसे महान् तथा सूर्य के समान सर्वप्रेरक परमेश्वर को दुःखों के निवारण करनेहारी और उसकी महिमा की वृद्धि करने हारी स्तुति प्रस्तुत करता हूँ।

अस्मा इदु स्तोमं सं हिनोमि रथं न तष्टेव तत्सिनाय।
गिरश्च गिर्वाहसे सुवृक्तीन्द्राय विश्वमिन्वं मेधिराय ॥ ४ ॥

भा०—जिस प्रकार शिल्पी रथ को तैयार करता है उसी प्रकार उस प्रेमी, समस्त स्तुतियों के पात्र, परम मेधावी या परम पवित्र, इस परम लक्ष्यभूत परमैश्वर्यवान् प्रभु के लिये, उत्तम रीति से संसार दुःखों के वर्जक सब पदार्थों के प्राप्त कराने वाले स्तुति समूह को और उत्तम वेदवाणियों को अच्छी प्रकार प्रस्तुत करता हूँ।

अस्मा इदु सप्तिमिव श्रवस्येन्द्रायार्कं जुह्वा३ समञ्जे।
वीरं दानौकसं वन्दध्यै पुरां गूर्तश्रवसं दर्माणम् ॥ ५ ॥

भा०—अन्न, यश की प्राप्ति के लिये जिस प्रकार अश्व को रथ में जोड़ा जाता है उसी प्रकार इन्द्र के लिये अर्चनाकारी मन्त्र को मैं वाणी द्वारा प्रकट करता हूँ। और वीर, दान के एकमात्र आश्रय, प्रशस्त कीर्तिमान् आत्मा के बन्धन रूप कोशों को तोड़ने वाले परमेश्वर की स्तुति करने के लिये, मैं उसी प्रभु की स्तुति को प्रकट करता हूँ।

अस्मा इदु त्वष्टा तक्षद् वज्रं स्वपस्तमं स्वर्यं१ रणाय।
वृत्रस्य चिद् विदद् येन मर्म तुजन्नीशानस्तुजता कियेधाः ॥६॥

भा०—इस परमेश्वर को प्राप्त करने के लिये योगी, उत्तम कर्मों से युक्त, सुख प्राप्त कराने वाले, ज्ञानवज्र को मोक्षसुख में रमण करने के लिये तैयार करता है। नाना योग भूमियों को क्रमण करता हुआ उनको अपने वश करने में समर्थ योगी जिस अज्ञान-नाशक ज्ञानवज्र द्वारा

आवरणशील अज्ञान का नाश करता हुआ उसके रहस्य को प्राप्त करता है ।

अस्येदु मातुः सवनेषु सद्यो महः पितुं पपिवां चार्वन्ना ।
मुषायद् विष्णुः पचतं सहीयान् विध्यद् वराहं तिरो अद्रिमस्ता ॥७

भा०—इस सृष्टि के निर्माता का ही यह महान् कर्म है कि वह ईश्वरीय सृष्टि, उत्पत्ति, संहार आदि कार्यों में, पालन करने योग्य संसार को, उत्तम अन्नों के समान निरन्तर खाता रहता है । वह व्यापक वश-कर्त्ता, अपनी आत्मा को साधना द्वारा पकाने वाले मुमुक्षु को अचानक ले जाता है । और शासनरूप वज्र का प्रक्षेप्ता वह परमेश्वर अपने पास आये श्रेष्ठ ज्ञान से पूर्ण, स्तुतिशील धर्ममेघ रूप सुसमाहित आत्मा को विद्ध करता है, उसे अपने प्रेम में वश करता है ।

अस्मा इदु ग्नाश्चिद् देवपत्नीरिन्द्रायार्कमहिहत्य ऊवुः ।
परि द्यावापृथिवी जभ्र उर्वी नास्य ते महिमानं परि ष्टः ॥ ८ ॥

भा०—अज्ञान के नाश के लिये परमेश्वर की पालक शक्तियां और ज्ञान योग्य स्तुतिवाणियां इस परमेश्वर के ही अर्चनीय स्वरूप को अपने भीतर धारण करती हैं । विशाल द्यौ और पृथिवी दोनों को वह सब प्रकार से व्याप्त है । और वे दोनों इसके महान् सामर्थ्य को सीमित नहीं कर सकतीं ।

अस्येदेव प्र रिरिचे महित्वं दिवस्पृथिव्याः पर्यन्तरिक्षात् ।
स्वरालिन्द्रो दम आ विश्वगूर्तः स्वरिरमत्रो ववक्षे रणाय ॥९॥

भा०—इस परमेश्वर का ही महान् सामर्थ्य महान् आकाश से भी कहीं बढ़ कर है, वह पृथिवी से और अन्तरिक्ष से भी परे गया हुआ है । स्वयं प्रकाशमान, ऐश्वर्यवान्, उत्तम शक्तिशाली स्वामी, अपरिमित करने में और सबसे वन्दनीय होकर वह दमन करने योग्य काम आदि शत्रु के साथ संग्राम के लिये सब शक्तियों को धारण करता है ।

अस्येदेव शवसा शुषन्तं वि वृश्चद् वज्रेण वृत्रमिन्द्रः ।
गा न व्राणा अवनीरमुञ्चदभि श्रवो दावने सचेताः ॥ १० ॥

भा०—इसके ही बल-पराक्रम से सूखते हुए अज्ञानरूप वृत्र को, ज्ञान-वज्र से वह स्वयं ऐश्वर्यवान् नाना प्रकार से नष्ट करता है। वह परमेश्वर सूर्य की रश्मियों के समान पालन करने वाली श्रेष्ठ भूमियों का दान करता है और वह प्रेमयुक्त होकर दानशील पुरुष को अन्न, ख्याति और ज्ञान सब प्रकार से देता है।

अस्येदु त्वेषसा रन्त सिन्धवः परि यद् वज्रेण सीमयच्छत् ।
ईशानकृद् दाशुषे दशस्यन् तुर्वीतये गाधं तुर्वणिः कः ॥ ११ ॥

भा०—इस परमेश्वर के ही दीप्तियुक्त प्रखर तेज से, बहने वाले जल नाना प्रकार की क्रीड़ाएं करते हैं। वह ही उनको अपने बल से सब प्रकार से नियम में बांधता है। वह ही ऐश्वर्ययुक्त सूर्य, वायु, विद्युत् आदि पदार्थों का रचयिता होकर, दानशील पुरुष को स्वयं बहुत ऐश्वर्य प्रदान करता है। वह परमेश्वर अति शीघ्र सबको प्राप्त होने हारा होकर शीघ्र ही मोक्ष को प्राप्त होने वाले साधक पुरुष को अपना ज्ञानैश्वर्य प्रदान करता है।

अस्मा इदु प्र भरा तूतुजानो वृत्राय वज्रमीशानः कियेधाः ।
गोर्न पर्व वि रदा तिरश्चेष्यन्नर्णांस्यपां चरध्यै ॥ १२ ॥

भा०—हे परमेश्वर ! तू सबका स्वामी, सबको तीव्र गति देनेहारा और न मालूम कितने बल, पराक्रम और ऐश्वर्य को धारण करनेहारा है। तू ही इस आवरणकारी जगत् के मूल कारण रूप वृत्र पर उसके निवारक वज्र का प्रयोग करता है। हे परमात्मन् ! तू आप्तजनों को ज्ञान प्राप्त कराने के लिये, ज्ञानसुखों को प्राप्त कराना चाहता हुआ, अपने तीर्णतम परमपद तक पहुंचने वाले ज्ञानवज्र से वेदवाणी के एक एक पोरू को विविध रूप से खोल देता है।

अस्येदु प्र ब्रूहि पूर्व्याणि तुरस्य कर्माणि नव्य उक्थैः ।
युधे यदिष्णान आयुधान्यृघायमाणो निरिणाति शत्रून् ॥ १३ ॥

भा०—निज के भीतरी शत्रुओं से संग्राम करने के लिये उपायों को करता हुआ, आत्मा से बल को काटने वाले काम, क्रोध आदि को विनाश करता हुआ, साधक आगे बढ़ता है । तब वह इस परमेश्वर के ही पूर्व किये सृष्टि रचना आदि कर्मों की स्तुति करे क्योंकि वह ही स्तुति-वचनों से स्तुति के योग्य है ।

अस्येदु भिया गिरयश्च दृळ्हा द्यावा च भूमा जनुषस्तुजेते ।
उपो वेनस्य जोगुवान ओणिं सद्यो भुवद् वीर्याय नोधाः ॥ १४ ॥

भा०—इसके ही भय से समस्त पर्वत दृढ़ होकर बैठे हैं । इस सर्वोत्पादक परमेश्वर के ही बल से आकाश और भूमि दोनों लोक चल रहे हैं, कांपते हैं । इसी प्रज्ञावान् मेधावी, कान्तिमान् परमेश्वर से रक्षा की प्रार्थना करता हुआ स्तुतिशील पुरुष, शीघ्र ही वीरकर्म करने के लिये समर्थ हो जाता है ।

अस्मा इदु त्यदनु दाय्येषामेको यद् वव्ने भूरेरीशानः ।
प्रैतशं सूर्ये पस्पृधानं सौवश्व्ये सुष्विमावदिन्द्रः ॥ १५ ॥

भा०—इन पदार्थों में से वही पदार्थ इस परमेश्वर के प्रति समर्पित किया जाता है जिसको कि एकमात्र भारी ऐश्वर्य का स्वामी वह परमेश्वर स्वीकार करता है । वह परमेश्वर उत्तम किरणों से युक्त सूर्य के समान तेजस्वी पद प्राप्त करने के निमित्त स्पर्धा करते हुए उत्तम यत्नशील आवागमनकारी जीवात्मा की अच्छी प्रकार रक्षा करता है ।

एवा ते हारियोजना सुवृक्तीन्द्र ब्रह्माणि गोतमासो अक्रन् ।
ऐषु विश्वपेशसं धियं धाः प्रातर्मक्षू धियावसुर्जगम्यात् ॥ १६ ॥

भा०—हे ज्ञानी पुरुषों से योग द्वारा साक्षात् करने योग्य परमेश्वर ! तेरे ही लिये वेदवाणी में निष्ठ विद्वान् पुरुष उत्तम हृदयहारी वेदमन्त्रों

और ब्रह्मज्ञान के वचनों का उच्चारण करते हैं। उनमें तू नाना मनोहर स्वरूप वाली धारणावती बुद्धि को प्रदान करता है। वह परमेश्वर प्रातःकाल शीघ्र उपासना करने योग्य है।

(३६) ईश्वर-स्तुति

भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः। इन्द्रो देवता। त्रिष्टुभः। एकादशर्चं सूक्तम्।

य एक॒ इद्धव्य॑श्चर्षणी॒नामिन्द्रं॒ तं गी॒र्भिर॒भ्य॑र्च आ॒भिः।
यः पत्य॑ते वृष॒भो वृष्ण्या॑वान्त्स॒त्यः सत्वा॑ पुरुमा॒यः सह॑स्वान् ॥१॥

भा०—जो परमेश्वर एकमात्र मनुष्यों के लिये स्तुति करने योग्य है, उस परमात्मा की इन वाणियों से साक्षात् स्तुति करता हूँ। जो सुखों की वर्षा करने हारा और वृषभ के समान बलवीर्यों से युक्त, सत्यस्वरूप, सत् पदार्थों का स्वामी, परमशक्तिमान्, पूर्ण ज्ञानवान्, एवं अनेक निर्माणकारिणी शक्तियों से युक्त जाना जाता है।

तमु॑ नः॒ पूर्वे॑ पि॒तरो॒ नव॑ग्वाः स॒प्त विप्रा॑सो अ॒भि वा॒जय॑न्तः।
न॒क्ष॒द्दा॒भं तत॑रिं पर्व॒ते॒ष्ठामद्रो॑घवाचं म॒तिभिः॒ शवि॑ष्ठम् ॥ २ ॥

भा०—हमारे पूर्व पालक, नव स्तुति-वाणियों को उच्चारण करने वाले, सातों प्राण जिस प्रकार आत्मा की उपासना करते हैं उसी प्रकार उनके समान परमात्मा की उपासना करने वाले तथा परम मेधावी उसी का ही साक्षात् ज्ञान लाभ करते हुए स्तुति किया करते हैं। वे दोषों और शत्रुओं के नाशक, दुःखों से तारने हारे, सर्वोच्च, द्रोहरहित, आज्ञा के देने वाले, अतिबलशाली उस परमेश्वर को मनन योग्य स्तुतियों द्वारा मनन करते या प्राप्त होते हैं।

तमी॑मह॒ इन्द्र॑मस्य रा॒यः पु॑रु॒वीर॑स्य नृ॒वतः॑ पुरु॒क्षोः।
यो अस्कृ॑धोयुर॒जरः॒ स्व॑र्वा॒न् तमा भ॑र हरिवो माद॒यध्यै॑ ॥ ३ ॥

भा०—जो परमेश्वर अविनाशी, अजर तथा सुख का स्वामी है, हे शक्तियों के स्वामिन्! तू समस्त जीवों को तृप्त करने के लिये उसको

हमें प्राप्त करा । हम लोग बहुत से वीर पुरुषों से युक्त, मनुष्य सेवकों से युक्त, बहुतसी अन्न समृद्धि से युक्त ऐश्वर्यों की उस ऐश्वर्यवान् परमेश्वर से याजना करते हैं ।

तन्नो वि वोचो यदि ते पुरा चिज्जरितार आनशुः सुम्नमिन्द्र ।
कस्ते भागः किं वयो दुध्र खिद्वः पुरुहूत पुरूवसोऽसुरघ्नः ॥४॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन् ! हे बहुतसी प्रजाओं मे रक्षकरूप में बुलाये जाने योग्य ! हे ऐश्वर्यों से युक्त ! एवं बहुत से लोकों में बसने और बहुतों को बसाने में समर्थ ! हे शत्रुओं के खेदजनक, जिस प्रकार से पहले भी तेरे स्तुतिकर्त्ता तेरे सुखकारी ऐश्वर्य को प्राप्त करते थे हमें भी उसका विशेष रूप से उपदेश कर कि असुरों का विनाश करने वाला जो तू है उसका वह कौनसा ऐश्वर्य था और कौनसा उपादेय अन्न या बल था ।

तं पृच्छन्ती वज्रहस्तं रथेष्ठामिन्द्रं वेपी वक्वरी यस्य नू गीः ।
तुविग्राभं तुविकूर्मिं रभोदां गातुमिषे नक्षते तुम्रमच्छ ॥ ५ ॥

भा०—जिस पुरुष की क्रिया शक्ति से युक्त तथा ज्ञानोपदेश करने वाली पाणी, ज्ञानवज्र को हाथ में लिये तथा परमानन्द रस में स्थित उस ऐश्वर्यवान् आत्मा के विषय में प्रश्न करती हुई, बहुत से लोकों के वशीकर्त्ता, विश्वकर्मा, बलप्रद, ज्ञानप्रद परमेश्वर की स्तुति करना चाहती है, वही पुरुष उस सर्वव्यापक को भली प्रकार प्राप्त करता है ।

अया ह त्यं मायया वावृधानं मनोजुवा स्वतवः पर्वतेन ।
अच्युता चिद् वीलिता स्वोजो रुजो वि दृह्ला धृषता विरप्शिन् ॥६॥

भा०—हे स्वयं बलस्वरूप परमेश्वर ! इस प्रकृति की शक्ति से ही बढ़ने वाले उस अज्ञानावरण को, मन से प्राप्त होने योग्य पालनकारी ज्ञानवज्र द्वारा विविध प्रकार से नष्ट कर । हे महान् ! हे उत्तम बल-

शालिन् ! तू न च्युत होने वाली, बलवाली, दृढ़ अज्ञान की सेनाओं को धर्षण करने वाले बल से विनाश कर ।

तं वो धिया नव्यस्या शविष्ठं प्रत्नं प्रत्नवत् परितंसयध्यै ।
स नो वक्षदनिमानः सुवह्मेन्द्रो विश्वान्यति दुर्गहाणि ॥७॥

भा०—हे मनुष्यो ! आप लोग उस अति शक्तिशाली पुराण पुरुष को पुरातन विद्वानों के समान ही उत्तम उत्तम स्तुतियों से अलंकृत करने का यत्न करो । वह उत्तम पदतक पहुंचाने में समर्थ, एवं समस्त उत्तम पद और पदार्थों को धारण करने वाला, महान् ऐश्वर्य युक्त परमेश्वर, अनन्त बलशाली होकर समस्त दुर्गम संकटों से पार कर देता है ।

आ जनाय द्रुह्वणे पार्थिवानि दिव्यानि दीपयोऽन्तरिक्षा ।
तपा वृषन् विश्वतः शोचिषा तान् ब्रह्मद्विषे शोचय क्षामपश्च ॥८॥

भा०—हे सुखों के वर्षण करने हारे ! तू द्रोहशील पुरुष के सन्ताप के लिये पृथिवी, आकाश और अन्तरिक्ष के पदार्थों को खूब अच्छी प्रकार प्रज्वलित कर । उन द्रोही पुरुषों को ज्वालामय तेज से सब ओर से संतप्त कर । ब्रह्मज्ञानी पुरुषों के शत्रुओं के नाश के लिये पृथिवी और जलों को भी तपा ।

भुवो जनस्य दिव्यस्य राजा पार्थिवस्य जगतस्त्वेषसंदृक् ।
धिष्व वज्रं दक्षिण इन्द्र हस्ते विश्वा अजुर्य दयसे वि मायाः ॥९॥

भा०—हे अविनाशिन् परमेश्वर ! तू दिव्य मनुष्यों और पृथिवी पर उत्पन्न प्राणी संसार का राजा है । हे उज्ज्वल दृष्टि वाले प्रभो ! तू दायें या चतुर हाथ में वज्र को धारण कर । तू समस्त प्रज्ञाओं को विविध प्रकार से धारण करता है । अथवा समस्त छलों का विविध प्रकार से नाश करता है ।

आ संयतमिन्द्र णः स्वस्तिं शत्रुतूर्याय बृहतीममृध्राम् ।
यथा दासान्यार्याणि वृत्रा करो वज्रिन्त्सुतुका नाहुषाणि ॥१०॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन् ! शत्रु के नाश के लिये, अविनाशी बड़ी भारी सुसंयत उत्तम स्थिति हमारे लिये तय्यार कर। जिसमे हे शक्तिधर ! तू विनाशकारी तथा विघ्नकारी पुरुषों को आर्य बनाता है और जिससे मनुष्यप्रजाओं को उत्तम पुत्र पौत्र सहित बनाता है।

स नो नियुद्भिः पुरुहूत वेधो विश्ववाराभिरा गहि प्रयज्यो ।
न या अदेवो वरते न देव आभिर्याहि तूयमा मद्र्यद्रिक् ॥ ११ ॥

भा०—हे बहुतों से पुकारे जाने योग्य ! हे सर्वविधातः ! हे सर्वोच्च प्रभो ! तू सब कष्टों को वारण करने वाली युद्धकारिणी शक्तियों से हमें प्राप्त हो। जिनको अदानशील और तेजोहीन पुरुष कभी नहीं रख सकता और केवल इन्द्रियक्रीड़ा का व्यसनी पुरुष भी नहीं रखता, उन शक्तियों सहित तू शीघ्र ही मेरी ओर कृपादृष्टि करता हुआ आजा।

[३७] राजा के कर्त्तव्य और परमात्मा के गुण।

वसिष्ठ ऋषिः। त्रिष्टुभः। इन्द्रो देवता। एकादशर्चं सूक्तम्।

यस्तिग्मशृङ्गो वृषभो न भीम एकः कृष्टीश्च्यावयति प्र विश्वाः ।
यः शश्वतो अदाशुषो गयस्य प्रयन्तासि सुष्वितराय वेदः ॥१॥

भा०—हे राजन् ! प्रभो ! तू वह है जो कि तीक्ष्ण सींगों वाले बैल के समान अति भयंकर अकेला ही समस्त मनुष्यों को मार गिराता और मार भगाता है और जो कभी भी न देने वाले कंजूस पुरुष के घर का धन उत्तमदाता को प्रदान करता है।

त्वं ह त्यदिन्द्र कुत्समावः शुश्रूषमाणस्तन्वा समर्ये ।
दासं यच्छुष्णं कुयवं न्यस्मा अरन्धय आर्जुनेयाय शिक्षन् ॥२॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन् ! तू अपने विस्तृत बल से या स्वयं सेवा करता हुआ, संग्राम में और यज्ञ में, समय समय पर विशेष विशेष शत्रुनाशकारी साधन वा सैन्यबल को सब प्रकार से प्रयुक्त करता है। जब कि तू इस प्रजा के नाशक, प्रजा के शोषक और कुत्सित संगति

वाले पुरुष को इस अर्जुनी अर्थात् पृथ्वी के हितकारी प्रजागण के लिये, दण्डित करता हुआ उसको वश करता है ।

त्वं धृष्णो धृषता वीतहव्यं प्रावो विश्वाभिरूतिभिः सुदासम् ।
प्र पौरुकुत्सिं त्रसदस्युमावः क्षेत्रसाता वृत्रहत्येषु पूरुम् ॥ ३ ॥

भा०—हे शत्रुओं के धर्षण करने में समर्थ ! ऐश्वर्यवन् प्रभो ! तू अपने धर्षण सामर्थ्य या शत्रुनाशक वज्र से, तथा अपनी रक्षाकारी सेनाओं से, कल्याणकारक दानशील तथा पवित्र अन्न प्राप्त कराने वाले पुरुष की उत्तम रीति से रक्षा करता है । और क्षेत्र की प्राप्ति के लिये विघ्नकारी पुरुषों के विनाश करने के कार्यों में प्रजा के पालक, बहुत से शत्रुनाशक शस्त्रास्त्रों को धारण करने वाले, चोर डाकुओं में त्रास उत्पन्न करने वाले वीरपुरुषों की भी अच्छे प्रकार रक्षा करता है ।

त्वं नृभिर्नृमणो देववीतौ भूरीणि वृत्रा हर्यश्व हंसि ।
त्वं नि दस्युं चुमुरिं धुनिं चास्वापयो दभीतये सुहन्तु ॥ ४ ॥

भा०—हे पुरुषों द्वारा मनन करने योग्य प्रभो ! हे वेगवती महान् शक्तियों में व्यापक विद्वानों के संगम के अवसर में बहुत से विघ्नों का विनाश करता है । तू प्रजा के नाशक चोर डाकू प्रजा के धन को हड़प जाने वाले, प्रजा को त्रास देने वाले पुरुषों को सर्वथा दबा देने के लिये, अच्छे प्रकार मार और उन्हें सर्वथा सुलादे ।

तव च्यौत्नानि वज्रहस्त तानि नव यत् पुरो नवतिं च सद्यः ।
निवेशने शततमाविवेषीरहं च वृत्रं नमुचिमुताहन् ॥ ५ ॥

भा०—हे ज्ञानरूप वज्र को हाथ में धारण करने हारे ! तेरे वे शत्रुओं को पद-दलित करनेवाले बल हैं, जिनसे तू ९९, अनेकों पुरों के नाश करने में शीघ्र ही सफल होता है । और फिर सौवें आश्रयस्थान में प्राप्त हो जाता है और ज्ञान के आवरणकारी अमोच्य, अनादि वासना-बन्धनों का विनाश करता है ।

सत्रा ता त इन्द्र भोजनानि रातहव्याय दाशुषे सुदासे ।
वृष्णे ते हरी वृषणा युनज्मि व्यन्तु ब्रह्माणि पुरुशाक वाजम् ॥६॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन् ! अन्नादि भोग्य पदार्थों के त्यागी दानशील, कल्याणमय दातव्य पदार्थों के स्वामी पुरुष के लिये तेरे अनादि सिद्ध वे अनेक भोग योग्य पदार्थ हैं । हे बहुत शक्तियों के स्वामिन् ! तुझ बलवान् को प्राप्त करने के लिये बलवान् प्राण और अपान को योग द्वारा वश करता हूँ । और हम लोग ब्रह्मविषयक ज्ञान, कर्म और वीर्य को प्राप्त करें ।

मा ते अस्यां सहसावन् परिष्टावघाय भूम हरिवः परादै ।
त्रायस्व नोऽवृकेभिर्वरूथैस्तव प्रियासः सूरिषु स्याम ॥ ७ ॥

भा०—हे शक्तिशालिन् ! हे ज्ञानवन् ! तेरी सेवा या आज्ञा पालन के कार्य में उचित कर्त्तव्य का परित्याग करके हम अपराध के भागी न हों । तू हमारी भेड़ियों के स्वभाव से रहित, सौम्य और ईमानदार सेनाबलों द्वारा रक्षा कर । हे राजन् ! हम विद्वानों के बीच में रहते हुए तेरे प्रिय होकर रहें ।

प्रियास इत् ते मघवन्नभिष्टौ नरो मदेम शरणे सखायः ।
नि तुर्वशं नि याद्वं शिशीह्यतिथिग्वाय शंस्यं करिष्यन् ॥ ८ ॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन् ! तेरी ही इच्छा की अनुकूलता में हम तेरे प्रिय मित्रजन तेरी शरण में रहकर आनन्दप्रसन्न रहें । तू हिंसकों को वश करने में समर्थ, प्रयत्नशील पुरुष को उसके कर्तव्य में सुरक्षित कर, और अतिथि की सेवा करने वाले के लिये प्रशंसनीय लाभ प्रदान कर ।

सद्यश्चिन्नु ते मघवन्नभिष्टौ नरः शंसन्त्युक्थशास उक्था ।
ये ते हवेभिर्वि पणीँरदाशन्नस्मान् वृणीष्व युज्याय तस्मै ॥ ९ ॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन् ! तेरी इच्छा और शासन में रहते हुए, ज्ञानवाणियों का उपदेश करने वाले नेता लोग सदा ही ज्ञानों का उपदेश

करते हैं। तेरी आज्ञाओं के अनुसार जो विद्वान् पुरुष असुरों का बध करते हैं उन हम लोगों को तू स्वीकार कर, ताकि तेरे अभीष्ट उस कार्य में सहयोग दे सकें।

एते स्तोमा नरां नृतम तुभ्यमस्मद्र्यञ्चो ददतो मघानि।
तेषामिन्द्र वृत्रहत्ये शिवो भूः सखा च शूरोऽविता च नृणाम् ॥१०॥

भा०—हे उत्तम नायक! तेरे निमित्त ये नेताओं या प्रजाओं के समूह हमारे सन्मुख नाना ऐश्वर्यों का प्रदान करते हैं। हे इन्द्र! शत्रु के नाश करने में तू उनका कल्याणकारी मित्र हो, और तू शूरवीर होकर नेताओं और प्रजाओं का रक्षक हो।

नू इन्द्र शूर स्तवमान ऊती ब्रह्मजूतस्तन्वावावृधस्व।
उप नो वाजान् मिमीह्युप स्तीन् यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ११

भा०—हे ऐश्वर्यवन्! शूरवीर राजन्! रक्षा के लिये हमसे स्तुति किया गया तू, अन्नों तथा बड़े प्रबल अस्त्रों द्वारा समृद्ध होकर, अपने शरीर अथवा विस्तृत शक्ति से वृद्धि को प्राप्त कर। हमें बल, अन्न और पुत्रपौत्र आदि प्रदान कर। हे राजपुरुषो! आप लोग सदा उत्तम साधनों और अस्त्रों से हमारी रक्षा करें।

इति चतुर्थोऽनुवाकः।

[३८] ईश्वर स्तुति प्रार्थना

१–३, ४–६ इरिम्बिठिः काण्वः। मधुच्छन्दा ऋषिः। इन्द्रो देवता। गायत्र्यः। षड्चं सूक्तम्।

आ याहि सुषुमा हि त इन्द्र सोमं पिबा इमम्।
एदं बर्हिः सदो मम ॥ १ ॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन्! तू आ। तेरे लिये ही हम समाधिरस को तैयार करते हैं। इस रस का पान या पालन कर। यह आसन के समान मेरा हृदय है इस पर आकर विराजमान हो।

आ त्वा ब्रह्मयुजा हरी वहतामिन्द्र केशिना ।

उप ब्रह्माणि नः शृणु ॥ २ ॥

भा०—हे आत्मन् ! परब्रह्म के साथ योग द्वारा युक्त होने वाले केशों वाले घोड़ों के समान प्राण और अपान तुझे प्राप्त हों । तू हमारे ब्रह्म-ज्ञान विषयक वेदमन्त्रों का श्रवण कर ।

ब्रह्माणस्त्वा वयं युजा सोमपामिन्द्र सोमिनः ।

सुतावन्तो हवामहे ॥ ३ ॥

भा०—वेद और ब्रह्मतत्व के जाननेहारे, ब्रह्मरस को प्राप्त करने वाले, और प्राप्त समाधि-रस से सम्पन्न होकर हम लोग, हे आत्मन् ! योगाभ्यास द्वारा ब्रह्मरस का पान या पालन करने वाला जो तू है उसकी स्तुति करते हैं ।

इन्द्रमिद् गाथिनो बृहदिन्द्रमर्केभिरर्किणः ।

इन्द्रं वाणीरनूषत ॥ ४ ॥

भा०—हे ब्रह्म-स्तुतियों का गान करने हारे ! और हे अर्चनाशील विद्वान् पुरुषो ! आप लोग ऐश्वर्यवान् आत्मा को ही स्तुतिवचनों से महान् बतलाते हो। उसी ऐश्वर्यवान् आत्मा की वेदवाणियां भी स्तुति करती हैं ।

इन्द्र इद्धर्योः सचा संमिश्ल आ वचोयुजा ।

इन्द्रो वज्री हिरण्ययः ॥ ५ ॥

भा०—ऐश्वर्यवान् आत्मा वाणी या वाक् शक्ति से बन्धे हुए हरणशील प्राण और अपान के साथ खूब हिल-मिल कर व्याप्त है । ऐश्वर्यवान् आत्मा ज्ञान और वैराग्य रूपी वज्र से युक्त होकर के अति अधिक रमणीय स्वरूप वाला हो जाता है ।

इन्द्रो दीर्घाय चक्षस आ सूर्यं रोहयद् दिवि ।

वि गोभिरद्रिमैरयत् ॥ ६ ॥

भा०—परमेश्वर सुदूर देश तक देखने के लिये सूर्य को आकाश में बहुत ऊंचे स्थापित करता है। और वही अपनी किरणों से मेघ को विविध प्रकार से चलाता है।

अध्यात्म में—ज्ञानी आत्मा दीर्घदृष्टि को प्राप्त करने के लिये सूर्य के समान तेजस्वी प्राण को मूर्धास्थान में चढ़ा लेता है। और प्राणों के बल से, न विदीर्ण होने वाले अविनाशी आत्मा को विशेष रूप से आगे बढ़ाता है।

[३६] ईश्वर और राजा

१ मधुच्छन्दाः। २—५ गोषूक्त्यश्वसूक्तिनौ ऋषी। इन्द्रो देवता। गायत्र्यः। पञ्चर्चं सूक्तम्।

इन्द्रं वो विश्वतस्परि हवामहे जनेभ्यः।
अस्माकमस्तु केवलः ॥ १ ॥

भा०—तुम प्रजाजनों के लिये सब से ऊपर विद्यमान, राजा के समान सर्वहितकारी ऐश्वर्यवान परमेश्वर की हम स्तुति करते हैं और प्रार्थना करते हैं कि वही केवल एकमात्र सुखस्वरूप हमारा सर्वस्व आश्रय हो।

व्यन्तरिक्षमतिरन्मदे सोमस्य रोचना।
इन्द्रो यदभिनद् वलम् ॥ २ ॥

भा०—जब ऐश्वर्यवान् राजा नगर रोधने वाले शत्रु को छिन्न-भिन्न करता है तब वह राष्ट्र की समृद्धि के हर्ष में तृप्त होकर तथा अति कान्तिमान् होकर, शत्रु और अपने बीच के समस्त राजगण को विविध उपायों से पराजित करता है।

अध्यात्म में—ज्ञानी आत्मा जब आवरणकारी अज्ञानरूप तम का नाश करता है, तब ब्रह्मरस के हर्ष से अति उज्ज्वल होकर अपने अन्तःकरण को विविध रूप से वश करता है।

उद् गा आ॑ज॒दङ्गि॑रोभ्य आ॒विष्कृ॒ण्वन् गुहा॑ स॒तीः ।
अ॒र्वाञ्चं॑ नुनुदे व॒लम् ॥ ३ ॥

भा०—परमेश्वर ज्ञानवान् पुरुषों के लिये, अन्तःकरण में विद्यमान वेदवाणियों को ऊपर प्रकट करता हुआ अन्तःकरण को घेरने वाले अज्ञान को नीचे गिरा देता है।

इन्द्रे॑ण रोच॒ना दि॒वो दृ॒ह्ळानि॑ दृंहि॒तानि॑ च ।
स्थि॒राणि॒ न प॑रा॒णुदे॑ ॥ ४ ॥

भा०—परमेश्वर ने आकाश के प्रकाशमान सूर्य दृढ़, अभेद्य बनाये, और उनको दृढ़ता से स्थापित किया है। वे फिर न परे हटने के लिये ही स्थिर किये गये हैं।

राज-पक्ष में—राजा अपने उत्तम राज्य के उच्च कोटि पर विराजमान पदाधिकारियों को मजबूत बनाता और स्थिर नियत करता है। शत्रुओं से पराजित न होने के लिये वह उनको स्थिर नियत करता है।

अ॒पामू॒र्मिर्मद॑न्निव॒ स्तोम॑ इन्द्राजिरायते ।
वि ते॒ मदा॑ अराजिषुः ॥ ५ ॥

भा०—हे प्रभो ! तेरा स्तुति समूह आनन्द देता हुआ जलों के तरङ्ग के समान वेग से बराबर बढ़ा करता है। तेरे हर्ष या आनन्द तरङ्ग विविध रूपों में प्रकट होते हैं।

[४०] आत्मा और राजा

मधुच्छन्दा ऋषिः । मरुतो इन्द्रश्च देवता । गायत्र्यः । तृचं सूक्तम् ।

इन्द्रे॑ण॒ सं हि दृक्ष॑से संज॒ग्मा॒नो अबि॑भ्युषा ।
म॒न्दू स॑मा॒नव॑र्चसा ॥ १ ॥

भा—हे वीर पुरुष ! निर्भीक राजा के साथ संगत होकर तू बड़ा अच्छा दिखाई देता है। तुम दोनों एक समान तेजस्वी होकर अति आनन्द देने वाले हो।

अध्यात्म में—हे जीव ! तू अभय परमेश्वर के साथ संगत होकर बड़ा अच्छा प्रतीत होता है । तुम दोनों जीव और परमेश्वर समान तेजस्वी होकर अन्तःकरण को तृप्त करने वाले हों ।

अनवद्यैरभिद्युभिर्मखः सहस्वदर्चति ।
गणैरिन्द्रस्य काम्यैः ॥ २ ॥

भा०—अति बलशाली राष्ट्रयज्ञ, इन्द्र को अति प्रिय लगने वाले, अनिन्द्य, तेजस्वी गणों सहित विराजमान इन्द्र की स्तुति करता है ।

आदह स्वधामनु पुनर्गर्भत्वमेरिरे ।
दधाना नाम यज्ञियम् ॥ ३ ॥

भा०—देह से मुक्त हो जाने के पश्चात् भी आत्माएं अपनी धारित प्रवृत्ति या इच्छा के अनुसार अपने कर्मानुरूप स्वरूप को धारण करते हुए, फिर भी प्राप्त होते हैं । पुनः जन्म लेते हैं ।

[४१] आत्मा ।

गोतम ऋषिः । इन्द्रो देवता । गायत्र्यः । तृचं सूक्तम् ।

इन्द्रो दधीचो अस्थभिर्वृत्राण्यप्रतिष्कुतः ।
जघान नवतीर्नव ॥ १ ॥

भा०—आत्मा ध्यान द्वारा प्राप्तव्य प्रभु की तमोनाशक शक्तियों द्वारा, किसी से पराजित न होकर ९ × ९० = ८१० ज्ञान के आवरणकारी विघ्नों का नाश करता है ।

आत्मा की शक्ति प्राकृतिक तीन गुणों के भेद से तीन प्रकार की । त्रिकाल भेद से ९ प्रकार की । प्रभाव, मन्त्र, उत्साह इन तीन शक्ति भेद से २७ प्रकार की । पुनः सत्व, रजस्, तमस् इन तीनों के सम विषम भेद से ८१ प्रकार की, दश दिशा भेद से ८१० प्रकार की हो जाती है । इतनी शक्तियों से आत्मा इतनी ही व्युत्थान वृत्तियों को नाश करता है ।

इच्छन्नश्वस्य यच्छिरः पर्वतेष्वपश्रितम् ।
तद् विदच्छर्यणावति ॥ २ ॥

भा०—व्यापक आत्मा का जो शिर के समान मुख्य अंश पर्व वाले, या पोरू वाले शरीर या मेरुदण्ड में अज्ञानियों की दृष्टि से बहुत दूर अज्ञात रूप में स्थित है, उसको प्राप्त करना चाहता हुआ ध्यानयोगी पुरुष, उसको शर्यणा अर्थात् चेतना से सम्पन्न अपने हृदय या मस्तक भाग में ही ध्यान योग से प्राप्त करता है।

अत्राह गोरमन्वत नाम त्वष्टुरपीच्यम् ।
इत्था चन्द्रमसो गृहे ॥ ३ ॥

भा०—जिस प्रकार इस चन्द्रमा के लोक में उत्पादक सूर्य के प्रकाश-किरण का गया हुआ अंश ही विद्यमान है, उसी प्रकार आह्लादजनक सोमचक्र में भी अज्ञान के नाशक आत्मा रूप सूर्य के प्रकाश का स्वरूप प्राप्त है इस प्रकार इस विषय में विद्वान्गण जानते मानते हैं।

[४२] ईश्वर, राजा और आत्मा।

कुरुसुतिः काण्व ऋषिः। इन्द्रो देवता। गायत्र्यः। तृचं सूक्तम्।

वाचमष्टापदीमहं नवस्रक्तिमृतस्पृशम् ।
इन्द्रात् परि तन्वं ममे ॥१॥

भा०—आठ पदों वाली और नव प्रकार की रचना वाली, सत्य का ज्ञान कराने वाली, विस्तृत वाणी को मैं ज्ञानैश्वर्यवान् गुरु और परमेश्वर से पूर्णतया ज्ञान करता हूँ।

अनु त्वा रोदसी उभे क्रक्षमाणमकृपेताम् ।
इन्द्र यद् दस्युहाभवः ॥ २ ॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन् प्रभो! जब तू दुष्ट पुरुषों का नाश कर रहा होता है, तो दोनों लोक, शत्रु का कर्षण, विनाश या उन्मूलन करते हुए तेरे अनुकूल होकर सदा सामर्थ्यवान् बने रहते हैं।

उत्तिष्ठन्नोजसा सह पीत्वी शिप्रे अवेपयः ।
सोममिन्द्र चमू सुतम् ॥ ३ ॥

भा०—जिस प्रकार तैयार किये हुए रस को पान करके कोई वीर-पुरुष उठता हुआ अपनी दोनों दाढ़ें तृप्त होकर हिलाता है उसी प्रकार हे राजन्! तू अपनी और शत्रु की दो सेनाओं के बीच संग्राम द्वारा प्राप्त किये हुए ऐश्वर्यप्रद राष्ट्र या राजपद को प्राप्त करके, अपनी बलशाली सेनाओं को अपने बल पराक्रम से उठता हुआ कंपा।

आत्मा के पक्ष में—प्राण और अपान दोनों के बीच में ध्यान योग से प्राप्त ब्रह्मरस का पान करके, हे आत्मन्! अपने ज्ञानबल से मुक्ति-मार्ग में उठता हुआ बाह्य और आभ्यन्तर कर्मबन्धनों को कंपाकर झाड़ देता है।

[४३] परमेश्वर से अभिलाषा योग्य ऐश्वर्य की याचना।

त्रिशोक ऋषिः । इन्द्रो देवता । गायत्र्यः । तृचं सूक्तम् ।

भिन्धि विश्वा अप द्विषः परि बाधो जही मृधः ।
वसु स्पार्हं तदा भर ॥ १ ॥

भा०—हे राजन्! तू समस्त द्वेष युक्त शत्रुओं को दूर ही से भेद डाल। उनमें भेद नीति का प्रयोग कर। और बाधा या पीड़ा पहुंचाने वाली संग्रामकारी सेनाओं का सब प्रकार से विनाश कर, और अभिलाषा करने योग्य उस नाना ऐश्वर्य को प्राप्त करा।

यद् वीलाविन्द्र यत् स्थिरे यत् पर्शाने पराभृतम् ।
वसु स्पार्हं तदा भर ॥ २ ॥

भा०—जो ऐश्वर्य वीर्यवान् बलवान् पुरुष में, और जो ऐश्वर्य स्थिर रहने वाले में और जो ज्ञान ऐश्वर्य विवेकशील विद्वान् में दूर दूर देशों से ला ला कर संचित होता है, वह नाना प्रकार का अभिलाषा योग्य ऐश्वर्य हमें प्राप्त करा।

यस्यं ते विश्वमानुषो भूरेर्दत्तस्य वेदति ।
वसुं स्पार्हं तदा भर ॥ ३ ॥

भा०—हे प्रभो ! जिस तेरे दिये दान को सब मननशील मनुष्य जानते और प्राप्त करते हैं उस अभिलाषा योग्य ऐश्वर्य को हमें प्राप्त करा ।

[४४] सम्राट् ।

इरिम्बिठिः काण्व ऋषिः । इन्द्रो देवता । गायत्र्यः । तृचं सूक्तम् ।

प्र सम्राजं चर्षणीनामिन्द्रं स्तोता नव्यं गीर्भिः ।
नरं नृषाहं मंहिष्ठम् ॥ १ ॥

भा०—हे विद्वानो ! समस्त मनुष्यों में ऐश्वर्यवान्, स्तुति योग्य, सबके नेता, सब मनुष्यों को अपने बल से विजय करने वाले, सबसे महान् सम्राट् की वाणियों द्वारा उत्तम रीति से स्तुति करो या उसको सब मनुष्यों के ऊपर सम्राट् रूप से प्रस्तुत करो ।

यस्मिन्नुक्थानि रण्यन्ति विश्वानि च श्रवस्या ।
अपामवो न संमुद्रे ॥ २ ॥

भा०—समुद्र में जलों का जिस प्रकार प्रवाह आता है उसी प्रकार जिस परमेश्वर में समस्त कीर्तिजनक वचन लगते हैं, ठीक उपयुक्त होते हैं ।

तं सुष्टुत्या विवासे ज्येष्ठराजं भरे कृत्नुम् ।
महो वाजिनं सनिभ्यः ॥ ३ ॥

भा०—उस बड़े महाराज, संग्राम में शत्रुओं के नाशकारी, बड़े भारी, बलवान्, ऐश्वर्यवान् को, बड़े दानों के लिये उत्तम स्तुति द्वारा सेवा करता हूँ । उसका गुण गान करता हूँ ।

[४५] आत्मा परमात्मा

देवरातः शुनःशेप ऋषिः । इन्द्रो देवता । गायत्र्यः । तृचं सूक्तम् ।

अयमु ते समतसि कपोतं इव गर्भधिम ।
वचस्तच्चिन्न ओहसे ॥ १ ॥

भा०—यह साधक आत्मा तेरा ही है। जिस प्रकार कबूतर गर्भ धारण करने में समर्थ कपोती को प्रेम से प्राप्त होता है उसी प्रकार हे इन्द्र! तेरी शक्ति को अपने भीतर धारण करने वाले को तू भली प्रकार प्राप्त हो। उसी प्रकार हमारे वचन को तू प्राप्त हो, उसका प्रेमपूर्वक श्रवण कर।

स्तोत्रं राधानां पते गिर्वाहो वीर यस्य ते।
विभूतिरस्तु सूनृता ॥ २ ॥

भा०—हे ऐश्वर्यों के स्वामिन्! हे वीर! तेरा स्वरूप स्तुति करने योग्य है, तेरी प्रिय सत्य वेदवाणी विविध प्रकार की ऐश्वर्य-सम्पदा है।

ऊर्ध्वस्तिष्ठा न ऊतयेऽस्मिन् वाजे शतक्रतो।
समन्येषु ब्रवावहै ॥ ३ ॥

भा०—हे सैकड़ों प्रज्ञाओं और कर्मों से युक्त! तू इस संग्राम या बलयुक्त कार्य में हमारी रक्षा के लिये सर्वोपरि विराजमान होकर रह। हम दोनों गुरु-शिष्य और स्त्री-पुरुष और प्रजा-राजा सब कार्यों में परस्पर मिलकर एक दूसरे को उपदेश करें।

[४६] आत्मा और राजा

इरिम्बिठिर्ऋषिः। इन्द्रो देवता। गायत्र्यः। तृचं सूक्तम्।

प्रणेतारं वस्यो अच्छा कर्त्तारं ज्योतिः समत्सु।
सासह्वांसं युधामित्रान् ॥ १ ॥

भा०—ऐश्वर्य को प्राप्त करने के लिये उत्तम नायक, संग्रामों और आनन्दोत्सवों में ज्ञानप्रकाश और तेज के दिखाने वाले, युद्ध द्वारा शत्रुओं को पराजय करने हारे पुरुष को हम प्राप्त करें।

अध्यात्म में—देह में बसने वाले, प्राप्त वस्तुओं में सब से श्रेष्ठ 'वसीयस' मुख्य प्राण का प्रणेता आत्मा है, जो समाधिरस के अवसरों

पर परम अभ्यन्तर ज्योति को उत्पन्न करता है, विपक्ष भावना द्वारा रागद्वेषादि शत्रुओं को पराजित करता है, उसको साक्षात् करो ।

स नः पप्रिः पारयाति स्वस्ति नावा पुरुहूतः ।
इन्द्रो विश्वा अति द्विषः ॥ २ ॥

भा०—समस्त मनोरथों और समस्त जगत् को पूर्ण करने वाला एवं स्वयं पूर्ण, सर्वव्यापक परमेश्वर, जो कि प्रजाओं द्वारा याद किये जाने योग्य वह जैसे केवट नाव से नदी के पार करता है उसी प्रकार सुखपूर्वक समस्त शत्रुओं से हमें पार करे ।

स त्वं न इन्द्र वाजेभिर्दशस्या च गातुया च ।
अच्छा च नः सुम्नं नेषि ॥ ३ ॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन् ! तू हमारी पराक्रमों, वीर्यों और ऐश्वर्यों द्वारा रक्षा कर, और हमें उत्तम मार्ग से उत्तम धन, सुख, प्राप्त करने के लिये आगे ले चल, मार्ग दर्शा ।

[४७] ईश्वर

१–३ सुकक्षः । ४–६, १०–१२ मधुच्छन्दाः । ७–९ इरिम्बिठिः । १३–२१ प्रस्कण्वः । इन्द्रा देवता । गायत्र्यः । एकविंशत्यृचं सूक्तम् ।

तमिन्द्रं वाजयामसि महे वृत्राय हन्तवे ।
स वृषा वृषभो भुवत् ॥ १ ॥

भा०—हम बड़े भारी आवरणकारी अज्ञान रूप शत्रु के नाश करने के लिये उस ऐश्वर्यवान् समस्त जगत् के द्रष्टा अथवा साक्षात् दर्शन देने वाले के बल को बढ़ावें । वह समस्त सुखों का वर्षण करने वाला, बलवान्, वृषभ के समान सबका भार उठाने वाला, सर्वत्र विद्यमान है ।

इन्द्रः स दामने कृत ओजिष्ठः स मदे हितः ।
द्युम्नी श्लोकी स सोम्यः ॥ २ ॥

भा०—ऐश्वर्यवान्, साक्षात् दर्शनीय परमेश्वर ही समस्त पदार्थों

के दान देने के लिये बना है। वह परमानन्द रस में विद्यमान है। सब से बड़ा शक्तिशाली है। वह ऐश्वर्य वाला, कीर्त्तिमान्, तथा सर्वानन्द रसमय है।

गिरा वज्रो न संभृतः सबलो अनपच्युतः।
ववक्ष ऋष्वो अस्तृतः ॥ ३ ॥

भा०—जो बिजुली की कड़क के समान अति भयंकर, समस्त ऐश्वर्यों और शक्तियों से सम्पन्न, बलवान्, कभी पराजित न होने वाला, कभी न मारा जाने वाला, नित्य, अविनाशी, सब शत्रुओं का नाशक होकर जगत् और राष्ट्र के भार को धारण करता है, ऐसा वेदवाणी द्वारा कहा गया है।

इन्द्रमिद् गाथिनो बृहदिन्द्रमर्केभिरर्किणः। इन्द्रं वाणीरनूषत ॥ ४ ॥ इन्द्र इद्धर्योः सचा संमिश्ल आ वचोयुजा। इन्द्रो वज्री हिरण्ययः ॥ ५ ॥ इन्द्रो दीर्घाय चक्षस आ सूर्यं रोहयद् दिवि। वि गोभिरद्रिमैरयत् ॥ ६ ॥

भा०—(४-७) तीनों मन्त्रों की व्याख्या देखो कां० २०। ३८। ४—६ ॥

आ याहि सुषुमा हि त इन्द्र सोमं पिबा इमम्। एदं बर्हिः सदो मम ॥ ७ ॥ आ त्वा ब्रह्मयुजा हरी वहतामिन्द्र केशिना। उप ब्रह्माणि नः शृणु ॥ ८ ॥ ब्रह्माणस्त्वा वयं युजा सोमपामिन्द्र सोमिनः। सुतावन्तो हवामहे ॥ ९ ॥

भा०—(७-९) तीनों मन्त्रों की व्याख्या देखो का० २०। ३। १-३ तथा २०। ३८। १-३ ॥

युञ्जन्ति ब्रध्नमरुषं चरन्तं परि तस्थुषः। रोचन्ते रोचना दिवि ॥ १० ॥ युञ्जन्त्यस्य काम्या हरी विपक्षसा रथे। शोणा

धृष्णू नृवाहसा ॥ ११ ॥ केतुं कृण्वन्नकेतवे पेशो मर्या अपेशसे ।
समुषद्भिरजायथाः ॥ १२ ॥

भा०—(१०-१२) तीनों मन्त्रों की व्याख्या देखो का० २० । २६ । ४-५ ॥

उदु त्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः । दृशे विश्वाय सूर्यम्
॥ १३ ॥ अप त्ये तायवो यथा नक्षत्रा यन्त्यक्तुभिः । सूराय
विश्वचक्षसे ॥ १४ ॥ अदृश्रन्नस्य केतवो वि रश्मयो जनाँ अनु ।
भ्राजन्तो अग्नयो यथा ॥ १५ ॥

भा०—(१३-१५) तीनों मन्त्रों की व्याख्या देखो का० १३ । २ । १६-२४ ॥

तरणिर्विश्वदर्शतो ज्योतिष्कृदसि सूर्य ।
विश्वमा भासि रोचन ॥ १६ ॥

भा०—हे सबके प्रेरक और उत्पादक प्रभो ! तू सबको पार तराने वाला, विश्व का द्रष्टा और भीतर भी प्रकाश करने हारा और समस्त सूर्यादि ज्योतियों का उत्पादक है । हे प्रकाशस्वरूप ! तू समस्त विश्व को प्रकाशित करता है ।

प्रत्यङ् देवानां विशः प्रत्यङ्ङुदेषि मानुषीः ।
प्रत्यङ् विश्वं स्वर्दृशे ॥ १७ ॥

भा०—हे परमेश्वर ! आप विद्वानों, सूर्यादि लोकों, एवं उत्तम गुणों वाली प्रजाओं के प्रति और मननशील प्रजाओं के प्रति और समस्त संसार के प्रति साक्षात् दर्शन देने के लिये सुखस्वरूप होकर प्रकट होते हो ।

येना पावक चक्षसा भुरण्यन्तं जनाँ अनु ।
त्वं वरुण पश्यसि ॥ १८ ॥

भा०—हे परम पावन अग्नि के समान सबके शोधक ! हे सर्व-

दुःखवारक ! जिस दयामय चक्षु से समस्त प्राणियों के पालक पुरुष को देखता है, उसी दयादृष्टि से हमें भी देख ।

वि द्यामेषि रजस्पृथ्वहामिमानो अक्तुभिः ।
पश्यञ्जन्मानि सूर्य ॥ १९ ॥

भा०—हे परमेश्वर ! तू प्रलयकाल रूप रात्रियों से ब्राह्म दिन, सर्गकाल को मापता या परिमित करता हुआ, इस विशाल द्युलोक को और विशाल अन्तरिक्ष को भी विविध सृष्टियों से व्यापता है, और उत्पन्न लोकों को और अपने ही बनाये नाना सर्गों को भी देखता है ।

सप्त त्वा हरितो रथे वहन्ति देव सूर्य ।
शोचिष्केशं विचक्षणम् ॥ २० ॥

भा०—हे सर्वद्रष्टः देव ! हे सर्वप्रेरक, सर्वनियन्तः ! सर्वोत्पादक परमेश्वर ! देह में आत्मा को जिस प्रकार सात प्राण जुड़कर उसको उठाते हैं उसी प्रकार तुझे भी सात अर्थात् ५ भूत और महत्तत्व, अहंकार ये शक्तियां, देदीप्यमान किरणों वाले, विशेष रूप से जगत् के प्राण स्वरूप तुझको, रमण योग्य विश्व में वहन करते हैं, धारण करते हैं ।

अयुक्त सप्त शुन्ध्युवः सूरो रथस्य नप्त्यः ।
ताभिर्याति स्वयुक्तिभिः ॥ २१ ॥

भा०—सबका प्रेरक परमेश्वर इस रथ स्वरूप, परम रमणीय, भूतों के रमण कराने वाले ब्रह्माण्ड को कभी नष्ट न होने देने वाली, उसकी प्रवर्त्तक, उसमें गति देने वाली, चलाने वाली सात शक्तियों को विश्व में प्रयुक्त करता है, और अपनी ही योजना रूप उन शक्तियों से स्वयं सर्वत्र गति करता है, विश्व को चलाता और विश्व में व्यापता है ।

[४८] ईश्वरोपासना ।

खिलं सूक्तम् । १–३ इन्द्रः । ४–६ सार्पराज्ञी ऋषिका । सूर्यो देवता । गायत्र्यः । षडृचं सूक्तम् ।

अभि त्वा वर्चसा गिरः सिञ्चन्त्याचरण्यवः ।
अभि वत्सं न धेनवः ॥ १ ॥

भा०—हे परमेश्वर ! गौएं जिस प्रकार अपने प्रिय बच्छे के प्रति वेग से दौड़ती हुई आती हैं उसी प्रकार सदाचार का उपदेश देने वाली वेद-वाणियां, ज्ञान-रस का प्रवाह बहाती हुई कान्तिवाले तुझको प्राप्त होती हैं ।

ता अर्षन्ति शुभ्रियः पृञ्चन्तीर्वर्चसा प्रियः ।
जातं जात्रीर्यथा हृदा ॥ २ ॥

भा०—वे वेदवाणियां अपने ज्ञानरूप तेज से पूर्ण अर्थ का प्रकाश करने हारी, पदार्थ का भास न कराने वाली, अपने मर्मार्थ से उस परमेश्वर को ऐसे पकड़ती हैं, जैसे जनने वाली माताएं अपने पुत्र को अपने हृदय से चिपटा लेती हैं ।

वज्रापवसाध्यः कीर्तिर्म्रियमाणमावहन् ।
मह्यमायुर्घृतं पयः ॥ ३ ॥

भा०—जो वज्र रूप जल से साधने योग्य प्राणगण और कीर्त्ति, मरते हुए पुरुष को भी दीर्घायु प्राप्त कराती हैं, वे ही मुझे दीर्घजीवन, घृत, तेज और पुष्टिकारक अन्न प्राप्त करावें ।

आयं गौः पृश्निरक्रमीदसदन् मातरं पुरः । पितरं च प्रयन्त्स्वः ॥४॥
अन्तश्चरति रोचना अस्य प्राणादपानतः । व्यख्यन्महिषः स्वः ॥५॥
त्रिंशद् धाम वि राजति वाक् पतङ्गो अशिश्रियत् ।
प्रति वस्तोरहर्द्युभिः ॥ ६ ॥

भा०—(४–६) तीनों मन्त्रों की व्याख्या देखो अथर्ववेद काण्ड ६ । ३१ । १–३ ॥

[४९] ईश्वरोपासना ।

खिलं सूक्तम् । [४-५ नोधाः । ६-८ मेध्यातिथिः] । इन्द्रो देवता । १-३ गायत्र्यः । ४-७ प्रागाथं छन्दः । सप्तर्चं सूक्तम् ।

यच्छक्रा वाचमारुहन्नन्तरिक्षं सिषासथः ।
सं देवा अमदन् वृषा ॥ १ ॥

भा०—शक्तिशाली योगीजन जब वेदवाणी का आश्रय लेते हैं, हे ज्ञानी पुरुषो ! तब तब आप लोग भीतरी आत्मा को ही प्राप्त होते हो । तब प्राणगण और सुखों का वर्षक भीतरी बलवान् आत्मा दोनों एक साथ आनन्द, प्रसन्न एवं तृप्त होते हैं ।

शक्रो वाचमधृष्टायोरुवाचो अधृष्णुहि । मंहिष्ठ आ मदर्दिवि ॥२॥

भा०—हे योगिन् आत्मसाधक ! तू शक्तिशाली आत्मा होकर कभी भी धर्षण न किये जाने वाले अच्युत पद के प्राप्त करने के लिये, विशाल वेदवाणी के प्रवर्त्तक गुरु की या परमगुरु परमेश्वर की वाणी को धारण कर । तू पूज्यतम, महान् होकर तेजोमय मोक्ष में आनन्दमय होकर विराज ।

शक्रो वाचमधृष्णुहि धामधर्मन् वि राजति ।
विमदन् बर्हिरासरन् ॥ ३ ॥

भा०—हे योगिन् ! तू शक्तिमान् होकर वेदवाणी को धारण कर । क्योंकि बलवान् पुरुष ही प्रत्येक तेजोमय पद पर और प्रत्येक धर्म या कर्तव्य में विविध प्रकार से शोभा पाता है । वही विविध प्रकार आनन्द प्रसन्न होकर विस्तृत ब्रह्ममय मोक्षधाम को प्राप्त होता है ।

तं वो दस्ममृतीषहं वसोर्मन्दानमन्धसः । अभि वत्सं न स्वसरेषु धेनव इन्द्रं गीर्भिर्नवामहे ॥ ४ ॥ द्युक्षं सुदानुं तविषीभिरावृतं गिरिं न पुरुभोजसम् । क्षुमन्तं वाजं शतिनं सहस्रिणं मक्षू गोमन्तमीमहे ॥ ५ ॥

तत् त्वा यामि सुवीर्यं तद् ब्रह्म पूर्वचित्तये । येना यतिभ्यो भृगवे धने हिते येन प्रस्कण्वमाविथ ॥ ६ ॥ येना समुद्रमसृजो महीरपस्तदिन्द्र वृष्णि ते शवः । सद्यः सो अस्य महिमा न संनशे यं क्षोणीरनुचक्रदे ॥ ७ ॥

भा०—(४–७) इन चार मन्त्रों की व्याख्या देखो अथर्ववेद काण्ड २० । ९ । १–४ ॥

[५०] ईश्वरोपासना ।

मेध्यातिथिः काण्वः ऋषिः । इन्द्रो देवता । प्रागाथम् (विषमा बृहती समा सतो बृहती)। द्व्यृचं सूक्तम् ।

कन्नव्यो अतसीनां तुरो गृणीत मर्त्यः ।
नही न्वस्य महिमानमिन्द्रियं स्वर्गृणन्त आनशुः ॥ १ ॥

भा०—वेग से गति करने वाली शक्तियों को गति देने वाले सर्वशक्तिमान् उस परमेश्वर का उसके बाद अभी का पैदा हुआ नया मनुष्य क्या वर्णन करे ? इसके बड़े भारी सामर्थ्य और ऐश्वर्य की स्तुति करते हुए ज्ञानी लोग क्या सुखमय मोक्ष का लाभ नहीं करते हैं ? अपितु करते ही हैं ।

कदु स्तुवन्त ऋतयन्त देवत ऋषिः को विप्र ओहते ।
कदा हवं मघवन्निन्द्र सुन्वतः कदु स्तुवत आ गमः ॥ २ ॥

भा०—हे देवते ! सत्य ज्ञान को प्राप्त करने की इच्छा करने वाले जिज्ञासु पुरुष तेरी क्योंकर स्तुति कर सकते हैं ? और कौन मेधावी मन्त्रद्रष्टा पुरुष तेरी क्या तर्कना करता है ? हे ऐश्वर्यवन् परमेश्वर ! तेरा स्मरण करनेहारे पुरुष के पुकार को तू कब सुनता और स्तुति करते हुए पुरुष के पास तू कब प्राप्त हो जाता है ? यह सब रहस्य हम नहीं कह सकते ।

[५१] ईश्वरोपासना, आत्मदर्शन ।

१–२ प्रस्कण्वः काण्वः ऋषिः । १–४ पुष्टिगुः काण्वः । प्रागाथम् (विषमा बृहती समा सतो बृहती) । चतुर्ऋचं सूक्तम् ।

अभि प्र वः सुराधसमिन्द्रमर्च यथा विदे ।
यो जरितृभ्यो मघवा पुरूवसुः सहस्रेणेव शिक्षति ॥ १ ॥

भा०—हे पुरुष ! उत्तम ऐश्वर्यसम्पन्न उस आत्मा को तू सब प्रकार से वरण कर । जिस प्रकार तू उसे जान पावे उसी प्रकार से उसकी भली प्रकार उपासना कर । जो ऐश्वर्यवान् समस्त लोकों, देहों और इन्द्रियों में वास करने वाला स्तोता, विद्वान् पुरुषों को मानो हजारों प्रकारों से दान करता है ।

शतानीकेव प्र जिगाति धृष्णुया हन्ति वृत्राणि दाशुषे ।
गिरेरिव प्र रसा अस्य पिन्विरे दत्राणि पुरुभोजसः ॥ २ ॥

भा०—वह इन्द्र सैकड़ों सेनाओं के पति के समान सबको विजय करता और अपनी धर्षणकारिणी शक्ति से दानशील पुरुष के विघ्नों का विनाश करता है । पर्वत से जिस प्रकार जलों के स्रोत बहते हैं उसी प्रकार बहुत से भोग्य ऐश्वर्यों से समृद्ध इसके नाना प्रदत्त पदार्थ ही प्रजाओं को तृप्त करते हैं ।

प्र सु श्रुतं सुराधसमर्चा शक्रमभिष्टये ।
यः सुन्वते स्तुवते काम्यं वसु सहस्रेणेव मंहते ॥ ३ ॥

भा०—वेद आदि ग्रन्थों द्वारा श्रवण करने योग्य उत्तम रीति से योगादि द्वारा आराधना करने योग्य, शक्तिमान् परमेश्वर की अभीष्ट फल की प्राप्ति के लिये, खूब अच्छी प्रकार अर्चना कर । जो योगादि द्वारा ज्ञान प्राप्त करने वाले तथा वेदवाणी द्वारा गुणानुवाद करने वाले को अभिलाषा योग्य ऐश्वर्य हजारों प्रकार से प्रदान करता है ।

शतानीका हेतयो अस्य दुष्टरा इन्द्रस्य समिषो महीः ।
गिरिर्न भुज्मा मघवत्सु पिन्वते यदीं सुता अमन्दिषुः ॥ ४ ॥

भा०—इस परमेश्वर के सैकड़ों ओर को जाने वाले शस्त्र-अस्त्र अजेय हैं, और इस महान् ऐश्वर्यवान् की बड़ी बड़ी प्रेरक शक्तियां भी हैं। जिसकी नाना उत्पन्न पदार्थ स्तुति गा रहे हैं वह भोग्य पदार्थों से सम्पन्न पर्वत या मेघ के समान ऐश्वर्यवानों को तृप्त कर रहा है।

[५२] ईश्वर-स्तुति ।

मेध्यातिथिर्ऋषिः । इन्द्रो देवता । बृहत्यः । तृचं सूक्तम् ।

वयं घ त्वा सुतावन्त आपो न वृक्तबर्हिषः ।
पवित्रस्य प्रस्रवणेषु वृत्रहन् परि स्तोतार आसते ॥ १ ॥

भा०—हे आवरणकारी अन्धकार के नाशक! पावन जल के झरनों के तटों पर तेरे स्तुतिकर्त्ता लोग विराजते हैं। घास आदि से रहित स्वच्छ जल जिस प्रकार किले आदि को घेरा डाल कर स्थित होते हैं उसी प्रकार पुत्रों वाले इस गृहस्थी का तेरी स्तुति के लिये घेरा डाल कर बैठते हैं।

स्वरन्ति त्वा सुते नरो वसो निरेक उक्थिनः ।
कदा सुतं तृषाण ओक आ गम इन्द्र स्वब्दीव वंसगः ॥२॥

भा०—हे सर्वव्यापक! सब संसार के बसाने वाले! कुछ एक ज्ञानवान् पुरुष उत्पन्न इस संसार में तेरी स्तुति उपासना करते हैं। पिपासाकुल पुरुष जिस प्रकार जल के स्थान पर आ जाता है उसी प्रकार तू भी उत्तम जल देने वाले मेघ के समान कब हमें प्राप्त होगा।

कण्वेभिर्धृष्णवा धृषद् वाजं दर्षि सहस्रिणम् ।
पिशङ्गरूपं मघवन् विचर्षणे मक्षू गोमन्तमीमहे ॥ ३ ॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन्! हे समस्त जगत् के द्रष्टः! हे सबको वश करनेहारे! आप मेधावी पुरुषों द्वारा धर्षण करने वाले सहस्रों प्रकार के

ऐश्वर्य या बल का प्रदान करते हैं। हम निरन्तर पीत वर्ण के, तथा गौ आदि पशुओं से युक्त ऐश्वर्य की याचना करते हैं।

अध्यात्म में—हम वाणी से युक्त अथवा प्राणों से युक्त तेजोमय आत्मा का साक्षात् करना चाहते हैं।

[५३] ईश्वर-दर्शन ।

मेधातिथिः काण्व ऋषिः। इन्द्रो देवता। बृहत्यः। तृचं सूक्तम्।

क ईं वेद सुते सचा पिबन्तं कद् वयो दधे।
अयं यः पुरो विभिनत्त्योजसा मन्दानः शिप्रयन्धसः ॥ १ ॥

भा०—उत्पन्न जगत् में एक ही साथ या दिव्य पदार्थों के साथ इस विश्व का पान या अपने में आदान करते हुए को कौन जानता है? और कौन जानता है कि वह कितना आयु या कितना जीवन सामर्थ्य धारण करता है। यह जो ज्ञानवान् और बलवान् होकर, अमृत से सदा तृप्त और अन्यों को भी तृप्त करने में समर्थ होकर, अपने बल पराक्रम से सेनापति जिस प्रकार शत्रु-दुर्गों को तोड़ डालता है उसी प्रकार अपने ज्ञान-बल से भक्तों की देह-पुरियों का नाश करता है, उनको मुक्त करता है।

दाना मृगो न वारणः पुरुत्रा चरथं दधे।
नकिष्ट्वा नि यमदा सुते गमो महाँश्चरस्योजसा ॥ २ ॥

भा०—वनैला हाथी मद जलों के कारण बहुत से स्थलों पर विचरण करता है, उसी प्रकार यह जीव अपने शुभाशुभ कर्मों द्वारा बहुत से शरीरों में विचरण करता है। आत्मन्! तुझको कोई भी नहीं बांध सकता। सोमरूप ब्रह्मरस के निमित्त तू प्राप्त हो और बलवीर्य से महान् होकर विचरण कर।

य उग्रः सन्ननिष्टृत स्थिरो रणाय संस्कृतः।
यदि स्तोतुर्मघवा शृणवद्धवं नेन्द्रो योषत्या गमत् ॥ ३ ॥

भा०—जब भी ऐश्वर्यवान् परमात्मा स्तुति करनेहारे उपासक की पुकार को सुन लेता है, तब वह ऐश्वर्यवान् उससे जुदा नहीं रहता, प्रत्युत उसे प्राप्त हो जाता है, उसे मिल जाता है। वह परमेश्वर बलवान् रहकर नित्य, अविनाशी, सदा ध्रुव, योगिजनों के रमण के लिये सदा तत्पर रहता है।

[५४] ईश्वर गुणगान ।

रेभ ऋषिः। इन्द्रो देवता। १ अतिजगती। २, ३ उपरिष्टाद् बृहत्यौ। तृचं सूक्तम्।

विश्वाः पृतना अभिभूतरं नरं सजूस्ततक्षुरिन्द्रं जजनुश्च राजसे।
क्रत्वा वरिष्ठं वर आमुरिमुतोग्रमोजिष्ठं तवसं तरस्विनम् ॥१॥

भा०—समस्त कामादि शत्रुओं का पराभव करने वाले कर्म और ज्ञान से वरण योग्य कार्य में सबसे अधिक श्रेष्ठ, कामादि के नाशक, उग्र, सबसे अधिक पराक्रमी, महान्, अति वेगवान्, संसार के नेता को भक्तजन प्रेम से मिलकर, प्रकाश करने के लिये, प्रकट करते हैं।

समीं रेभासो अस्वरन्निन्द्रं सोमस्य पीतये।
स्वर्पतिं यदीं वृधे धृतव्रतो ह्योजसा समूतिभिः ॥ २ ॥

भा०—जब भी, वृद्धि के लिये, व्रतों को धारण करने वाला परमेश्वर, अपने पराक्रम तथा रक्षा-साधनों के साथ संगत होता है, तभी स्तुतिकर्ता विद्वान् लोग अमृतरस का पान करने के लिये सुखों के स्वामी ऐश्वर्यवान् परमेश्वर का, एकत्र होकर, स्तुतिगान करते हैं।

नेमिं नमन्ति चक्षसा मेषं विप्रा अभिस्वरा।
सुदीतयो वो अद्रुहोऽपि कर्णे तरस्विनः समृक्वभिः ॥ ३ ॥

भा०—विद्वान् लोग ज्ञानोपदेश के साथ विद्यमान, संसार को घेरने वाले, सूर्य के समान सबमें चेतना के दाता परमेश्वर को, अपने ज्ञान-दर्शन से नमस्कार करते हैं। हे मनुष्यो! आप लोग गुरु के उपदेशश्रवण

में परस्पर द्रोह न करते हुए, उत्तम दीप्तिमान् तथा अप्रमादी होकर, वेदमन्त्रों द्वारा अच्छी प्रकार विनयशील होकर उसकी स्तुति करो।

[५५] ईश्वर से ऐश्वर्य की याचना।

रेभ ऋषिः। इन्द्रो देवता। अतिजगती। २, ३ बृहत्यौ। तृचं सूक्तम्।

तमिन्द्रं जोहवीमि मघवानमुग्रं सत्रा दधानमप्रतिष्कुतं शवांसि।
मंहिष्ठो गीर्भिरा च यज्ञियो ववर्तद् राये नो विश्वा सुपथा कृणोतु वज्री ॥ १ ॥

भा०—मैं सम्पत्तियों से समृद्ध, एक ही साथ समस्त बलों को धारण करने हारे, अद्वितीय शक्तिशाली, ऐश्वर्यवान् परमेश्वर का स्मरण करता हूँ। वह वेदवाणियों द्वारा अति पूजनीय, यज्ञ में सदा पूजनीय सर्वत्र व्याप्त है। वह हमारे ऐश्वर्य प्राप्त करने के लिये समस्त कष्टों के वारण करने में समस्त उत्तम मार्ग हमारे लिये बनावे।

या इन्द्र भुज आभरः स्वर्वाँ असुरेभ्यः।
स्तोतारमिन्मघवन्नस्य वर्धय ये च त्वे वृक्तबर्हिषः ॥ २ ॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन्! आनन्द से युक्त तू जिन भोग्य सम्पदाओं को प्राणवान् जन्तुओं को प्रदान करता है, उन ऐश्वर्य सम्पदाओं से इस अपने साक्षात् स्वरूप के स्तुतिकर्त्ता साधक को बढ़ा और जो भी तेरे निमित्त धान्य के समान काट देने योग्य देहबन्धनों को काट चुके हों उनको भी बढ़ा।

यमिन्द्र दधिषे त्वमश्वं गां भागमव्ययम्।
यजमाने सुन्वति दक्षिणावति तस्मिन् तं धेहि मा पणौ ॥ ३ ॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन्! यज्ञ करनेहारे पुरुष के यज्ञ करते समय और उसमें दक्षिणा प्रदान करते समय, उसको तू अक्षय ऐश्वर्य तथा गौ और अश्व आदि ऐश्वर्य प्रदान करता है, जिसको कि तू धारण करता है। उस ऐश्वर्य को कुव्यसनी, स्वार्थी पुरुष के हाथ प्रदान मत कर।

[५६] दानशील ईश्वर ।

गोतम ऋषिः । इन्द्रो देवता । पथ्या पंक्तयः । षड्चं सूक्तम् ।

इन्द्रो मदा॑य वावृधे॒ शव॑से वृत्र॒हा नृभि॑: ।
तमिन्म॒हत्स्वा॒जिषू॒तेमर्भे॑ हवामहे॒ स वाजे॑षु॒ प्र नो॑ऽविषत् ॥१॥

भा०—काम, क्रोध आदि विघ्नकारी अन्तः-शत्रुओं को नाश करने वाला परमेश्वर अपने बल और सुखदायक आनन्द के कारण सबसे बड़ा है। बड़े बड़े संग्रामों में और छोटे २ कार्य में भी हम उस परमेश्वर को याद करते हैं। वह वीर्य और बल के कार्यों में हमारी खूब रक्षा करता है।

अ॒सि॒ हि वी॑र॒ सेन्यो॒ऽसि॒ भूरि॑ पराद॒दिः । असि॑ द॒भ्रस्य॑ चि॒द् वृ॒धो यज॑मानाय शिक्षसि सुन्व॒ते भूरि॑ ते॒ वसु॑ ॥२॥

भा०—हे वीर्यवन्! तू स्वामी सहित वीरगणों का हितकारी है तू बहुत दान देने वाला है। तू अति स्वल्प को भी बढ़ाने हारा है। तू ब्रह्मोपासना करने वाले आत्मसमर्पक यजमान को बहुत सा धन प्रदान करता है।

यदु॒दीर॑त आ॒जयो॑ धृ॒ष्णवे॑ धीयते॒ धना॑ । यु॒क्ष्वा म॑द॒च्युता॒ हरी॒ कं हनः॒ कं वसौ॑ दधो॒ऽस्माँ इ॑न्द्र॒ वसौ॑ दधः ॥ ३ ॥

भा०—जब देवासुर संग्राम उठ खड़े होते हैं तब पराजय करने हारे को ही नाना ऐश्वर्य प्रदान किये जाते हैं। हे योगिन्! तू हर्षवर्षण करने वाले हरणशील प्राण और अपान दोनों को योगविधि से वश कर। हे योगिन्! तू 'क' अर्थात् सुखस्वरूप परमेश्वर को प्राप्त हो। हे योगिन्! वसु रूप आत्मा में सुख स्वरूप परमेश्वर को धारण कर। और हे परमात्मन्! शरीर में बसी आत्मशक्ति में हमें तू स्थापित कर।

मदे॑मदे॒ हि नो॑ द॒दिर्यू॒था गवा॑मृजु॒क्रतुः॑ । सं गृ॑भाय पु॒रू श॒तोभ॑या ह॒स्त्या वसु॑ शिशी॒हि रा॒य आ भ॑र ॥ ४ ॥

भा०—हे इन्द्र ! प्रत्येक प्रकार के हर्ष के अवसर पर तू सरल क्रिया से सम्पन्न होकर हमें गौ आदि पशुओं के समूहों को प्रदान करता है। तू सैकड़ों पालक ऐश्वर्यों को संग्रह कर । दोनों हाथों से भर भर कर हमें ऐश्वर्य प्रदान कर । हमें नाना धन-सम्पदाएं प्राप्त करा ।

मादयस्व सुते सचा शवसे शूर राधसे । विद्मा हि त्वा पुरूवसुमुप कामान्त्ससृज्महेऽथा नोऽविता भव ॥ ५ ॥

भा०—हे शूरवीर ! तू उत्पन्न जगत् में अपने बल और ऐश्वर्य के कारण सबको एक काल में या नित्य ही आनन्द से तृप्त और हर्षित करने में समर्थ हो । तुझ बड़े ऐश्वर्यों के स्वामी को हम भली प्रकार प्राप्त करें। कामनाओं को तेरे ही पर छोड़ते हैं और अब हमारा तू ही रक्षक हो ।

एते त इन्द्र जन्तवो विश्वं पुष्यन्ति वार्यम् । अन्तर्हि ख्यो जनानामर्यो वेदो अदाशुषां तेषां नो वेद आ भर ॥ ६ ॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन् ! परमेश्वर ! तेरे उत्पन्न किये हुए जन्तु या उत्पन्न पदार्थ समस्त अभिलाषा योग्य ऐश्वर्य को पुष्ट करते हैं । हे परमेश्वर ! हे राजन् ! तू सबका स्वामी होकर मनुष्यों के भीतर को भी देखता है। और अदानशील कृपणों के भी धन को तू देखता है। तू उनके समस्त धनैश्वर्य हमें प्राप्त करा ।

[५७] ईश्वरस्तुति ।

१–३ मधुच्छन्दा ऋषिः । ४–७ विश्वामित्रः । ८–१० गृत्समदः । इन्द्रो देवता । १–१० गायत्र्यः शेषाः । ११–१६ पथ्या पंक्तयः । षोडशर्चं सूक्तम् ।

सुरूपकृत्नुमूतये सुदुघामिव गोदुहे ।
जुहूमसि द्यविद्यवि ॥ १ ॥

भा०—प्रतिदिन गौ को दोहनेवाले के लिये जिस प्रकार उत्तम रीति से दुग्धादि रस प्रदान करने वाली गौ की स्तुति करते हैं उसी प्रकार रक्षा

के लिये हम उत्तम उत्तम पदार्थों को रचने या रूपवान् करने वाले परमेश्वर की स्तुति करते हैं ।

उप॑ नः सव॒ना ग॑हि॒ सोम॑स्य सोमपाः पिब ।
गो॒दा इद् रे॒वतो॒ मदः॑ ॥ २ ॥

भा०—हे इन्द्र ! तू हमारी उपासनाओं में प्राप्त हो । तू जगत् के बीच में ऐश्वर्य का पालक होकर उसका पान कर, भोग कर । ऐश्वर्यवान् आत्मा को परम आनन्द-प्रद होकर उसको इन्द्रिय-सामर्थ्य और उत्तम भूमि तथा पशु आदि का प्रदान कर ।

अथा॑ ते॒ अन्त॑मानां वि॒द्याम॑ सुमती॒नाम् ।
मा नो॒ अति॑ ख्य॒ आ ग॑हि ॥ ३ ॥

भा०—और तेरे अति समीप प्राप्त हुए उत्तम मननशील विद्वानों के संग से हम तेरे स्वरूप का ज्ञान करें । तू हमें प्राप्त हो । तू कभी मत भूल ।

शुष्मिन्त॑मं न ऊ॒तये॑ द्यु॒म्निनं॑ पाहि॒ जागृ॑विम् ।
इन्द्र॒ सोमं॑ शतक्रतो ॥ ४ ॥

इन्द्रि॒याणि॑ शतक्रतो॒ या ते॒ जने॑षु प॒ञ्चसु॑ ।
इन्द्र॒ तानि॑ त॒ आ वृ॑णे ॥ ५ ॥

अग॑न्निन्द्र॒ श्रवो॑ बृ॒हद् द्यु॒म्नं द॑धिष्व दु॒ष्टर॑म् ।
उत् ते॒ शुष्मं॑ तिरामसि ॥ ६ ॥

अ॒र्वाव॒तो न॒ आ ग॒ह्यथो॑ शक्र प॒राव॑तः ।
उ॒ लो॒को यस्ते॑ अद्रिव॒ इन्द्रे॒ह तत॒ आ ग॑हि ॥ ७ ॥

इन्द्रो॑ अ॒ङ्ग म॒हद् भ॒यम॒भी षद॑प॑ चुच्यवत् ।
स हि स्थि॒रो विच॑र्षणिः ॥ ८ ॥

इन्द्र॑श्च मृ॒लया॑ति नो॒ न नः॑ प॒श्चाद॒घं न॑शत् ।
भ॒द्रं भ॑वाति नः पु॒रः ॥ ९ ॥

इन्द्र॒ आशा॑भ्य॒स्परि॒ सर्वा॑भ्यो॒ अभ॑यं करत् ।
जेता॒ शत्रू॒न् विच॑र्षणिः ॥ १० ॥

भा०—(४-१०) इन सात मन्त्रों की व्याख्या देखो अथर्व० २० । २० । १—७ ॥

क ईं वेद सुते सचा पिबन्तं कद् वयो दधे ।
अयं यः पुरो विभिनत्त्योजसा मन्दानः शिप्र्यन्धसः ॥११॥

दाना मृगो न वारणः पुरुत्रा चरथं दधे ।
नकिष्ट्वा नि यमदा सुते गमो महांश्चरस्योजसा ॥ १२ ॥

य उग्रः सन्ननिष्टृत स्थिरो रणाय संस्कृतः ।
यदि स्तोतुर्मघवा शृणवद्धवं नेन्द्रो योषत्या गमत् ॥ १३ ॥

वयं घ त्वा सुतावन्त आपो न वृक्तबर्हिषः ।
पवित्रस्य प्रस्रवणेषु वृत्रहन् परि स्तोतार आसते ॥ १४ ॥

स्वरन्ति त्वा सुते नरो वसो निरेक उक्थिनः ।
कदा सुतं तृषाण ओक आ गम इन्द्र स्वब्दीव वंसगः ॥१५॥

कण्वेभिर्धृष्णवा धृषद् वाजं दर्षि सहस्रिणम् ।
पिशंगरूपं मघवन् विचर्षणे मक्षू गोमन्तमीमहे ॥ १६ ॥

भा०—(११-१३) इन तीन मन्त्रों की व्याख्या देखो का० २० । ५३ । १—३ ॥

(१४—१६) इन ३ मन्त्रों की व्याख्या देखो का० २० । ५२ । १—३ ॥

[५८] ईश्वर-स्तुति ।

१, २ नृमेधः । ३, ४ जमदग्निर्भार्गवः । १, २ इन्द्रः । ३, ४ सूर्यश्च देवते ।
प्रगाथः । चतुर्ऋचं सूक्तम् ।

श्रायन्त इव सूर्यं विश्वेदिन्द्रस्य भक्षत वसूनि जाते ।
जनमान ओजसा प्रति भागं न दीधिम ॥ १ ॥

भा०—जिस प्रकार किरणें या ग्रह, उपग्रह सूर्य का आश्रय लेते हैं और उसके प्रकाश का उपभोग करते हैं उसी प्रकार परमेश्वर का आश्रय लेते हुए हे मनुष्यो ! आप लोग ऐश्वर्यवान् परमेश्वर के ही समस्त ऐश्वर्यों और लोकों का भोग करो। और हम सब लोग उत्पन्न हुए, और भविष्य में उत्पन्न होने वाले इस जगत् में अपने पराक्रम, बल, वीर्य के अनुसार, अपने भाग अर्थात् प्राप्त किये ऐश्वर्य के अनुसार प्रत्येक वस्तु धारण कर रक्खें।

अनर्शरातिं वसुदामुप स्तुहि भद्रा इन्द्रस्य रातयः। सो अस्य कामं विधतो न रोषति मनो दानाय चोदयन् ॥ २ ॥

भा०—हे मनुष्य ! तू सात्विक दान वाले परमेश्वर की स्तुति कर। ईश्वर के समस्त दान कल्याण और सुख के जनक हैं। वह परमेश्वर अपनी स्तुति करने वाले भक्त के मनोरथ का घात नहीं करता। और दान देने के लिये ही अपने भक्त के चित्त को सन्मार्ग में प्रेरित करता रहता है।

बण्महाँ असि सूर्य बडादित्य महाँ असि। महस्ते सतो महिमा पनस्यतेऽद्धा देव महाँ असि ॥ ३ ॥

भा०—हे सबके उत्पादक और प्रेरक परमेश्वर ! तू सचमुच महान् है। हे सबको अपने भीतर समा लेनेहारे ! तू सचमुच महान् है। सत् स्वरूप जो तू है उसकी बड़ी महिमा गाई जाती है। निश्चय, हे उपास्य देव ! तू महान् है।

बट् सूर्य श्रवसा महाँ असि सत्रा देव महाँ असि। मह्ना देवानामसुर्यः पुरोहितो विभुज्योतिरदाभ्यम् ॥ ४ ॥

भा०—हे सबके प्रेरक परमेश्वर ! तू कीर्त्ति से सत्य ही सब से बड़ा है। निश्चय से हे देदीप्यमान ! तू सबसे बड़ा है। तू अपने महान् सामर्थ्य से समस्त दिव्य शक्तियों में प्राण शक्ति देने वाला है। तथा सबसे पूर्व

विद्यमान और सब कार्यों में सर्वोपरि साक्षी रूप है। तू सर्वत्र व्यापक है। और अविनाशी प्रकाशस्वरूप है।

[५६] ईश्वरार्चना।

१, २ मेध्यातिथिः । ३, ४ वसिष्ठ ऋषिः । इन्द्रो देवता । प्रागाथम् [बृहती, सतो बृहती]। चतुर्ऋचं सूक्तम् ।

उदु त्ये मधुमत्तमा गिर स्तोमास ईरते ।
सत्राजितो धनसा अक्षितोतयो वाजयन्तो रथा इव ॥१॥
कण्वा इव भृगवः सूर्या इव विश्वमिद्धीतमानशुः ।
इन्द्रं स्तोमेभिर्महयन्त आयवः प्रियमेधासो अस्वरन् ॥ २ ॥

भा०—(१-२) इन दो मन्त्रों की व्याख्या देखो अथर्ववेद का० २० । सू० १० । १, २ ॥

उदिन्न्वस्य रिच्यतेऽशो धनं न जिग्युषः । य इन्द्रो हरिवान्न
दभन्ति तं रिपो दक्षं दधाति सोमिनि ॥ ३ ॥

भा०—विजयशील राजा का धन जिस प्रकार बराबर बढ़ा करता है उसी प्रकार इस परमेश्वर का सामर्थ्य और ऐश्वर्य बढ़ता चला जाता है। जो परमेश्वर हरणशील इन्द्रियों पर विजय करने वाले योगी के समान समस्त लोकों व शक्तियों पर वश करने वाला है उसको पाप नहीं सताते। वह परमेश्वर आत्मा के वशयिता या ब्रह्मानन्दरसपान करने वाले योगी में बल प्रदान करता है।

मन्त्रमखर्वं सुधितं सुपेशसं दधात यज्ञियेष्वा । पूर्वीश्चन ।
प्रसितयस्तरन्ति तं य इन्द्रे कर्मणा भुवत् ॥४॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो ! आप लोग परस्पर संगति से होने वाली राज्यव्यवस्था, सभा, समिति, सत्संगों में अति विनयपूर्वक उत्तम रूप से विचारित, सुन्दर, परस्पर का विचार, मन्त्र और वेदमन्त्र को धारण

करो, प्रयोग करो। पूर्व से ही किये गये उत्तम राज्यप्रबन्ध, व्यवस्था या धर्ममर्यादाएं भी उसको कष्टों से पार करती हैं जो कर्म से ऐश्वर्यवान् प्रभु के अधीन होकर रहता है।

[६०] ईश्वर और राजा का वर्णन।

१–३ सुतकक्षः सुकक्षो वा ऋषिः। ४–६ मधुच्छन्दा ऋषिः। गायत्र्यः। षड्ऋचं सूक्तम्।

एवा ह्यसि वीरयुरेवा शूर उत स्थिरः।
एवा ते राध्यं मनः॥ १॥

भा०—हे राजन्! प्रभो! तू वीर पुरुषों को प्राप्त होने हारा, उनका हितैषी है। तू निश्चय शूरवीर और स्थिर रहने वाला, धैर्यवान् है। तेरा मन आराधना करने योग्य है।

एवा रातिस्तुवीमघ विश्वेभिर्धायि धातृभिः।
अधा चिदिन्द्र मे सचा॥ २॥

भा०—हे बड़े ऐश्वर्य के स्वामिन्! समस्त पालन करने वाले धाता, धारक, प्रभु, स्वामी, पोषक, विधाताओं, राजाओं ने तेरे दिये दान को ही धारण किया है। और इसी प्रकार हे ऐश्वर्यवन्! मेरे भी साथ तू रह और मुझे धन ऐश्वर्य प्रदान कर।

मो षु ब्रह्मेव तन्द्रयुर्भुवो वाजानां पते।
मत्स्वा सुतस्य गोमतः॥ ३॥

भा०—हे राजन्! हे प्रभो! यज्ञ में ब्रह्मा के समान और निष्ठा में ब्रह्मज्ञानी के समान हे ऐश्वर्यों के स्वामिन्! तू आलस्य युक्त कभी मत हो। गौ आदि पशुओं से सम्पन्न ऐश्वर्य के द्वारा स्वयं तृप्त हो।

एवा ह्यस्य सूनृता विरप्शी गोमती मही।
पक्वा शाखा न दाशुषे॥ ४॥

भा०—पकी हुई शाखा जिस प्रकार मनुष्य को फूल फल देती है

उसी प्रकार इस परमेश्वर की शुभ, सत्यमयी, ज्ञानमयी और पूजनीय वाणी परमेश्वर को आत्मसमर्पण करने वाले अभ्यासी के लिये विविध फल देने वाली होती है।

एवा हि ते विभूतय ऊतय इन्द्र मावते ।
सद्यश्चित् सन्ति दाशुषे ॥ ५ ॥

भा०—तेरी विभूतियें ही हे राजन् ! प्रभो ! मेरे जैसे दानशील के लिये रक्षा रूप से हो जाती हैं।

एवा ह्यस्य काम्या स्तोम उक्थं च शंस्या ।
इन्द्राय सोमपीतये ॥ ६ ॥

भा०—इसके ही स्तुतिसमूह और वेदज्ञान स्तुति करने योग्य एवं उत्तम हैं। वे ऐश्वर्यवान् योगी आत्मा के अध्यात्म ब्रह्मरस-आस्वाद के लिये होते हैं।

[६१] पूर्णानन्द परमेश्वर की स्तुति ।

गोसूक्त्यश्वसूक्तिनावृषी । इन्द्रो देवता । उष्णिहः । षड्टचं सूक्तम् ।

तं ते मदं गृणीमसि वृषणं पृत्सु सासहिम् ।
उ लोककृत्नुमद्रिवो हरिश्रियम् ॥ १ ॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन् ! हम लोग तेरे उस प्रसिद्ध, सुखों के वर्षक, मनुष्यों और संग्रामों में शत्रुओं के पराजय करने वाले, वेगवती शक्तियों के आश्रयभूत, लोकों की रचना करने वाले, परमानन्द रूप का वर्णन करते हैं।

येन ज्योतींष्यायवे मनवे च विवेदिथ ।
मन्दानो अस्य बर्हिषो वि राजसि ॥ २ ॥

भा०—जिस प्रकाश से तू साधारण मनुष्य और ज्ञानशील पुरुष

को नाना ज्योतिर्मय सूर्य, विद्युत्, अग्नि आदि प्रदान करता है, उससे ही तू सदा तृप्त एवं पूर्ण आनन्दमय होकर, इस महान् ब्रह्माण्ड के बीच में, आसन पर राजा के समान, शोभायमान होता है।

तद्द्या चित् त उक्थिनोऽनु ष्टुवन्ति पूर्वथा ।
वृषपत्नीरपो जया दिवेदिवे ॥ ३ ॥

भा०—आज तक भी स्तुतिकर्त्ता पुरुष पूर्व के समान ही तेरे स्वरूप का बराबर वर्णन करते हैं। तू सुखों की वर्षा करने वाले जीवात्मा की पत्नीरूप प्राणशक्तियों पर प्रति दिन विजय प्राप्त कर।

तम्वभि प्र गायत पुरुहूतं पुरुष्टुतम् ।
इन्द्रं गीर्भिस्तविषमा विवासत ॥ ४ ॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो ! सबसे स्तुति करने योग्य, बहुत विद्वानों से वर्णित, उस परमेश्वर की ही साक्षात्, अच्छी प्रकार स्तुति करो। हे विद्वान् लोगो ! वेदवाणियों द्वारा महान् शक्तिशाली परमेश्वर की स्तुति करो, अर्चना करो।

यस्य द्विबर्हसो बृहत् सहो दाधार रोदसी । गिरीँरज्राँ अपः
स्वर्वृषत्वना ॥ ५ ॥ स राजसि पुरुष्टुतं एको वृत्राणि जिघ्नसे ।
इन्द्र जैत्रा श्रवस्या च यन्तवे ॥ ६ ॥

भा०—दो महान् शक्तियों वाले जिसका बड़ा भारी बल अपने वर्षण व आकर्षण बल से द्यौ और पृथिवी को, मेघों और पर्वतों को, जलों, समुद्र और आकाश को भी धारण करता है, वह तू बहुत सी प्रजाओं द्वारा स्तुति करने योग्य अकेला ही राजा के समान सर्वोपरि है, क्योंकि तू समस्त विघ्नों का विनाश करता है। हे ऐश्वर्यवन् ! तू ही विजयशील कीर्त्तिजनक ऐश्वर्यों को प्रदान करने में समर्थ है।

[६२] ईश्वर का स्तवन ।

नृमेध ऋषिः । इन्द्रो देवता । उष्णिहः षड्टचं सूक्तम् ।

वयमु त्वामपूर्व्य स्थूरं न कच्चिद् भरन्तोऽवस्यवः । वाजे
चित्रं हवामहे ॥ १ ॥ उप त्वा कर्मन्नूतये स नो युवोग्रश्चक्राम यो
धृषत् । त्वामिद्ध्यवितारं ववृमहे सखाय इन्द्र सानसिम् ॥ २ ॥
यो न इदमिदं पुरा प्र वस्य आनिनाय तमु व स्तुषे । सखाय
इन्द्रमूतये ॥ ३ ॥ हर्यश्वं सत्पतिं चर्षणीसहं स हि ष्मा यो अमन्दत ।
आ तु नः स वयति गव्यमश्व्यं स्तोतृभ्यो मघवा शतम् ॥ ४ ॥

भा०—(१–४) इन चार मन्त्रों की व्याख्या देखो अथर्ववेद का० २० । १४ । १–४ ॥

इन्द्राय साम गायत विप्राय बृहते बृहत् ।
धर्मकृते विपश्चिते पनस्यवे ॥ ५ ॥

भा०—हे मनुष्यो ! मेधावी, जगत् को विशेष बल और विविध पदार्थों से पूर्ण करने वाले, महान्, जगत् के धारण करने योग्य प्रबन्ध को करने वाले, समस्त ज्ञानों और कर्मों को जानने वाले, स्तुति के योग्य, परम ऐश्वर्यवान् एवं ज्ञानदृष्टि से, समाधि द्वारा साक्षात् दर्शनीय परमेश्वर के महत्त्व सूचक 'बृहत्' नामक स्तुतिगान का गायन करो ।

त्वमिन्द्राभिभूरसि त्वं सूर्यमरोचयः ।
विश्वकर्मा विश्वदेवो महाँ असि ॥ ६ ॥

भा०—हे परमेश्वर ! तू सब संसार में व्यापक और उसका वश करने वाला है । तू सूर्य को प्रकाशित करता है । तू समस्त जगत् का रचनेहारा एवं जगत् के समस्त कार्यों का कर्त्ता और समस्त संसार का उपास्यदेव, सबका द्रष्टा सबसे बड़ा है ।

विभ्राजं ज्योतिषा स्व१रगच्छो रोचनं दिवः ।
देवास्त इन्द्र सख्याय येमिरे ॥ ७ ॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन् ! तू सूर्य आदि प्रकाशमान लोकों की ज्योति से विशेष रूप से चमकता हुआ, कान्तिमान् सूर्य और द्यौलोक को प्रकाशित करने वाले महान् तेज को प्राप्त है । विद्वान् तेरे मित्रभाव के लिये यत्न करते हैं ।

तम्वभि प्र गायत पुरुहूतं पुरुष्टुतम् । इन्द्रं गीर्भिस्तविषमा विवासत ॥ ८ ॥ यस्य द्विबर्हसो बृहत् सहो दाधार रोदसी । गिरीँरज्राँ अपः स्वर्वृषत्वना ॥ ९ ॥ स राजसि पुरुष्टुतँ एको वृत्राणि जिघ्नसे । इन्द्र जैत्रा श्रवस्याच यन्तवे ॥ १० ॥

भा०—(८-१०) इन तीन मन्त्रों की व्याख्या देखो अथर्व० का० २० । सू० ६१ । ४-६ ॥

[६३] राजा और ईश्वर ।

१-३ प्र० द्वि० भुवनः आप्त्यः साधनो वा भौवनः । ३ तृ० च० भारद्वाजो बार्हस्पत्यः । ४-६ गोतमः । ७-९ पर्वत ऋषिः । इन्द्रो देवता । ७ त्रिष्टुप् । शिष्टा उष्णिहः । नवर्चं सूक्तम् ।

इमा नु कं भुवना सीषधामेन्द्रश्च विश्वे च देवाः ।
यज्ञं च नस्तन्वं च प्रजां चादित्यैरिन्द्रः सह चीक्लृपाति ॥१॥

भा०—सेनापति और समस्त विद्वान्गण और विजिगीषु वीरपुरुष हम सब मिलकर इन लोकों को अपने वश करें । राजा १२ मासों या उनके समान नाना प्रकार की शक्तियों से सम्पन्न राष्ट्र के १२ विभागों या आदित्य के समान तेजस्वी पुरुषों के साथ मिलकर हमारे राष्ट्र को, हमारे शरीर को और हमारी प्रजा को भी शक्ति सम्पन्न करे ।

आदित्यैरिन्द्रः सगणो मरुद्भिरस्माकं भूत्वविता तनूनाम् ।
हत्वाय देवा असुरान् यदायन् देवा देवत्वमभिरक्षमाणाः ॥२॥

भा०—जब विजयी वीरपुरुष अपने विजयी-स्वभाव की रक्षा करते हुए, दुष्ट पुरुषों को मारकर लौट आवें, तब ऐश्वर्यवान् या शत्रुओं का नाश करने वाला राजा, अपने सैनिकगण के साथ, सूर्य के समान तेजस्वी और वायु के समान तीव्रगति वाले वीरपुरुषों के साथ मिल कर हम प्रजाओं के शरीरों का रक्षक हो ।

प्रत्यञ्चमर्कमनयं छचीभिरादित् स्वधामिषिरां पर्यपश्यन् ।
अया वाजं देवहितं सनेम मदेम शतं हिमाः सुवीराः ॥ ३ ॥

भा०—विद्वान् लोग शत्रुओं पर चढ़ाई करने में समर्थ स्तुति योग्य पुरुष को शक्तिशाली सेनाओं से युक्त करते हैं, और तदनन्तर सर्वप्रेरक, अपने राष्ट्र के ऐश्वर्य को धारण करने वाली शक्ति को साक्षात् करते हैं। इस राज्य की शक्ति से प्रेरित होकर हम लोग विजय चाहने वाले वीरों एवं राजा के हितकारी बल को प्राप्त करें, और उत्तम वीरों और पुत्रों वाले होकर सौ वर्षों तक आनन्द प्रसन्न एवं तृप्त रहें ।

परमात्मा और आत्मा के पक्ष में—अर्चनीय उपास्य आत्मा को आत्मज्ञानी लोग यज्ञ और कर्म द्वारा साक्षात् करते हैं, और उस सर्व-प्रेरक तथा शरीर और ब्रह्माण्ड को धारण करने वाली आत्मशक्ति को ही सर्वत्र विद्यमान पाते हैं। उस शक्ति से ही हम विद्वानों और प्राणों के हितकारी अन्न का भोग करें और सौ वर्षों तक पुत्रादि सहित हर्षित रहें ।

य एक इद् विदयते वसु मर्ताय दाशुषे ।
ईशानो अप्रतिष्कुत इन्द्रो अङ्ग ॥ ४ ॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो ! जो अकेला ही दानशील आत्मसमर्पक पुरुष को ऐश्वर्य विविध रूपों में प्रदान करता है, वह ही विपत्तियों से कभी पराजित न होने वाला, अप्रतिहत सामर्थ्यवान्, अथवा कभी याचक को न नकारने वाला सर्वेश्वर इन्द्र है ।

कुदा मर्तमराधसं पुदा क्षुम्पमिव स्फुरत् ।
कुदा नः शुश्रवुद् गिर इन्द्रो अङ्ग ॥ ५ ॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो ! कृपण, अदानशील पुरुष को वह परमेश्वर न जाने कब पैर से खुम्बी की तरह ठुकरा दे । और हमारी वाणियों को वह कब सुन ले ।

यश्चिद्धि त्वा बहुभ्य आ सुतावाँ आविवासति ।
उग्रं तत् पत्यते शव इन्द्रो अङ्ग ॥ ६ ॥

भा०—हे प्रजागण अथवा अन्तरात्मन् ! जो भी उत्पन्न पदार्थों या ऐश्वर्यों से सम्पन्न होकर बहुत जनों के हित के लिये तेरी सेवा करता है वह शत्रुनाशक होकर भयंकर बल को प्राप्त होता है ।

य इन्द्र सोमुपातमो मदः शविष्ठ चेतति ।
येना हंसि न्यत्रिणं तमीमहे ॥ ७ ॥

भा०—हे ऐश्वर्यवान्, हे सब से अधिक बलशालिन् ! जिस बल से तू प्रजा को खा जाने वाले दुष्ट पुरुषों को निग्रह करके दण्ड देता है, और जो सबको प्रसन्नता और हर्ष देने वाला, सोम नाम राजा के पद या राष्ट्र को अच्छी प्रकार पालन करने में समर्थ होकर सब प्रजाओं को चेताता या ज्ञानवान् करता है, हम उसी बल को चाहते हैं ।

येना दशग्वमध्रिगुं वेपयन्तं स्वर्णरम् ।
येना समुद्रमाविथा तमीमहे ॥ ८ ॥

भा०—हे परमेश्वर ! जिस बल से तू दश गमनशील प्राणों या इन्द्रियों से युक्त, तथा अस्थिर गति वाले नाशवान् शरीर को सञ्चालित करने वाले तथा सुख के नेता सूर्य की रक्षा करता है, और जिससे महान् आकाश और समुद्र की रक्षा करता है, हम तो उस बल की याचना करते हैं ।

येन सिन्धुं महीरपो रथाँ इव प्रचोदयः ।
पन्थामृतस्य यातवे तमीमहे ॥ ९ ॥

भा०—हे ईश्वर ! जिस बल से तू समुद्र के प्रति बहने वाली बड़ी बड़ी जल की नदियों को, रथों को महारथी के समान, अपनी आज्ञा से सत्य नियम के मार्ग पर ठीक प्रकार से चलने के लिये प्रेरित करता है, हम उसी बल की याचना करते हैं।

[६४] ईश्वर।

१–३ नृमेधः । ४–६ गोसूक्त्यश्वसूक्तिनौ । इन्द्रो देवता । उष्णिहः । षडर्चं सूक्तम् ।

एन्द्र नो गधि प्रियः सत्राजिदगोह्यः ।
गिरिर्न विश्वतस्पृथुः पतिर्दिवः ॥ १ ॥

भा०—हे परमेश्वर ! तू हमारा प्रिय, सदा विजयशील एवं एक ही साथ सबको विजय करने में समर्थ और सबके गोचर, कभी छिप कर न रहने वाला होकर हमें प्राप्त हो । तू पर्वत के समान सब प्रकार से विस्तृत तथा सूर्य और आकाश का पालक है।

अभि हि सत्य सोमपा उभे बभूथ रोदसी ।
इन्द्रासि सुन्वतो वृधः पतिर्दिवः ॥ २ ॥

भा०—हे सत्यस्वरूप ! तू संसार या परमैश्वर्य का पालन करने हारा होकर दोनों लोकों को वश करता है । हे ऐश्वर्यवन् ! तू भजन करने वाले उपासक को बढ़ाने वाला और द्युलोक का भी पालक है।

त्वं हि शश्वतीनामिन्द्र दर्ता पुरामसि ।
हन्ता दस्योर्मनोर्वृधः पतिर्दिवः ॥ ३ ॥

भा०—हे प्रभो ! तू अनादिकाल से चली आई इन देहरूप नगरियों को तोड़ने वाला, देह-बन्धनों का नाशक, मुक्ति दाता है । क्षयकारी अज्ञान का नाशक, ज्ञान का वर्धक और आत्म-प्रकाश का पालक है।

एदु मध्वो मदिन्तरं सिञ्च वाध्वर्यो अन्धसः ।
एवा हि वीर स्तवते सदावृधः ॥ ४ ॥

भा०—हे यज्ञ के सम्पादक, उपासक ! मधुर प्राण और आत्मा को अति अधिक आनन्दप्रद आन्तर रस को तू प्रवाहित कर, क्योंकि इस प्रकार ही नित्य वृद्धिशील वीर्यवान् व्यक्ति हमें उपदेश देता है ।

इन्द्र स्थातर्हरीणां नकिष्टे पूर्व्यस्तुतिम् ।
उदानंश शवसा न भन्दना ॥ ५ ॥

भा०—हे परमेश्वर ! हे गतिमान् लोकों के बीच में संस्थापक ! अथवा नाशवान् पदार्थों के बीच में सदा स्थिर ! तेरी पूर्ण स्तुति को बल द्वारा कोई भी अभी तक प्राप्त नहीं कर सका । और न उस तेरी कीर्त्ति को अपने कल्याणकारक और सुखदायक व्यवहार से ही लांघ सका है ।

तं वो वाजानां पतिमहूमहि श्रवस्यवः ।
अप्रायुभिर्यज्ञेभिर्वावृधेन्यम् ॥ ६ ॥

भा०—हे मनुष्यो ! आप लोगों के ऐश्वर्यों, बलों, सेनाओं और अन्नादि समृद्धियों के पालक और निरन्तर किये जाने वाले उपासना के कर्मों से नित्य बढ़ने वाले, उस परमेश्वर को यश, ज्ञान और अन्न समृद्धि के इच्छुक हम लोग स्मरण करते हैं ।

[६५] परमेश्वर ।

विश्वमनाः वैयश्व ऋषिः । इन्द्रो देवता । उष्णिहः । तृचं सूक्तम् ।

एतो न्विन्द्रं स्तवाम सखायः स्तोम्यं नरम् ।
कृष्टीर्यो विश्वा अभ्यस्त्येक इत् ॥ १ ॥

भा०—हे मित्र जनो ! आओ, जो अकेला ही समस्त आकर्षण शक्ति से बद्ध लोकों के ऊपर वश कर रहा है, उस स्तुतियोग्य सबके नेता, सबके सञ्चालक परमेश्वर की स्तुति करें ।

अगोरुधाय गविषे द्युक्षाय दस्म्यं वचः ।
घृतात् स्वादीयो मधुनश्च वोचत ॥ २ ॥

भा०—हे मित्रो ! आप लोग वेदवाणियों को प्रेरणा करने वाले, और अपनी ज्ञानकिरणों को न रोक रखने वाले, प्रकाशस्वरूप परमेश्वर की स्तुति के लिये, घृत से भी अधिक स्निग्ध, और मधु से भी मधुर दर्शनीय वचन का उच्चारण करो ।

यस्यामितानि वीर्या३ न राधः पर्यैतवे ।
ज्योतिर्न विश्वमभ्यस्ति दक्षिणा ॥ ३ ॥

भा०—हे मित्रो ! जिसके वीर्य, पराक्रम और बल के व्यापार असंख्य एवं मापे नहीं जा सकते, और जिसका ऐश्वर्य भी पार नहीं किया जा सकता, और जिसकी दानशीलता भी सूर्य के प्रकाश के समान समस्त विश्व से भी ऊपर, सबसे बढ़कर है, तुम उसकी स्तुति मधुर और स्नेहमय वचनों से करो ।

[६६]

ऋष्यादि पूर्ववत् ।

स्तुहीन्द्रं व्यश्ववदनूर्मिं वाजिनं यमम् ।
अर्यो गयं मंहमानं वि दाशुषे ॥ १ ॥

भा०—हे पुरुष ! तू विनीत अश्व वाले पुरुष के समान अपनी इन्द्रियों पर विजयशील होकर, अविक्षुब्ध, गम्भीर, सर्व नियन्ता, ज्ञानवान् और ऐश्वर्यवान्, दानशील पुरुष शत्रु के लिये भी गृह के समान आश्रयरूप तथा तमोनाशक परमेश्वर की स्तुति कर ।

प्रजा वा अरीः ॥ श० ३ । ९ । ४ । ४१ ॥ अरिः स्वामी ।

एवा नूनमुप स्तुहि वैयश्व दशमं नवम् ।
सुविद्वांसं चर्कृत्यं चरणीनाम् ॥ २ ॥

भा०—निश्चय से, हे विनत इन्द्रियरूप अश्वों वाले ! जितेन्द्रिय पुरुष ! तू ५ ज्ञानेन्द्रियों, मन, बुद्धि, महत्तत्व और प्रकृति इन ९ शक्तियों से परे जो दसवीं शक्ति परमात्मा है उसको तथा जो सदा स्तुति

योग्य, उत्तम ज्ञानवान् और सदाचारी साधकों के लिये सदा उपासना करने योग्य परमेश्वर है विद्वान् उसकी स्तुति किया करे।

वेत्था हि निर्ऋतीनां वज्रहस्त परिवृजम्।
अहरहः शुन्ध्युः परिपदामिव ॥ ३ ॥

भा०—हे ज्ञानवज्र को हाथ में लेने हारे! तू नीचे ले जाने वाली कुप्रवृत्तियों के वर्जने के उपाय को प्रतिदिन उसी प्रकार जान और प्राप्त कर, जिस प्रकार शोध लगाने वाला या विपत्तियों का शोधन करने वाला प्रतिदिन आ पड़ने वाली विपत्तियों की खोज लगाता है।

इति पञ्चमोऽनुवाकः।

[६७] ईश्वर और राजा।

१—३ परुच्छेप ऋषिः। ४—७ गृत्समदः। देवता—१ इन्द्रः। २ मरुतः। ३ अग्निः। १—३ अत्यष्टयः। ४—७ जगत्यः। सप्तर्चं सूक्तम्।

वनोति हि सुन्वन् क्षयं परीणसः सुन्वानो हि ष्मा यजत्यव द्विषो देवानामव द्विषः। सुन्वान इत् सिषासति सहस्रा वाज्यवृतः। सुन्वानायेन्द्रो ददात्याभुवं रयिं ददात्याभुवम् ॥ १ ॥

भा०—हे परमेश्वर! तेरी उपासना करता हुआ पुरुष ही निवास योग्य उत्तम गृह और लोक को प्राप्त करता है। तेरी उपासना करने वाला पुरुष ही चारों तरफ नाक वाले अर्थात् अति सावधान या चारों ओर से लगे हुए शत्रुओं का नाश करता है, और साथ ही विद्वान् पुरुषों के शत्रुओं को भी नीचे गिराता है। उपासना करने वाला पुरुष ही ज्ञानवान् होकर और विघ्न बाधाओं से न घिरकर हजारों ऐश्वर्यों को निरन्तर प्राप्त करता है। परमेश्वर उपासक को सब प्रकार के सुखों को उत्पन्न करने वाले ऐश्वर्य प्रदान करता है, और पुनः पुनः आने वाले या अन्त तक रहने वाले, अक्षय बल वीर्य प्रदान करता है।

राजा के पक्ष में—राज्याभिषेक करने वाला प्रजाजन निवास योग्य शरण प्राप्त करता है, अपने शत्रु और विद्वानों के शत्रुओं को दबाता है। स्वयं शत्रुओं से न घिरकर, अश्वारोही होकर सहस्रों ऐश्वर्य प्राप्त करता है। राजा ऐसे अभिषेक करने वाले प्रजाजन को अक्षय ऐश्वर्य को भी प्रदान करता है।

'परीणसः'—उपसर्गाच्चे(पा० १।५। ४।११)ति नासिकाया नसादेशः। परितो नासिका येषां ते परीणसः अतिसावधानाः। कुक्कुरवदिष्टानिष्टवस्त्वाघ्राणपराः।

मो षु वो अस्मदभि तानि पौंस्या सना भूवन् द्युम्नानि मोत जारिषुरस्मत् पुरोत जारिषुः। यद् वश्चित्रं युगेयुगे नव्यं घोषादमर्त्यम्। अस्मासु तन्मरुतो यच्च दुष्टरं दिधृता यच्च दुष्टरम् ॥२॥

भा०—हे प्राणगण वा हे विद्वानो! तुम्हारे वे सनातन आत्मसम्बन्धी बलकर्म नष्ट न हों। अर्थात् इन्द्रियों के सामर्थ्य बने रहें। तेजोमय ज्ञान हमसे न छूटें, वे भी बने रहें। और चाहे ये देह हमसे छूट जायं पर जो तुम लोगों के बीच सदा स्तुत्य सदा नवीन, अमर, चित्स्वरूप में रमण करने वाला आत्मा कहा जाता है, और जिसको अज्ञानी पा नहीं सकते, और जिसको प्रलोभन जीत नहीं सकते उस ईश्वरीय बल को हमारे में धारण कराओ।

अग्निं होतारं मन्ये दास्वन्तं वसुं सूनुं सहसो जातवेदसं विप्रं न जातवेदसम्। य ऊर्ध्वया स्वध्वरो देवो देवाच्या कृपा। घृतस्य विभ्राष्टिमनु वष्टि शोचिषाजुह्वानस्य सर्पिषः ॥ ३ ॥

भा०—मैं ज्ञानस्वरूप परमेश्वर को दान देने वाला, सब कुछ स्वीकार करने वाला, सब में बसने और सबको बसाने वाला और अपने बल और शक्ति के कारण सबका प्रेरक, समस्त उत्पन्न पदार्थों को जानने वाला, और विविध विद्याओं से पूर्ण मेधावी विद्वान् के समान ऐश्वर्यों और

वेदविद्याओं को प्रकट करने वाला मानता और जानता हूँ, जो कि सर्वोत्कृष्ट तथा दिव्य पदार्थों में प्रकट होने वाले सामर्थ्य द्वारा उत्तम प्रजापालन रूप यज्ञ करने हारा, सबका द्रष्टा और सबका प्रकाशक है, और जो आहुति किये गये द्रवीभूत घी के कारण उत्पन्न अग्नि को देदीप्यमान ज्वाला के समान चमक से चमकता है।

इसी प्रकार राजा शत्रुतापक होने से 'अग्नि'। राज्य स्वीकार करने से 'होता'। दानशील होने से 'दाश्वान्'। प्रजा को वसाने वाला होने से 'वसु'। ऐश्वर्यवान् होने से 'जातवेदा' है। वह विजिगीषु विद्वानों के भीतर विद्यमान सर्वोच्च शक्ति से उत्तम राष्ट्रपालन रूप यज्ञ करता है। घृत के तेज से देदीप्यमान अग्नि के समान स्वयं दीप्ति से चमकता है।

यज्ञैः संमिश्लाः पृषतीभिर्ऋष्टिभिर्यामं छुभ्रासो अञ्जिषु प्रिया उत। आसद्या बर्हिर्भरतस्य सूनवः पोत्रादा सोमं पिबता दिवो नरः ॥ ४ ॥

भा०—हे नेताओ! हे भरण पोषण करने वाले महान् परमेश्वर के पुत्रों के समान योगि जनो! आप लोग उपासना के उचित कर्मानुष्ठानों से युक्त होकर, आत्मा को पूर्ण करने वाली शक्तियों सहित उस प्राप्तव्य परम परमेश्वर के आश्रय में निष्पाप कर्मों का आचरण करते हुए, और ज्ञान के प्रकाश करने वाले कार्यों में उस महान् ब्रह्म में स्थित होकर, सूर्य समान तेजस्वी पालनकर्ता परमेश्वर से प्राप्त करके ब्रह्मानन्द रस का निरन्तर पान करो।

राजा के पक्ष में—हे ज्ञानवाली राजसभा के नेता पुरुषो! आप लोग आदर सत्कारों से युक्त, रथों पर हृष्ट पुष्ट घोड़ियों, अश्वों और हिंसाकारी हथियारों से सुशोभित, और आभूषणों द्वारा मनोहर होकर, आसनों पर बैठकर, पवित्र कर्त्तव्य से ऐश्वर्य या राष्ट्र का भोग करो।

आ वक्षि देवाँ इह विप्र यक्षि चोशन् होतर्नि षदा योनिषु त्रिषु । प्रति वीहि प्रस्थितं सोम्यं मधु पिबाग्नीध्रात् तव भागस्य तृष्णुहि ॥ ५ ॥

भा०—हे विविध विद्याओं में पूर्ण परमेश्वर ! तू इस जगत् में विद्वानों और सूर्यादि लोकों को धारण करता और परस्पर संगत करता है । हे सबके स्वीकार करने हारे ! तू तीनों लोकों में व्याप्त है । तू प्रत्येक पदार्थ में व्याप्त है, जीवों के हितकारी ज्ञान को उन्हें पान करा । अग्नि को धारण करने वाले सूर्यादि लोक से प्राप्त तथा भजन करने योग्य तेज से तू समस्त संसार को तृप्त कर ।

राजा के पक्ष में—हे विविध ऐश्वर्यों से राष्ट्र को पूर्ण करने वाले विप्र ! तू विजयी पुरुषों का धारण कर, उनको वेतनादि दे । सिंहासन, शासकवर्ग और प्रजावर्ग तीनों पर विराज अथवा स्वराष्ट्र, परराष्ट्र और उदासीन राष्ट्र पर विराज । उपस्थित राष्ट्रमय मधु, भोग्य पदार्थ या बल को प्राप्त कर, उसका भोग कर । और अपने अग्नि, तेज धारण करने वाले राजपद से प्राप्त स्वराष्ट्र द्वारा तृप्त हो ।

एष स्य ते तन्वो नृम्णवर्धनः सह ओजः प्रदिवि बाह्वोर्हितः ।
तुभ्यं सुतो मघवन् तुभ्यमाभृतस्त्वमस्य ब्राह्मणादा तृपत् पिब ॥६

भा०—हे राजन् ! यह राष्ट्र का अधिकार तेरी बाहुओं के आश्रय में रक्खा गया है, जैसे कि द्युलोक में सूर्य को रक्खा है, वह राष्ट्र धनशक्ति को बढ़ाने वाला, बल तथा ओज रूप है । यह तेरे लिये ही अभिषेक द्वारा प्रदान किया है । हे ऐश्वर्यवन् ! तेरे लिये ही सब प्रकार से सुरक्षित एवं तुझे प्राप्त कराया गया है । तू इसमें से वेदोपदिष्ट भाग लेकर उस द्वारा तृप्त, सन्तुष्ट और प्रसन्न होकर इसका भोग कर ।

यमु पूर्वमहुवे तमिदं हुवे सेदु हव्यो ददिर्यो नाम पत्यते ।
अध्वर्युभिः प्रस्थितं सोम्यं मधु पोत्रात् सोमं द्रविणोदः पिब ऋतुभिः ॥ ७ ॥

भा०—जिसको मैं पहले इस मुख्य पद पर बुलाता हूँ उसको ही मैं इस बात का उपदेश करता हूँ कि जो भी ऐश्वर्यवान् होता है वह ही निश्चय से स्तुतियोग्य और दानशील होता है। हे ऐश्वर्य के दाता ! तू ऋतु ऋतु के अनुसार राष्ट्र के पालनरूपयज्ञ के कर्त्ता विद्वान् शासकों द्वारा प्रस्तुत किये राजपद के योग्य, मधुर ऐश्वर्य को पवित्र पालनकर्म से प्राप्त कर और राष्ट्र-ऐश्वर्य का भोग कर।

[६८] परमात्मा, विद्वान्, राजा।

मधुच्छन्दा ऋषिः। इन्द्रो देवता। गायत्र्यः। द्वादशर्चं सूक्तम्।

सुरूपकृत्नुमूतये सुदुघामिव गोदुहे।
जुहूमसि द्यविद्यवि ॥ १ ॥
उप नः सवना गहि सोमस्य सोमपाः पिब।
गोदा इद् रेवतो मदः ॥ २ ॥
अथा ते अन्तमानां विद्याम सुमतीनाम्।
मा नो अति ख्य आ गहि ॥ ३ ॥
परेहि विग्रमस्तृतमिन्द्रं पृच्छा विपश्चितम्।
यस्ते सखिभ्य आ वरम् ॥ ४ ॥

भा०—हे विद्वन् ! जो तेरे स्नेही मित्रों को श्रेष्ठ धन प्रदान करता है उस अखण्ड, ऐश्वर्यवान्, विविध विद्याओं का उपदेश करने वाले, और ज्ञानों और कर्मों के जानने हारे विद्वान् को प्राप्त हो, और उससे प्रश्न करके ज्ञान प्राप्त कर।

उत ब्रुवन्तु नो निदो निरन्यतश्चिदारत।
दधाना इन्द्र इद् दुवः ॥ ५ ॥

भा०—निन्दक पुरुष दूर चले जायं और अन्य स्थानों से भी वे

परे हों। और परमेश्वर और आचार्य के अधीन सेवा भक्ति और व्रत धारण करते हुए विद्वान्जन हमें उपदेश करें।

उत नः सुभगाँ अरिर्वोचेयुर्दस्म कृष्टयः।
स्यामेदिन्द्रस्य शर्मणि ॥ ६ ॥

भा०—हे शत्रुओं के नाशक अथवा हे दर्शनीयतम प्रभो! शत्रुगण और साधारण मनुष्य भी हमें उत्तम ऐश्वर्यवान् कहें। हम ज्ञानप्रद गुरु और शत्रुनाशक राजा के शरण या सुखमय आश्रय में सदा रहें।

एमाशुमाशवे भर यज्ञश्रियं नृमादनम्।
पतयन्मन्दयत्सखम् ॥ ७ ॥

भा०—हे परमेश्वर! हे आचार्य! ज्ञानोपदेश ग्रहण करने में तीव्र इस शिष्य को, व्यापक, यज्ञ की शोभा बढ़ाने वाला, मनुष्यों के सुखकारी, ऐश्वर्यदायक मित्रों को प्रसन्न करने वाले ऐश्वर्य प्राप्त करा।

अस्य पीत्वा शतक्रतो घनो वृत्राणामभवः।
प्रावो वाजेषु वाजिनम् ॥ ८ ॥

भा०—हे सैकड़ों कर्म और प्रज्ञाओं से युक्त राजन्! विद्वन्! तू इस राष्ट्र के ऐश्वर्य को प्राप्त करके विघ्नकारी, एवं नगररोधक शत्रुओं को मारने में समर्थ हो जाता है। संग्रामों में अन्न, बल और वेगवान् अश्वारोही दल की उत्तम रीति से रक्षा कर।

तं त्वा वाजेषु वाजिनं वाजयामः शतक्रतो।
धनानामिन्द्र सातये ॥ ९ ॥

भा०—हे सैकड़ों कर्मों, बलों से युक्त! ऐश्वर्यवन्! ऐश्वर्यों के प्राप्त करने के लिये उस जगत् प्रसिद्ध बलवान् पुरुष को हम लोग बलों से करने योग्य कार्यों के अवसरों पर प्राप्त होते हैं।

यो रायो॒ऽवनिर्महान् त्सुपारः सुन्वतः सखा।
तस्मा इन्द्राय गायत ॥ १० ॥

भा०—जो ऐश्वर्य का पृथ्वी के समान आश्रय और रक्षा करने हारा है, और बड़ा भारी, उपासना करने वाले भक्त का उत्तम पालक, एवं मित्र है, उस ऐश्वर्यवान् प्रभु की स्तुति गान करो ।

आ त्वेता नि षीदतेन्द्रमभि प्र गायत ।

सखायः स्तोमवाहसः ॥ ११ ॥

भा०—हे स्तुतिसमूहों को, वेद मन्त्रों को धारण करने वाले विद्वान् पुरुषो ! मित्र जनो ! आओ और आसनों पर बैठो, और ऐश्वर्यवान् प्रभु को लक्ष्य करके उत्तम उत्तम स्तुति गान करो ।

पुरूतमं पुरूणामीशानं वार्याणाम् ।

इन्द्रं सोमे सचा सुते ॥ १२ ॥

भा०—राष्ट्र के व्यवस्थित और राजा के अभिषिक्त हो जाने पर, बहुत सी प्रजाओं में सबसे श्रेष्ठ पालक और अभिलाषा के योग्य ऐश्वर्यों के स्वामी परमेश्वर की एकत्र होकर स्तुति करो ।

[६६] राजा, सेनापति, परमेश्वर ।

ऋष्यादि पूर्ववत् । गायत्र्यः । द्वादशर्चं सूक्तम् ।

स घा नो योग आ भुवत् स राये स पुरंध्याम् ।

गमद् वाजेभिरा स नः ॥ १ ॥

भा०—वह परमेश्वर हमारे अप्राप्त पुरुषार्थ के प्राप्त करने में सहायक हो । अथवा वह हमारे चित्त के एकाग्र कर लेने पर समाधि दशा में प्रकट होता है ऐश्वर्यवृद्धि के लिये वही समर्थ है । वह बहुत से शास्त्रों को धारण करने वाली बुद्धि में प्रकट होता है । वह हमें बल, वीर्य एवं ऐश्वर्यों सहित प्राप्त हो ।

यस्य संस्थे न वृण्वते हरी समत्सु शत्रवः ।

तस्मा इन्द्राय गायत ॥ २ ॥

भा०—भली प्रकार हृदय में स्थित हो जाने पर जिसके दुःखहारी प्राण और अपान के सामने, आत्मा के बल के नाशक विषयगण, समाधि के रस प्राप्ति के अवसरों पर, आत्मा को नहीं घेरते, उस आत्मा और परमेश्वर के गुणों का गान करो।

सुतपाव्ने सुता इमे शुचयो यन्ति वीतये।
सोमासो दध्याशिरः ॥ ३ ॥

भा०—ये निर्मल, परमात्मा के पुत्र के समान ज्ञानी पुरुष, ध्यान-योग से अपनी देह को शीर्ण करने में समर्थ होकर, ज्ञान-निष्णात उपासकों की पुत्र के समान पालन करने वाले परमेश्वर को प्राप्त करने के लिये मोक्षमार्ग का अनुसरण करते हैं।

त्वं सुतस्य पीतये सद्यो वृद्धो अजायथाः।
इन्द्र ज्यैष्ठ्याय सुक्रतो ॥ ४ ॥

भा०—हे परमेश्वर! पुत्र के समान उपासकों को अपनी गोद में लीन कर देने के लिये तू सदा ही महान् है, क्योंकि तू सबसे ज्येष्ठ है।

आ त्वा विशन्त्वाशवः सोमास इन्द्र गिर्वणः।
शं ते सन्तु प्रचेतसे ॥ ५ ॥

भा०—हे वाणियों द्वारा स्तुति करने योग्य परमेश्वर! ये वेगवान् सूर्यादि लोक और विद्याओं में व्याप्त ज्ञानी पुरुष तुझको ही प्राप्त होते हैं, और तुझ प्रकृष्ट ज्ञानवान् के अधीन होकर ही कल्याणकारी और शक्ति-दायक होते हैं।

त्वां स्तोमा अवीवृधन् त्वामुक्था शतक्रतो।
त्वां वर्धन्तु नो गिरः ॥ ६ ॥

भा०—हे परमेश्वर! वेदमन्त्रसमूह तुझे बढ़ाते हैं, सूक्त भी हे सैकड़ों कर्मों और प्रज्ञानों वाले! तुझको ही बढ़ाते हैं। हमारी वाणियां भी तुझे ही बढ़ावें।

अच्छितोतिः सनेदिमं वाजमिन्द्रः सहस्रिणम् ।
यस्मिन् विश्वानि पौंस्या ॥ ७ ॥

भा०—जिस परमेश्वर में समस्त पराक्रम एवं पुरुष के उपयोगी समस्त पदार्थ विद्यमान हैं वह परमेश्वर, अक्षय शक्ति वाला होकर हमें हज़ारों सुखों के देने वाले ऐश्वर्य प्रदान करे। इसी प्रकार वह राजा अक्षय पालनशक्ति से युक्त होकर, सहस्रों ऐश्वर्य देने में समर्थ संग्राम करे, जिसमें समस्त पौरुष बल हैं।

मा नो मर्ता अभि द्रुहन् तनूनामिन्द्र गिर्वणः ।
ईशानो यवया वधम् ॥ ८ ॥

भा०—हे स्तुति योग्य परमेश्वर एवं राजन्! मनुष्य हमारे शरीरों के प्रति द्रोह न करें, घात प्रतिघात न करें। तू स्वामी होकर हम पर उठने वाले शस्त्र या हत्यारे पुरुष को दूर कर।

युञ्जन्ति ब्रध्नमरुषं चरन्तं परि तस्थुषः ।
रोचन्ते रोचना दिवि ॥ ९ ॥

युञ्जन्त्यस्य काम्या हरी विपक्षसा रथे ।
शोणा धृष्णू नृवाहसा ॥ १० ॥

केतुं कृण्वन्नकेतवे पेशो मर्या अपेशसे ।
समुषद्भिरजायथाः ॥ ११ ॥

आदह स्वधामनु पुनर्गर्भत्वमेरिरे ।
दधाना नाम यज्ञियम् ॥ १२ ॥

भा०—(९-११) इन तीन मन्त्रों की व्याख्या देखो कां० २० । २४ । ४–६ ॥ और १२ वें मन्त्र की व्याख्या देखो कां० २० । ४० । ३ ॥

[७०] राजा, परमेश्वर ।

वीलु चिदारुजत्नुभिर्गुहा चिदिन्द्र वह्निभिः ।
अविन्द उस्रिया अनु ॥ १ ॥

भा०—वह परमेश्वर सब प्रकार के दुःखों का नाश करने वाले, ज्ञान के नेता विद्वान् पुरुषों द्वारा या शरीर वहन करने वाले प्राणों द्वारा बलपूर्वक हृदयाकाश में अपने ज्ञानप्रकाशों को फैलाकर सबको व्याप्त करता है। अथवा मोक्ष मार्ग में सर्पण करने वाले मुमुक्षु आत्माओं को उन पर अनुग्रह करके अपने पास ले लेता है।

देवयन्तो यथा मतिमच्छा विददूवसुं गिरः।
महामनूषत श्रुतम् ॥ २ ॥

भा०—उपास्यदेव परमेश्वर की उपासना करने हारे विद्वान् पुरुष जिस प्रकार से मनन करने योग्य, सबके बसाने वाले और सब में बसने वाले, सबसे श्रवण करने योग्य जगत्प्रसिद्ध महान् परमेश्वर को साक्षात् जानते हैं उसी प्रकार वे उसकी स्तुति किया करते हैं।

इन्द्रेण सं हि दृक्षसे संजग्मानो अबिभ्युषा।
मन्दू समानवर्चसा ॥ ३ ॥

भा०—वायु के समान तीव्र वेगवान् सैन्यगण! भय रहित बल से युक्त होकर, राजा या सेनापति के साथ संगति लाभ करता हुआ भला प्रतीत होता है। क्योंकि दोनों समान तेज को धारण करने हारे होकर परस्पर सन्तोषदायक होते हैं।

ईश्वर के पक्ष में—प्राणाभ्यासी योगी अभय चित्त से संगत होकर परमेश्वर के साथ अपने को मिला पाता है। वे दोनों समान तेज के, आनन्दमय होकर एक दूसरे को आनन्दित करते हैं।

अनवद्यैर् भिद्युभिर्मखः सहस्वदर्चति।
गणैरिन्द्रस्य काम्यैः ॥ ४ ॥

भा०—यज्ञ, उज्ज्वल, अनिन्दनीय, कामना योग्य प्राण गण या विद्वान् पुरुषों द्वारा शक्तिमान् परमेश्वर की पूजा करता है। अर्थात् यज्ञ में विद्वान्गण परमेश्वर की ही उपासना करते हैं।

अतः परिज्मन्ना गहि दिवो वा रोचनादधि ।
समस्मिन्नृञ्जते गिरः ॥ ५ ॥

भा०—हे सर्वव्यापक ! तू इस अन्तरिक्ष से मेघ या वायु के समान, आकाश से सूर्य के समान और रुचिकर आदित्य से प्रकाश के समान हमें प्राप्त हो । इस तुझ में ही समस्त वेदवाणियें संगत होती हैं ।

इतो वा सातिमीमहे दिवो वा पार्थिवादधि ।
इन्द्रं महो वा रजसः ॥ ६ ॥

भा०—हम लोग ऐश्वर्यवान् प्रभु से धनैश्वर्य के दान की याचना करते हैं । वह हमें इस पृथिवी लोक से या आकाश से या महान् अन्तरिक्षलोक से नाना ऐश्वर्य और भोग्य पदार्थों का प्रदान करे ।

इन्द्रमिद् गाथिनो बृहदिन्द्रमर्केभिरर्किणः ।
इन्द्रं वाणीरनूषत ॥ ७ ॥

भा०—उद्गाता लोग बृहत् आदि साम गायन द्वारा उस परमेश्वर की ही स्तुति करते हैं । अर्चना करने वाले विद्वान् पुरुष ऋग्वेद के मन्त्रों द्वारा परमेश्वर की ही स्तुति करते हैं । यजुर्वेद की गद्यमय वाणियें भी परमेश्वर की ही स्तुति करती हैं ।

इन्द्र इद्धर्योः सचा संमिश्ल आ वचोयुजा ।
इन्द्रो वज्री हिरण्ययः ॥ ८ ॥

भा०—परमेश्वर ही अपने में नित्य विद्यमान हरण और आहरण अर्थात् उत्पत्ति और विनाश नामक दो शक्तियों के साथ सब प्रकार से रचा मिचा है, सीधे घोड़े जैसे सारथि के वचन से ही ठीक मार्ग पर चलते हैं उसी प्रकार वे दोनों शक्तियां भी प्रभु के कथन के अनुसार प्रयुक्त हो रही हैं । अथवा वह परमेश्वर सुवर्ण के समान कान्तिमान् और मनोहर होकर भी कठोर वज्र रूप शासन को धारण करता है ।

राजा के पक्ष में—वह आज्ञाकारी दो वेगवान् घोड़ों से युक्त है । खड्गधर और सुवर्णवान् अर्थात् शासनधर और कोषवान् है ।

इन्द्रो दीर्घाय चक्षस आ सूर्यं रोहयद् दिवि ।
वि गोभिरद्रिमैरयत् ॥ ६ ॥

भा०—वह परमेश्वर दूर तक देखने के लिये आकाश में सूर्य को स्थापित करता है, और वह सूर्य किरणों से या गमनशील वायुओं से मेघ को भी विविध दिशाओं में प्रेरित करता है ।

राजा या सेनापति के पक्ष में—वह दीर्घ दृष्टि से दूर तक के भविष्य को देखने के लिए, विद्वानों की राजसभा में सबसे ऊपर, आकाश में सूर्य के समान, तेजस्वी ज्ञानप्रकाशक विद्वान् को प्रधान पद पर स्थापित करता है । वह ज्ञानवाणियों से अखण्डशासन या अभेद्य बल को विविध प्रकार से प्रेरित करता है, और उसका विविध रूप में उपयोग करता है ।

इन्द्र वाजेषु नोऽव सहस्रप्रधनेषु च ।
उग्र उग्राभिरूतिभिः ॥ १० ॥

भा०—हे परमेश्वर ! हज़ारों प्रकार के उत्कृष्टधनों को प्रदान करने वाले महायुद्धों में और बलपूर्वक करने योग्य उद्योगों में, अतिभयकारी बलवान् होकर, अपने उग्र, रक्षाकारी साधनों से हमारी रक्षा कर ।

इन्द्रं वयं महाधन इन्द्रमर्भे हवामहे ।
युजं वृत्रेषु वज्रिणम् ॥ ११ ॥

भा०—बड़े धन के देने या व्यय करा देने वाले महासंग्राम में, हम लोग, विघ्नकारी शत्रुओं पर सदा वज्र प्रहार करने वाले और हमारे सदा सहायक परमेश्वर को याद करते हैं । और छोटे से युद्ध में भी उस परमेश्वर की ही स्तुति करते हैं ।

परमेश्वर भक्त का सदा सहायक होने से उसका 'युज्' अर्थात् सदा का सहयोगी है, और बाधक तामस आवरणों पर ज्ञान-वज्र का प्रहार करके उसे काटता है इससे वह 'वज्री' है ।

स नो वृषन्नमुं चरुं सत्रादावन्नपा वृधि।
अस्मभ्यमप्रतिष्कुतः ॥ १२ ॥

भा०—हे सुखों के वर्षण करने हारे ! हे समस्त अभिलाषा योग्य फलों को एक साथ देने में समर्थ ! वह तू हमारे परोक्ष में विद्यमान भोग योग्य कर्मफल को हमारे हित के लिये खोल दे, प्रकट कर। तू कभी याचक को उलटा फेरने वाला, प्रत्याख्यान करने वाला नहीं है।

राजा के पक्ष में—हे विद्यमान समस्त शत्रुओं को एक ही समय काट देने में समर्थ ! तू उस प्रतिकूल विचरणशील शत्रु को दूर कर। तू कभी युद्ध में किसी से भी विचलित या पराजित नहीं होता।

तुञ्जेतुञ्जे य उत्तरे स्तोमा इन्द्रस्य वज्रिणः।
न विन्धे अस्य सुष्टुतिम् ॥ १३ ॥

भा०—प्रत्येक दान के प्राप्त होने के अवसर पर दाता के प्रति कहे जाने योग्य जो उत्कृष्ट स्तुति वचन हैं, वे सब उस बलवान् परमेश्वर के ही हैं। इसके लिये और किसी उत्तम स्तुति को प्राप्त नहीं करता हूँ।

वृषा यथेव वंसगः कृष्टीरियर्त्योजसा।
ईशानो अप्रतिष्कुतः ॥ १४ ॥

भा०—उत्तम गति वाला, हृष्टपुष्ट बैल जिस प्रकार गोयूथ में शोभा देता है, और अपने बल से कृषि कर्म में सहायता देता है, उसी प्रकार वह परमेश्वर सेवन योग्य समस्त पदार्थों और लोकों में व्यापक होकर समस्त सुखों का वर्धक होकर, आकर्षण गुण से बद्ध इन लोकों को अपने बल से चला रहा है। वह किसी से विचलित न होकर स्वयं समस्त ब्रह्माण्ड का स्वामी है।

राजा के पक्ष में—गोयूथ में वृषभ के समान अपने पराक्रम से प्रजाओं को अपने वश करता है और किसी से पराजित न होने वाला स्वयं राष्ट्रपति होता है।

य एकश्चर्षणीनां वसूनामिरज्यति ।
इन्द्रः पञ्च क्षितीनाम् ॥ १५ ॥

भा०—जो अकेला अपने भीतर बसने वाले लोकों और समस्त प्रजाओं को अपने वश करता है वह ही पांचों क्षितियों या पांचों भूतों के धारण करने हारा है ।

राजा के पक्ष में—जो अकेला समस्त राष्ट्रवासी प्रजाओं को वश करता है वह ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और निषाद इन पांचों प्रजाओं का स्वामी है ।

इन्द्रं वो विश्वतस्परि हवामहे जनेभ्यः ।
अस्माकमस्तु केवलः ॥ १६ ॥

भा०—समस्त जनों के ऊपर विद्यमान उस परमेश्वर की हम स्तुति करते हैं । वह अद्वितीय परमेश्वर ही हमारा और तुम्हारा सहायक है । राजा भी सबके ऊपर विद्यमान होकर अकेला ही सबका हितकारी है ।

एन्द्र सानसिं रयिं सजित्वानं सदासहम् ।
वर्षिष्ठमूतये भर ॥ १७ ॥

भा०—हे परमेश्वर ! हे राजन् ! तू जयशील और सदा शत्रुओं के आक्रमण के सह सकने में समर्थ, तथा समस्त योग्य पदार्थों के देने वाले बड़े भारी ऐश्वर्य को हमारी रक्षा के लिये प्राप्त करा ।

नि येन मुष्टिहत्यया नि वृत्रा रुणधामहै ।
त्वोतासो न्यर्वता ॥ १८ ॥

भा०—हे परमेश्वर ! जिस तेरे द्वारा सुरक्षित होकर, चित्तवृत्ति को विषयों में हर ले जाने वाली या आत्मा का विस्मरण करा देने वाली तामस तृष्णा को मार कर, अन्तःकरण को आ घेरने वाले, योग-सुख के बाधक विघ्नों का सर्वथा विरोध करें, और ज्ञान से उसको निरुद्ध करें ।

इन्द्र त्वोतास आ वयं वज्रं घना ददीमहि ।
जयेम सं युधि स्पृधः ॥ १९ ॥

भा०—हे परमेश्वर ! तेरे से सुरक्षित होकर हम अज्ञानावरण के नाश करने में समर्थ होकर, धर्ममेघ स्वरूप होकर अपनी चित्तभूमि में आनन्दरस वर्षाते हुए, ज्ञानरूप वज्र को ग्रहण करें, और देवासुरसंग्राम में चित्त पर स्पर्धा से वश करने वाले प्रलोभनों का भली प्रकार विजय करें ।

वयं शूरेभिरस्तृभिरिन्द्र त्वया युजा वयम् ।
सासह्याम पृतन्यतः ॥ २० ॥

भा०—योगसमाधि द्वारा तेरी सहायता प्राप्त हो जाने पर हम अहिंस्य गतिशील प्राणों के द्वारा आक्रमण करने वाले कामादि शत्रुओं को वश करें ।

[७१] परमेश्वर ।

मधुच्छन्दा ऋषिः । इन्द्रो देवता । गायत्र्यः । षोडशर्चं सूक्तम् ।

महाँ इन्द्रः परश्च नु महित्वमस्तु वज्रिणे ।
द्यौर्न प्रथिना शवः ॥ १ ॥

भा०—विस्तार से जिस प्रकार वह आकाश महान् है, उसी प्रकार वह स्वामी भी बड़ा और सबसे परे है । उश वज्रधर परम शक्तिमान् की ही यह समस्त महिमा है, उसी का बड़ा भारी बल है । राजा भी महान् और सर्वोत्कृष्ट हो ।

समोहे वा य आशत नरस्तोकस्य सनितौ ।
विप्रासो वा धियायवः ॥ २ ॥

भा०—जो पुरुष संग्राम में लगे रहते हैं, और जो लोग पुत्रादि सन्तान की प्राप्ति में व्यग्र हैं, और जो मेधावी लोग सदा अपनी बड़ी धारणा-

शील बुद्धि को प्राप्त करना चाहते हैं ये तीनों प्रकार के विजयार्थी, पुत्रार्थी और ज्ञानार्थी सब, हे इन्द्र ! तेरी ही स्तुति करते हैं ।

यः कुक्षिः सोमपातमः समुद्र इव पिन्वते ।
उर्वीरापो न काकुदः ॥ ३ ॥

भा०—जो परमेश्वर समस्त शक्तियों को अपने कोख में रखने वाला, संसार के ऐश्वर्यों का सबसे बड़ा पालक होकर समुद्र के समान अगाध भण्डार है, वह सबसे श्रेष्ठ है । जल जिस प्रकार भूमियों को सींचते हैं उसी प्रकार वह परमेश्वर प्राणियों और लोकों को भी अन्न, जल और जीवन से सींचता है ।

एवा ह्यस्य सूनृता विरप्शी गोमती मही ।
पक्वा शाखा न दाशुषे ॥ ४ ॥

भा०—विविध विद्याओं का उपदेश करने वाली परमेश्वर की वाणी, जो कि पूजनीय तथा वेदवाणियों के रूप वाली हैं, आत्मसमर्पण करने वाले के लिये निश्चय ही ऐसी उत्तम और सत्य ज्ञान से पूर्ण है कि जिस प्रकार उसके लिये पकी और फलों से लदी शाखा हो ।

एवा हि ते विभूतय ऊतय इन्द्र मावते ।
सद्यश्चित् सन्ति दाशुषे ॥ ५ ॥

भा०—हे परमेश्वर ! राजन् ! तेरी ऐसी ऐसी अलौकिक विभूतियाँ, और विविध ऐश्वर्य, और ऐसी ही तेरी पालनशक्तियें मेरे जैसे दानशील पुरुष के लिये सदा ही विद्यमान हैं ।

एवा ह्यस्य काम्या स्तोम उक्थं च शंस्या ।
इन्द्राय सोमपीतये ॥ ६ ॥

भा०—निश्चय ही जगत् रूप सोम को अपने भीतर ले लेने हारे उस ऐश्वर्यवान् प्रभु की स्तुति और उसके गुण कहने वाले ऋग् गण

कामना करने और सदा मुख से उच्चारण करने और कीर्त्तन करने योग्य हैं।

इन्द्रेहि मत्स्यन्धसो विश्वेभिः सोमपर्वभिः ।

महाँ अभिष्टिरोजसा ॥ ७ ॥

भा०—हे परमेश्वर ! तू आ, प्रकट हो । तू समस्त जगत् के समस्त अवयवों द्वारा समस्त पृथिवी आदि लोकों को हर्षयुक्त करता है । तू अपने बल-पराक्रम से ही बड़ा भारी सबको सब प्रकार से चलानेहारा है ।

एमेनं सृजता सुते मन्दिमिन्द्राय मन्दिने ।

चक्रिं विश्वानि चक्रये ॥ ८ ॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो ! उत्पन्न हुए इस संसार में इस हर्ष के आश्रय क्रियाशील जीवात्मा को, आनन्द के उत्पादक समस्त लोकों के बनाने वाले परमेश्वर के लिये समर्पण करो ।

मत्स्वा सुशिप्र मन्दिभिस्तोमेभिर्विश्वचर्षणे ।

सचैषु सवनेष्वा ॥ ९ ॥

भा०—हे समस्त संसार के द्रष्टा परमेश्वर ! हे उत्तम ज्ञानस्वरूप ! तू हृदय को आनन्दित करने वाली स्तुतियों से खूब प्रसन्न हो । और इन यज्ञों में लगे हुए हम लोगों को भी आनन्दित कर ।

असृग्रमिन्द्र ते गिरः प्रति त्वामुदहासत ।

अजोषा वृषभं पतिम् ॥ १० ॥

भा०—हे परमेश्वर ! तेरे निमित्त मैं वेदवाणियों का विविध प्रकार से प्रयोग और वर्णन करता हूँ । वेदवाणियें सुखों के वर्षक, सबके पालक तेरे ही प्रति जाती हैं लगती हैं, उसी के प्रति अपना अभिप्राय प्रकट करती हैं ।

सं चोदय चित्रमर्वाग् राध इन्द्र वरेण्यम् ।

असदित् ते विभु प्रभु ॥ ११ ॥

भा०—हे परमेश्वर ! तू हमारे प्रति संग्रह करने योग्य अद्भुत, वरण करने योग्य, उस आराध्य अर्थात् अभीष्ट ज्ञान और ऐश्वर्य को प्रेरित कर, जो तेरा व्यापक तथा शक्तिशाली है।

अस्मान्त्सु तत्र चोदयेन्द्र राये रभस्वतः ।
तुविद्युम्न यशस्वतः ॥ १२ ॥

भा०—हे बहुत ऐश्वर्यवन् ! परमेश्वर ! राजन् ! तू हम यशस्वी, उद्योगशीलों को ऐश्वर्य प्राप्त करने के लिये उस अवसर में उत्तम रीति से प्रेरित कर ।

सं गोमदिन्द्र वाजवदस्मे पृथु श्रवो बृहत् ।
विश्वायुर्धेह्यक्षितम् ॥ १३ ॥

भा०—हे परमेश्वर ! राजन् ! तू हमें गौ आदि पशुओं से समृद्ध, ऐश्वर्य युक्त, बड़ा भारी, विस्तृत अन्न और यश प्रदान कर, और अक्षय पूर्ण आयु प्रदान कर ।

अस्मे धेहि श्रवो बृहद् द्युम्नं सहस्रसातमम् ।
इन्द्र ता रथिनीरिषः ॥ १४ ॥

भा०—हे परमेश्वर ! हे बाधक शत्रुओं के निवारक राजन् ! तू हमें बड़ा यश और सहस्रों भोगों को देने वाला ऐश्वर्य प्रदान कर । और वे रथों से युक्त सेनाएं प्रदान कर ।

वसोरिन्द्रं वसुपतिं गीर्भिर्गृणन्त ऋग्मियम् ।
होम गन्तारमूतये ॥ १५ ॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो ! हम लोग पृथ्वी में और देह में वसने वाले जीवों की रक्षा के लिये ऐश्वर्यवान् तथा बाधक शत्रुओं के नाशक, समस्त लोकों और प्राणियों के पालक, वेदमन्त्रों के कर्त्ता तथा सर्वव्यापक का वाणियों द्वारा गुण वर्णन करते हुए उसका स्मरण करते हैं ।

सुते-सुते न्योकसे बृहद् बृहत एदरिः ।
इन्द्राय शूषमर्चति ॥ १६ ॥

भा०—बड़े से बड़ा धन का स्वामी भी प्रत्येक पदार्थ में गुप्तरूप से निवास करने वाले परमेश्वर के बल की अर्चना करता है ।

इति षष्ठोऽनुवाकः ।

[७२] परमेश्वर और राजा ।

परुच्छेप ऋषिः । इन्द्रो देवता । अत्यष्टयः । तृचं सूक्तम् ।

विश्वेषु हि त्वा सवनेषु तुञ्जते समानमेकं वृषमण्यवः पृथक् स्वः सनिष्यवः पृथक् । तं त्वा नावं न पर्षणिं शूषस्य धुरि धीमहि । इन्द्रं न यज्ञैश्चितयन्त आयव स्तोमेभिरिन्द्रमायवः ॥ १ ॥

भा०—हे परमेश्वर ! समस्त पूजा और अर्चना के अवसरों में, सुखों की वर्षा करने वाले तुझको मानने वाले और अपने लिये अलग अलग सुख प्राप्त करने की इच्छा करते हुए हम मनुष्य तथा सर्वत्र समान भाव से वर्तमान जो तू है उसकी अलग अलग ही स्तुति करते हैं । हम लोग तुझको नाव के समान पार लगा देने वाला और समस्त केन्द्र में प्रवर्त्तक रूप से स्थित ध्यान करते, मानते हैं । और उपासना अनुष्ठानों द्वारा ऐश्वर्यवान् महाराजा के समान जानते हुए मनुष्य लोग तुझ परमेश्वर की स्तुतियों से प्राप्त होते हैं ।

वि त्वा ततस्रे मिथुना अवस्यवो व्रजस्य साता गव्यस्य निःसृजः सक्षन्त इन्द्र निःसृजः । यद् गव्यन्ता द्वा जना स्वर्यन्ता समूहसि । आविष्करिक्रद् वृषणं सचाभुवं वज्रमिन्द्र सचाभुवम् ॥ २ ॥

भा०—हे परमेश्वर ! अपनी तृप्ति और रक्षा चाहने वाले स्त्री पुरुष गवादि पशुओं के लाभ के लिये और वेदवाणियों से उत्पन्न ज्ञेय ज्ञान

को प्राप्त करने के लिये, समस्त भोग्य पदार्थों को तुझ पर ही न्योछावर करते हैं। वे फिर तेरे में रमण करते हुए समस्त कर्म-वासना और समस्त फलाशा में त्यागी हो जाते हैं। और जब सुखों को प्राप्त होते हुए और गो समूह या वाणी-समूह को चाहते हुए या इन्द्रियों को दमन करते हुए दोनों जनों को तू अपनी शरण में भली प्रकार ले लेता है, तब हे परमेश्वर ! तू सुखों के वर्षक और अन्तरात्मा के साथ अनुभव होने वाले बन्धन को काटने में समर्थ वज्र को प्रकट करता है।

उतो नो अस्या उषसो जुषेत ह्यर्कस्य बोधि हविषो हवीमभिः स्वर्षाता हवीमभिः। यदिन्द्र हन्तवे मृधो वृषा वज्रिञ्चिकेतसि। आ मे अस्य वेधसो नवीयसो मन्म श्रुधि नवीयसः ॥ ३ ॥

भा०—वह परमेश्वर इस प्रभातकाल में हमारी स्तुति को स्वीकार करे। हमारे स्तुतिसहित श्रद्धाभाव को जाने। वह स्तुति द्वारा ही सुख प्रदान करने हारा है। हे परमेश्वर, हमारे काम क्रोधादि को विनाश करने के लिये तू हमें ज्ञान प्रदान कर। इन नवीन स्तुतिकर्ता की स्तुति को श्रवण कर।

[७३] परमेश्वर और राजा।

१–३ वसिष्ठः । ४–६ वसुक्र ऋषिः । इन्द्रो देवता । ४–५ जगत्यौ । ६ अभिसारिणी । शेषा विराजः । पञ्चर्चं सूक्तम् ।

तुभ्येदिमा सवना शूर विश्वा तुभ्यं ब्रह्माणि वर्धना कृणोमि
त्वं नृभिर्हव्यो विश्वधासि ॥ १ ॥

भा०—हे दुष्टों के नाशकारिन् ! ये समस्त यज्ञ-अनुष्ठान तेरे ही लिये हैं। तेरी महिमा बढ़ाने वाले समस्त वेद मन्त्रों को मैं प्रकट करता हूँ। तू मनुष्यों द्वारा स्तुति करने योग्य है। तू विश्व को धारण करने वाला है।

राजा के पक्ष में—ये ऐश्वर्य तेरे ही हैं। तेरी वृद्धि के लिये ये वेदमन्त्र उच्चारण करता हूँ। तू नेता पुरुषों द्वारा स्तुत्य और समस्त राष्ट्र को धारण, पालन करने में समर्थ है।

नू चिन्नु ते मन्यमानस्य दस्मोदश्नुवन्ति महिमानमुग्र ।
न वीर्यमिन्द्र ते न राधः ॥ २ ॥

भा०—हे दर्शनीय परमेश्वर ! और हे शत्रुओं के नाशक राजन् ! मान करने योग्य तेरी महिमा को क्या किसी प्रकार भी कोई पार कर सकते हैं? न कोई तेरे बल को पार कर सकते हैं, और न तेरे ऐश्वर्य को पार कर सकते हैं।

प्र वो महे महिवृधे भरध्वं प्रचेतसे प्र सुमतिं कृणुध्वम् ।
विशः पूर्वीः प्र चरा चर्षणिप्राः ॥ ३ ॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो ! तुम लोग उस महान्, बड़े ऐश्वर्य को बढ़ाने वाले, उत्कृष्ट ज्ञानवान् परमेश्वर के लिये उत्तम विचारों का मनन करो, और शुभ बुद्धि या स्तुति करो। हे परमेश्वर ! तू मनुष्यों को समस्त ऐश्वर्यों से पूर्ण करने हारा होकर, प्रजाओं को ज्ञान और बल में पूर्ण कर।

राजा के पक्ष में—हे मनुष्यो ! तुम बड़े बड़े शत्रुओं को गिराने वाले बड़े राजा के लिये भेटें लाओ। उसके प्रति उत्तम चित्त बनाये रक्खो। हे राजन् ! तू प्रजाओं की कामनाओं को पूर्ण करने वाला होकर प्रजाओं को धन, बल आयुष्य में खूब पूर्ण कर।

यदा वज्रं हिरण्यमिदथा रथं हरी यमस्य वहतो वि सूरिभिः ।
आ तिष्ठति मघवा सनश्रुत इन्द्रो वाजस्य दीर्घश्रवसस्पतिः ॥४॥

भा०—इस परमेश्वर के जिस आनन्दप्रद रस को, विद्वानों द्वारा, हरणशील ज्ञान और कर्म दोनों प्राप्त कराते हैं, और जब आत्मा हितकारी

और रमणीय ज्ञानरूप वज्र को प्रकट कर लेता है, तब सदाकाल से विख्यात और अति अधिक कीर्त्ति वाले ज्ञान और ऐश्वर्य का स्वामी, परमेश्वर उस रस में व्याप्त रहता है।

राजा के पक्ष में—रथ के समान जिस सुन्दर राष्ट्र को दो अश्वों के समान राजा और मन्त्री, सभापति और महामात्य विद्वान् सभासदों के साथ मिल कर धारण करते हैं, और जब बलशाली दण्ड-विधान को भी सुवर्ण वा रजत के बने राजदण्ड के समान प्रजा के हित और सुख के लिये धारण करते हैं तब समझो कि अति यश वाले बल-ऐश्वर्य का पालक तथा सदा से विख्यात राजा राज्य पर शासन करता है।

सो चिन्नु वृष्टिर्यूथ्या स्वा सचाँ इन्द्रः श्मश्रूणि हरिताभि प्रुष्णुते।
अव वेति सुक्षयं सुते मधूदिद्धूनोति वातो यथा वनम् ॥ ५ ॥

भा०—जिस प्रकार वृष्टि हरे वृक्षों को सींचती है, इसी प्रकार ऐश्वर्यवान् ज्ञानी पुरुष अपने पर आश्रित समूहों में बसने वाले प्राणियों को अपने शरीर में स्थित मोंछ के बालों के समान नाना ऐश्वर्यों और स्नेहों से सींचता है तब वह उत्तम निवास या लोक को प्राप्त होता है। और उत्पन्न हुए इस संसार में मधुर ब्रह्मानन्द का भोग करता है। अपने साथ लगे सांसारिक दुःख बन्धनों को वह ऐसे झाड़ फेंकता है। जिस प्रकार प्रबल वायु वन को कंपा डालता है।

राजा के पक्ष में—वृष्टि जिस प्रकार हरे वृक्षों को सींचती है उसी प्रकार वह राजा अपने संघ के लोगों को ऐश्वर्य और स्नेह से बढ़ाता है। वह उत्तम गृह, राजमहल में रहता है। राज्याभिषेक हो जाने पर वह मधुर राष्ट्र का भोग करता है। वायु जिस प्रकार वन को वेग से तोड़ फोड़ डालता और कंपा डालता है उसी प्रकार वह प्रचण्ड होकर शत्रुओं के सेना-समूह को कंपा डालता है।

यो वाचा विवाचो मृध्रवाचः पुरू सहस्राशिवा जघान।
तत्तदिदस्य पौंस्यं गृणीमसि पितेव यस्तविषीं वावृधे शवः ॥ ६ ॥

भा०—जो परमेश्वर उपदेशमयी वेदवाणी द्वारा विपरीत वाणी बोलने वाले और दिल दुखाने वाली वाणी को बोलने वाले पुरुषों का, और बहुत से हज़ारों अमंगलजनक कर्मों का नाश करता है, और जो पिता के समान बड़ी भारी शक्ति और बल को बढ़ाता है, उस उस नाना प्रकार के अकथनीय इस परम गुरु परमेश्वर के बल वीर्य के कार्यों का हम वर्णन या स्तुति करें ।

राजा के पक्ष में—जो अपनी आज्ञामात्र से, विपरीत बोलने वाले हिंसा या युद्ध की वाणियों के कहने वाले शत्रु हैं उनका, और हज़ारों अमंगलजनक कष्टदायी दुःखों का नाश करता है, और जो पिता के समान प्रजा की शक्ति बढ़ाता है, उसके उन नाना पराक्रम के कर्मों का हम वर्णन करें ।

[७४] राष्ट्र-रक्षक राजा के कर्त्तव्य ।

शुनःशेप ऋषिः । इन्द्रो देवता । पंक्तिः । अष्टर्चं सूक्तम् ।

यच्चिद्धि स॑त्य सोमपा अनाशुस्ता इ॑व स्मसि । आ तू न॑ इन्द्र शंसय॒ गोष्वश्वे॑षु शु॒भ्रिषु॑ स॒हस्रे॑षु तुवीमघ ॥ १ ॥

भा०—हे सत्यस्वरूप ! हे उत्पन्न संसार के रक्षक परमेश्वर ! जिन जिन कार्यों में हम प्रशंसा के योग्य न हों, हे परमेश्वर ! हे बहुत बड़े ऐश्वर्य वाले ! हमें उन उन गो आदि पशु और अश्व आदि सेना के साधनों में और हज़ारों शोभाजनक धनैश्वर्यों में उत्तम प्रशंसा योग्य बना ।

शिप्रिन् वाजानां पते॒ शचीव॒स्तव॑ दं॒सना॑ । आ तू० ॥ २ ॥

भा०—हे ऐश्वर्यों और वीर्यों के स्वामिन् ! हे शक्तियों वाले तेरे दर्शनीय अलौकिक कर्म हैं । हे ऐश्वर्यवन् ! बहुत धनों के स्वामिन् ! तू हज़ारों ज्ञानवाणियों, भूमियों, गौओं और अश्वों, वेगवान् साधनों और शोभाकारी ऐश्वर्यों में हमें कीर्तिमान् कर ।

राजा के पक्ष में—बलवन् ! प्रजा और सेना के स्वामिन् ! अन्नों, संग्रामों और ऐश्वर्यों के पालक ! तेरे नाना दर्शनीय कर्म हैं। आ तू० इत्यादि पूर्ववत्।

नि ष्वापया मिथूदृशा सस्तामबुध्यमाने। आ तू० ॥ ३ ॥

भा०—हे अविद्या निद्रा आदि दोष निवारक ! तू विषयाशक्ति से एक दूसरे को देखने वाले स्त्री पुरुषों को सर्वथा अचेत कर दे। वे दोनों ज्ञानहीन होकर सो जायं। अर्थात् विषयाशक्ति से रहित, तपस्वी, व्रती पुरुषों को प्रबुद्ध कर और वे ज्ञानवान् होकर जागते रहें। आ तू० इत्यादि पूर्ववत्।

ससन्तु त्या अरातयो बोधन्तु शूर रातयः। आ तू० ॥ ४ ॥

भा०—वे दान न देने वाले सो जायं और हे शूरवीर ! दानशील पुरुष ज्ञानवान् होकर सदा धर्म-कार्यों में सावधान होकर रहें। आ तू० इत्यादि पूर्ववत्।

समिन्द्र गर्दभं मृण नुवन्तं पापयामुया। आ तू० ॥ ५ ॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन् ! न्यायाधीश ! गर्दभ के समान कठोरभाषी, एवं गर्धा = तृष्णा से व्याप्त लोभी और नाना प्रकार की पापपूर्ण रीति-नीति से बोलने-चालने वाले पुरुष को अच्छी प्रकार विनष्ट कर। और हमें शुभ आचरण द्वारा न्यायपूर्वक प्राप्त गौ अश्वादि धनों में प्रसिद्ध कर। आ तू० इत्यादि पूर्ववत्।

'गर्दभः'—गर्द शब्दे इत्यतोरभच्। गर्धया धनतृष्णाया भातीति वा, गरेण विषेण दभ्नाति हिनस्तीति वा।

पताति कुण्डृणाच्या दूरं वातो वनादधि। आ तू० ॥ ६ ॥

भा०—दाह करने वाली चाल करने वाला वायु जिस प्रकार वन से दूर ही रहे तो ठीक है, उसी प्रकार दाहकारी प्रवृत्ति वाला कुटिल

पुरुष भी प्रजागण से दूर ही दूर रहे तो अच्छा है। आ तू० इत्यादि पूर्ववत् ।

सर्वं परिक्रोशं जहि जम्भया कृकदाश्वम् । आ तू न इन्द्र शंसय गोष्वश्वेषु शुभ्रिषु सहस्रेषु तुवीमघ ॥ ७ ॥

भा०—हे परमेश्वर ! राजन् ! तू सब निन्दा करने वाले पुरुषों को मार, दण्ड दे और हमारे ऊपर हिंसाकारी अथवा कृकलास, उल्लू या गिरगट के समान धूर्त्त, छली कपटी पुरुषों का विनाश कर । आ तू० इत्यादि पूर्ववत् ।

'कृकदाश्वम्'—कृका हिंसा, तां दाशति प्रयच्छतीति कृकदाशुः, तम् ।

[७५] राजा और आत्मा का अभ्युदय ।

वि त्वा ततस्रे मिथुना अवस्यवो व्रजस्य साता गव्यस्य निःसृजः सक्षन्त इन्द्र निःसृजः । यद् गव्यन्ता द्वा जना स्वर्यन्ता समूहसि । आविष्करिक्रद् वृषणं सचाभुवं वज्रमिन्द्र सचाभुवम् ॥ १ ॥

भा०—व्याख्या देखो कां० २० । ७२ । २ ॥

विदुष्टे अस्य वीर्यस्य पूरवः पुरो यदिन्द्र शारदीरवातिरः सासहानो अवातिरः । शासस्तमिन्द्र मर्त्यमयज्युं शवसस्पते । महीममुष्णाः पृथिवीमिमा अपो मन्दसान इमा अपः ॥ २ ॥

भा०—हे कर्मबन्धनों के तोड़ने हारे आत्मन् ! आत्मशक्ति को पूर्ण करने वाले इन्द्रियगण तेरे इस वीर्य के विषय में जानते हैं जिससे तू शरद् अर्थात् वर्षों द्वारा मापी जाने वाली इन देहरूप पुरियों को ज्ञान-वज्र से खण्डित करता है । और समस्त विरुद्ध बाधाओं को सहन करता हुआ वर्षरूप गढ़ियों को पार कर जाता है । हे शक्तिशालिन् ! तू संगरहित मरणशील इस देह पर शासन करता है, और इन नाना प्रज्ञानों और

इन नाना कर्मों को हर्षपूर्वक करता हुआ बड़ी भारी पृथिवी को मोह लेता है ।

राजा के पक्ष में—हे राजन् ! पुरवासी जन ! तेरे इस सामर्थ्य को जानते हैं जिसके बल पर तू शत्रुओं को पराजित करता हुआ उनका नाश करता है । शरत्-काल के युद्धयात्रा काल में खड़ी की गई शत्रु की गढ़ियों को नष्ट करता है । हे बल के स्वामिन् ! तुझसे सन्धि न करने वाले, कर न देने वाले शत्रु को शासन करता, दण्ड देता है । इन जलों को जिस प्रकार सूर्य शरत्काल में स्वच्छ कर देता है इसी प्रकार इन प्राप्त प्रजाओं को सदा प्रसन्न करता हुआ बड़ी भारी पृथिवी को शत्रुओं के हाथों से छीन कर अपने हाथ में कर लेता है ।

आदित् ते॑ अ॒स्य वी॒र्य॑स्य चर्कि॒र॒न् मदे॑षु वृषन्नु॒शिजो॒ यदा-वि॑थ सखीय॒तो यदावि॑थ । च॒कर्थ॑ का॒रमे॑भ्यः॒ पृत॑नासु॒ प्रव॑न्तवे । ते॑ अ॒न्याम॑न्यां न॒द्यं॑ सनिष्णत श्रव॒स्यन्तः॑ सनिष्णत ॥ ३ ॥

भा०—इसके बाद वे योगिजन तेरे इस सामर्थ्य को चारों तरफ फैलाते हैं । जिससे हे हृदयों में आनंदरस के वर्षक ! तू आनन्दावसरों में तुझे चाहने वालों को तू प्राप्त होता है, और तुझे सखा बनाने के इच्छुक पुरुषों को तू प्राप्त होता है । तू उन साधकों के लिये देवासुर संग्रामों में उत्कृष्ट पद प्राप्त करने के लिये क्रियासामर्थ्य प्रदान करता है । और वे एक से एक अगली नदी या समृद्ध आत्मदशा को प्राप्त करते हैं और तेरी कीर्त्ति का गान करते हैं ।

राजा के पक्ष में—जिस बल से हे राजन् ! संग्राम के अवसरों में तू अपने अभिलाषक और मित्रता के इच्छुक पुरुषों की रक्षा करता है, वे तेरे इस सामर्थ्य को चारों ओर फैलाते हैं । तू उन वीरों के भोग के लिये संग्रामों और सेनाओं में भी यत्न करता है, और वे वीरगण एक से एक आगे आती नदी को पार करते हुए जाते हैं । वे यश के अभिलाषी आगे ही बढ़ते हुए देशों को प्राप्त करते जाते हैं ।

[७६] आत्मा ।

वसुक्र ऐन्द्र ऋषिः । इन्द्रो देवता । त्रिष्टुभः । अष्टर्चं सूक्तम् ।

वने न वा यो न्यधायि चाकं छुचिर्वां स्तोमो भुरणावजीगः ।
यस्येदिन्द्रः पुरु दिनेषु होता नृणां नर्यो नृतमः क्षपावान् ॥ १ ॥

भा०—हे शरीर के पालन पोषण करने वाले प्राण और उदान ! जो प्राणों का गण सबका भोग करने वाले आत्मा में निहित है वह इन्द्रियगण अत्यन्त विशुद्ध रूप से मानो तुम्हारी कामना करता हुआ सा तुम दोनों को ही प्राप्त होता है। जिस प्राणगण को आत्मा बहुत दिनों तक स्वयं धारण करता है, वह शरीर के नेतारूप प्राणगणों का नेता है और समस्त रजोविकारों के नाश करने वाली चितिशक्ति का स्वामी है।

प्र ते अस्या उषसः प्रापरस्या नृतौ स्याम नृतमस्य नृणाम् ।
अनु त्रिशोकः शतमावहन् नॄन् कुत्सेन रथो यो असत् ससवान् ॥२

भा०—हे आत्मन् ! शरीर के नेतारूप प्राणगण के बीच तू नेता है। तेरी इस पापदाहक ज्योतिष्मती प्रज्ञा और दूसरी ब्रह्मविषयक या अनन्तर भाविनी धर्ममेघ दशा के प्राप्त हो जाने पर हम उत्तम ज्ञानवान् हो जायं। तू ही बन्धन काटने वाले ज्ञान के बल से स्वयं रसस्वरूप होकर उस रस का भोक्ता हो जाता है। वाणी, मन और प्राण इन त्रिविध तेजों से युक्त होकर तू सैकड़ों नरों का धारण पोषण करता है।

कस्ते मद इन्द्र रन्त्यो भूद् दुरो गिरो अभ्युग्रो वि धाव । कद्
वाहो अर्वागुप मा मनीषा आ त्वा शक्यामुपमं राधो अन्नैः ॥३॥

भा०—हे आत्मन् ! तेरा यह कौन सा रमणीय हर्ष और आनन्द है, जिसका कि वर्णन नहीं किया जा सकता। तू अति बलवान् होकर हमारे द्वारों के समान उत्तम वाणियों को लक्ष्य करके विविध रूपों से प्राप्त हो।

हे आत्मन् ! तू कब प्रवाह स्वरूप महासिन्धु के समान होकर साक्षात् होगा ? और कब समस्त अर्थों को साक्षात् करने वाली परमप्रज्ञा रूप होकर तू मुझे प्राप्त होगा। और कब तेरे समीप होकर मैं भोग किये जाकर भी क्षीण न होने वाले तेरे अक्षय सुखों के सहित परम ऐश्वर्य को प्राप्त करूंगा।

कदु द्युम्नमिन्द्र त्वावतो नॄन् कया धिया करसे कन्न आगन्।
मित्रो न सत्य उरुगाय भृत्या अन्ने समस्य यदसन्मनीषाः ॥४॥

भा०—हे आत्मन् ! बतला तू कब अपने ऐश्वर्य को प्रदान करता है ? और हे आत्मन् ! मनुष्यों को और शरीर नेता प्राणगण को तू किस धारणशक्ति और किस बुद्धि या किस प्रकार की क्रिया से अपने जैसा कर लेता है ? और बतला तू कब हमें प्राप्त होता है ? तू तो सबका स्नेही स्वयं सत्यस्वरूप महान् स्तुति का पात्र है। जब तेरी बुद्धियां समस्त प्राणों के अक्षय ऐश्वर्य के निमित्त होती हैं तभी तू सबके भरण पोषण के भी समर्थ होता है।

प्रेरय सूरो अर्थं न पारं ये अस्य कामं जनिधा इव ग्मन्।
गिरश्च ये ते तुविजात पूर्वीर्नर इन्द्र प्रतिशिक्षन्त्यन्नैः ॥ ५ ॥

भा०—हे बहुत से देहों में प्रादुर्भूत ! ऐश्वर्यवन् ! आत्मन् ! तू पत्नियों के धारण करने वाले पति लोग जिस प्रकार अभिलाषा को पूर्ण करते हैं, उसी प्रकार जो इस आत्मा के कामना योग्य पुरुषार्थ के समान ही परमपद को प्राप्त करते हैं, और जो लोग अन्नादि अक्षय भोगों या सुखों को प्राप्त करते हुए उनके साथ अभिप्राय या तत्वज्ञान से पूर्ण वाणियों को प्रदान करते हैं, उनको तू सूर्य के समान सब पदार्थों का प्रकाशक होकर उत्कृष्ट मार्ग पर चला।

मात्रे नु ते सुमिते इन्द्र पूर्वी द्यौर्मज्मना पृथिवी काव्येन।
वराय ते घृतवन्तः सुतासः स्वाद्मन् भवन्तु पीतये मधूनि ॥६॥

भा०—हे आत्मन् ! तुझ प्रमाता अर्थात् ज्ञानकर्त्ता के लिए तेरे बल

से और तेरी क्रांतदर्शी प्रज्ञा के यत्न से द्यौ और पृथिवी ये दोनों उत्तम रीति से जाने जावें। वरण करने योग्य जो तू है उसके सुखपूर्वक भोजन के लिये घृत, दूध आदि पुष्टिकारक पदार्थ, और पान करने के लिये मधुर पदार्थ हों।

आ मध्वो॑ अस्मा असिच॒न्नम॑त्र॒मिन्द्रा॑य पू॒र्णं स हि स॒त्यरा॑धाः।
स वा॑वृधे॒ वरि॑म॒न्ना पृ॑थि॒व्या अ॒भि क्रत्वा॒ नर्यः॒ पौंस्यै॑श्च ॥७॥

भा०—इस आत्मा के लिए योगी लोग मधुर ब्रह्मानन्द रस का भरा पात्र आसेचन करते हैं, उपस्थित करते हैं, क्योंकि वह आत्मा सत्यस्वरूप ऐश्वर्य का स्वामी है। वह समस्त नरों का हितकारी विशाल ब्रह्म के आश्रय पर बढ़ता है। और कर्म, सामर्थ्य तथा प्रज्ञा के बल से और पौरुष के कार्यों से पृथिवी को पूर्ण करके सर्वत्र वृद्धि को प्राप्त होता है।

व्या॑न॒लिन्द्र॒ पृत॑ना॒ः स्वोजा॒ आस्मै॑ यतन्ते स॒ख्याय॑ पू॒र्वीः।
आ स्मा॒ रथं॒ न पृत॑नासु तिष्ठ॒ यं भ॒द्रया॑ सुम॒त्या चो॒दया॑से ॥८॥

भा०—आत्मा उत्तम ओजस्वी होकर समस्त मनुष्यों के भीतर विविध रूपों में व्यापक है। पूर्ण सामर्थ्य वाली उत्कृष्ट कोटि की प्रजाएं सदा से इसके मैत्रीभाव को प्राप्त करने के लिये यत्न करती रही हैं। हे मेरे आत्मन्! सेनाओं के बीच जिस प्रकार महारथी रथ पर सवार होता है उसी प्रकार तू भी समस्त मनुष्यों के बीच देह में स्थित है, जिस देह को तू सुखप्रद, कल्याणकारिणी उत्तम मनःशक्ति या बुद्धि द्वारा प्रेरित करता है।

[७७] परमेश्वर, आचार्य।

वामदेव ऋषिः। इन्द्रो देवता। त्रिष्टुभः। अष्टर्चं सूक्तम्।

आ स॒त्यो या॑तु म॒घवाँ॑ ऋ॒जीषी॒ द्रव॑न्त्वस्य॒ हर॑य॒ उप॑ नः।
तस्मा॒ इदन्धः॑ सुषुमा सु॒दक्ष॑मि॒हाभि॑पि॒त्वं क॑रते गृणा॒नः ॥ १ ॥

भा०—सत्यस्वरूप, ऋजु अर्थात् धर्ममार्ग में सबको प्रेरणा करने वाला, ऐश्वर्यवान् परमेश्वर और आचार्य हमें प्राप्त हो। इसके गुण वर्णन करने वाले शिष्यगण हमारे समीप आवें। उसके लिये ही हम उत्तम बलकारी अन्न आदि पदार्थों को उत्पन्न करते हैं। वह ही उत्तम उपदेश करता हुआ हमें अभिमत फल प्राप्त कराता है।

राजा के पक्ष में—सत्य और न्यायप्रिय होने से वह राजा 'सत्य' है। ऐश्वर्यवान् होने से 'मघवा' है। धर्म और सदाचार मार्ग पर प्रजाओं के संचालन से 'ऋजीषी' है। उसके घुड़सवार या संदेशहर हमें प्राप्त हों। उसके लिये हम पृथ्वी पर अन्न आदि ऐश्वर्य उत्पन्न करें। वह इस राष्ट्र में उत्तम शिक्षा देता हुआ हमारा साक्षात् पालन पोषण करे।

अव॑ स्य शूराध्व॑नो नान्ते॑ऽस्मिन् नो॑ अ॒द्य सव॑ने म॒न्दध्यै॑ ।
शंसा॑त्यु॒क्थमु॒शने॑व वे॒धाश्चि॑कि॒तुषे॑ असु॒र्या॑य॒ मन्म॑ ॥ २ ॥

भा०—हे दुष्ट वासनाओं के दमन करने में शूरवीर परमेश्वर! तू मार्ग के समाप्त हो जाने पर जिस प्रकार रथ से घोड़ों को मुक्त कर दिया जाता है उसी प्रकार हमारे इस जन्म में ही इस जीवनमार्ग के समाप्त हो जाने पर मोक्ष-आनन्द को प्राप्त करने के लिये हमें मुक्त कर, इस प्रकार विद्वान् पुरुष कामनावान् पुरुष के समान होकर ही भव-व्याधि के निवारक तथा प्राणियों के हितकारी परमेश्वर की मनन योग्य स्तुति कहता है।

क॒विर्न नि॒ण्यं वि॒दथा॑नि॒ साध॑न् वृषा॒ यत् सेकं॑ विपिपा॒नो अर्चा॑त् ।
दि॒व इ॒त्था जी॑जनत् स॒प्त का॒रूनह्ना॑ चिच्चक्रुर्व॒युना॑ गृ॒णन्तः॑ ॥३॥

भा०—जब ज्ञान विभूतियों को साधता हुआ, एवं हृदय में आनन्द-रस का वर्षण करने हारा आत्मा भीतर छुपे आनन्दरस-प्रवाह का विशेष रूप से पान करता हुआ, क्रान्तदर्शी होकर परब्रह्म की उपासना करता है, तब प्रकाशमय परमेश्वर के अनुग्रह से सात क्रियाशील प्राणों को सत्य

रूप से प्रकट करता है, और दिन के समय जिस प्रकार सूर्य की सात किरण समस्त पदार्थों का ज्ञान कराते हैं उसी प्रकार प्रबुद्ध आत्मा के सात मुख्य प्राण नाना ज्ञानों का वर्णन करते हुए प्रकाश ही प्रकाश कर देते हैं।

स्व॒र्यद् वेदि॑ सु॒दृशी॑कम॒र्कैर्महि॒ ज्योती॑ रुरु॒चुर्यद्ध॒ वस्तोः॑ ।
अ॒न्धा तमां॑सि दुधि॑ता वि॒चक्षे॒ नृभ्य॑श्चकार॒ नृत॑मो अ॒भिष्टौ॑ ॥४॥

भा०—वह नरोत्तम आत्मा, जो कि अर्चनाओं द्वारा ज्ञान कराने वाली चित्तभूमि को, और सुन्दर परम सुखमय, उस महान् ज्योति को प्रकट करता है, जिस परब्रह्म की ज्योति में समस्त सूर्य, चन्द्र, तारे आदि प्रकाशमान हो रहे हैं, वह ही अभीष्ट प्राप्ति के लिये तथा विशेष ज्ञानदर्शन कराने के लिये, मनुष्यों के कल्याण के लिये उन पर छाये घोर अन्धकारों को विनष्ट करता है।

व॒वक्ष॒ इन्द्रो॒ अमि॑तमृजी॒ष्यु॒भे आ प॑प्रौ॒ रोद॑सी महि॒त्वा ।
अत॑श्चिदस्य महि॒मा वि रे॑च्य॒भि यो विश्वा॒ भुव॑ना ब॒भूव॑ ॥ ५ ॥

भा०—ऋगादि मन्त्रों से स्तुत्य, अथवा ऋजुमार्ग पर ले चलने हारा परमेश्वर अपार धारण सामर्थ्य वाला है। वह महान् सामर्थ्य से द्यौ और पृथिवी दोनों को पूर्ण कर रहा है। जो वह समस्त लोकों को व्याप्त है और सबको वश कर रहा है तो भी इसका महान् सामर्थ्य इससे भी कहीं अधिक बड़ा है।

विश्वा॑नि श॒क्रो नर्या॑णि वि॒द्वान॒पो रि॑रेच॒ सखि॑भि॒र्निका॑मः ।
अश्मा॑नं चि॒द् ये बि॑भि॒दुर्वचो॑भिर्व्र॒जं गोम॑न्तमु॒शिजो॒ वि व॑व्रुः ॥६॥

भा०—शक्तिशाली ज्ञानवान् आत्मा कामना से रहित तथा मित्रभूत चक्षु आदि इन्द्रियों द्वारा समस्त मनुष्यों के हितकारी ज्ञानों और कर्मों को उन पर न्योछावर करता है। और जो विद्वान् योगीजन अपनी

स्तुतियों द्वारा पर्वत के समान अभेद्य और मेघ के समान रसवर्षक आत्मा को भेदते हैं। वे परमपद के आकांक्षी होकर इन्द्रियों के समूह को विशेष रूप से संयम करके रोक लेने में समर्थ होते हैं।

अपो वृत्रं वव्रिवांसं पराहन् प्रावत् ते वज्रं पृथिवी सचेताः।
प्रार्णांसि समुद्रियाण्यैनोः पतिर्भवं छवसा शूर धृष्णो ॥ ७ ॥

भा०—हे अन्तःशत्रुओं के धर्षणशील शूरवीर आत्मन्! तेरा ज्ञान-सामर्थ्य ज्ञानों के आवरण करने वाले तामस अज्ञान को विनष्ट करता है, और पृथिवी तेरे बल से चेतनावती होकर तुझे प्राप्त होती है। तू अपने बल से सबका पालक होकर समस्त पदार्थों के उत्पादक परमेश्वर सम्बन्धी ज्ञानों और बलों को उत्तम रीति से सब पर प्रकट करता है

अपो यदद्रिं पुरुहूत दर्दराविर्भुवत् सरमा पूर्व्यं ते।
स नो नेता वाजमा दर्षि भूरिं गोत्रा रुजन्नङ्गिरोभिर्गृणानः ॥ ८ ॥

भा०—हे समस्त प्रजाओं से पुकारे गये विश्वात्मन्! जब तू ज्ञानों और कर्मों को प्रकट करने के लिये अखण्ड आत्मा के आवरण को विदीर्ण करता है, तब व्यापक ज्ञानशक्ति तेरे पूर्ण एवं पूर्व के सनातन रूप को प्रकट करती है। वह तू परमेश्वर हमें बहुत सा ऐश्वर्य, बल एवं ज्ञान प्राप्त कराने वाला होकर, अंग अर्थात् देह में रसरूप से विद्यमान प्राणों द्वारा अथवा ज्ञानी पुरुषों द्वारा स्तुति को प्राप्त होता हुआ, ज्ञान की रश्मियों को रोकने वाले बाधक आवरणों को नाश करता हुआ स्वयं प्रकट होता है।

[७८] राजा और परमेश्वर।

शंयुर्ऋषिः। इन्द्रो देवता। गायत्र्यः। तृचं सूक्तम्।

तद् वो गाय सुते सचा पुरुहूताय सत्वने।
शं यद् गवे न शाकिने ॥ १ ॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो! आप लोग राज्याभिषेक हो जाने पर,

सब मिलकर, वीर्यवान्, शक्तिशाली, वृषभ के समान राज्यधुरा को उठाने में समर्थ, अधिकाधिक जीवों से स्मरण करने योग्य राजा के लिये, जो सुख एवं कल्याणकर हो उसका उपदेश करो।

अध्यात्म में—वृषभ के समान शक्तिशाली आत्मा के विषय में आप लोग उपदेश करो, जो शान्ति प्रदान करे।

न घा वसुर्नि यमते दानं वाजस्य गोमतः।

यत् सीमुप श्रवद् गिरः ॥ २ ॥

भा०—जब वह हमारी स्तुतियों का श्रवण कर लेता है, तब सब प्राणियों में बसा, सबको बसाने वाला वह परमेश्वर वाणियों और गौओं से युक्त ऐश्वर्य और ज्ञान के दान को नहीं रोक लेता।

कुवित्संस्य प्र हि व्रजं गोमन्तं दस्युहा गमत्।

शचीभिरप नो वरत् ॥ ३ ॥

भा०—राजा के समान दुष्टों का विनाशक परमेश्वर, बहुत से भोग्य पदार्थों के भोक्ता जीव को, ज्ञानवाणियों से युक्त प्राप्य परमपद को प्राप्त कराता है। वह हमें अपनी ज्ञान-शक्तियों से उस परमपद के द्वार को खोल दे।

[७९] परमेश्वर।

वसिष्ठः शक्तिर्वा ऋषिः। प्रगाथः (बृहती सतोबृहत्यौ)। द्वयृचं सूक्तम्।

इन्द्र क्रतुं न आ भर पिता पुत्रेभ्यो यथा। शिक्षा णो अस्मिन्। पुरुहूत यामनि जीवा ज्योतिरशीमहि ॥ १ ॥

भा०—व्याख्या देखो कां० १८ । ३ । ६७ ॥

मा नो अज्ञाता वृजना दुराध्यो३ माशिवासो अव क्रमुः।

त्वया वयं प्रवतः शश्वतीरपोऽति शूर तरामसि ॥ २ ॥

भा०—हे परमेश्वर! हमें अनजाने, वर्जन योग्य पाप और दुःखदायी

मानस चिन्ताएं, अमङ्गलकारी भाव न दबावें। हे शूर! तेरे बल से हम प्रकर्ष को प्राप्त नित्य बहने वाली नदियों के समान चिरकाल से लगे कर्म-बन्धनों को पार कर जायं।

[८०] परमेश्वर।

शंयुर्ऋषिः। इन्द्रो देवता। प्रगाथः (बृहती सतोबृहत्यौ)। द्व्यृचं सूक्तम्।

इन्द्र ज्येष्ठं न आ भरँ ओजिष्ठं पपुरि श्रवः। येनेमे चित्र वज्रहस्त रोदसी ओभे सुशिप्र प्राः॥ १॥

भा०—हे परमेश्वर! तू हमें सबसे अधिक पराक्रम से युक्त, सबसे श्रेष्ठ, पालन करने वाला और पूर्ण यश प्राप्त करा, हे अद्भुत! हे वज्र या बल को हाथ में धारण करने वाले! हे उत्तम बल और ज्ञानवान्! तू जिस यश द्वारा इन दोनों लोकों को पूर्ण कर रहा है।

त्वामुग्रमवसे चर्षणीसहं राजन् देवेषु हूमहे। विश्वा सु नो विथुरा पिब्दना वसोऽमित्रान् सुषहान् कृधि॥ २॥

भा०—हे राजन्! विजयशील पुरुषों में से अधिक बलवान् और समस्त लोकों को अपने बल से वश करने हारे! तुझको हम रक्षा के लिये बुलाते हैं। तू समस्त गुप्त शब्द करने वाले गुप्त पुरुषों को पीड़ित कर। और हे सबको वास देनेहारे! तू शत्रुओं को सुख से पराजय करने योग्य कर।

[८१] परमेश्वर की महिमा।

पुरुहन्मा ऋषिः। इन्द्रो देवता। प्रगाथः (बृहती सतोबृहत्यौ)। द्व्यृचं सूक्तम्।

यद् द्याव इन्द्र ते शतं शतं भूमीरुत स्युः। न त्वा वज्रिन्त्सहस्रं सूर्या अनु न जातमष्ट रोदसी॥ १॥

भा०—हे परमेश्वर! यदि तेरे लिये सैकड़ों द्यौलोक और सैकड़ों भूमियें भी हों, और हे शक्तिमन्! हजारों सूर्य और हज़ारों उत्पन्न संसार

और हज़ारों ज़मीन आसमान हों तो भी वे तुझे व्याप नहीं सकते, तेरी बराबरी नहीं कर सकते।

आ प॑प्राथ महि॒ना वृष्ण्या॑ वृषन् विश्वा॑ शविष्ठ शव॑सा ।
अ॒स्माँ अ॑व मघवन् गोम॑ति व्र॒जे वज्रि॑ चि॒त्राभि॑रू॒तिभिः ॥२॥

भा०—हे समस्त सुखों के वर्षक ! हे सबसे अधिक शक्तिशालिन् ! तू बड़े भारी बल से, समस्त बल के कार्यों को सब दिशाओं में फैला रहा है। हे ऐश्वर्यवन् ! हे बलनन् ! इन्द्रियों से युक्त इस गोष्ठ रूप देह में, आश्चर्यजनक रक्षा साधनों से हमारी रक्षा कर।

[८२] परमेश्वर और उपासक।

वसिष्ठ ऋषिः। इन्द्रो देवता। बृहत्यौ। द्वयृचं सूक्तम्।

यदि॑न्द्र॒ याव॑त॒स्त्वमे॒ताव॑द॒हमीशी॑य । स्तो॒तार॒मिद् दि॑धिषेय रदावसो न पा॑प॒त्वाय॑ रासीय ॥ १ ॥

भा०—हे परमेश्वर ! यदि जितने धन का तू स्वामी है, उतने धन का मैं स्वामी हो जाऊं तो मैं विद्वान् जन का ही धारण पोषण करूं। हे ऐश्वर्य के दातः ! मैं पाप कार्य के लिये कभी दान न दूं।

शिक्षे॑यमिन्म॑हय॒ते दि॒वेदि॑वे रा॒य आ कु॑हचि॒द्वि॒दे॑ ।
न॒हि त्वद॒न्यन् मघ॑वन् न॒ आप्यं॒ वस्यो॒ अस्ति॑ पि॒ता च॒न ॥ २ ॥

भा०—परमेश्वर कहता है। प्रतिदिन, कहीं भी विद्यमान उपासना करने वाले सत्पुरुष को मैं धनों का प्रदान करता ही हूँ। भक्त कहता है। हे ऐश्वर्यवन् ! तुझसे दूसरा हमारा बन्धु नहीं है, और तुझसे दूसरा श्रेष्ठ हमारा पिता भी नहीं है।

[८३] राजा।

शंयुर्ऋषिः। इन्द्रो देवता। १ बृहती। २ पंक्तिः। द्वयृचं सूक्तम्।

इन्द्र॑ त्रि॒धातु॑ शर॒णं त्रि॒वरू॑थं स्वस्ति॒मत् । छ॒र्दिर्य॑च्छ म॒घव॑द्भ्यश्च॒ मह्यं॑ च या॒वया॑ दि॒द्युमे॑भ्यः ॥ १ ॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन् ! तू तीन धातुओं से बना, तीन घेरों वाला, कल्याणवान्, छत या सुखों से युक्त गृह धनाढ्य पुरुषों और मुझको भी प्रदान कर, और इनसे देदीप्यमान शस्त्र या क्रोध आदि को दूर कर ।

ये गव्यता मनसा शत्रुमादभुरभिप्रघ्नन्ति धृष्णुया ।

अध स्मा नो मघवन्निन्द्र गिर्वणस्तनूपा अन्तमो भव ॥२॥

भा०—हे राजन् ! जो पुरुष भूमि और गौ आदि पशु लेने की इच्छा वाले मन से शत्रु को मारने में समर्थ हैं, और जो शत्रु को धर्षण करने वाली शक्ति से मार डालते हैं, ऐसे पुरुषों के होते हुए हे ऐश्वर्यवन् ! हे स्तुत्य ! हे शत्रुनाशक ! तू हमारे शरीरों का रक्षक होकर हमारा अति समीपतम मित्र होकर रह ।

[८४] परमेश्वर ।

मधुच्छन्दा ऋषिः । इन्द्रो देवता । गायत्र्यः । तृचं सूक्तम् ।

इन्द्रा याहि चित्रभानो सुता इमे त्वायवः ।

अण्वीभिस्तना पूतासः ॥ १ ॥

भा०—हे परमेश्वर ! हे आश्चर्यजनक दीप्तियों वाले ! ये उत्पन्न पदार्थ और ज्ञानरस से अभिषिक्त शुद्ध आत्मा तेरी चाहना करने हारे हैं । तू साक्षात् दर्शन दे । ये सब सूक्ष्म योग-क्रियाओं से नित्य पवित्र हैं।

इन्द्रा याहि धियेषितो विप्रजूतः सुतावतः ।

उप ब्रह्माणि वाघतः ॥ २ ॥

भा०—हे परमेश्वर ! तू उत्तम ज्ञानवाली बुद्धि और उत्तम कर्म से प्राप्त होने योग्य, और विद्वानों द्वारा जाना और अर्चना किया जाता है । तू उपासक पुरुषों और ब्रह्मज्ञानी पुरुषों को या ब्रह्मवेद के वचनों को प्राप्त हो । अर्थात् वेदोक्त गुणों सहित प्रकट हो ।।

इन्द्रा याहि तूतुजान उप ब्रह्माणि हरिवः ।

सुते दधिष्व नश्चनः ॥ ३ ॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन् ! तू अति वेगवान् होकर वेदस्तुतियों को प्राप्त हो । हे वेगवान् सूर्यादि लोक के स्वामिन् ! उत्पन्न संसार हमें अन्न आदि भोग्य पदार्थ प्रदान कर ।

[८५] परमेश्वर ।

मेधातिथिर्मेध्यातिथी ऋषी । इन्द्रो देवता । प्रगाथः (१, ३ बृहती । २, ४ सतो बृहती) । चतुर्ऋचं सूक्तम् ।

मा चिदन्यद् वि शंसत सखायो मा रिषण्यत ।
इन्द्रमित् स्तोता वृषणं सचा सुते मुहुरुक्था च शंसत ॥ १ ॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो ! हे मित्रजनो ! इन्द्र की स्तुति के अतिरिक्त और किसी की विविध रूपों से स्तुति न करो, और इस प्रकार नष्ट न होओ । उत्पन्न संसार में ऐश्वर्यवान्, समस्त सुखों के वर्षक परमेश्वर को एकत्र मिलकर स्तुति करो, और वार वार स्तुतियां कहो ।

अवक्रक्षिणं वृषभं यथाजुरं गां न चर्षणीसहम् ।
विद्वेषणं संवननोभयङ्करं मंहिष्ठमुभयाविनम् ॥ २ ॥

भा०—सबको अपने अधीन रखकर अपने प्रति आकर्षण करने वाले, सुखों के वर्षक, जरारहित, सूर्य और महावृषभ के समान समस्त लोगों को विजय करने वाले, विरुद्ध आचारी पुरुषों के द्वेषी, सज्जन पुरुषों के सेवनीय, निग्रह और अनुग्रह, दण्ड और कृपा दोनों के करने में समर्थ, अति पूजनीय एवं अति दानशील, शत्रु और मित्र दोनों की रक्षा करने हारे और स्थावर जंगम सबके रक्षक उस परमेश्वर की वार वार स्तुति, प्रशंसा करो ।

यच्चिद्धि त्वा जना इमे नाना हवन्त ऊतये ।
अस्माकं ब्रह्मेदमिन्द्र भूतु तेऽहा विश्वा च वर्धनम् ॥ ३ ॥

भा०—हे परमेश्वर ! यद्यपि ये समस्त लोग अपनी रक्षा के लिये

तेरी भिन्न भिन्न उपायों से स्तुति करते हैं, तो भी हमारा यह वेद-स्तुति-वचन तेरे गुणों को सब दिनों बढ़ाने वाला रहे ।

वि तर्तूर्यन्ते मघवन् विपश्चितोऽर्यो विपो जनानाम् ।

उप क्रमस्व पुरुरूपमा भर वाजं नेदिष्ठमूतये ॥ ४ ॥

भा०—हे परमेश्वर ! कर्मों और ज्ञानों के ज्ञाता, आगे बढ़ने वाले, जनों के बीच मेधावी पुरुष विशेष रूप से पार हो जाते हैं । हे परमेश्वर ! तू विविध प्रकार का रुचिकर अन्न और बल हमें प्राप्त करा । और रक्षा के लिये अति समीप रह ।

[८६] आत्मा ।

विश्वामित्र ऋषिः । इन्द्रो देवता । त्रिष्टुप् । एकर्चं सूक्तम् ।

ब्रह्मणा ते ब्रह्मयुजा युनज्मि हरी सखाया सधमाद आशू ।

स्थिरं रथं सुखमिन्द्राधितिष्ठन् प्रजानन् विद्वाँ उप याहि सोमम् ॥ १ ॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन् आत्मन् ! मैं साथ साथ आनन्द अनुभव करने की समाहित दशा में वेगवान् ब्रह्म के साथ युक्त होवे वाले तेरे दुःखों के विनाशक, एक दूसरे के मित्ररूप शरीर के धारक, प्राण और अपान दोनों को परम ब्रह्म के साथ योग-अभ्यास द्वारा समाहित करता हूँ । हे आत्मन् ! तू सुखपूर्वक स्थिर रूप से विद्यमान इस देह पर वश करता हुआ, उत्कृष्ट ज्ञान सम्पादन करके ज्ञानवान् होकर, प्रेरक परमेश्वर या ब्रह्मरस को प्राप्त कर ।

[८७] राजा, आत्मा ।

वसिष्ठ ऋषिः । इन्द्रो देवता । त्रिष्टुभः । सप्तर्चं सूक्तम् ।

अध्वर्यवोऽरुणं दुग्धमंशुं जुहोतन वृषभाय क्षितीनाम् ।

गौराद् वेदीयाँ अवपानमिन्द्रो विश्वाहेद्याति सुतसोममिच्छन् ॥ १ ॥

भा०—राजा के पक्ष में—हे हिंसारहित राष्ट्र यज्ञ के सम्पादन

करने हारे पुरुषो ! आप लोग प्रजाओं के प्रति सुखों के वर्षण करने वाले राजा के लिये, रुचिकर दुग्ध के समान पुष्टिप्रद अथवा पृथ्वीरूप धेनु से दोहन किये गये राजोचित अंश को प्रदान करो। वह ऐश्वर्यवान् वाणियों में रमण करने वाले विद्वान् से भी अधिक ज्ञानवान् होकर, अधीन रखकर पालन करने योग्य तथा अभिषेक द्वारा प्राप्त राष्ट्रपति के पद की अभिलाषा करता हुआ, सब दिनों प्रजा में विचरता है।

आत्मा के पक्ष में—हे अहिंसित जीवनयज्ञ के करने हारे योगिजनो ! तुम देह में निवास करने वाले प्राणगणों में जीवनरस के वर्षण करने वाले आत्मा के लिये, अति प्रकाशयुक्त तथा सार रूप से प्राप्त व्यापक प्राण की आहुति दो। वह आत्मा इन्द्रियों में रमणशील प्राण से भी बलशाली होकर भीतर ही पान करने योग्य ब्रह्मरस को चाहता हुआ सदा ही प्राप्त है।

यद् द॑धि॒षे प्र॑दि॒वि चार्व॑न्नं दि॒वेदि॑वे पी॒तिमिद॑स्य वक्षि।
उ॒त हृ॒दोत मन॑सा जुषा॒ण उ॒शन्नि॑न्द्र॒ प्रस्थि॑तान् पाहि॒ सोमा॑न् ॥२॥

भा०—हे आत्मन् ! तू उत्कृष्ट ज्ञानस्वरूप परब्रह्म में आश्रित अति उत्तम जिस अक्षय रस को प्रतिदिन धारण करता है, उस साक्षात् प्राप्त रस के पान को ही नित्य चाहता है। हृदय और मन से चाहता हुआ और सेवन करता हुआ हे तू इन आगे रक्खे ब्रह्मानन्द रसों का पान कर।

राजा के पक्ष में—उत्कृष्ट राजसभा के अधीन जिस उत्तम भोग्य-राष्ट्र को तू धारण करता है और दिनोंदिन उसकी वृद्धि चाहता है, हृदय और मन से प्रेम करता हुआ इस राष्ट्र के उच्च पदों पर स्थित शासक अधिकारियों और विद्वानों की रक्षा कर।

'पीतिम्'—ओप्यायी वृद्धौ—प्यायः पीभावः।

ज॒ज्ञा॒नः सोमं॒ सह॑से पपाथ॒ प्र ते॑ मा॒ता म॑हि॒मान॑मुवाच।
ए॑न्द्र पप्राथो॒र्व॒॑न्तरि॑क्षं यु॒धा दे॒वेभ्यो॒ वरि॑वश्चकर्थ ॥ ३ ॥

भा०—राजा के पक्ष में—हे राजन्! तू राजा बनते ही अपने शत्रुपराजयकारी बल से राष्ट्र का पालन करता है। तेरी माता, तुझे राजा बनाने वाली राजसभा एवं यह पृथ्वी तेरे महान् सामर्थ्य को सर्वोत्तम कहती है। तू विशाल अन्तरिक्ष को पूर्ण करता अर्थात् अन्तरिक्ष के समान प्रजाओं का रक्षक और उन पर जलादि वर्षण के समान सुखों का वर्षण करके स्वयं मानो अन्तरिक्ष पद को प्राप्त करता है। और युद्ध द्वारा सेना-पुरुषों और विद्वानों के लिये धनैश्वर्यवान् को भी उत्पन्न करता है।

अध्यात्म पक्ष में—ज्ञानसम्पादन करता हुआ अपने आत्मिक बल से योगी ब्रह्मरस का पान करता है। हे आत्मन्! ज्ञानी पुरुष तेरे महान् सामर्थ्य का वर्णन करता है। हृदयाकाश को तू पूर्ण करता और प्राणों को भी बल प्रदान करता है।

यद् योधया महतो मन्यमानान् साक्षाम तान् बाहुभिः शाशदानान्। यद्वा नृभिर्वृत इन्द्राभियुध्यास्तं त्वयाजिं सौश्रवसं जयेम ॥४

भा०—हे राजन्! जब तू बड़े अभिमान करने वालों को हमारे से लड़ाता है तब हमारे पक्ष वालों को काटने वाले उन शत्रुओं को हम अपनी बाहुओं से ही पराजित करें। और जब भी उत्तम नेताओं से परिवृत होकर तू स्वयं शत्रु के मुकाबले पर लड़े तब तेरे द्वारा हम उत्तम यश प्राप्त कराने वाले युद्ध का विजय करें।

परमेश्वर पक्ष में—जब भी परमेश्वर हमें बड़े कामादि शत्रुओं से युद्ध का अवसर दे हम उनको अपने बाहुबल से पराजित करें। और हे परमात्मन् तू अपनी नेतृशक्तियों से उनका नाश कर, हम तेरी सहायता से उत्तम यश वाले संग्राम का विजय करें।

प्रेन्द्रस्य वोचं प्रथमा कृतानि प्र नूतना मघवा या चकार।
यदेददेवीरसहिष्ट माया अथाभवत् केवलः सोमो अस्य ॥ ५॥

भा०—वीर राजा के पहले किये हुए श्रेष्ठ कार्यों का मैं वर्णन करूं। और जिन नवीन कर्मों को वह ऐश्वर्यवान् करता है उनका भी मैं कथन करूं। जब वह अदेवकोटि के लोगों की छल कपट की क्रियाओं को सब प्रकार से विजय कर लेता है तब उत्तम ऐश्वर्य को देने वाला राष्ट्र केवल इसके ही वश में रहता है।

परमेश्वर के पक्ष में—परमेश्वर के पूर्वकल्पों में किये और इस कल्प में किये जगत्सर्गों के विषय में मैं वर्णन करूं। जब वह प्रकाशरहित प्रकृति से उत्पन्न विकृतिसृष्टियों को अपने वश किये रहता है तब जानो कि समस्त जगत् ही उसके वश में है।

तवे॒दं विश्व॑म॒भित॑ः पश॒व्यं१ यत् पश्य॑सि॒ चक्ष॑सा॒ सूर्य॑स्य।
गवा॑मसि॒ गोप॑ति॒रेक॑ इन्द्र भक्षी॒महि॑ ते॒ प्रय॑तस्य॒ वस्व॑ः ॥ ६ ॥

भा०—हे राजन्! यह राष्ट्र में विचारने वाला समस्त पशुसमूह जिसको तू सूर्य के प्रकाश से देखता है तेरा ही है। तू समस्त भूमियों का एकमात्र पालक है। हे ऐश्वर्यवन्! उत्कृष्ट नियन्ता रूप तेरे ही ऐश्वर्य का हम भोग करें।

ईश्वरपक्ष में—यह सब ओर फैला दोपायों चौपायों का हितकारी समस्त संसार जिसको सूर्य के प्रकाश से तू प्रकाशित करता, मानो देखता ही है, वह तेरा ही है। समस्त प्राणियों और भूमियों का पालक तू ही 'गोपति' है। उत्तम नियन्ता जो तू है उसके ही ऐश्वर्य का हम भोग करते हैं।

बृह॑स्पते यु॒वमिन्द्र॑श्च॒ वस्वो॑ दि॒व्यस्ये॑शाथे उ॒त पार्थि॑वस्य।
ध॒त्तं र॒यिं स्तु॑व॒ते की॒रये॑ चिद् यू॒यं पा॑त स्व॒स्तिभि॑ः॒ सदा॑ नः ॥७॥

भा०—हे महान् राष्ट्र के स्वामिन्! एवं बृहती वेदवाणी के पालक विद्वान्! तुम दोनों दिव्य ज्ञानरूप और पृथिवी सम्बन्धी ऐश्वर्य के स्वामी हो। आप दोनों स्तुति करने हारे विद्वान् पुरुष को ऐश्वर्य प्रदान करो। और तुम कल्याणकारी साधनों से सदा हमारी रक्षा करो।

व्याख्या देखो अथर्व० का० २० । १७ । १२ ॥

[८८] परमेश्वर सेनापति, राजा ।

वामदेव ऋषिः । बृहस्पतिर्देवता । त्रिष्टुभः । षडृचं सूक्तम् ।

यस्तस्तम्भ सहसा वि ज्मो अन्तान् बृहस्पतिस्त्रिषधस्थो रवेण ।
तं प्रत्नास ऋषयो दीध्यानाः पुरो विप्रा दधिरे मन्द्रजिह्वम् ॥१॥

भा०—जो परमेश्वर वेदवाणी और महान् ब्रह्माण्ड का पालक है, और तीनों लोकों में स्थित होकर अपने शासन से बलपूर्वक पृथिवी के दशों दिशाओं के दूरस्थ प्रदेशों को विविध प्रकार थामता है, पूर्व के मन्त्रद्रष्टा तथा विविध ज्ञानों से पूर्ण मेधावी लोग आनन्द जनक वचन वाले उस परमेश्वर को ध्यान करते हुए उसे अपने आगे उपास्यरूप से, साक्षीरूप या अध्यक्षरूप से स्थापित करते हैं ।

धुनेतयः सुप्रकेतं मदन्तो बृहस्पते अभि ये नस्ततस्रे ।
पृषन्तं सृप्रमदब्धमूर्वं बृहस्पते रक्षतादस्य योनिम् ॥ २ ॥

भा०—हे बड़ी शक्ति, वाणी, राष्ट्र और ब्रह्माण्ड के पालक विद्वन् ! सेनापते ! राजन् ! एवं परमात्मन् ! शत्रुओं को कंपा देने वाली चढ़ाई करने वाले तथा उत्कृष्ट ज्ञानवान् तुझको हर्ष देने वाले जो हम, तेरी साक्षात् स्तुति करते हैं, उनके नाना फलों के देने वाले, विस्तृत, अहिंसित तथा महान् आश्रय स्थान राष्ट्र की रक्षा कर ।

बृहस्पते या परमा परावदत आ त ऋतस्पृशो नि षेदुः ।
तुभ्यं खाता अवता अद्रिदुग्धा मध्वः श्चोतन्त्यभितो विरप्शम् ॥३॥

भा०—हे परमेश्वर ! जो सर्वोत्कृष्ट तथा परमज्ञान की रक्षा करने वाली वेदवाणी है, और इससे साक्षात् ज्ञान करने हारे जो सत्य तत्व को पहुंचने वाले विद्वान् पुरुष तेरे चारों ओर विराजमान हैं, वे खने हुए कूपों के समान रस से भरे हुए और मेघों या पर्वतों से प्राप्त मधुर रस

को धारण करने वाले जलाशय या झरने के समान होकर सर्वत्र उस मधुर ब्रह्मानन्द रस की महान् राशि को झरते, उपदेश करते और वर्षण करते हैं।

बृहस्पतिः प्रथमं जायमानो महो ज्योतिषः परमे व्योमन् ।
सप्तास्यस्तुविजातो रवेण वि सप्तरश्मिरधमत् तमांसि ॥ ४ ॥

भा०—वेदवाणी का स्वामी परमेश्वर, सबसे प्रथम सृष्टि को प्रकट करता हुआ, महान् ज्ञानप्रकाश के सर्वोत्कृष्ट स्थान वेद में सात छन्दों रूप सात मुख वाला होकर, तथा बहुत प्रकार से प्रकट होकर, अपने उपदेश से सात रश्मियों वाले सूर्य के समान दुःखान्धकारों विविध उपायों से नाश करता है।

स सुष्टुभा स ऋक्वता गणेन वलं रुरोज फलिगं रवेण ।
बृहस्पतिरुस्रिया हव्यसूदः कनिक्रदद् वावशतीरुदाजत् ॥ ५ ॥

भा०—वह वेदवाणी का पालक उत्तम रूप से स्तुति करने वाले मन्त्रों से युक्त विद्वद्गण द्वारा, और वेदोपदेश के बल द्वारा फलों अर्थात् निःसार तथा घेरने वाले कामादि शत्रुगण को तोड़ डालता है। और वह ही उपदेश करता हुआ हम्भारव करने वाली तथा घृत आदि पुष्टिकारक पदार्थों को प्रदान करने वाली गौओं के समान ज्ञानरस से पूर्ण नित्य उपदेशमय शब्द करती हुई, ग्राह्य ज्ञान को झरती हुई वेदवाणियों को प्रकट करता है।

एवा पित्रे विश्वदेवाय वृष्णे यज्ञैर्विधेम नमसा हविर्भिः ।
बृहस्पते सुप्रजा वीरवन्तो वयं स्याम पतयो रयीणाम् ॥ ६ ॥

भा०—इस उक्त प्रकार के ज्ञानवान्, सबके पालक, दिव्य शक्तियों के आश्रय, अति बलवान् पुरुष को हम सत्संगों द्वारा आदरपूर्वक नमस्कार और अन्नों द्वारा सेवा करें। हे विद्वन्! राजन्! परमेश्वर! हम उत्तम प्रजा वाले वीर पुरुषों और पुत्रों से युक्त और ऐश्वर्यों के पति हों।

[८९] राजा परमेश्वर ।

कृष्ण ऋषिः । इन्द्रो देवता । त्रिष्टुभः । एकादशर्चं सूक्तम् ।

अस्तेव सु प्रतरं लायमस्यन् भूषन्निव प्र भरा स्तोममस्मै ।
वाचा विप्रास्तरत वा चमर्यो नि रामय जरितः सोम इन्द्रम् ॥१॥

भा०—हृदय को लगने वाले बाण को फेंकता हुआ धनुर्धर जिस अच्छे प्रकार से अपने निशाने पर बाण फेंकता है, और जिस प्रकार सुभूषित करने वाला पुरुष रत्नों को जड़ता है, उसी प्रकार हे आत्मन्! तू भी इस परमेश्वर को लक्ष्य करके स्तुति समूह को आदर से प्रस्तुत कर, और सूक्तरत्नों से उसे अलंकृत कर। हे वाणी के कारण मेधावी विद्वान् पुरुषो! तुम लोग अपने स्वामी परमेश्वर की वाणी को अभ्यास द्वारा पार करो। हे स्तुतिशील विद्वन्! तू अपने आत्मा को परमेश्वर में आह्लादित कर।

दोहेन गामुप शिक्षा सखायं प्र बोधय जरितर्जारमिन्द्रम् ।
कोशं न पूर्णं वसुना न्यृष्टमा च्यावय मघदेयाय शूरम् ॥ २ ॥

भा०—हे स्तुतिशील विद्वन्! दुग्धदोहन के निमित्त जिस प्रकार गौ को प्राप्त किया जाता है उसी प्रकार आन्तरिक रस प्राप्त करने के लिये आत्मा को प्राप्त कर। देह और इन्द्रियों को कालवश जीर्ण कर देने वाले तथा साक्षात् प्रत्यक्ष होने वाले भोक्ता आत्मा को ज्ञानवान् कर। और धन से भरे ख़ज़ाने की न्याईं वर्तमान उस शूरवीर इन्द्र को धन देने के लिये झुका।

किमङ्ग त्वा मघवन् भोजमाहुः शिशीहि मा शिशयं त्वा शृणोमि ।
अप्नस्वती मम धीरस्तु शक्र वसुविदं भगमिन्द्रा भरा नः ॥३॥

भा०—हे परमेश्वर! तुझको लोग सबका पालक क्यों कहते? मैं तुझको अति सूक्ष्म रूप से विद्यमान सुनता हूँ। तू मुझको भी सूक्ष्म-बुद्धि-

युक्त कर। जिससे मेरी धारणावती बुद्धि श्रेष्ठ कर्म वाली हो। हे ऐश्वर्य-वन्! हे शक्तिशालिन्! ऐश्वर्यप्रद, सेवन योग्य ऐश्वर्य हमें प्राप्त करा।

त्वां जना॑ ममसत्येष्विन्द्र संतस्थाना वि ह्वयन्ते समीके।
अत्रा युजं कृणुते यो हविष्मान्नासुन्वता सख्यं वष्टि शूरः ॥४॥

भा०—हे परमेश्वर! 'लोग मेरा पक्ष सच्चा, मेरा पक्ष सच्चा है' इस प्रकार अपने पक्ष को दृढ़ करने के कलहों में भी तुझे विविध नामों से याद किया करते हैं। और संग्राम में अच्छी प्रकार स्थिर होकर युद्ध करने वाले भी विविध प्रकारों से तुझे पुकारते हैं। पर तू इस लोक में जो सत्य ज्ञानवान् है उसी को अपना साथी बनाता है। और तू शूर होकर सवन या चिन्तन करने वाले के साथ मित्रता करना चाहता है।

धनं न स्पन्द्रं बहुलं यो अस्मै तीव्रान्त्सोमाँ आसुनोति प्रयस्वान्।
तस्मै शत्रूनत्सुतुकान् प्रातरह्नो नि स्वष्ट्रान् युवति हन्ति वृत्रम् ॥५॥

भा०—जो प्रयासी परिश्रमी साधक, इस आत्मा को अतिहर्षकर ब्रह्मरसों से स्नान कराता है, उसके ही विनाशकारी काम, क्रोधादि भीतरी शत्रुओं को वह दूर करता है, आवरक अज्ञान को निर्मूल करता है। दिन के प्रातःकाल के समान अज्ञान का नाश करता है।

यस्मिन् वयं दधिमा शंसमिन्द्रे यः शिश्राय मघवा काममस्मे।
आराच्चित् सन् भयतामस्य शत्रुर्न्यस्मै द्युम्ना जन्या नमन्ताम् ॥६॥

भा०—जिस राजा या परमेश्वर के निमित्त हम स्तुति धारण करते हैं, और जो ऐश्वर्यवान् हमारी अभिलाषा को आश्रय देता है, उसका शत्रु दूर रहता हुआ भय ही करे, और उसके आगे युद्ध सम्बन्धी यश और ऐश्वर्य प्राप्त हों।

आराच्छत्रुमप बाधस्व दूरमुग्रो यः शम्बः पुरुहूत तेन।
अस्मे धेहि यवमद् गोमदिन्द्र कृधी धियं जरित्रे वाजरत्नाम् ॥७॥

भा०—हे राजन् ! आत्मन् ! जो तेरा शत्रुशमन करने का बल है, हे बहुतों से स्तुति किये हुए ! तू उस बल द्वारा शत्रु को दूर से पीड़ित कर। हमें अन्न और पशुओं से सम्पन्न ऐश्वर्य प्रदान कर। और विद्वान् स्तुतिकर्त्ता पुरुष के लिये वीर्य और ज्ञान से अति रमणीय धारणाशक्ति उत्पन्न कर ।

प्र यमन्तर्वृषसवासो अग्मन् तीव्राः सोमा बहुलान्तास इन्द्रम् ।
नाहं दामानं मघवा नि यंसन् नि सुन्वते वहति भूरि वामम् ॥८॥

भा०—जिस ऐश्वर्यवान् आत्मा के भीतर बलवान् प्राणों द्वारा उत्पन्न, प्रभूत बल और सत्यज्ञान को धारण करने वाले अति प्रबल स्वरूप में ब्रह्मानन्दरस प्राप्त होते हैं, वह ऐश्वर्यवान् आत्मा रसों के देने वाले उसको कुछ भी नहीं देता, परन्तु वह प्रभु अपने उपासक को तो बहुत सा सुन्दर ऐश्वर्य प्रदान करता है।

उत प्रहामतिदीवा जयाति कृतमिव श्वघ्नी वि चिनोति काले ।
यो देवकामो न धनं रुणद्धि समित् तं रायः सृजति स्वधाभिः ॥९॥

भा०—यह आत्मा अति देदीप्त होकर कुत्ते के समान विषय-तृष्णालु इन्द्रिय और मन को मारकर, उनको वश करके, यथावसर अपने किये कर्मफल और सदाचार को विशेषरूप से संग्रह कर लेता है, और विघ्नकारी उपद्रव पर विजय कर लेता है। जो पुरुष विद्वानों की कामना करता हुआ उनके निमित्त धन को नहीं रोकता उसको ही वह अन्नों सहित ऐश्वर्य प्रदान करता है॥ कां० ७ । ५० । ६ ॥

गोभिष्टरेमामतिं दुरेवां यवेन वा क्षुधं पुरुहूत विश्वे ।
वयं राजसु प्रथमा धनान्यरिष्टासो वृजनीभिर्जयेम ॥ १० ॥
बृहस्पतिर्नः परि पातु पश्चादुतोत्तरस्मादधरादघायोः ।
इन्द्रः पुरस्तादुत मध्यतो नः सखा सखिभ्यो वरीयः कृणोतु ॥११॥

भा०—(१०-११) इन दोनों को व्याख्या देखो कां० २० । १७ । १०, ११ तथा का० ७ । ५० । ७ ॥ देखो ऋ० १० । ४२ । १-११ ॥

[६०] राष्ट्रपालक, ईश्वर और विद्वान् ।

भरद्वाज ऋषिः । बृहस्पतिर्देवता । त्रिष्टुभः । तृचं सूक्तम् ।

यो अ॑द्रि॒भित् प्र॑थम॒जा ऋ॒तावा॒ बृह॒स्पति॑राङ्गिर॒सो ह॒विष्मा॑न् ।
द्वि॒बर्ह॑ज्मा प्राघर्म॒सत् पि॒ता न॒ आ रोद॑सी वृष॒भो रो॑रवीति ॥१॥

भा०—जो वेदवाणी और ब्रह्माण्ड का पालक, अद्रि अर्थात् न दीर्ण होने वाले, जन्ममरण के बन्धन या अज्ञान का नाशक है, जल से पूर्ण तथा अंग अंग में व्यापक प्राण के समान लोकों में रस या परम बल रूप से विद्यमान है, शक्तिशाली है, पृथिवी और आकाश दोनों में व्यापक है, सर्वोत्कृष्ट तेजः स्वरूप में विद्यमान है, सबके पालक मेघ के समान सुखों का वर्षक है वह हमें सर्वत्र विश्व में ज्ञान का उपदेश करता है ।

जना॑य चि॒द् य ईव॑त उ लो॒कं बृह॒स्पति॑र्दे॒वहू॑तौ च॒कार॑ ।
घ्नन् वृ॒त्राणि॒ वि पुरो॑ दर्दरीति॒ जय॒ञ्छत्रूँ॑र॒मित्रा॑न् पृ॒त्सु साह॑न् ॥२॥

भा०—जो जगत् का पालक परमेश्वर, आने वाले मनुष्यों के लिये प्राणायतन देह में उत्पन्न हुए जीवों का निवासस्थान बनाता है, और जो आवरणकारी अज्ञानों का नाश करता हुआ देहबन्धनों को विविध उपायों से तोड़ता है, वह कामादि शत्रुओं पर विजय करता हुआ, और मित्रों से विपरीत शत्रु पक्ष के अन्य सहायकों को भी देवासुर संग्रामों में पराजित करे ।

बृह॒स्पतिः॒ सम॑जय॒द् वसू॑नि म॒हो व्र॒जान् गोम॑तो दे॒व ए॒षः ।
अ॒पः सिषा॑स॒न्त्स्व॑र॒प्रती॑तो॒ बृह॒स्पति॒र्हन्त्य॒मित्र॑म॒र्कैः ॥ ३ ॥

भा०—बड़े भारी राष्ट्र का पालक राजा ऐश्वर्यों को विजय करता है । और गौ आदि पशुओं से सम्पन्न बड़े भारी समूहों को वह विजयी विजय करता है । वह स्वयं किसी से भी विरोध द्वारा रोका न जाकर

सुखमय समस्त राष्ट्र के कार्यों को विभक्त करने की इच्छा करता हुआ प्रजा के शत्रु को अपने शासनों से विनष्ट करता है। ऋ० ६ । ७३ । ३ ।

अध्यात्म में—विजयी योगी, बड़ी शक्ति का पालक होकर बहुत से ऐश्वर्यों और इन्द्रियों से युक्त देहों पर वश करता है। सुखोत्पादक मोक्ष-मयी बुद्धियों का सेवन करता हुआ, बे रोक-टोक होकर, ज्ञान-किरणों से या स्तुतियों द्वारा विरोधी, द्वेष भाव, या अज्ञान का नाश करता है।

इतिसप्तमोऽनुवाकः ।

[९१] विद्वान्, राजा ईश्वर ।

अयास्य आङ्गिरस ऋषिः । बृहस्पतिर्देवता । त्रिष्टुभः । द्वादशर्चं सूक्तम् ।

इमां धियं सप्तशीर्ष्णीं पिता न ऋतप्रजातां बृहतीमविन्दत् ।
तुरीयं स्विज्जनयद् विश्वजन्योऽयास्य उक्थमिन्द्राय शंसन् ॥१॥

भा०—हमारा पालक परमेश्वर सत्य को प्रकट करने के लिये प्रकट हुई, तथा सात मुख्य छन्दों से युक्त बड़ी भारी वेदरूपी ज्ञानशक्ति को प्राप्त किये रहता है, और वही परमेश्वर समस्त जनों के हितकारी तुरीय मोक्षप्रद को भी उत्पन्न करता है, और वही निश्चेष्ट एवं निष्क्रिय या कभी न थकने वाला परमेश्वर साक्षात् द्रष्टा जीव को ज्ञानोपदेश करता है।

ऋतं शंसन्त ऋजु दीध्याना दिवस्पुत्रासो असुरस्य वीराः ।
विप्रं पदमङ्गिरसो दधाना यज्ञस्य धाम प्रथमं मनन्त ॥ २ ॥

भा०—'असु' अर्थात् संसार के प्रेरक बल में रमण करने वाले, तेजस्वी परमेश्वर के मानो पुत्र के समान, वीर्यवान् विद्वान् लोग, उस सत्य ज्ञान का उपदेश करते हुए, कल्याणमय स्वरूप का ध्यान करते हुए, और स्वयं विविध ज्ञानों से पूर्ण प्राप्तव्य परमपद को धारण करते हुए, अग्नि के समान तेजस्वी ज्ञानी विद्वान् पुरुष, सब में पूजनीय उपास्य परमेश्वर के धारण सामर्थ्य एवं तेज को सर्व श्रेष्ठ रूप से मानते हैं।

हंसैरिव सखिभिर्वावदद्भिरश्मन्मयानि नहना व्यस्यन् ।
बृहस्पतिरभिकनिक्रदद् गा उत प्रास्तौदुच्च विद्वाँ अगायत् ॥३॥

भा०—वह महती शक्ति का पालक परमेश्वर, निरन्तर आलाप करने वाले, मित्रों के समान उसी से नित्य भाषण करने वाले परमहंसों के द्वारा, पत्थर के समान दृढ़ आत्मा को बांधने वाले कर्म-बन्धनों को विविध प्रकार से तोड़ता फोड़ता है। वह ज्ञानवाणियों का साक्षात् उच्चारण करता है। वह विद्वान् वेद द्वारा वस्तुओं की यथार्थ स्तुति करता है, और वेदवाणी का उत्तम गान करता है।

अथवा—बड़ी भारी आत्मशक्ति का पालक पुरुष परमहंस मित्रों के समान संवाद द्वारा उपदेश करने वाले सद्गुरुओं द्वारा अपने शिला से बने कठोर बन्धनों के समान भोगमय बन्धनों को विशेष रूप से काटता हुआ ज्ञान-वाणियों को साक्षात् कराता है। और स्वयं ज्ञानी होकर उसकी स्तुति करता और गान करता है।

अवो द्वाभ्यां पर एकया गा गुहा तिष्ठन्तीरनृतस्य सेतौ ।
बृहस्पतिस्तमसि ज्योतिरिच्छन्नुदुस्रा आकर्वि हि तिस्र आवः ॥४॥

भा०—नीचे के दो द्वारों या वाणी और मन से परे, एकमात्र केवली चितिशक्ति रूप से हृदय गुहा या गुप्त आत्मा में स्थित ज्ञान-ज्योतियों को, मिथ्याज्ञान के बांधने वाले तामस-आवरण में ब्रह्मज्योति को चाहता हुआ योगी, ऊर्ध्व मस्तक में रश्मियों को प्रकट करता है, और तीनों द्वारों गुदा, हृदय और ब्रह्मारन्ध्र या अधिष्ठान, मणिपूर और ब्रह्मारन्ध्र तीनों को खोल लेता है।

विभिद्या पुरं शयथेमपाचीं निस्त्रीणि साकमुदधेरकृन्तत् ।
बृहस्पतिरुषसं सूर्यं गामर्कं विवेद स्तनयन्निव द्यौः ॥ ५ ॥

भा०—बृहती आत्मशक्ति का पालक योगी, इस प्रकार से आत्मा में अप्यय या विलयन के द्वारा अधोमुखी देहगत चित्-पुरी को भेदकर,

रससागर के समान धर्ममेध समाधि के बल से शेष तीन द्वारों को भी सर्वथा काट देता है। और तब अज्ञान, पाप और कर्मजाल के दहन करने वाली विशोका प्रज्ञा को और ज्ञानमयी वाणी को और अर्चनीय विशुद्ध आत्मस्वरूप को, गर्जते हुए आकाश के समान भीतरी नाद से गर्जता हुआ साक्षात् करता है।

इन्द्रो वलं रक्षितारं दुघानां करेणेव वि चकर्ता रवेण।
स्वेदाञ्जिभिराशिरमिच्छमानोऽरोदयत् पणिमा गा अमुष्णात् ॥ ६॥

भा०—योगज विभूतिमान् योगी, ब्रह्मरस को दोहन करने वाली प्रकाशधाराओं को रोक रखने वाले तामस-आवरण को मानो अपने हाथ से काट डाला जाता है, और भीतरी नाद से विनष्ट करता है, और वह योगी ही पुनः स्वेदों को प्रकट करने वाले प्राणों के आयमन रूप तपों द्वारा परमानन्द रस को प्राप्त करना चाहता हुआ, देह में नाना व्यापार करने हारे प्राण को ही दमन करता है। और तब आत्मप्रकाश की ज्ञान-धाराओं या किरणों को प्राप्त करता है।

स ईं सत्येभिः सखिभिः शुचद्भिर्गोधायसं वि धनसैरदर्दः।
ब्रह्मणस्पतिर्वृषभिर्वराहैर्घर्मस्वेदेभिर्द्रविणं व्यानट् ॥ ७॥

भा०—वह योगी सत्यवान्, मित्र के समान सदा अनुकूलगति वाले, तथा देह को शोधन करने वाले बलप्रद और ज्ञानप्रद प्राणों के बल से, उस प्रकाश को रोकने वाले अज्ञान-आवरण को विशेषरूप से नष्ट करता है। और पसीना बहाने वाले, बलवान् या आनन्द वर्षक, सु आहृत अर्थात् उत्तमरूप से वशीकृत अर्थात् प्रत्याहार द्वारा दमन किये गये प्रबल प्राणों द्वारा अति द्रुतगति वाले मन को भी विशेष रूप से वश में करता है?

ते सत्येन मनसा गोपतिं गा इयानास इषणयन्त धीभिः।
बृहस्पतिर्मिथो अवद्यपेभिरुदुस्रिया असृजत स्वयुग्भिः ॥ ८॥

भा०—वे प्राणगण सत्यज्ञान एवं सात्विक बल से युक्त मन के बल द्वारा प्रेरित होकर, और इन्द्रियों के पति आत्मा को प्राप्त होकर, उसके वश होकर अपने धारण और ध्यान के सामर्थ्यों द्वारा ज्ञान-रश्मियों को प्रकट और प्रेरित करते रहते हैं। और वह महती आत्मशक्ति का पालक योगी निन्दित विषयभोगों से रक्षा करने वाले और आत्मा में स्वयं समाहित हुए प्राणगणों द्वारा ज्ञान-किरणों को प्रकट करते हैं।

तं वर्धयन्तो मतिभिः शिवाभिः सिंहमिव नानदतं सधस्थे।
बृहस्पतिं वृषणं शूरसातौ भरेभरे अनु मदेम जिष्णुम् ॥ ९ ॥

भा०—वन में सिंह के समान इन्द्रियों के संघ में भीतरी प्राणरूप से नाद करने हारे, आनन्दवर्षक, वीर पुरुषों द्वारा प्राप्त प्रत्येक सग्राम में सेनापति के समान विजयी, बड़ी सेना के पति राजा के समान, विषय रूप शत्रुओं पर वश करने हारे उस योगी आत्मा को प्रत्येक यज्ञ में, कल्याणमय स्तुतियों से बढ़ाते हुए हम स्वयं भी आनन्द प्रसन्न होकर रहें।

यदा वाजमसनद् विश्वरूपमा द्यामरुक्षदुत्तराणि सद्म।
बृहस्पतिं वृषणं वर्धयन्तो नाना सन्तो बिभ्रतो ज्योतिरासा ॥ १० ॥

भा०—वह योगी जब परमेश्वरीय बल, ज्ञान या विभूति को प्राप्त कर लेता है, और मोक्ष और उत्कृष्ट लोकों को प्राप्त कर लेता है, तब उसके मुख द्वारा या उपदेश द्वारा ज्ञानज्योति को धारण करने वाले सत्पुरुष नाना प्रकार से उसके गुणानुवाद करते हैं।

सत्यामाशिषं कृणुता वयोधै कीरिं चिद्ध्यवथ स्वेभिरेवैः।
पश्चा मृधो अप भवन्तु विश्वास्तद् रोदसी शृणुतं विश्वमिन्वे ॥ ११ ॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो ! आप लोग दीर्घ आयु के धारण करने के निमित्त यथार्थ आशीर्वाद प्रदान करो। आप लोग अपने ज्ञानों द्वारा अपने स्तुतिकर्ता की सदा रक्षा करते हो। हमारी समस्त दुःखदायिनी विपत्तियां पीछे बहुत दूर हो जायं। हे स्त्री पुरुषो ! आप दोनों समस्त

संसार को तृप्त करने वाले होकर हमारे हितकर वेद के वचन को श्रवण करो, कराओ।

इन्द्रो॑ म॒ह्ना म॑ह॒तो अ॑र्ण॒वस्य॒ वि मू॒र्धान॑मभिनदर्बु॒दस्य॑ ।
अह॒न्नहि॒मरि॑णात् स॒प्त सिन्धू॑न् दे॒वैर्द्या॑वापृथिवी॒ प्राव॑तं नः ॥१२॥

भा०—ज्ञानैश्वर्यवान्, अज्ञान का नाशक आचार्य बड़े भारी, मेघ के समान आनन्दरस वर्षण करने में समर्थ, सागर के समान विशाल गम्भीर आत्मा के अधिष्ठित देह के मूर्धाभाग अर्थात् सूर्यचक्र को प्राणशक्ति द्वारा भेदन करता है, वा महान् ज्ञानसागर के प्रमुख अंश की विशेष प्रकार से व्याख्या कर उसका रहस्य खोलता है, अज्ञान का नाश करता, और सात शीर्षगत प्राणों को प्रेरित करता है। हे स्त्री पुरुषों! आप लोग गतिशील प्राणों द्वारा हमारी रक्षा करो।

[६२] ईश्वर स्तुति ।

१—१२ प्रियमेधः । १६—२१ पुरुहन्मा ऋषिः । इन्द्रो देवता । १—३ गायत्र्यः । ८, १३, १७, २१, १६ । पंक्तयः । १४—१६, १८, २० बृहत्यः । शेषा अनुष्टुभः । एकविंशत्यृचं सूक्तम् ।

अ॒भि प्र गोप॑तिं गि॒रेन्द्र॑मर्च॒ यथा॑ वि॒दे ।
सू॒नुं स॒त्यस्य॒ सत्प॑तिम् ॥ १ ॥
आ हर॑यः ससृज्रि॒रेऽरु॑षी॒रधि॑ ब॒र्हिषि॑ ।
यत्रा॒भि सं॒नवा॑महे ॥ २ ॥
इन्द्रा॑य॒ गाव॑ आ॒शिरं॑ दुदु॒ह्रे व॒ज्रिणे॒ मधु॑ ।
यत् सी॑मुपह्व॒रे वि॒दत् ॥ ३ ॥

भा०—(१—३) तीन मन्त्रों की व्याख्या देखो (अथर्व कां० २० । २२ । ४—६)

उद् यद् ब्र॒ध्नस्य॑ वि॒ष्टपं॑ गृ॒हमिन्द्र॑श्च॒ गन्व॑हि ।
मध्वः॑ पी॒त्वा स॑चेवहि॒ त्रिः स॒प्त सख्युः॑ प॒दे ॥ ४ ॥

भा०—जब मैं और विभूतिमान् आत्मा हम दोनों महान् परमेश्वर के दुःखों से रहित शरण को प्राप्त होते हैं, तब वहां इक्कीस तत्वों के स्वामी उस मित्र परमेश्वर के ज्ञानमय वेदरूप में स्थित होकर, आनन्द-रस का पान करके, हम उपास्य उपासक परस्पर संगत होते हैं।

अर्चत प्रार्चत प्रियमेधासो अर्चत ।
अर्चन्तु पुत्रका उत पुरं न धृष्ण्वर्चत ॥ ५ ॥

भा०—हे यज्ञ या पवित्र आत्मा को प्रिय रूप से प्राप्त करने वाले साधक पुरुषो ! आप लोग उस परमेश्वर की अर्चना करो, खूब स्तुति प्रार्थना उपासना करो। नित्य स्तुति प्रार्थना उपासना किया करो। हे पुत्रो तुम लोग दुर्ग के समान शत्रु का घर्षण करने वाले, उस परमेश्वर के अखण्ड रूप की उपासना करो, और नित्य उपासना करो।

अव स्वराति गर्गरो गोधा परि सनिष्वणत् ।
पिंगा परि चनिष्कददिन्द्राय ब्रह्मोद्यतम् ॥ ६ ॥

भा०—प्रवक्ता गुरु परमेश्वर के सर्वोत्कृष्ट वेदवचन को बोले, उपदेश करे। वाणी के धारण करने वाली स्त्री एवं इन्द्रियों को धारण करने वाली मनःशक्ति उसी को सर्वत्र वीणा के समान उपदेश करे, गुने। मधुर ध्वनि करने वाली वाणी, उसी का सर्वत्र उच्चारण करे।

आ यत् पतन्त्येन्यः सुदुघा अनपस्फुरः ।
अपस्फुरं गृभायत सोममिन्द्राय पातवे ॥ ७ ॥

भा०—उत्तम जल से पूर्ण प्रशान्त जल धाराओं के समान जब ब्रह्मरस की धाराएं प्राप्त हो जाती हैं, तब हे विद्वान् योगाभ्यासी पुरुषो ! तुम लोग आत्मा के प्रशान्त आनन्दरस को पान करने के लिये उसको ग्रहण करो, उसका साक्षात् करो।

अपादिन्द्रो अपादग्निर्विश्वे देवा अमत्सत ।
वरुण इदिह क्षयत् तमापो अभ्यनूषत वत्सं संशिश्वरीरिव ॥८॥

भा०—गौएं बछड़े को देखकर जिस प्रकार हंभारती हैं उसी प्रकार उस आत्मा को लक्ष्य करके समस्त प्राण एवं समस्त 'आप्त' या ब्रह्मपद प्राप्त विद्वान् एवं समस्त ज्ञानवाणी और कर्मपद्धतियां भी उसी की साक्षात् स्तुति करते हैं। जीवात्मा उसी के रस का पान करता है, अग्रणी ज्ञानी पुरुष भी उसी का पान करता है। समस्त विद्वान्-गण उसी में तृप्त होते हैं। सर्वश्रेष्ठ वरण योग्य आत्मा भी इसी में स्थिर निवास करता है।

सुदेवो असि वरुण यस्य ते सप्त सिन्धवः ।
अनुक्षरन्ति काकुदं सूर्म्यंसुषिरामिव ॥ ९ ॥

भा०—हे सर्वश्रेष्ठ आत्मन्! तू सर्वश्रेष्ठ देव, एवं उत्तम सुख और कल्याण का देनेहारा है। जिस तेरे सातों शिरोगत प्राण एक धारा के समान होकर तालु के प्रति प्रवाहित होते हैं। योगाभ्यासी के सातों प्राणों का रस तालु से अमृतरूप से द्रवित होता है। मानों सात धाराएं एक धार होकर बहती हैं।

यो व्यतीँरफाणयत् सुयुक्ताँ उप दाशुषे ।
तक्वो नेता तदिद् वपुरुपमा यो अमुच्यत ॥ १० ॥

भा०—जो योगाभ्यासी पुरुष विविध विषयों में जाने वाले, उत्तम रीति से सन्मार्ग में लगाये गये इन्द्रिय रूप प्राणों को, यज्ञशील आत्मा को प्राप्त करने के लिये उसके प्रति पहुंचाता है, उनको वशकर भीतर की तरफ ही एकाग्र कर लेता है, वह कृच्छ्र तपस्वी नायक के समान होकर, जब उसका साक्षात् ज्ञान कर लेता है तब ही वह इस शरीर-बन्धन से मुक्त हो जाता है।

अतीदु शक्र ओहत इन्द्रो विश्वा अति द्विषः ।
भिनत् कनीन ओदनं पच्यमानं परो गिरा ॥ ११ ॥

भा०—वह आत्मा या योगाभ्यासी पुरुष शक्तिमान् होकर समस्त

रागादि शत्रुओं को अतिक्रमण करके समस्त दुःखों के पार पहुंच जाता है। और वह अति कमनीय तथा समस्त इन्द्रियगण और मन से भी परे विद्यमान रहकर, परिपक्व होने वाले भात के समान भोग्य ब्रह्मरूप को ओंकार-रूप नाद द्वारा भेद लेता, उसे प्राप्त हो जाता है।

अर्भको न कुमारकोऽधि तिष्ठन्नवं रथम्।
स पक्षन्महिषं मृगं पित्रे मात्रे विभुक्रतुम् ॥ १२ ॥

भा०—नौजवान बच्चा जिस प्रकार नये रथ पर चढ़कर वीरता से जाता और मृग तथा महिष को पकड़ कर वश करता, और मा बाप के हर्ष का हेतु होता है, उसी प्रकार वह योगाभ्यासी भी अति सूक्ष्म शरीर होकर, नये रथरूप देह पर आरूढ़ होकर, विभु तथा क्रियाशील, सबके खोजने योग्य, तथा महादानी परमेश्वर को पिता माता के पद पर स्वीकार कर लेता है।

पक्ष परिग्रहे। भ्वादिः।

आ तू सुशिप्र दम्पते रथं तिष्ठा हिरण्ययम्। अध द्युक्षं सचेवहि सहस्रपादमरुषं स्वस्तिगामनेहसम् ॥ १३ ॥

भा०—हे उत्तम मुख वाले पती और पत्नी! तुम दोनों हितकारी और रमणीय गृहस्थ-रथ पर आरूढ़ होओ। और संकल्प करो कि हम दोनों सहस्रों पादों से युक्त, तेजोमय सुख तथा कल्याण प्राप्त कराने वाले, पापरहित, तथा द्युलोक में निवास करने वाले ब्रह्म को प्राप्त करेंगे।

तं घेमित्था नमस्विन उप स्वराजमासते। अर्थं चिदस्य।
सुधितं यदेतव आवर्तयन्ति दावने ॥ १४ ॥

भा०—उत्तम रूप से सुरक्षित परम पुरुषार्थ की प्राप्ति के लिये, उपासक लोग, आत्म समर्पण के निमित्त जब पुनः पुनः ज्ञान और कर्म का अभ्यास करते हैं, तब ही नमस्कार करने वाले उपासक जन, उस

स्वतःप्रकाशमान परमेश्वर की ही इस प्रकार सत्यरूप में उपासना करते हैं।

अनु प्रत्नस्यौकसः प्रियमेधास एषाम्।
पूर्वामनु प्रयतिं वृक्तबर्हिषो हितप्रयस आशत ॥ १५ ॥

भा०—ब्रह्मज्ञान के प्रिय, ज्ञान को प्राप्त करने वाले, अपने पूर्वजन्म के किये उत्कृष्ट यत्न के अनुकूल अध्यात्मयज्ञ में प्राणों का नियमन करने वाले साधकजन, इनमें से सबसे पुरातन आश्रय रूप परम ब्रह्म का ही निरन्तर उपभोग करते हैं, उसमें रमते हैं।

यो राजा चर्षणीनां याता रथेभिरध्रिगुः।
विश्वासां तरुता पृतनानां ज्येष्ठो यो वृत्रहा गृणे ॥ १६ ॥

भा०—जो मनुष्यों के बीच में राजा के समान दर्शनशील इन्द्रियों के बीच ज्ञान से प्रकाशित एवं उनका प्रकाशक है, जो अस्थिर इन्द्रियों से युक्त होकर रमणकारी देहों से जीवनपथ पर यात्रा करने वाला है, और जो समस्त आभ्यान्तर शत्रुरूप वासनाओं का नाशक, और स्वयं सबसे श्रेष्ठ, और आवणकारी अज्ञान का नाशक है, उसका मैं उपदेश करता हूँ।

इन्द्रं तं शुम्भ पुरुहन्मन्नवसे यस्य द्विता विधर्तरि।
हस्ताय वज्रः प्रति धायि दर्शतो महो दिवे न सूर्यः ॥१७॥

भा०—हे बहुत कष्टों के नाशक विद्वन्! जिसके विविध उपायों से धारण करने हारे स्वरूप में संसार के रक्षण के लिये निग्रह अनुग्रह रूप दो प्रकार हैं, उस परमेश्वर के गुणों को वर्णन कर। और जिसका कि वीर्य दुष्टों का हनन करने के लिये, आकाश में सूर्य के समान बड़ा दर्शनीय है वह प्रत्येक पदार्थ में स्थित है।

नकिष्टं कर्मणा नशद् यश्चकार सदावृधम्। इन्द्रं न
यज्ञैर्विश्वगूर्तमृभ्वसमधृष्टं धृष्णवोजसम् ॥ १८ ॥

भा०—जो सदा बढ़ने वाले, सर्वस्तुत्य, महान्, धर्षणशील पराक्रम वाले, कभी न हारे हुए, ऐश्वर्यवान् आत्मा को साधता है, उसके पद को कोई भी न कर्म से प्राप्त करता है, और न यज्ञों से ही कोई उसके पद तक पहुंचता है।

अषा॑ल्हमु॒ग्रं पृत॑नासु सास॒हिं यस्मि॑न् म॒हीरु॑रु॒ज्रयः॑ ।

सं धे॒नवो॒ जाय॑माने अनोनवु॒र्द्याव॒: क्षामो॑ अनोनवुः ॥ १९ ॥

भा०—जिसके प्रकट होने पर वेदवाणियां उस पराक्रमी, सदा बलवान्, अन्तः शत्रु-सेनाओं पर विजय करने वाले परमेश्वर की मिलकर स्तुति करती हैं उसी परमेश्वर की स्तुतियां बड़े बड़े सूर्य भी कर रहे हैं, तथा बड़ी पृथिवियां भी कर रही हैं।

यद् द्याव॑ इन्द्र ते श॒तं श॒तं भूमी॑रु॒त स्युः ।

न त्वा॑ वज्रिन्त्स॒हस्रं॒ सूर्या॒ अनु॒ न जा॒तम॑ष्ट॒ रोद॑सी ॥ २० ॥

आ प॑प्राथ महि॒ना वृष्ण्या॑ वृष॒न् विश्वा॑ शविष्ठ॒ शव॑सा ।

अ॒स्माँ अ॑व मघव॒न् गोम॑ति व्र॒जे वज्रि॑ञ् चि॒त्राभि॑रू॒तिभि॑: ॥२१॥

भा०—(२०, २१) दोनों मन्त्रों की व्याख्या देखो अथर्व० २० । ८१ । १ ॥

[६३] ईश्वर स्तुति ।

१—३ प्रगाथः ऋषिः । ४—८ देवजामय इन्द्रमातरः । इन्द्रो देवता । गायत्र्यः ।

अष्टर्चं सूक्तम् ।

उत् त्वा॑ मन्दन्तु॒ स्तोमा॑: कृणु॒ष्व राधो॑ अद्रिवः ।

अव॑ ब्रह्म॒द्विषो॑ जहि ॥ १ ॥

भा०—हे अखण्ड बलवीर्यवन्! तुमको स्तुतिसमूह और स्तुतिकर्त्ता जन उत्तम रीति से हर्षित करें। तू अन्न और ज्ञान, भक्ति आदि ऐश्वर्य प्रदान कर। ब्रह्म, वेद और वेदज्ञ विद्वानों से द्वेष करने वाले पुरुषों का नाश कर।

प्रदा प्रणीँ रराधसो नि बाधस्व महाँ असि ।
नहि त्वा कश्चन प्रति ॥ २ ॥

भा०—आराधना से रहित केवल लोक व्यवहार में चतुर, लोभी पुरुष को तू पैर से पीड़ित कर । तू महान् है । तेरे मुकाबले पर कोई भी नहीं है ।

त्वमीशिषे सुतानामिन्द्र त्वमसुतानाम् ।
त्वं राजा जनानाम् ॥ ३ ॥

भा०—हे परमेश्वर उत्पन्न और अनुत्पन्न सभी का तू स्वामी है । तू समस्त जनों का राजा है ।

ईङ्खयन्तीरपस्युव इन्द्रं जातमुपासते ।
भेजानासः सुवीर्यम् ॥ ४ ॥

भा०—उत्तम वीर्यवान्, परम बलस्वरूप परमेश्वर का भजन करती हुईं, ज्ञान और कर्म का लाभ चाहती हुईं इस परमेश्वर की शरण में जाती हुईं प्रजाएं हृदय में प्रकट हुए परमेश्वर की उपासना करती हैं ।

त्वमिन्द्र बलादधि सहसो जात ओजसः ।
त्वं वृषन् वृषेदसि ॥ ५ ॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन् ! तू अधिक गुणवान्, वीर्यवान् और पराक्रमी रूप से प्रकट होता है । हे सुखों के वर्षक ! तू साक्षात् मेघ के समान आनन्द-घन होकर आनन्द की वर्षा करता है ।

त्वमिन्द्रासि वृत्रहा व्य१न्तरिक्षमतिरः ।
उद् द्यामस्तभ्ना ओजसा ॥ ६ ॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन् ! तू आवरणकारी शक्तियों का नाशक है । तू हृदयाकाश को विशेष रूप से व्याप लेता है, और अपने पराक्रम से समस्त तेजोमय शक्ति को थामे हुए है ।

त्वमिन्द्र सुजोषसमर्कं बिभर्षि बाह्वोः ।
वज्रं शिशान ओजसा ॥ ७ ॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन् ! तू सेवनीय गुणों से युक्त अर्थात् अर्चनीय स्वरूप को बाहु सदृश अपने ज्ञान और कर्म के द्वारा धारण करता है, और अपने वीर्य पराक्रम से ज्ञानरूप वज्र को और भी तीक्ष्ण करता है ।

त्वमिन्द्राभिभूरसि विश्वा जातान्योजसा ।
स विश्वा भुव आभवः ॥ ८ ॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन् ! तू अपने पराक्रम से समस्त उत्पन्न लोकों का अभिभावक, रक्षक है । वह तू समस्त भूमियों को सब प्रकार से प्राप्त है ।

[६४] राजा, आत्मा और परमेश्वर ।

आंगिरसः कृष्ण ऋषिः । १–३ १०, ११ त्रिष्टुभः । ४–६ जगत्यः । एक-दशर्चं सूक्तम् ।

आ यात्विन्द्रः स्वपतिर्मदाय यो धर्मणा तूतुजानस्तुविष्मान् ।
प्रत्वक्षाणो अति विश्वा सहांस्यपारेण महता वृष्ण्येन ॥ १ ॥

भा०—जो ऐश्वर्यवान् आत्मा ! राजा ! अपने धारण करने वाले सामर्थ्य से सर्वत्र व्यापक, महान् सामर्थ्यवान् है, जो अनन्त, बल से समस्त बलों को पार करके उनको उत्तम रीति से गढ़ता या बनाता है, वह समस्त धनों का स्वामी परमानन्द प्रदान करने के लिये हमें साक्षात् प्राप्त हो ।

सुष्ठामा रथः सुयमा हरी ते मिम्यक्ष वज्रो नृपते गभस्तौ ।
शीभं राजन्त्सुपथा याह्यर्वाङ् वर्धाम ते पपुषो वृष्ण्यानि ॥२॥

भा०—हे राजन् ! तेरा रथ उत्तम रीति से युद्ध में स्थिर रहने वाला हो । तेरे घोड़े उत्तम रीति से नियम में रहने वाले हों । तेरे हाथ में खड्ग वर्तमान रहे । तू उत्तम मार्ग से शीघ्र वेग से सम्मुख प्रयाण करे ।

हे तेजस्विन् ! राष्ट्र के नित्य पालन करने वाले तेरे बलों को हम बढ़ावें।

अध्यात्म में—हे आत्मन्! तेरा देहरूप रथ सदा सुख से स्थिर रहे। तेरे प्राण उदान रूप घोड़े उत्तम रूप से नियम में रहे। हाथ में सदा ज्ञानरूप वज्र रहे। तू उत्तम मार्ग से आगे बढ़। पालनकारी एवं आनन्दरस के पान कराने वाले तेरे बलों को हम बढ़ावें।

एन्द्रवाहो॑ नृपतिं॒ वज्र॑बाहुमु॒ग्रास॑स्तवि॒षास॑ एनम्।
प्रत्व॑क्षसं वृष॒भं स॒त्यशु॑ष्म॒मेम॑स्म॒त्रा स॑ध॒मादो॑ वहन्तु॥ ३॥

भा०—खड्ग को हाथ में लिये, अति बलवान्, शत्रुबलों के नाशक, सत्य बल वाले, सुखों के वर्षक, मनुष्यों के पालक राजा को, अति बलवान् बड़े बड़े एक साथ आनन्द लाभ करने वाले हम में से राजा के कार्य को वहन करने या सञ्चालन करने में समर्थ योग्य पुरुष, राज्यकार्य में संचालित करें।

ए॒वा पतिं॑ द्रो॒णसा॑चं॒ सचे॑तसमू॒र्जस्क॒म्भं ध॒रुण॒ आ वृ॑षायसे।
ओज॑: कृष्व॒ सं गृ॑भाय॒ त्वे अ॒प्यसो॒ यथा॑ केनि॒पाना॑मि॒नो वृ॒धे॥४॥

भा०—हे राजन्! इस प्रकार तू अपने पालक, राष्ट्र में विद्यमान, ज्ञानवान्, बलों के स्तम्भन करने वाले प्रजाजन को अपने धारण पोषण करने वाले शासन में प्रेम से चाहता है। तू पराक्रम सम्पादन कर। अपने में ही तू राष्ट्र के कार्यों को संग्रह कर। जिससे तू बड़े बड़े ज्ञानी पुरुषों की वृद्धि के लिये उनका राजा बनकर रह।

अध्यात्म में—देहरूप घर में व्यापक, चेतनावान्, बल के धारक, पालक प्राण को हे आत्मन्! तू अपने धारक प्रयत्न में रखता है। तू बल सम्पादन कर, अपने में संचित कर, जिससे सुखमय आत्मा के परम रस को पान करने वाले अथवा सुखमय परब्रह्म तक पहुंचने वाले अध्यात्म ज्ञानियों का भी स्वामी हो।

'केनिपानाम्'—केनिप इति मेधाविनाम। केनि शब्दयोरुपपदयोः

पततेः पातेर्वा डः । के आत्मनि सुखमये परे ब्रह्मणि नि पतन्ति गच्छन्ति पान्ति या रसं इति केनिपाः ।

गमन्नस्मे वसून्या हि शंसिषं स्वाशिषं भरमा याहि सोमिनः ।
त्वमीशिषे सास्मिन्ना सत्सि बर्हिष्यनाधृष्या तव पात्राणि धर्मणा ॥५

भा०—हमें नाना ऐश्वर्य प्राप्त हों । मैं तेरी ही स्तुति करता हूँ । तू सोम रस से यज्ञ करने वाले पुरुष के उत्तम आशा जनक यज्ञ को प्राप्त हो । तू सबका स्वामी है । वह तू इस महान् यज्ञ में इस आसन पर आ विराज । धारण बल द्वारा तेरे पालन सामर्थ्य शत्रुओं से विजय किये नहीं जा सकते ।

पृथक् प्रायन् प्रथमा देवहूतयोऽकृण्वत श्रवस्यानि दुष्टरा ।
न ये शेकुर्यज्ञियां नावमारुहमीर्मैव ते न्यविशन्त केपयः ॥ ६ ॥

भा०—श्रेष्ठ, परमेश्वर के उपासक अथवा इन्द्रियों को वश करने हारे पुरुष, जो अपार ज्ञानैश्वर्यों और यशों को प्राप्त करते हैं, वे सबसे अधिक उत्कृष्ट मार्ग पर गमन करते हैं । और जो संसार से पार होने के साधनरूप यज्ञ, आत्मा, परमात्मा सम्बन्धी नौका पर चढ़ने में समर्थ नहीं होते वे कुत्सित आचरण वाले, भ्रष्टाचार होकर मानों ऋणी से जैसे, नीचे ही नीचे डूबते जाते हैं ।

एवैवापागपरे सन्तु दूढ्योऽश्वा येषां दुर्युज आयुयुज्रे ।
इत्था ये प्रागुपरे सन्ति दावने पुरूणि यत्र वयुनानि भोजना ॥७॥

भा०—इसी प्रकार दूसरे लोग जिनके कष्ट से योगमार्ग में एकाग्र होने वाले अजित इन्द्रिय इधर उधर के विषयों में लग जाते हैं वे नीचे की ओर जाने वाले दुष्ट बुद्धि वाले हो जाते हैं । इस प्रकार जो उत्कृष्ट मार्ग में उत्तम दिशा में सर्व दुःखनाशक और समस्त सुखदायक परमेश्वर के निमित्त हो जाते हैं, जहां बहुत से ज्ञान और बहुत से नाना भोग्यफल प्राप्त होते हैं, वे कृतकृत्य होते हैं ।

गिरीँरज्रान् रेजमानाँ अधारयद् द्यौः क्रन्ददन्तरिक्षाणि कोपयत् ।
समीचीने धिषणे वि ष्कभायति वृष्णः पीत्वा मद उक्थानि शंसति ८

भा०—वह परमेश्वर निरन्तर चलने वाले, कांपने वाले मेघों और पर्वतों को स्थिर करता व धारण करता है। प्रकाशमान सूर्य को चमकाता और अन्तरिक्षस्थ विद्युत्, मेघ, आदि नाना पदार्थों को बड़े वेग से चला रहा है। वह परस्पर संगत हुए सब पदार्थों के आश्रय, द्यौ और पृथिवी दोनों को भी विशेष रूप से थामे हुए है। वह आनन्द रसों के वर्षण करने वाले ज्ञानों बलों और लोकों को अपने भीतर विलीन करके अति आनन्द में ज्ञान-वचनों का भी उपदेश करता है।

इमं बिभर्मि सुकृतं ते अङ्कुशं येनारुजासि मघवं छफारुजः ।
अस्मिन्त्सु ते सवने अस्त्वोक्यं सुत इष्टौ मघवन् बोध्याभगः ॥९॥

भा०—हे परमेश्वर! मैं तेरे बनाये या दिये पुण्याचरण रूप या उत्तम रीति से सम्पादित प्रेरक बल या ज्ञान को अपने ऊपर शासक के रूप में धारण करता हूँ। जिससे हे ऐश्वर्यवन्! तू निन्दा वचनों से हृदय को पीड़ा देने वाले दुष्ट पुरुषों को भी पीड़ित करता है। तेरे इस महान् ऐश्वर्य या शासन में हमारा निवास उत्तम रीति से हो। और हे ऐश्वर्यवन्! सब प्रकार से सेवन करने योग्य तू उपासनारूप यज्ञ के सम्पादन करने के अवसर में हमारे अभिप्राय और स्तुति को जान।

गोभिष्टरेमामतिं दुरेवां यवेन क्षुधं पुरुहूत विश्वाम् ।
वयं राजभिः प्रथमा धनान्यस्माकेन वृजनेना जयेम ॥१०॥
बृहस्पतिर्नः परि पातु पश्चादुतोत्तरस्मादधरादघायोः ।
इन्द्रः पुरस्तादुत मध्यतो नः सखा सखिभ्यो वरिवः कृणोतु ॥११॥

भा०—(१०, ११) दोनों मन्त्रों की व्याख्या देखो अथर्व० २०।१७।१०, ११॥

[६५]

१ गृत्समद ऋषिः । २–४ सुदाः पैजवनः । १ अष्टिः । ३–४ शक्वर्यः । इन्द्रो देवता । चतुर्ऋचं सूक्तम् ।

त्रिकद्रुकेषु महिषो यवाशिरं तुविशुष्मस्तृपत् सोममपिबद् विष्णुना सुतं यथावशत् । स ईं ममाद महि कर्म कर्तवे महामुरुं सैनं सश्चद् देवो देवं सत्यमिन्द्रं सत्य इन्दुः ॥ १ ॥

भा०—महान् ऐश्वर्यवान् आत्मा, आनन्द रस से तृप्त होकर, व्यापक परमेश्वर के संग से प्राप्त ब्रह्मानन्द रस का पान करता है । वह ब्रह्मरस उस महान् योगी पुरुष को महान् महान् कर्म करने के लिये समर्थ करता है । वह तेजस्वी सत्यस्वरूप परमेश्वर प्रकाशमान तथा ऐश्वर्यवान् इस आत्मा को ही प्राप्त होता है ।

राजा के पक्ष में—तीनों लोकों में सर्वश्रेष्ठ, बड़ा बलवान् राजा, अपने व्यापक बल-सामर्थ्य से शत्रुनाशक सेनापतियों पर आश्रित ऐश्वर्यजनक राष्ट्र का भोग करता है । वह राष्ट्ररूप ऐश्वर्य उस महान् विस्तृत बल वाले राजा को बड़े बड़े कार्य करने के लिये प्रेरित करता है । सत्य न्याय के बलवाला वह राष्ट्र सत्यकर्मा, न्यायी, विजयी, ऐश्वर्यवान् राजा को प्राप्त होता है ।

प्रो ष्वस्मै पुरोरथमिन्द्राय शूषमर्चत । अभीके चिदु लोककृत् संगे समत्सु वृत्रहास्माकं बोधि चोदिता नभन्तामन्यकेषां ज्याका अधि धन्वसु ॥ २ ॥

भा०—इस ऐश्वर्यवान् राजा के प्रति रथों समेत बल प्रदान करो । भय रहित परस्पर के मेल मिलाप में लोकों का उपहार करने वाला, और संग्रामों के अवसरों में शत्रुओं का नाश करने वाला होकर हमें न्यायपथ में ले जाने हारा, तथा हमारा हित जानने वाला है । उसके होते हमारे शत्रुओं के धनुषों पर डोरियें टूट जायें ।

त्वं सिन्धूँरवासृजोऽधराचो अहन्नहिम्। अशत्रुरिन्द्र जज्ञिषे विश्वं पुष्यसि वार्यं तं त्वा परि ष्वजामहे नभ० ॥ ३ ॥

भा०—हे परमेश्वर ! तू नदी नदों को नीचे जाने वाला बनाता है। और कुटिलाचारी पुरुष का तू नाश करता है। तू शत्रुरहित जाना जाता है। तू समस्त वरने योग्य ऐश्वर्य को पुष्ट करता है। उस तुझको हम सब प्रकार से अपनाते हैं। पूर्ववत्।

राजा के पक्ष में—अति वेग से जाने वाले सेनादलों को अपने अधीन रखकर चलाता है। शत्रु का नाश करता है। तू शत्रुरहित जाना जाता है। समस्त ऐश्वर्य की वृद्धि करता है, हम प्रजाजन तेरा आश्रय लेते हैं।

वि षु विश्वा अरातयोऽर्यो नशन्त नो धियः। अस्तासि शत्रवे वधं यो न इन्द्र जिघांसति या ते रातिर्ददिर्वसु नभन्तामन्यकेषां ज्याका अधि धन्वसु ॥ ४ ॥

भा०—समस्त चढ़ाई करने वाला तथा कर आदि न देने वाले शत्रुजन अच्छी प्रकार नष्ट हों। हमारी स्तुतियां तुझे प्राप्त हों। हे शत्रु-नाशक ! हमें जो मारना चाहता है उस शत्रु को नाश करने के लिये तू वधकारी शस्त्र का प्रयोग करता है। और जो तेरा दानशील हाथ है। वह ऐश्वर्य प्रदान करता है। पूर्ववत् ॥

[९६]

१–५ पूरणो वैश्वामित्रः। ६–१० यक्ष्मनाशनः प्राजापत्यः। ११–१६ रक्षोहा ब्राह्मः। १७–२३ विवृहा काश्यपः। २४ प्रचेताः। १–५ इन्द्रो देवता। ६–१० राजयक्ष्मघ्नम्। ११–१६ गर्भसंस्रावे प्रायश्चित्तम्। १७–२५ यक्ष्मघ्नम्। २४ दुःस्वप्नघ्नम्। ११–१० त्रिष्टुभः। ११–२४ अनुष्टुभः। चतुर्विंशत्यृचं सूक्तम्।

तीव्रस्याभिवयसो अस्य पाहि सर्वरथा वि हरी इह मुञ्च। इन्द्र मा त्वा यजमानासो अन्ये नि रीरमन् तुभ्यमिमे सुतासः ॥ १ ॥

भा०—हे ऐश्वर्यशील जीवात्मन्! तीव्र तथा योग्य कर्म-फलों से युक्त इस आनन्द-रस को स्वीकार कर। समस्त रमण योग्य देहों में विद्यमान हरणशील अश्वों के समान प्राण और अपान दोनों को इस ज्ञान की दशा में त्याग दे। हे आत्मन्! तुझको दूसरे मार्ग पर ले जाने वाले, संगकारी विषयगण प्रलोभन में न फांस लें, ये उत्पन्न आभ्यन्तर आनन्द-रस तेरे ही लिये हैं।

तुभ्यं॑ सु॒तास्तुभ्य॑मु॒ सोत्वा॑स॒स्त्वां गिरः॒ श्वात्र्या॑ आ ह्व॑यन्ति।
इन्द्रे॒दम॒द्य सव॑नं जुषा॒णो विश्व॑स्य वि॒द्वाँ इ॒ह पा॑हि॒ सोम॑म् ॥२॥

भा०—हे जीवात्मन्! उत्पन्न पदार्थ तेरे उपभोग के लिये ही हैं। उत्पन्न होने वाले पदार्थ भी तेरे लिये ही हैं। अति शुभ्र सुस्पष्ट वेदवाणियां भी तुझे ही लक्ष्य करके पुकारती हैं। हे आत्मन्! आज इस उपासना को स्वीकार करता हुआ तू संसार का ज्ञाता होकर आत्मानन्द रस का इस लोक में पान कर।

य उ॑श॒ता मन॑सा॒ सोम॑मस्मै सर्व॒हृदा॑ दे॒वका॑मः सु॒नोति॑।
न गा इन्द्र॒स्तस्य॒ परा॑ ददाति प्रश॒स्तमिच्चारु॑मस्मै कृणोति ॥३॥

भा०—जो पुरुष अभिलाषा वाले मन से पूर्णहृदय से उपास्यदेव की प्राप्ति की इच्छा करता हुआ इसके साक्षात् के लिये ब्रह्मानन्द रस का निष्पादन करता है, परमात्मा उस पुरुष के प्राप्त होने योग्य ज्ञानेन्द्रियों और वाणियों या शक्तियों को विनष्ट न होने देता। प्रस्तुत उसके लिये सर्वश्रेष्ठ उत्तम उत्तम फल ही उत्पन्न करता है।

अनु॑स्पष्टो भवत्ये॒षो अ॑स्य॒ यो अ॑स्मै रे॒वान् न सु॒नोति॒ सोम॑म्।
निर॑र॒त्नौ म॒घवा॒ तं द॑धाति ब्रह्म॒द्विषो॑ ह॒न्त्यना॑नुदिष्टः ॥ ४ ॥

भा०—जो पुरुष विभूतिमान् होकर इस आत्मा के लिये ब्रह्मरस का सेवन करता है, ब्रह्मध्यान का अभ्यास करता है, उसको यह आत्मा साक्षात् हो जाता है। वह ऐश्वर्यवान् आत्मा उस अभ्यासी पुरुष को

अपने हाथ में स्थापित करता है, और बिना प्रार्थना किये उस महान् ब्रह्म से प्रेम न करने वाले मानस दुर्व्यापारों का विनाश कर देता है ।

अश्वायन्तो गव्यन्तो वाजयन्तो हवामहे त्वोपगन्तवा उ ।
आभूषन्तस्ते सुमतौ नवायां वयमिन्द्र त्वा शुनं हुवेम ॥ ५ ॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन् आत्मन् ! तुझे प्राप्त होने के लिये हम बलवान् प्राणों या कर्मेन्द्रियों को चाहते हुए, ज्ञान इन्द्रियों और ज्ञानवाणियों को चाहते हुए, और अन्न या ऐश्वर्य, ज्ञान-समृद्धि चाहते हुए, तेरा स्मरण करते हैं । हम तेरी स्तुति करते हुए तेरी स्तुतियोग्य शुभ मति में रहते हुए अति सुखस्वरूप तुझे स्मरण करें ।

मुञ्चामि त्वा हविषा जीवनाय कमज्ञातयक्ष्मादुत राजयक्ष्मात् ।
ग्राहिर्जग्राह यद्येतदेनं तस्या इन्द्राग्नी प्र मुमुक्तमेनम् ॥ ६ ॥
यदि क्षितायुर्यदि वा परेतो यदि मृत्योरन्तिकं नीत एव ।
तमा हरामि निर्ऋतेरुपस्थादस्पार्षमेनं शतशारदाय ॥ ७ ॥
सहस्राक्षेण शतवीर्येण शतायुषा हविषाहार्षमेनम् ।
इन्द्रो यथैनं शरदो नयात्यति विश्वस्य दुरितस्य पारम् ॥ ८ ॥
शतं जीव शरदो वर्धमानः शतं हेमन्तान् छतमु वसन्तान् ।
शतं त इन्द्रो अग्निः सविता बृहस्पतिः शतायुषा हविषाहार्षमेनम् ॥
आहार्षमविदं त्वा पुनरागाः पुनर्णवः ।
सर्वाङ्ग सर्वं ते चक्षुः सर्वमायुश्च तेऽविदम् ॥ १० ॥

भा०—(६-९) इन ४ मन्त्रों की व्याख्या देखो अथर्व० ३ । ११ । १—४ ॥ मन्त्र १० की व्याख्या देखो अथर्व० ८ । १ । २० ॥

ब्रह्मणाग्निः संविदानो रक्षोहा बाधतामितः ।
अमीवा यस्ते गर्भं दुर्णामा योनिमाशये ॥ ११ ॥

यस्ते गर्भममीवा दुर्णामा योनिमाशये ।
अग्निष्टं ब्रह्मणा सह निष्क्रव्यादमनीनशत् ॥ १२ ॥

भा०—राक्षसों अर्थात् रोगजनक जीवों का नाशक ज्ञानवान् पुरुष ब्रह्मवेद और वेदज्ञ विद्वान् के साथ सहमति करके, उस दुष्ट स्वभाव वाले रोग को जो कि तेरे गर्भ और योनि में बैठा है, यहां से दूर करे ॥ ११ ॥ यः ते गर्भ इत्यादि पूर्ववत् । वह तेजस्वी ज्ञानबल के साथ उस कच्चा मांस खाने वाले पीड़ाकारी रोग वा दुष्ट पुरुष को सर्वथा नष्ट करे ।

यस्ते हन्ति पतयन्तं निषत्स्नुं यः सरीसृपम् ।
जातं यस्ते जिघांसति तमितो नाशयामसि ॥ १३ ॥

भा०—हे स्त्री ! तेरे गर्भाशय में वीर्यरूप से निषिक्त होते हुए, और गर्भाशय में जमते हुए, और उसी में गति करते हुए, और उत्पन्न हुए बालक को जो जो दुष्ट कीटाणु या पुरुष को नाश करता है, और जो उत्पन्न हुए शिशु को मार देना चाहता है, उसको इस राष्ट्र और देह से हम नष्ट कर दें ।

यस्त ऊरू विहरत्यन्तरा दम्पती शये ।
योनिं यो अन्तरारेल्हि तमितो नाशयामसि ॥ १४ ॥

भा०—हे स्त्री ! जो दुष्ट रोग या पुरुष तेरे जांघों को पृथक् करता है, उनका भोग करता है, तथा पति पत्नी दोनों के बीच तीसरा होकर तेरे साथ सोता है, और जो गर्भाशय में प्रविष्ट होकर उसका विनाश करता है उसको यहां से दूर भगा दें ।

यस्त्वा भ्राता पतिर्भूत्वा जारो भूत्वा निपद्यते ।
प्रजां यस्ते जिघांसति तमितो नाशयामसि ॥ १५ ॥

भा०—हे स्त्री ! जो दुष्ट पुरुष, भाई या पति के समान होकर, यार

व्यभिचारी पुरुष होकर, तेरा भोग करता है, और ऐसा करके तेरी सन्तति का नाश करता है, उसको हम यहां से मार भगावें।

यस्त्वा स्वप्नेन तमसा मोहयित्वा निपद्यते।
प्रजां यस्ते जिघांसति तमितो नाशयामसि ॥ १६ ॥

भा०—हे स्त्री ! जो तुझको निद्रा या अन्धकार में मोहित करके तेरा भोग करे, और इस प्रकार जो तेरी सन्तति का नाश करना चाहे, उसको यहां से दूर करें।

अक्षीभ्यां ते नासिकाभ्यां कर्णाभ्यां छुबुकादधि।
यक्ष्मं शीर्षण्यं मस्तिष्काज्जिह्वाया वि वृहामि ते ॥ १७ ॥
ग्रीवाभ्यस्त उष्णिहाभ्यः कीकसाभ्यो अनूक्यात्।
यक्ष्मं दोषण्य_मंसाभ्यां बाहुभ्यां वि वृहामि ते ॥ १८ ॥
हृदयात् ते परि क्लोम्नो हलीक्ष्णात् पार्श्वाभ्याम्।
यक्ष्मं मतस्नाभ्यां प्लीह्नो यक्नस्ते वि वृहामसि ॥ १९ ॥
आन्त्रेभ्यस्ते गुदाभ्यो वनिष्ठोरुदरादधि।
यक्ष्मं कुक्षिभ्यां प्लाशेर्नाभ्या वि वृहामि ते ॥ २० ॥
ऊरुभ्यां ते अष्ठीवद्भ्यां पार्ष्णिभ्यां प्रपदाभ्याम्।
यक्ष्मं भसद्यं श्रोणिभ्यां भासदं भंससो वि वृहामि ते ॥ २१ ॥
अस्थिभ्यस्ते मज्जभ्यः स्नावभ्यो धमनिभ्यः।
यक्ष्मं पाणिभ्यामङ्गुलिभ्यो नखेभ्यो वि वृहामि ते ॥ २२ ॥
अङ्गे अङ्गे लोम्निलोम्नि यस्ते पर्वणिपर्वणि।
यक्ष्मं त्वचस्यंते वयं कश्यपस्य वीबर्हेण विष्वञ्चं वि वृहामसि ॥ २३ ॥

भा०—(१७–२३) इन मन्त्रों की व्याख्या देखो अथर्व० २। २३। १७ ॥

अपेहि मनसस्पतेप क्राम परश्चर ।
परो निर्ऋत्या आ चक्ष्व बहुधा जीवतो मनः ॥ २४ ॥

भा०—हे मन को नीचे गिराने वाले दुष्ट विचार एवं दुःस्वप्न ! तू दूर हो। परे हट, परे चला जा। दुष्ट पापप्रवृत्ति को भी दूर कर। क्योंकि जीवनधारी पुरुष का मन बहुत प्रकार के विषयों में लग जाता है।

इत्यष्टमोऽनुवाकः ।

[६७] राजा आत्मा ।

कलिर्ऋषिः । इन्द्रो देवता । बृहत्यः । तृचं सूक्तम् ।

वयमेनमिदा ह्योपीपेमेह वज्रिणम् ।
तस्मा उ अद्य समना सुतं भरा नूनं भूषत श्रुते ॥ १ ॥

भा०—हम लोग गये दिन और इस दिन इस वीर्यवान् पुरुष को इस राष्ट्र में पुष्ट करें। और आज उसको ही संग्राम के लिये ऐश्वर्य प्राप्त करा। निश्चय से वह हमारी प्रार्थना सुनने पर आ जाता है।

वृकश्चिदस्य वारण उरामथिरा वयुनेषु भूषति ।
सेमं नः स्तोमं जुजुषाण आ गहीन्द्र प्र चित्रया धिया ॥ २ ॥

भा०—भेड़ों के नाश करने वाले भेड़िये के समान स्वभाव वाला दुष्ट पुरुष, और हस्ति के समान मदमस्त बलवान् पुरुष भी इसके उत्कृष्ट ज्ञान और मार्गों में उसके अनुकूल हो जाता है। हे राजन् ! तू हमारे इस स्तुतिसमूह को प्रेम से सुनता हुआ सबको चेताने वाली अपनी बुद्धि और कार्यशैली से भली प्रकार प्राप्त हो।

कदू न्व१स्याकृतमिन्द्रस्यास्ति पौंस्यम् ।
केनो नु कं श्रोमतेन न शुश्रुवे जनुषः परि वृत्रहा ॥ ३ ॥

भा०—इस शत्रुहन्ता राजा का कौन सा शौर्य का काम नहीं किया गया है। और किस श्रवण करने योग्य आश्चर्यजनक कार्य से इसकी

ख्याति नहीं सुनी जाती? वह तो जन्म से ही विघ्नकारी शत्रुओं का नाशक है।

[९८] राजा के कर्त्तव्य।

शंयुर्ऋषिः। इन्द्रो देवता। प्रगाथः। द्वयृचं सूक्तम्।

त्वामिद्धि हवा॑महे सा॒ता वाज॑स्य का॒रवः॑।
त्वां वृ॒त्रेष्वि॑न्द्र॒ सत्प॑तिं॒ नर॒स्त्वां काष्ठा॒स्वर्व॑तः ॥ १ ॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन् राजन्! हम शिल्पी लोग अन्न और शक्ति के लाभ के लिये तुझको ही बुलाते हैं। नेता लोग भी शत्रुओं के आ चढ़ने पर सज्जनों के प्रतिपालक तुझको ही स्मरण करते हैं। घोड़ों या वेगवान् यानों द्वारा जाने लायक दूर के देशों में भी लोग तुझे ही पुकारते हैं।

स त्वं न॑श्चित्र वज्रहस्त धृष्णु॒या म॒ह स्त॑वा॒नो अ॑द्रिवः।
गामश्वं॑ र॒थ्यमि॑न्द्र॒ सं कि॑र स॒त्रा वाजं॒ न जि॒ग्युषे॑ ॥ २ ॥

भा०—हे खड्ग को हाथ हाथ में धारण करने हारे। उग्र दण्ड! हे अमोघ बलवाले! हे समस्त राष्ट्र का संचय करने एवं चित्र युद्ध में कुशल! तू शत्रुओं का धर्षण करने में समर्थ होकर खूब अधिक स्तुतिशाली हो। हे राजन्! हमारे विजयशील पुरुष के प्रति गौ, अश्व, रथ और बड़ा भारी अन्न और ऐश्वर्य अच्छी प्रकार प्रदान कर।

[९९] राजा, सेनापति।

मेध्यातिथिर्ऋषिः। इन्द्रो देवता। बृहत्यौ। प्रगाथः द्वयृचं सूक्तम्।

अ॒भि त्वा॑ पू॒र्वपी॑तय॒ इन्द्र॒ स्तोमे॑भिरा॒यवः॑।
स॒मी॒ची॒नास॑ ऋ॒भवः॒ सम॑स्वरन् रु॒द्रा गृ॑णन्त॒ पूर्व्य॑म् ॥ १ ॥

भा०—हे परमेश्वर! सत्यज्ञान से प्रकाशित होने वाले विद्वान्गण, स्तुतिशील, और दीर्घायु वाले, सम्यग्दृष्टि वाले तत्त्वज्ञानी मनुष्यगण, ज्ञानद्वारा तेरे आनन्द को पूर्ण रीति से प्राप्त करने के लिये स्तुतिसमूहों

द्वारा तुझे ही लक्ष्य करके एकत्र होकर गाते हैं, और सत्योपदेष्टा लोग सबसे पूर्व विद्यमान जो तू है उसका ही उपदेश करते हैं।

अस्येदिन्द्रो वावृधे वृष्ण्यं शवो मदे सुतस्य विष्णवि।
अद्या तमस्य महिमानमायवोऽनु ष्टुवन्ति पूर्वथा ॥ २ ॥

भा०—प्रस्तुत किये अभिषेक द्वारा प्राप्त राज्य के व्यापक हर्षाधिक्य से ही शत्रुनाशक सेनापति इस राजा के ही महान् बल को बढ़ा देता है। इसकी उस महिमा को ही मनुष्यगण पूर्व के समान आजतक भी निरन्तर स्तुति करते हैं।

[१००] बलवान् राजा और आत्मा।

नृमेध ऋषिः। इन्द्रो देवता। उष्णिहः। तृचं सूक्तम्।

अधा हीन्द्र गिर्वण उप त्वा कामान् महः ससृज्महे।
उदेव यन्त उदभिः ॥ १ ॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन्! परमेश्वर! हे स्तुतियों द्वारा भजन करने योग्य! अब तुझसे हम बड़े मनोरथों को ऐसे प्राप्त हों, जैसे जल के मार्ग से जाते हुए पुरुष, उन जलों से ही नाना काम्य सुखों को प्राप्त करते हैं।

वार्ण त्वा यव्याभिर्वर्धन्ति शूर ब्रह्माणि।
वावृध्वांसं चिदद्रिवो दिवेदिवे ॥ २ ॥

भा०—हे शूरवीर! नदियों से जिस प्रकार समुद्रों में जल बढ़ते हैं उसी प्रकार हे अमोघ शक्तिमन्! प्रतिदिन स्वयं सदा वृद्धिशील होते हुए भी वेद के मन्त्र तेरी महिमा की वृद्धि करते हैं।

युञ्जन्ति हरी इषिरस्य गाथयोरौ रथ उरुयुगे।
इन्द्रवाहा वचोयुजा ॥ ३ ॥

भा०—आत्मसंकल्प में रमण करने वाले या सर्वप्रेरक आत्मा के बड़े भारी योगबल से युक्त, बड़े भारी रमण योग्य स्वरूप में, वाणी के

द्वारा जुतने वाले, जीवात्मा द्वारा वहन किये जाने वाले सदा गतिशील प्राण और अपान को, गुणस्तुति के साथ योगीजन युक्त करते हैं, अर्थात् योगाभ्यास द्वारा प्राणों का आयमन करते हैं ।

[१०१] विद्वान् राजा ।

मेधातिथिर्ऋषिः । अग्निर्देवता । गायत्र्यः तृचं सूक्तम् ।

अग्निं दूतं वृणीमहे होतारं विश्ववेदसम् ।
अस्य यज्ञस्य सुक्रतुम् ॥ १ ॥

भा०—हम लोग ज्ञानवान् अग्रणी, समस्त ऐश्वर्यों से युक्त, सब विद्याओं में पारंगत, सब सुखों और ज्ञानों के दाता, इस राष्ट्र को उत्तम रीति से करने वाले पुरुष को दूत या प्रतिनिधि रूप से नियुक्त करते हैं ।

अग्निमग्निं हवीमभिः सदा हवन्त विश्पतिम् ।
हव्यवाहं पुरुप्रियम् ॥ २ ॥

भा०—स्तुतियों और उत्तम उपायों से प्रजा के पालक, अग्नि के समान तेजस्वी और ज्ञानवान् प्राप्तव्य उद्देश्य तक ले जाने वाले, तथा सर्वप्रिय लोकप्रिय पुरुष का सदा आदर करो, उसे भेंट में उत्तम पदार्थ प्रदान करो ।

अग्ने देवाँ इहा वह जज्ञानो वृक्तबर्हिषे ।
असि होता न ईड्यः ॥ ३ ॥

भा०—हे ज्ञानवन् अग्रणी ! तू बड़े भारी राष्ट्र के लिये इस सभाभवन में प्रकट होता हुआ, विद्वान् पुरुषों और विजगीषु पुरुषों को प्राप्त करा । तू हमारी स्तुति के योग्य है, यज्ञ में होता के समान योग्य पुरुषों को योग्य पदाधिकार देने और उसको स्वीकार करने हारा है ।

[१०२] परमेश्वर राजा ।

विश्वामित्र ऋषिः । अग्निर्देवता । गायत्र्यः । तृचं सूक्तम् ।

ईळेन्यो नमस्यस्तिरस्तमांसि दर्शतः ।
समग्निरिध्यते वृषा ॥ १ ॥

भा०—अग्नि के समान तेजस्वी, सूर्य के समान दर्शनीय ज्ञानवान् पुरुष अन्धकारों को दूर करता हुआ, स्तुति योग्य, सुखों का वर्षक और नमस्कार करने योग्य है वह नित्य खूब तेजस्वी होता है ।

वृषो अग्निः समिध्यतेऽश्वो न देववाहनः ।
तं हविष्मन्त ईलते ॥ २ ॥

भा०—आनन्दघन और अश्व जिस प्रकार विजिगीषु पुरुषों को युद्ध में ले जाता है उसी प्रकार विद्वानों को अपने में धारण करने वाला, अग्नि के समान तेजस्वी होकर चमकता है। उसकी साधनों से सम्पन्न पुरुष स्तुति करते हैं।

आत्मा के पक्ष में—देव-वाहनः = इन्द्रियों और उत्तम गुणों का धारक है।

वृषणं त्वा वयं वृषन् वृषणः समिधीमहि ।
अग्ने दीद्यतं बृहत् ॥ ३ ॥

भा०—हे सुखों के वर्षक ! हे तेजस्विन् हम लोग स्वयं बलवान् होकर, बलवान् तथा बहुत प्रकाशमान तुझको प्रज्वलित करते हैं।

[१०३] परमेश्वर विद्वान् राजा ।

१, सुदीति-पुरुमीह्लौ । १—२ भर्ग ऋषिः । अग्निर्देवता । १, २ बृहत्यौ । ३ सतो बृहती । तृचं सूक्तम् ।

अग्निमीळिष्वावसे गाथाभिः शीरशोचिषम् ।
अग्निं राये पुरुमीळ्ह श्रुतं नरोऽग्निं सुदीतये छर्दिः ॥ १ ॥

भा०—हे बहुतों को ज्ञान से सेचन करने हारे विद्वान् ! तू रक्षा के लिये वाणियों द्वारा व्यापक प्रकाश वाले प्रकाशयुक्त परमात्मा की उपासना, स्तुति कर। श्रवण करने योग्य उस परमेश्वर की सभी पुरुष ऐश्वर्य के लिये स्तुति करते हैं। सबके शरणस्वरूप परमेश्वर की उत्तम दीप्ति के प्राप्त करने के लिये तू वाणियों द्वारा स्तुति कर।

अग्न आ याह्यग्निभिर्होतारं त्वा वृणीमहे ।
आ त्वामनक्तु प्रयता हविष्मती यजिष्ठं बर्हिरासदे ॥ २ ॥

भा०—हे विद्वन् ! हे राजन् ! तू अन्य विद्वानों और नेताओं के साथ हमें प्राप्त हो । तुझे सर्वदाता रूप से हम वरण करते हैं । सबसे अधिक दानशील तुझको उत्तम नियम में अन्नादि से समृद्ध प्रजा विराजने के लिये प्राप्त हो ।

अच्छा हि त्वा सहसः सूनो अङ्गिरः स्रुचश्चरन्त्यध्वरे ।
ऊर्जो नपातं घृतकेशमीमहेऽग्निं यज्ञेषु पूर्व्यम् ॥ ३ ॥

भा०—परमेश्वर के पक्ष में—हे बलों के प्रेरक, सूर्य के समान तेजस्विन् ! यज्ञ में घृत से भरे चमसे तुझे लक्ष्य करके चलते हैं । हम बल के अक्षय भण्डार रूप, सबसे पूर्व विद्यमान तुझ ज्ञानवान् से याचना करते हैं ।

[१०४] राजा परमेश्वर ।

१–२ मेध्यातिथिर्ऋषिः । ३–४ नृमेधः । इन्द्रो देवता । प्रगाथौ । चतुर्ऋचं सूक्तम् ।

इमा उ त्वा पुरूवसो गिरो वर्धन्तु या मम ।
पावकवर्णाः शुचयो विपश्चितोऽभि स्तोमैरनूषत ॥ १ ॥

भा०—हे प्रचुर ऐश्वर्य वाले परमेश्वर ! जो मेरी ये वाणियां हैं वे तेरी ही महिमा गावें । अग्नि के समान तेजस्वी, शुद्ध आचारवान्, मेधावी पुरुष स्तुतिसमूहों से तेरी स्तुति करते हैं ।

अयं सहस्रमृषिभिः सहस्कृतः समुद्र इव पप्रथे ।
सत्यः सो अस्य महिमा गृणे शवो यज्ञेषु विप्रराज्ये ॥ २ ॥

भा०—बल के उत्पादक तथा समुद्र के समान वर्तमान इस परमेश्वर और राजा को हजारों ऋषिगण विस्तृत या प्रसिद्ध करते हैं । इसकी वह विख्यात महिमा और बल राष्ट्र यज्ञों तथा उपासनाओं में और

विद्वानों के राज्य में सत्य जाना गया है। उसकी ही स्तुति की जाती है।

आ नो विश्वासु हव्य इन्द्रः समत्सु भूषतु।
उप ब्रह्माणि सवनानि वृत्रहा परमज्या ऋचीषमः ॥ ३ ॥

भा०—स्तुतियोग्य परमेश्वर हमारी समस्त आनन्द प्रसन्नता की दशाओं में प्रकट होवे। वह आवरणकारी अज्ञान का नाशक, प्रधान प्रधान बाधक कारणों और बंधनों का नाश करने वाला, स्तुतियों या वेदमन्त्रों में समान रूप से व्यापक परमेश्वर वेदमन्त्रों और स्तुतियों को प्राप्त करे।

त्वं दाता प्रथमो राधसामस्यसि सत्य ईशानकृत्।
तुविद्युम्नस्य युज्या वृणीमहे पुत्रस्य शवसो महः ॥ ४ ॥

भा०—हे परमेश्वर तू ऐश्वर्यों का सबसे प्रथम दाता है। तू सत्य कर्म वाला, हमारा शासक है। अपने बल से सबको विविध कष्टों से रक्षा करने में समर्थ, और बहुत धनाढ्य जो तू है उससे हम योग्य तेज प्राप्त करें।

[१०५] राजा, सेनापति

नृमेध ऋषिः। इन्द्रो देवता। प्रगाथः। पञ्चर्चं सूक्तम्।

त्वमिन्द्र प्रतूर्तिष्वभि विश्वा असि स्पृधः।
अशस्तिहा जनिता विश्वतूरसि त्वं तूर्य तरुष्यतः ॥ १ ॥

भा०—हे शत्रुनाशक ! तू बड़े बड़े संग्रामों में सम्मुख आये समस्त स्पर्धा करने वालों को मुकाबले पर आकर पराजित करता है। तू निन्दकों का नाशक और सुखों का उत्पन्न करने हारा, हिंसाकारी दुष्ट पुरुषों का सब प्रकार से नाश करने वाला है।

अनु ते शुष्मं तुरयन्तमीयतुः क्षोणी शिशुं न मातरा।
विश्वास्ते स्पृधः श्नथयन्त मन्यवे वृत्रं यदिन्द्र तूर्वसि ॥ २ ॥

भा०—हे शत्रुनाशक राजन्! माता और पिता दोनों जिस प्रकार बालक के पीछे चलते हैं उसी प्रकार शत्रुओं के नाशक तेरे बल के पीछे पीछे शासकवर्ग और प्रजावर्ग चलते हैं। जब तू विघ्नकारी का विनाश करता है तब सब स्पर्धा करने वाले शत्रुगण तेरे क्रोध के आगे शिथिल हो जाते हैं।

इत ऊती वो अजरं प्रहेतारमप्रहितम्।
आशुं जेतारं हेतारं रथीतममतूर्तं तुग्र्यावृधम् ॥ ३ ॥

भा०—हे प्रजाजनो! कभी क्षीण या निर्बल न होकर विद्यमान, शत्रु को मार भगाने वाले कभी पराधीन न हुए, शीघ्रगामी, विजयशील शत्रु का स्वयं नाश करने वाले, रथियों में सर्वश्रेष्ठ, कभी नष्ट या ताड़ित न होने वाले, शत्रु नाशकारी वीर सेनाओं के हितकर बल को बढ़ाने वाले पुरुष को आप लोग अपनी रक्षा के लिये प्राप्त होवो, नियुक्त करो।

यो राजा चर्षणीनां याता रथेभिरध्रिगुः।
विश्वासां तरुता पृतनानां ज्येष्ठो यो वृत्रहा गृणे ॥ ४ ॥
इन्द्रं तं शुम्भ पुरुहन्मन्नवसे यस्य द्विता विधर्तरि।
हस्ताय वज्रः प्रति धायि दर्शतो महो दिवे न सूर्यः ॥ ५ ॥

भा०—(४-५) इन दोनों मन्त्रों की व्याख्या देखो का० २०। ९२। १६, १७ ॥

[१०६] परमेश्वर।

गोपूक्त्यसूक्तिनावृषी। इन्द्रो देवता। उष्णिहः। तृचं सूक्तम्।

तव त्यदिन्द्रियं बृहत् तव शुष्ममुत क्रतुम्।
वज्रं शिशाति धिषणा वरेण्यम् ॥ १ ॥

भा०—तेरे उस बड़े भारी ऐश्वर्य को, और बड़े भारी बल को, बड़े

भारी विज्ञान को, और सर्वश्रेष्ठ शत्रुनिवारक और पापनिवारक वीर्य को बुद्धि और शुभमति और तेरी स्तुति अति तीक्ष्ण कर देती है।

तव द्यौरिन्द्र पौंस्यं पृथिवी वर्धति श्रवः ।
त्वामापः पर्वतासश्च हिन्विरे ॥ २ ॥

भा०—हे परमेश्वर महान् आकाश और तारागण और पृथिवी तेरे पौरुष बल और कीर्ति को बढ़ाते हैं। और जल, मेघ, नदी, समुद्र आदि और पर्वत तेरी महिमा गा रहे हैं।

त्वां विष्णुर्बृहन् क्षयो मित्रो गृणाति वरुणः ।
त्वां शर्धो मदत्यनु मारुतम् ॥ ३ ॥

भा०—हे ईश्वर ! बड़ा तथा व्यापक सूर्य, सबका निवास स्थान पृथिवी, मरण से बचाने वाला अन्न, वायु, जल और सबको आवरण करने वाला मेघ, आकाश, तेरी स्तुति करते हैं। और वायु का महान् बल भी तेरी ही इच्छानुकूल प्रसन्न होकर चलता है।

[१०७] परमेश्वर

समस्य मन्यवे विशो विश्वा नमन्त कृष्टयः ।
समुद्रायेव सिन्धवः ॥ १ ॥

भा०—समुद्र को प्राप्त होने के लिये जिस प्रकार नदियें झुकी चली जाती हैं उसी प्रकार इसके ज्ञान को प्राप्त करने के लिये या उसके 'मन्यु' अर्थात् संसार को स्तम्भन करने वाले महान् सामर्थ्य के आगे समस्त मनुष्य आदर से स्वभावतः झुकते हैं।

ओजस्तदस्य तित्विष उभे यत् समवर्तयत् ।
इन्द्रश्चर्मेव रोदसी ॥ २ ॥

भा०—जिस प्रकार चमड़े या मृगछाला को कोई जन चाहे बिछा देता और चाहे लपेट लेता है उसी प्रकार ऐश्वर्यवान् परमेश्वर पृथ्वी

और आकाश दोनों लोकों को चलाता है वह इस परमेश्वर का महान् पराक्रम ही चमक रहा है ।

वि चिद् वृत्रस्य दोधतो वज्रेण शतपर्वणा ।
शिरो विभेद वृष्णिना ॥ ३ ॥

भा०—जिस प्रकार भय से कंपा देने वाले दुष्ट पुरुष के शिर को राजा सैकड़ों पौरु वाले शस्त्रों से तोड़ डालता है, उसी प्रकार जगत् को कंपाने वाले, सबको आवरण करने वाले अज्ञान शिर को बलवान् तथा सैकड़ों सामर्थ्यों वाली शक्ति से, छिन्न भिन्न कर देता है ।

तदिदास भुवनेषु ज्येष्ठं यतो जज्ञ उग्रस्त्वेषनृम्णः ।
सद्यो जज्ञानो नि रिणाति शत्रूननु यदेनं मदन्ति विश्व ऊमाः ॥४॥
वावृधानः शवसा भूर्योजाः शत्रुर्दासाय भियसं दधाति ।
अव्यनच्च व्यनच्च सस्नि सं ते नवन्त प्रभृता मदेषु ॥ ५ ॥
त्वे क्रतुमपि पृञ्चन्ति भूरि द्विर्यदेते त्रिर्भवन्त्यूमाः ।
स्वादोः स्वादीयः स्वादुना सृजा समदः सु मधु मधुनाभि योधिः ६
यदि चिन्नु त्वा धना जयन्तं रणेरणे अनुमदन्ति विप्राः ।
ओजीयः शुष्मिन्त्स्थिरमा तनुष्व मा त्वा दभन् दुरेवासः कशोकाः ७
त्वया वयं शाशद्महे रणेषु प्रपश्यन्तो युधेन्यानि भूरि ।
चोदयामि त आयुधा वचोभिः सं ते शिशामि ब्रह्मणा वयांसि ॥८॥
नि तद् दधिषेऽवरे परे च यस्मिन्नाविथावसा दुरोणे ।
आ स्थापयत मातरं जिगत्नुमत इन्वत कर्वराणि भूरि ॥ ९ ॥
स्तुष्व वर्ष्मन् पुरुवर्त्मानं समृभ्वाणमिनतममाप्तमाप्त्यानाम् ।
आ दर्शति शवसा भूर्योजाः प्र सक्षति प्रतिमानं पृथिव्याः ॥१०॥

इमा ब्रह्मबृहद्दिवः कृणवदिन्द्राय शूषमग्रियः स्वर्षाः ।
महो गोत्रस्य क्षयति स्वराजा तुरश्चिद् विश्वमर्णवत् तपस्वान् ॥ ११ ॥
एवा महान् बृहद्दिवो अथर्वावोचत् स्वां तन्व मिन्द्रमेव ।
स्वसारौ मातरिभ्वरी अरिप्रे हिन्वन्ति चैने शवसा वर्धयन्ति च १२
चित्रं देवानां केतुरनीकं ज्योतिष्मान् प्रदिशः सूर्य उद्यन् ।
दिवाकरोऽति द्युम्नैस्तमांसि विश्वातारीद् दुरितानि शुक्रः ॥ १३ ॥
चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः । आप्राद्
द्यावापृथिवी अन्तरिक्षं सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च ॥ १४ ॥

भा०—(४-१२) ये ९ मन्त्र देखो अथर्व० का० ५ । २ । १-९ ॥ और (१३, १४) दोनों मन्त्रों की व्याख्या देखो अथर्व० १३।२।३४,३५ ॥

सूर्यो देवीमुषसं रोचमानां मर्यो न योषामभ्येति पश्चात् ।
यत्रा नरो देवयन्तो युगानि वितन्वते प्रति भद्राय भद्रम् ॥ १५ ॥

भा०—जिस प्रकार सूर्य प्रकाशमान और कान्तिमयी उषा के पीछे पीछे चलता है, उसी प्रकार जिस गृहस्थ में गृहस्थी लोग उत्तम गुणों को धारण करते हुए, भद्र के प्रति भद्रता का व्यवहार करते हैं, और जिसमें पुत्र-पुत्री रूपी जोड़ों का विस्तार होता है, वहां मनुष्य भी उत्तम गुणों से युक्त चित्त को हरने वाली स्त्री के पीछे पीछे चलता है ।

[१०८] राजा, परमेश्वर ।

नृमेध ऋषिः । इन्द्रो देवता । १ गायत्री । २ ककुप् । ३ पुर उष्णिक् । तृचं सूक्तम् ॥

त्वं न इन्द्रा भरँ ओजो नृम्णं शतक्रतो विचर्षणे ।
आ वीरं पृतनाषहम् ॥ १ ॥

भा०—हे राजन् ! परमेश्वर ! तू हमें वीर्य, बल, पराक्रम प्रदान कर । हे सैकड़ों प्रज्ञावाले ! हे विशेष रूप से सबके द्रष्टा ! तू हमें धन

और शत्रुसेना को पराजित करने हारे वीर्य, वा वीरपुरुषों के सैन्य बल को प्रदान कर ।

त्वं हि नः पिता वसो त्वं माता शतक्रतो बभूविथ ।
अधा ते सुम्नमीमहे ॥ २ ॥

भा०—हे सबमें बसने हारे हे सैकड़ों प्रज्ञाओं और बलों से युक्त ! क्योंकि तू ही हमारे पिता के समान और माता के समान है, इसी से तुझसे हम सुख की याचना करते हैं ।

त्वां शुष्मिन् पुरुहूत वाजयन्तमुप ब्रुवे शतक्रतो ।
स नो रास्व सुवीर्यम् ॥ ३ ॥

भा०—हे बहुत सी प्रजाओं से नित्य पुकारे जाने योग्य ! हे अनन्त प्रज्ञावाले ! हे बलवन् ! ऐश्वर्य प्रदान करने वाले तेरी मैं स्तुति, प्रार्थना करता हूँ । वह तू हमें उत्तम वीर्य, बल प्रदान कर ।

[१०६] राजा, आत्मा और परमात्मा ।

गोतम ऋषिः । इन्द्रो देवता । ककुभः । तृचं सूक्तम् ।

स्वादोरित्था विषूवतो मध्वः पिबन्ति गौर्यः ।
या इन्द्रेण सयावरीर्वृष्णा मदन्ति शोभसे वस्वीरनु स्वराज्यम् ॥१॥

भा०—जिस प्रकार व्याप्त तेज वाले सूर्य की श्वेत किरणें सुखप्रद जल का पान करती हैं उसी प्रकार पृथ्वी पर रमण करने वाली प्रजाएं विस्तृत राज्य वाले राजा के अधीन रह कर अति मधुर अन्न और ऐश्वर्य का रस के समान भोग करती हैं । जो प्रजाएं बलवान् राजा के साथ नित्य गमन करने वाली, धनैश्वर्य युक्त, अपनी अधिक ऐश्वर्यशोभा के लिये अपने स्वतन्त्र राज्यशासन के अनुकूल रहकर सदा आनन्द प्रसन्न रहती हैं ।

अध्यात्म में—ज्ञानवाणियों में रमण करने वाली आत्मसाधक प्रजाएं, व्यापक सुस्वादु ब्रह्मरस का आस्वादन करती हैं । वे आत्मा या

परमेश्वर के अनुसार व्यवहार करने वाली होकर अपनी विभूति के निमित्त आत्मा के प्रकाश के अनुसार ही आनन्द लाभ करती हैं।

ता अ॑स्य पृश॒नायुव॒: सोमं॑ श्रीणन्ति॒ पृश्न॑यः ।
प्रि॒या इन्द्र॑स्य धे॒नवो॒ वज्रं॑ हिन्वन्ति॒ साय॑कं॒ वस्वी॒रनु॑ स्व॒राज्य॑म् २

भा०—वे नाना वर्णों की या हृष्ट पुष्ट, परस्पर प्रेम को चाहती हुई, इस ऐश्वर्ययुक्त राष्ट्र के लिये ऐश्वर्य को परिपक्व करती हैं, उसकी रक्षा और वृद्धि करती हैं। रसपान करनेहारी गौवों के समान ऐश्वर्ययुक्त राजा की अति प्रिय प्रजाएं स्वायत्त राज्य के कारण अति ऐश्वर्यवती होकर, शत्रुओं के अन्त कर देने वाले शत्रुनिवारक शस्त्रों को भी शत्रु पर प्रहार करती हैं।

ता अ॑स्य॒ नम॑सा॒ सह॑: सप॒र्यन्ति॒ प्रचे॑तसः ।
व्र॒तान्य॑स्य सश्चिरे पु॒रूणि॑ पू॒र्वचि॑त्तये॒ वस्वी॒रनु॑ स्व॒राज्य॑म् ॥३॥

भा०—वे प्रजाएं उत्कृष्ट ज्ञानवान् होकर, इस राष्ट्रपति के शत्रु-पराजयकारी बल का आदर से या अन्नादि पदार्थों से सत्कार करती हैं। और इस राष्ट्रपति के बहुत से प्रजापालन सम्बन्धी नियमों का, स्वायत्त राज्यशासन के द्वारा ऐश्वर्यवान् होकर पूर्ण ज्ञानवान् या पूरी रीति से सचेत और उत्तरदायी होने के लिये, पालन करती हैं।

[११०] परमात्मा, आत्मा।

सुतकक्षः सुकक्षो वा ऋषिः। इन्द्रो देवता। गायत्र्यः तृचं सूक्तम्।

इन्द्रा॑य॒ मद्व॑ने सु॒तं परि॑ ष्टोभन्तु नो॒ गिर॑: ।
अ॒र्कम॑र्चन्तु का॒रव॑: ॥ १ ॥

भा०—हर्ष और आनन्द का सेवन करने वाले आत्मा के ऐश्वर्य को लक्ष्य करके हमारी वाणियां स्तुतियां करती हैं। उस अर्चना योग्य परमेश्वर की भी उत्तम विद्वान् पुरुष स्तुति करें।

यस्मि॒न् विश्वा॒ अधि॒ श्रियो॒ रण॑न्ति स॒प्त सं॒सदः॑ ।
इन्द्रं॑ सु॒ते ह॑वामहे ॥ २ ॥

भा०—जिसके आश्रय पर समस्त सेवन करने योग्य लक्ष्मियां और समस्त शोभाएं तथा सात लोक या सात प्राण शोभा देते हैं, उस आत्मा की, परम आनन्द रस प्राप्त होने पर, हम स्तुति किया करते हैं।

त्रिक॑द्रुकेषु॒ चेत॑नं दे॒वासो॑ य॒ज्ञमत्न॑त ।
तमिद् व॑र्धन्तु॒ नो॒ गिरः॑ ॥ ३ ॥

भा०—दिव्य महान् शक्तियां तीनों लोकों में एक चेतनस्वरूप, तथा सबको परस्पर मिलाए रखने वाले परमेश्वर को विस्तृत करती हैं, उसी के सामर्थ्य को प्रकट करते हैं। हमारी वाणियां भी उस परमेश्वर के ही यश को फैलावें।

[१११] आत्मा ।

पर्वत ऋषिः । सोमो देवता । उष्णिहः । तृचं सूक्तम् ।

यत् सोम॑मिन्द्र॒ विष्ण॑वि॒ यद् वा॑ घ त्रि॒त आप्त्ये॑ ।
यद्वा॑ म॒रुत्सु॒ मन्द॑से॒ समिन्दु॑भिः ॥ १ ॥

भा०—हे आत्मन् ! जब तू व्यापक परमेश्वर के ध्यान में मग्न होकर परम ऐश्वर्य को प्राप्त करके आनन्दित होता है, और जब तू प्राणों के परिपालक सबसे उत्कृष्ट अपने ही स्वरूप में आनन्दरस या ऐश्वर्य को लाभ कर तृप्त होता है, और जब भी प्राणों के बीच में आनन्द लाभ करता है, तब तब ऐश्वर्यों और हृदय को द्रवित करने वाले रसों से ही तृप्त होता है।

यद्वा॑ शक्र परा॒वति॑ समु॒द्रे अधि॒ मन्द॑से ।
अ॒स्माक॒मित् सु॒ते र॑णा॒ समिन्दु॑भिः ॥ २ ॥

भा०—और जब भी हे शक्तिशालिन् आत्मन् ! तू दूर विद्यमान,

रसों के परम भण्डार, परमेश्वररूप परम रससागर में आनन्दरस का लाभ करता है, तब भी हमारे ही अपने सेवन किये योगादि साधनों से प्राप्त आनन्द में हृदय को द्रवित करने वाले परमानन्दों के साथ ही रमण करता है।

यद् वासि सुन्वतो वृधो यजमानस्य सत्पते ।
उक्थे वा यस्य रण्यसि समिन्दुभिः ॥ ३ ॥

भा०—हे सज्जनों के प्रतिपालक ! आत्मन् ! जो तू उपासना और योगसाधना करने वाले एवं देवपूजन करने वाले पुरुष की वृद्धि करने हारा है, और जिस किसी के भी कहे स्तुतिवचन में आनन्द अनुभव करता है, तो तू हृदय को द्रवित करने वाले अपने ही आनन्दरसों से तृप्त होता है।

[११२] आत्मा और राजा।

सुकक्ष ऋषिः । इन्द्रो देवता । उष्णिहः । तृचं सूक्तम् ।

यदद्य कच्च वृत्रहन्नुदगा अभि सूर्य ।
सर्वं तदिन्द्र ते वशे ॥ १ ॥

भा०—हे आवरणकारी अज्ञानपटलों के नाशक ! हे सूर्य के समान तेजस्विन् ! राजन् एवं आत्मन् ! जब आज के समान नित्य, जिस पदार्थ को भी लक्ष्य करके तू उठता है, वह सब भी तेरे वश में हो जाता है।

यद् वा प्रवृद्ध सत्पते न मरा इति मन्यसे ।
उतो तत् सत्यमित् तव ॥ २ ॥

भा०—हे सत्यस्वरूप ! और अति शक्तिशालिन् ! मैं कभी नहीं मरता ऐसा जो तू मानता वा जानता है तो वास्तव में वह तेरा स्वरूप सत्य ही है।

ये सोमासः परावति ये अर्वावति सुन्विरे ।
सर्वांस्ताँ इन्द्र गच्छसि ॥ ३ ॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन् ! जो आनन्दरस परमपद परमेश्वर में और जो समीप में स्थित अपने आत्मा में अनुभव किये जाते हैं, तू उन सब को ही प्राप्त होता है ।

[११३] राजा, सूर्य और परमेश्वर ।

भर्ग ऋषिः । इन्द्रो देवता । प्रगाथः । द्वयृचं सूक्तम् ।

उभयं शृणवच्च न इन्द्रो अर्वागिदं वचः ।
सत्राच्या मघवा सोमपीतये धिया शविष्ठ आ गमत् ॥ १ ॥

भा०—ऐश्वर्यवान् राजा, साक्षात् हमारे इस अपने अनुकूल और अपने प्रतिकूल दोनों प्रकार के वचन को सुने । वह राष्ट्र के पालन करने के लिये ऐश्वर्यवान् होकर, विवेकपूर्वक सत्यमात्र के ग्रहण करने वाली बुद्धि से अति बलवान् होकर प्राप्त हो ।

ईश्वर के पक्ष में—परमेश्वर हमारे ऐहिक और पारमार्थिक दोनों प्रकार के वचन सुने, वह सदा विद्यमान धारणशक्ति से युक्त, सर्वशक्तिमान् हमें आनन्दरस प्राप्त कराने के लिये प्राप्त हो ।

तं हि स्वराजं वृषभं तमोजसे धिषणे निष्टतक्षतुः ।
उतोपमानां प्रथमो नि षीदसि सोमकामं हि ते मनः ॥ २ ॥

भा०—अपने बल और तेज से प्रकाशमान, श्रेष्ठ, उस पुरुष को धारण में समर्थ नर और नारीगण बल पराक्रम की वृद्धि के लिये अपना राजा बनाते हैं । और हे राजन् ! तू भी अपने समान अन्यों के बीच में सबसे श्रेष्ठ होकर विराजता है । तेरा मन अवश्य राष्ट्र ऐश्वर्य की कामना करता है ।

[११४] राजा और आत्मा ।

सौभरिर्ऋषिः । इन्द्रो देवता । गायत्र्यौ । द्वयृचं सूक्तम् ।

अभ्रातृव्यो अना त्वमनापिरिन्द्र जनुषा सनादसि ।
युधेदापित्वमिच्छसे ॥ १ ॥

भा०—हे राजन् ! आत्मन् ! तू स्वभाव से ही शत्रुरहित है। तेरा कोई नेता नहीं। तेरा कोई बन्धु नहीं। तू चिरन्तन, पुराण पुरुष है। युद्ध द्वारा शत्रुपक्ष से बन्धुता, सन्धि द्वारा मेल चाहता है।

परमेश्वर के पक्ष में—उसका कोई न शत्रु है, न बन्धु, उसका कोई नायक नहीं, अतः विनायक है। वह सनातन है, योग वा कष्ट-अनुभव द्वारा ही वह आत्मा का बन्धु होना चाहता है।

नकीं रेवन्तं सख्याय विन्दसे पीयन्ति ते सुराश्वः।
यदा कृणोषि नदनुं समूहस्यादित् पितेव हूयसे ॥ २ ॥

भा०—हे राजन् ! तू अपनी मित्रता के लिये केवल धनवान् को कभी भी नहीं प्राप्त करता है, क्योंकि मदकारी पदार्थों के सेवन से मदमत्त होकर तेरे उत्तम जनों का विनाश किया करते हैं। जब तू मेघ के समान गर्जन करता है तब तू दुष्टों का संहार करता है। और तभी प्रजाओं द्वारा पिता के समान पुकारा जाता है।

[११५] राजा, परमेश्वर।

वत्स ऋषिः। इन्द्रो देवता। गायत्र्यः। तृचं सूक्तम्।

अहमिद्धि पितुष्परि मेधामृतस्य जग्रभ।
अहं सूर्य इवाजनि ॥ १ ॥

भा०—मैं ही सत्य ज्ञान के पालक प्रभु की पवित्र सत्संगकारी बुद्धि को सब प्रकार से ग्रहण करता हूँ, इसलिये मैं सूर्य के समान हो जाता हूँ।

अहं प्रत्नेन मन्मना गिरः शुम्भामि कण्ववत्।
येनेन्द्रः शुष्ममिद् दधे ॥ २ ॥

भा०—मैं सनातन से चले आये वेदमय ज्ञान से मेधावी पुरुष के समान वाणियों को प्रकट करता हूँ। जिससे ऐश्वर्यवान् राजा बल को

धारण करता है। महामन्त्री वेदानुकूल आज्ञाओं को प्रकाशित करे, जिस से राजा का बल बढ़े।

ये त्वामिन्द्र न तुष्टुवुर्ऋषयो ये च तुष्टुवुः।

ममेद् वर्धस्व सुष्टुतः ॥ ३ ॥

भा०—हे राजन्! तुझे जो पुरुष उपदेश नहीं करते, और जो साक्षात् मन्त्रद्रष्टा या तर्कशील विद्वान् होकर तुझे उपदेश करते हैं उन सब में मेरे उपदेश द्वारा उत्तम रीति से उपदेश किया जाकर तू वृद्धि को प्राप्त हो।

[११६] आत्मा, परमेश्वर, राजा।

मेध्यातिथिर्ऋषिः। इन्द्रो देवता। बृहत्यौ। द्वयृचं सूक्तम्।

मा भूम निष्ट्या इवेन्द्र त्वदरणा इव।
वनानि न प्रजहितान्यद्रिवो दुरोषासो अमन्महि ॥ १ ॥

भा०—हे परमेश्वर! राजन्! हम तेरी कृपा से कभी निःसहाय और रमण के अयोग्य दुःखी न हो जावें। और छोड़ दिये गये या शाखा आदि से रहित वृक्षों के समान भी न हों। हे अभेद्य बल से युक्त! हम शत्रुओं से सन्ताप दिये जाने योग्य न होकर अपने गृहों में सुख से रहते हुए सदा तेरा स्मरण करें।

अमन्महीदनाशवोऽनुग्रासश्च वृत्रहन्।
सकृत् सु ते महता शूर राधसानु स्तोमं मुदीमहि ॥ २ ॥

भा०—हे विघ्न नाशक! हम अति शीघ्रकारी न होकर और उग्र न होकर ऐसा चाहते हैं कि एक वार हे शूरवीर! तेरी बड़ी भारी आराधना से तेरी स्तुति करके अति आनन्द का लाभ करें।

[११७] राजा, आत्मा।

वसिष्ठ ऋषिः। इन्द्रो देवता। विराजः। तृचं सूक्तम्।

पिबा सोममिन्द्र मन्दतु त्वा यं ते सुषाव हर्यश्वाद्रिः।
सोतुर्बाहुभ्यां सुयतो नार्वा ॥ १ ॥

भा०—हे राजन् ! तू राष्ट्र के ऐश्वर्य का भोग कर । हे तीव्रगति वाले घोड़ों से युक्त ! जिस राष्ट्रैश्वर्य को तेरा अभेद्य शासन उत्पन्न करता है वह तुझे तृप्त करे । वह प्रेरक महामात्य की बाहुओं द्वारा उत्तम रीति से सुव्यस्थित होकर सुसंयत अश्व के समान सन्मार्ग पर चले ।

यस्ते मदो युज्यश्चारुरस्ति येन वृत्राणि हर्यश्व हंसि ।
स त्वामिन्द्र प्रभूवसो ममत्तु ॥ २ ॥

भा०—हे वेगवान् अश्वों वाले राजन् ! जो तेरा सत्संग से प्राप्त होने वाला उत्तम हर्ष या बल है, और जिससे तू विघ्नकारी शत्रुओं का विनाश करता है, हे अधिक ऐश्वर्यवाले ! वह तुझको आनन्द प्रसन्न रक्खे ।

अध्यात्म में—जो तेरा योगसमाधि से उत्पन्न आनन्द है, जिससे हे दुःखहारी प्राणों वाले जीव ! तू तामस आवरणों को विनष्ट करता है । वह तुझे सदा आनन्दित रक्खे ।

बोधा सु मे मघवन् वाचमेमां यां ते वसिष्ठो अर्चति प्रशस्तिम् ।
इमा ब्रह्म सधमादे जुषस्व ॥ ३ ॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन् ! जिस उत्तम शासन सम्बन्धी वाणी या शिक्षा को सबसे श्रेष्ठ पुरोहित विद्वान् तेरे लिये उपदेश करता है उसको, और इस मेरी उत्तम वाणी को भी उत्तम रीति से जान, और एकत्र सुख अनुभव करने के स्थान इस सभाभवन में इन ब्राह्मणों के वचनों को प्रेम से सुन ।

[११८] राजा ।

१, २ भर्ग ऋषिः । ३, ४ मेधातिथिर्ऋषिः । इन्द्रो देवता । प्रगाथः । चतुर्ऋचं सूक्तम् ।

शग्ध्यू३षु शचीपत इन्द्र विश्वाभिरूतिभिः ।
भगं न हि त्वा यशसं वसुविदमनु शूर चरामसि ॥ १ ॥

भा०—हे शक्ति के पालक ! हे शत्रुनाशक ! तू समस्त रक्षा-साधनों से उत्तम सुखकारी पदार्थ प्रदान कर । ऐश्वर्यवान् के समान यशस्वी तुझको ऐश्वर्यों का देने वाला जानकर ही, हे शूरवीर ! हम तेरे पीछे अनुसरण करते हैं।

पौरो अश्वस्य पुरुकृद् गवामस्युत्सो देव हिरण्ययः ।
नकिर्हि दानं परिमर्धिषत् त्वे यद्यद्यामि तदा भर ॥ २ ॥

भा०—हे दानशील ! तू अश्वों को पूर्ण करने वाला, और गौ आदि पशु सम्पत्ति को बढ़ाने वाला, और सुवर्ण आदि धन-ऐश्वर्य का अक्षय कोष है । तेरे दिये दान को कोई भी नहीं नाश कर सकता । हे राजन् ! जो जो पदार्थ भी मैं याचना करूं । तू वह नाना पदार्थ प्राप्त करा ।

इन्द्रमिद् देवतातय इन्द्रं प्रयत्यध्वरे ।
इन्द्रं समीके वनिनो हवामह इन्द्रं धनस्य सातये ॥ ३ ॥

भा०—दिव्यगुणों के प्राप्त करने और विद्वान् पुरुषों के उपकार के लिये इन्द्र को ही हम बुलाते हैं। यज्ञ के प्रारम्भ में ऐश्वर्यवान् परमेश्वर का स्मरण करते हैं। इन्द्र का भजन करते हुए हम इन्द्र को युद्ध में याद करते हैं। और धन के प्राप्त करने के लिये इन्द्र का ही स्मरण करते हैं।

इन्द्रो मह्ना रोदसी पप्रथच्छव इन्द्रः सूर्यमरोचयत् ।
इन्द्रे ह विश्वा भुवनानि येमिर इन्द्रे सुवानास इन्दवः ॥ ४ ॥

भा०—परमेश्वर ही अपने बल के महान् सामर्थ्य से द्यौ और पृथिवी दोनों लोकों को विस्तृत करता है । वह ईश्वर ही सूर्य को प्रकाशित करता है । समस्त लोक महान् परमेश्वर के आश्रय पर ही नियम में व्यवस्थित हैं । परमेश्वर के आश्रय पर ही समस्त जीवों को उत्पन्न करते हुए ते तेजस्वी पदार्थ नियम से कार्य कर रहे हैं ।

[११९] ईश्वर ।

१ आयुः श्रुष्टिर्ऋषिः । इन्द्रो देवता । त्रिष्टुभौ । द्व्यृचं सूक्तम् ।

अस्तावि मन्म पूर्व्यं ब्रह्मेन्द्राय वोचत ।
पूर्वीर्ऋतस्य बृहतीरनूषत स्तोतुर्मेधा असृक्षत ॥ १ ॥

भा०—सबसे पूर्व विद्यमान, मनन करने योग्य ज्ञान का वर्णन किया जाता है । उसी महान् ज्ञान का हे विद्वान् पुरुषो ! परमेश्वर के निरूपण करने के लिये उच्चारण किया करो । सत्य ज्ञान से पूर्ण वाणियों को स्तुतिरूप से कहो । क्योंकि सत्य वचन कहने वाले पुरुष की उत्तम बुद्धियां आप से आप उत्पन्न होती हैं ।

तुरण्यवो मधुमन्तं घृतश्चुतं विप्रासो अर्कमानृचुः ।
अस्मे रयिः पप्रथे वृष्ण्यं शवोऽस्मे सुवानास इन्दवः ॥२॥

भा०—अप्रमादी, बुद्धिमान् पुरुष, ज्ञानवान् तथा तेज के देने वाले स्तुति करने योग्य परमेश्वर की स्तुति करते हैं । वह हमारे लिये समस्त ऐश्वर्य विस्तृत करता है । अभिषेक करने वाले ऐश्वर्य और बलवान् पुरुषों का बल हमें प्राप्त हो ।

[१२०] परमेश्वर ।

देवातिथिर्ऋषिः । इन्द्रो देवता । प्रगाथः । द्व्यृचं सूक्तम् ।

यदिन्द्र प्रागपागुदङ्न्यग् वा हूयसे नृभिः ।
सिमा पुरू नृषूतो अस्यानवेऽसि प्रशर्ध तुर्वशे ॥ १ ॥

भा०—क्योंकि हे परमेश्वर ! तू मनुष्यों द्वारा पूर्व से, पश्चिम से, उत्तर से और नीचे अर्थात् दक्षिण से बुलाया जाता है । हे सर्वश्रेष्ठ ! हे उत्कृष्ट बलशालिन् ! तू बहुत अधिक प्राणधारी पुरुषों और कामनावान् पुरुषों द्वारा उपासित होता है ।

यद्वा रुमे रुशमे श्यावके कृप इन्द्र मादयसे सचा ।
कण्वासस्त्वा ब्रह्मभिः स्तोमवाहस इन्द्रा यच्छन्त्या गहि ॥ २ ॥

भा०—और हे परमात्मन्! तू उपदेश और श्रुतिसम्पन्न ज्ञानी पुरुष में, हिंसाकारी क्षत्रिय पुरुष में, देश देशान्तर जाने वाले व्यापारी पुरुष में और शारीरिक शक्ति वाले श्रमी पुरुष में, इन चारों में समान भाव से स्वयं तृप्त होकर इनको आनन्दित करता है। स्तुतियों को धारण करने वाले, मेधावी पुरुष वेदमन्त्रों से, हे ईश्वर! तुझे संयम द्वारा प्राप्त करते, स्मरण करते हैं। तू साक्षात् प्राप्त हो, दर्शन दे।

[१२१]

वसिष्ठ ऋषिः। इन्द्रो देवता। प्रगाथः। द्व्यृचं सूक्तम्।

अभि त्वा शूर नोनुमोऽदुग्धा इव धेनवः।
ईशानमस्य जगतः स्वर्दृशमीशानमिन्द्र तस्थुषः॥ १॥

भा०—हे शूर! दुधार गौवें जिनको अभी दुहा नहीं गया वे जिस प्रकार अपने बछड़े के प्रति स्नेह से नम जाती हैं उसी प्रकार हम सूर्य के समान सबके द्रष्टा, इस जंगम संसार के स्वामी, और स्थावर संसार के स्वामी तुझको लक्ष्य करके झुकते हैं।

न त्वावाँ अन्यो दिव्यो न पार्थिवो न जातो न जनिष्यते।
अश्वायन्तो मघवन्निन्द्र वाजिनो गव्यन्तस्त्वा हवामहे॥ २॥

भा०—हे परमेश्वर! तुझसा दूसरा न आकाश में और न पृथिवी में पैदा हुआ है और न पैदा होगा। हे ऐश्वर्यवन्! हम अश्वों की कामना करते हुए, और गौओं की कामना करते हुए, अन्न और धनों के स्वामी होकर तेरी स्तुति करते हैं।

[१२२] ऐश्वर्यवान् राष्ट्र, गृहस्थ और राजा।

शुनःशेप ऋषिः। इन्द्रो देवता। गायत्र्यः। तृचं सूक्तम्।

रेवतीर्नः सधमाद इन्द्रे सन्तु तुविवाजाः। क्षुमन्तो याभिर्मदेम॥१॥

भा०—अन्न, आदि से सम्पन्न होकर जिन स्त्रियों और प्रजाओं के

साथ हम आनन्दयुक्त और प्रसन्न रहें, वे बहुत बलवान्, ज्ञानवान् और ऐश्वर्य और सौभाग्यवती होकर, ऐश्वर्यवान् राष्ट्र वा गृहस्थ में, हमारे साथ आनन्द, और हर्ष तृप्ति, तुष्टि लाभ करने वाली हों।

आ घ त्वावान् त्मनाप्त स्तोतृभ्यो धृष्णवियानः।

ऋणोरक्षं न चक्र्योः ॥ २ ॥

भा०—हे विपक्ष के धर्षण करने हारे! राजन्! रथ के चक्रों का धुरा जिस प्रकार अरों द्वारा चक्रों को अपने में धारण करके रथ को सम्भालता है और स्वयं अपने को भी सम्भाले रहता है, इसी प्रकार अपने आपको और परराष्ट्र के चक्रों को अपने नीतिबल से धारण करके, तू अपने जैसा ही अद्वितीय होकर, स्वयं आत्म-सामर्थ्य से स्थिर होकर, विद्वान् पुरुषों के लिये प्रार्थित होकर, उनको अभिमत पदार्थ अवश्य प्राप्त कराता है।

आ यद् दुवः शतक्रतवा कामं जरितॄणाम्।

ऋणोरक्षं न शचीभिः ॥ ३ ॥

भा०—शक्तियों से प्रेरित होकर 'अक्ष' धुरा जिस प्रकार दूर स्थान पर पहुंचता और अभिमत फल को प्राप्त कराता है, उसी प्रकार हे सैकड़ों प्रज्ञाओं और कर्मों में कुशल विद्वन्! तू यथार्थ गुणों के प्रवक्ता पुरुषों की सेवा को प्राप्त कर अभिलषित पदार्थ को प्राप्त करता है।

[१२३] सूर्य और राजा।

कुत्स ऋषिः। सूर्यो देवता। त्रिष्टुभौ। द्व्यृचं सूक्तम्।

तत् सूर्यस्य देवत्वं तन्महित्वं मध्या कर्तोर्विततं सं जभार।

यदेदयुक्त हरितः सधस्थादाद्रात्री वासस्तनुते सिमस्मै ॥ १ ॥

भा०—सूर्य का वह देवत्व है और वह महान् सामर्थ्य है, जो कि कार्य जगत् में, अन्तरिक्ष के बीच में से, अपने एकत्र होने के केन्द्र

से रसहरण करने वाली किरणों को डालता है, तभी रात्री को और दिन को समस्त जगत् के लिये वस्त्रवत् फैलाता है।

राजा के पक्ष में—सूर्य के समान सर्वप्रेरक राजा की वह दानशीलता और वह महान् सामर्थ्य है कि कार्य के बीच में विस्तृत शत्रुरूप विघ्न का भी संहार कर दे। जब वह राजसभा से आज्ञा ले जाने वाले अपने संदेशहरों और अधिकारियों को नियुक्त करता है तभी रात्री के समान सुखदायी राज्यव्यवस्था और दिन के समान आच्छादक शरण सबके लिये समान रूप से कर देता है।

तन्मित्रस्य वरुणस्याभिचक्षे सूर्यो रूपं कृणुते द्योरुपस्थे।
अनन्तमन्यद् रुशदस्य पाजः कृष्णमन्यद्धरितः सं भरन्ति ॥२॥

भा०—सूर्य द्युलोक के बीच में स्थित होकर, 'मित्र' नाम प्राण वायु और वरुण अर्थात् मेघ के भी स्वरूप को साक्षात् स्वयं ही करता है। और इसका अनन्त दीप्तिमान् बल अन्य है, आकर्षण करने वाला बल अन्य है, जिसको कि हरी भरी दिशाएं धारण करती हैं।

[१२४] परमेश्वर और आत्मा।

वामदेव ऋषिः। इन्द्रो देवता। गायत्र्यः। ३ पादनिचृत्। षड्चं सूक्तम्।

कया नश्चित्र आ भुवदूती सदावृधः सखा।
कया शचिष्ठया वृता॥ १॥

भा०—पूजनीय, सदा बढ़ाने हारा मित्र हमें न जाने किस परिचर्या या रक्षासामर्थ्य से साक्षात् हो और न जाने अति शक्तिशाली किस प्रज्ञा के व्यवहार से वह हमें प्राप्त हो?

कस्त्वा सत्यो मदानां मंहिष्ठो मत्सदन्धसः।
दृळ्हा चिदारुजे वसु॥ २॥

भा०—ऐश्वर्य के आनन्दों में कौन सा सच्चा आनन्द तुझको प्रसन्न,

तृप्त करे जिससे तू महान् होकर दृढ़ से दृढ़ ऐश्वर्य के जाल को भी तोड़ फेंके ।

अभी षु णः सखीनामविता जरितॄणाम् ।
शतं भवास्यूतिभिः ॥ ३ ॥

भा०—हे राजन् ! हमारे मित्रों और विद्वानों का तू सैकड़ों रक्षा-साधनों से उत्तम रक्षक होता है । देखो यजु० अ० ३६ । ४-६ ॥

इमा नु कं भुवना सीषधामेन्द्रश्च विश्वे च देवाः ।
यज्ञं च नस्तन्वं च प्रजां चादित्यैरिन्द्रः सह चीक्लृपाति ॥४॥
आदित्यैरिन्द्रः सगणो मरुद्भिरस्माकं भूत्वविता तनूनाम् ।
हत्वाय देवा असुरान् यदायन् देवा देवत्वमभिरक्षमाणाः ॥५॥
प्रत्यञ्चमर्कमनयं छचीभिरादित् स्वधामिषिरां पर्यपश्यन् ।
अया वाजं देवहितं सनेम मदेम शतहिमाः सुवीराः ॥ ६ ॥

भा०—(४-६) तीनों मन्त्रों की व्याख्या देखो का० २० । ६३ । १—३ ॥

[१२५] राजा ।

कीर्त्तिर्ऋषिः । इन्द्रः, ४, ५ अश्विनौ च देवते । त्रिष्टुभः । ४ अनुष्टुप् । सप्तर्चं सूक्तम् ।

अपेन्द्र प्राचो मघवन्नमित्रानपापाचो अभिभूते नुदस्व ।
अपोदीचो अप शूराधराच उरौ यथा तव शर्मन् मदेम ॥ १ ॥

भा०—हे शत्रुनाशक ! हे धनों के स्वामिन् ! तू सन्मुख के शत्रुओं को दूर कर । हे पराजय करने हारे ! तू पीठ पीछे लगे शत्रुओं को दूर कर । हमारे उत्तर के शत्रुओं को दूर कर । और दक्षिण के शत्रुओं को भी दूर कर । जिससे हे शूरवीर ! हम तेरे बड़े भारी शरण में सुख प्राप्त करें ।

कुविदङ्ग यवमन्तो यवं चिद् यथा दान्त्यनुपूर्वं वियूर्य ।
इहेहैषां कृणुहि भोजनानि ये बर्हिषो नमोवृक्तिं न जग्मुः ॥२॥

भा०—हे राजन् ! जौ आदि धान्यों के पैदा करने वाले लोग जिस प्रकार जौ आदि धान्य को मिल कर क्रम से बहुत सा काट लेते हैं, उस प्रकार तू भी नाना प्रदेशों में उन लोगों के यवादि धान्यों के भोजनों को उत्पन्न कर, जो कि यज्ञमय राष्ट्र की नमनकारी दण्ड-व्यवस्था या शासन व्यवस्था के भंग के अपराध को नहीं करते ।

नहि स्थूर्यृतुथा यातमस्ति नोत श्रवो विविदे संगमेषु ।
गव्यन्त इन्द्रं सख्याय विप्रा अश्वायन्तो वृषणं वाजयन्तः ॥३॥

भा०—क्योंकि एक बैल या एक घोड़े वाली गाड़ी या रथ से ठीक ठीक अवसर पर नहीं पहुंचा जा सकता, और न संग्रामों तथा सभा-सत्संगों में यश ही प्राप्त किया जा सकता है, इसलिये मेधावी विद्वान् पुरुष गौओं के इच्छुक, अश्वों के इच्छुक और बल, अन्न के इच्छुक होकर, ऐश्वर्यवान् बलशाली राजा और परमेश्वर को ही अपने मित्र होने के लिये वरण करते हैं ।

युवं सुराममश्विना नमुचावासरे सचा ।
विपिपाना शुभस्पती इन्द्रं कर्मस्वावतम् ॥ ४ ॥

भा०—हे व्यापक अधिकार वाले दो बड़े अधिकारी पुरुषो ! कभी भी न छोड़ने योग्य दुष्ट पुरुषों के हनन कार्य में सदा साथ रहकर, तुम दोनों शुभ कार्यों के पालक होकर, राज्यलक्ष्मी के साथ वर्तमान राष्ट्र की नाना कर्मों द्वारा रक्षा करते हुए, समस्त कर्मों में राजा की रक्षा करो ।

पुत्रमिव पितरावश्विनोभेन्द्रावथुः काव्यैर्दंसनाभिः ।
यत् सुरामं व्यपिबः शचीभिः सरस्वती त्वा मघवन्नभिष्णक् ॥५॥

भा०—हे राजन् ! जब तू अपनी प्रज्ञाओं और शक्तियों से उत्तम रमण योग्य राष्ट्र का नाना प्रकार से भोग करता है, और हे ऐश्वर्यवन् ! उत्तम

ज्ञान से युक्त विद्वत् सभा जब तुझको पीड़ारहित करती है, तब माता और पिता जिस प्रकार पुत्र की रक्षा करते हैं उसी प्रकार व्यापक अधिकारों से युक्त दो बड़े अधिकारी, अपने ज्ञान-उपदेशों से और दर्शनीय एवं शत्रुनाशक बड़े बड़े कर्मों से तेरी रक्षा करें।

इन्द्रः सुत्रामा स्ववाँ अवोभिः सुमृडीको भवतु विश्ववेदाः।
बाधतां द्वेषो अभयं नः कृणोतु सुवीर्यस्य पतयः स्याम ॥ ६ ॥
स सुत्रामा स्ववाँ इन्द्रो अस्मदाराच्चिद् द्वेषः सनुतर्युयोतु।
तस्य वयं सुमतौ यज्ञियस्यापि भद्रे सौमनसे स्याम ॥ ७ ॥

भा०—(६, ७) इन दोनों मन्त्रों की व्याख्या देखो अथर्व कां० ७। सू० ९१ और ९२ ॥

[१२६] जीव, प्रकृति और परमेश्वर।

वृषाकपिरिन्द्र इन्द्राणी च ऋषयः। इन्द्रो देवता। पांक्तः। त्रयोविंशत्यृचं सूक्तम्।

वि हि सोतोरसृक्षत नेन्द्रं देवममंसत।
यत्रामदद् वृषाकपिरर्यः पुष्टेषु मत्सखा विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥ १ ॥

भा०—प्राणगण रसग्रहण करने के लिये नाना प्रकार का यत्न करते हैं। परन्तु वे शक्ति प्रदान करने वाले आत्मा स्वरूप को नहीं जानते। जिन प्राणों के ऊपर उनमें सुखों का वर्षण करने वाला और उनमें कम्पन या स्पन्द रूप से स्फूर्ति उत्पन्न करने वाला आत्मा वेतनादि द्वारा पुष्ट भृत्य जनों में स्वामी के समान बड़ा हर्ष अनुभव करता है, वही वास्तव में मेरा मित्र भीतरी आत्मा है। वह सबसे उत्कृष्ट ऐश्वर्यवान् सूर्य के समान तेजस्वी है।

और जिस परमेश्वर के आश्रय में रहकर लोग नाना प्रकार का अध्यात्मिक आनन्द लेने का यत्न करते हैं पर उसको वे जानते नहीं हैं। जीवात्मा जिसमें नित्य आनन्द लेता है वही मुझ उपासक का मित्र है। वह सब जीवजगत् से बड़ा है।

अध्यात्म में—इन्द्र आत्मा है, वृषाकपि प्राण है। ब्रह्माण्ड में इन्द्र परमेश्वर है, वृषाकपि जीव है। राष्ट्र में—इन्द्र राजा है, वृषाकपि सेनापति है।

परा हीन्द्र धावसि वृषाकपेरतिव्यथिः।
नो अह प्र विन्दस्यन्यत्र सोमपीतये विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥२॥

भा०—हे परमेश्वर ! तू जब सुखों के वर्षण करने और दुःख कारणों के कंपा देने वाले जीवात्मा से परे चला जाता है तब तू बड़ी व्यथा अर्थात् भीतरी चित्त के कष्ट का कारण हो जाता है। और अन्य स्थानों अर्थात् संसार के दृश्यों या व्युत्थित दशाओं में परम आनन्द रस पान कराने के लिये दूर तक भी ढूंढे नहीं मिलता, वह परमेश्वर सब जगत् से अधिक उत्कृष्ट है।

किमयं त्वां वृषाकपिश्चकार हरितो मृगः। यस्मा
इरस्यसीदु न्वर्यो वा पुष्टिमद् वसु विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥३॥

भा०—हे परमेश्वर ! यह आनन्दरस का वर्षण करनेहारा, तेरे द्वारा हरण किया गया, एवं अपने को शुद्ध करने और तुझको नित्य खोजने में लगा हुआ जीवात्मा तेरे प्रति क्या प्रिय कार्य या उपकार करता है कि जिसको कि तू स्वामी पुष्टिकारक ऐश्वर्य दिये ही चला जा रहा है? ठीक है वह तू परमेश्वर सब जीवजगत् से उत्कृष्ट है।

यमिमं त्वं वृषाकपिं प्रियमिन्द्राभिरक्षसि।
श्वा न्वस्य जम्भिषदपि कर्णे वराहयुर्विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥४॥

भा०—हे परमेश्वर ! जिस इस अपने प्रिय जीव की तू सब ओर से रक्षा करता है, उस जीव को इसके कर्म के निमित्त वायु की कामना करने वाला आशु गतिशील प्राण ही पकड़ लेता, या बांध लेता है। वह परमेश्वर सब जीवजगत् से ऊंचा है जो कभी देह बन्धन में नहीं आता

प्रिया तष्टानि मे कपिर्व्यक्ता व्यदूदुषत् ।
शिरो न्वस्य राविषं न सुगं दुष्कृते भुवं विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥५॥

भा०—विषय वेगों से विचलित हो जाने वाला, या वानर के समान अति चञ्चल स्वभाव होकर यह आत्मा मेरे बनाये गये, प्रिय लगने वाले, तथा प्रकट हुए पदार्थों को विविध प्रकार से भोग करता है, तब इसके शिर अर्थात् मुख्य स्वरूप को मैं प्रकृति नष्ट कर देती हूँ, दुष्ट आचरण करने वाले के लिये मैं सुखकारिणी कभी नहीं होती। वह ऐश्वर्यवान् परमेश्वर ही सबसे उत्तम है।

न मत्स्त्री सुभसत्तरा न सुयाशुतरा भुवत् ।
न मत् प्रतिच्यवीयसी न सक्थ्युद्यमीयसी विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ६

भा०—मुझसे बढ़ के कोई स्त्री उत्तम कान्तिमती नहीं है और मुझसे बढ़कर कोई स्त्री उत्तम क्रियाशील तथा शीघ्र कार्य करने वाली नहीं है। मुझसे बढ़कर पति के प्रति विनय से झुकने वालीभी कोई दूसरी नहीं है। मुझसे बढ़कर न कोई स्त्री टांगों से उद्यम करने वाली भी नहीं है। ऐश्वर्यवान् मुझ प्रकृति का पति परमेश्वर ही मुझसे भी ऊंचा है।

उवे अम्ब सुलाभिके यथेवाङ्ग भविष्यति । भसन्मे अम्ब सक्थि मे शिरो मे वीव हृष्यति विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥ ७ ॥

भा०—जीव कहता है कि व्यापक शक्तिमति! हे सुख का लाभ करने हारी हे व्यक्तरूप प्रकृते! जिस प्रकार तू भूतकाल में रही उसी प्रकार आगे भी रहेगी। तेरे देदीप्यमान तेज मेरे हों। यह तेरी क्रिया शक्ति मेरे उपयोग में आवे। मेरा शिर तेरे विविध रूपों से हर्ष को प्राप्त होता है। ऐश्वर्यवान् परमात्मा सबसे ऊंचा है।

किं सुबाहो स्वङ्गुरे पृथुष्टो पृथुजाघने । किं शूरपत्नि नस्त्वमभ्यमीषि वृषाकपिं विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥ ८ ॥

भा०—उत्तम रीति से जीवों को बांधने या संसार के जन्म मरण में पीड़ा देने वाली ! हे प्रत्येक अवयव में दीप्ति वाली ! हे व्यापक शक्ति वाली ! हे जगत् के सञ्चालक परमेश्वर को अपना पति मानने वाली प्रकृति ! तू क्यों, किस निमित्त हमारे जीव आत्मा को लक्ष्य कर उस पर क्रोध करती है । ऐश्वर्यवान् ! परमेश्वर ही सबसे उत्कृष्ट है ।

अवीरामिव मामयं शरारुरभि मन्यते । उताहमस्मि वीरिणी-न्द्रपत्नी मरुत्सखा विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥ ९ ॥

भा०—यह हिंसाकारी मृत्यु मुझ चेतना को वीर पति से रहित स्त्री के समान, अरक्षित सा जानकर मेरा विनाश करना चाहती है। परन्तु मैं तो वीर्यवान् प्राणरूप पुत्र वाली, ऐश्वर्यवान् परमेश्वर रूप पति वाली, शत्रुओं को मार देने वाले वीरपुरुषों के समान प्राणों को मित्र रूप से रखने हारी हूँ, और वह परमेश्वर सबसे उत्कृष्ट है, मृत्यु से भी शक्तिशाली है ।

संहोत्रं स्म पुरा नारी समनं वाव गच्छति। वेधा ऋतस्य वीरिणीन्द्रपत्नी महीयते विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥ १० ॥

भा०—प्रकृति पहले 'नर' अर्थात् सबके प्रवर्तक परमेश्वर की स्त्री के समान सम्मिलित होकर संसार यज्ञ के रचाने और समष्टि प्राणशक्ति के धारण की क्रिया को प्राप्त करती है । वह गतिशील जगत् की विधात्री है । वही वीर्यवती, परमेश्वर को अपना पति रखने वाली बड़ी भारी शक्ति के रूप में प्रकट होती है । परमेश्वर सबसे उत्कृष्ट शक्ति वाला है ।

इन्द्राणीमासु नारिषु सुभगामहमश्रवम् ।
नह्यस्या अपरं चन जरसा मरते पतिर्विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥११॥

भा०—इन समस्त नारियों में से मैं परमेश्वर के सदा साथ रहने वाली परमेश्वर की ऐश्वर्यवती प्रकृति को सबसे अधिक उत्तम ऐश्वर्यवती, सौभाग्यवती गुरूपदेश द्वारा श्रवण करता हूँ, और जिस प्रकार अन्य स्त्रियों

के पति बूढ़े होकर मर जाते हैं उस प्रकार इसका पति बुढ़ापे के कारण नहीं मरता। परमेश्वर समस्त संसार से ऊंचा है।

नाहमिन्द्राणि रारण सख्युर्वृषाकपेर्ऋते।
यस्येदमप्यं हविः प्रियं देवेषु गच्छति विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥१२

भा०—हे मेरी पत्नी प्रकृति! मैं परमेश्वर आनन्द वर्षण करके रोमाञ्च उत्पन्न करने हारे अपने मित्र जीवात्मा के बिना क्रीड़ा या विनोद नहीं करता, अर्थात् मैं जगत्-सर्जन रूप लीला का विस्तार नहीं करता। जिस जीवात्मा की दी हुई प्राणरूप प्रिय हवि इन्द्रियरूपी देवों को प्राप्त होती है। परमेश्वर सबसे उत्कृष्ट है।

वृषाकपायि रेवति सुपुत्र आदु सुस्नुषे।
घसत् त इन्द्र उक्षणः प्रियं काचित्करं हविर्विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः १३

भा०—हे आनन्दरस के वर्षण से हृदय को रोमाञ्चित करने हारे साधक पुरुष की जननी सात्विक प्रकृति! हे ऐश्वर्यवति! हे सुखपूर्वक पुरुषों का त्राण करने हारी! और हे सुख का प्रस्रवण करने हारी! तुझे ऐश्वर्य का देने वाला तेरा पति अर्थात् परमेश्वर शरीर को शक्ति से सींचने वाले जीवात्मा द्वारा समर्पित हर प्रकार की दृष्टि को स्वीकार कर लेता है। परमेश्वर ही उस देह में प्रविष्ट जीव-जगत् से भी उत्कृष्ट है।

उक्ष्णो हि मे पञ्चदश साकं पचन्ति विंशतिम्।
उताहमद्मि पीव इदुभा कुक्षी पृणन्ति मे विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः १४

भा०—परमेश्वर कहता है कि मेरे लिये १५ और २० सुखवर्षण में समर्थ प्राणों को, एक साथ योगी लोग परिपक्व करते हैं, तपस्या द्वारा उनको दृढ़ करते हैं। मैं परमात्मा उन भेंटों को स्वीकार करता हूँ। मैं अति बलवान् हूँ। समर्पक मानों मेरी दोनों कोखों को भेटों द्वारा भर देते हैं। परमेश्वर समस्त जीव-जगत् से उत्कृष्ट है।

पंचदश-दश इन्द्रियगत प्राण, तथा प्राण, अपान, व्यान, समान, उदान

ये पांच, मिलकर १५ उक्षा हुए। ५ ज्ञानेन्द्रिय, ५ कर्मेन्द्रिय, ५ प्राण ४ अन्तःकरण अर्थात् मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार, और पूर्ण देह ये बीस। अथवा उनके भीतर प्रविष्ट होकर रहने वाला आत्मा ये बीस उक्षा हैं।

वृषभो न तिग्मशृङ्गोऽन्तर्यूथेषु रोरुवत्।
मन्थस्त इन्द्र शं हृदे यं ते सुनोति भावयुर्विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः १५

भा०—जिस प्रकार तीखे सींगों वाला सांड गौओं के रेवड़ के बीच में बराबर गर्जना करा करता है, उसी प्रकार तू हृदयों में रसवर्षण करने हारा परमेश्वर, अन्धकारों का नाश करने वाले तीक्ष्ण प्रकाश से युक्त होकर, हृदयों में अन्तर्नाद कर रहा है। हे परमेश्वर! जिस आनन्दरस को भक्ति भावों से युक्त उपासक तेरे निमित्त उत्पन्न करता है, वह सब दुःखों का मथन कर देने वाला तेरा आनन्दरस हृदय को शांति देने वाला होता है। परमेश्वर सब स्थावर-जंगम जगत् से उत्कृष्ट है।

न सेशे यस्य रम्बतेऽन्तरा सक्थ्या३ कपृत्।
सेदीशे यस्य रोमशं निषेदुषो विजृम्भते विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः॥१६

भा०—जिसका मस्तक विनय के कारण जांघों के बीच तक झुकने के लिये लटका ही रहता है। वह स्वामी के समान शासन करने में समर्थ नहीं होता। अपितु वही ही शासन करता है राज्यासन पर विराजे हुए जिसका मूछों वाला मुख विशेष रूप से खुलता और आज्ञा भी देता है। तब भी ऐश्वर्यवान् परमेश्वर ही सबसे उत्कृष्ट है।

न सेशे यस्य रोमशं निषेदुषो विजृम्भते। सेदीशे यस्य रम्बते-
ऽन्तरा सक्थ्या३ कपृद् विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः॥१७॥

भा०—वह भी सबका स्वामी नहीं बन सकता जिसका राज्यसिंहासन पर बैठे मूँछों वाला मुख केवल आज्ञाएं ही देता रहता है। बल्कि वह ही पुरुष शासन करने में समर्थ होता है जिसका मस्तक विनय भाव से दोनों जांघों के बीच तक भी झुक जाता है। मध्याह्न के सूर्य के समान

विद्यमान रहता है । वस्तुतः परमेश्वर सबसे उत्कृष्ट है, वास्तव में वही शासन करने में समर्थ है ।

अ॒यमि॑न्द्र वृ॒षाक॑पिः॒ पर॑स्वन्तं ह॒तं वि॑दत् ।
अ॒सिं सू॒नां नवं॑ च॒रुमादे॒धस्या॒न् आचि॑तं॒ विश्व॑स्मा॒दिन्द्र॒ उत्त॑रः ॥१८

भा०—हे परमेश्वर ! सुखों की वर्षा करने और दुःख के कारणों को कंपा कर अपने से पृथक् कर देने में समर्थ यह आत्मा अपने भीतर बसे परमेश्वर से "मैं दूर हूँ" ऐसे भाव को अब विनष्ट हुआ जाने । और अब वह दुःखों के काटने वाले ज्ञानवज्र को परब्रह्म की प्रेरणा करने वाली तीव्र बुद्धि को, और स्तुति योग्य आचरण को, और तीव्र तेज से पूर्ण सञ्चित जीवन को, इन सबको, प्राप्त करे । और जाने कि वह ईश्वर सबसे उत्कृष्ट है ।

अ॒यमे॑मि वि॒चाक॑शद् वि॑चि॒न्वन् दास॒मार्य॑म् ।
पिबा॑मि पाक॒सुत्व॑नो॒ऽभि धीर॑मचाक॒शं॒ विश्व॑स्मा॒दिन्द्र॒ उत्त॑रः ॥१६

भा०—मैं परमेश्वर देखता हुआ और नाशक तथा पालक दोनों शक्तियों का विवेक कराता हुआ । भक्त के हृदय में आता हूँ । और मैं आत्मज्ञान का परिपाक करने वाले के भक्तिरस को साक्षात् स्वीकार करता हूँ, और अपने धीर स्वरूप का उसे इस रूप में दर्शन करता हूँ कि परमेश्वर ही सबसे उत्कृष्ट है ।

धन्व॑ च॒ यत् कृ॒न्तत्रं॑ च॒ कति॑ स्वि॒त् ता वि योज॑ना ।
नेदी॑यसो वृषाक॒पेऽस्त॒मेहि॑ गृ॒हाँ उप॒ विश्व॑स्मा॒दिन्द्र॒ उत्त॑रः ॥२०॥

भा०—हे आनन्दरस के वर्षणशील आत्मज्ञ ! निर्जल देश और जल देने वाला कूप इन दोनों में कितने ही योजनों का अन्तर है । (संसार तो निर्जल देश है, और परमेश्वर छल का कूप है) तब हे जीव तू अति निकट विद्यमान परमेश्वर रूपी गृह की शरण जा । इसे ही तू गृहवासी बन्धुओं के समान जान । क्योंकि परमेश्वर ही सबसे उत्कृष्ट है ।

पुन॒रेहि॑ वृषाकपे सुवि॒ता क॑ल्पयावहै ।
य ए॒ष स्व॑प्न॒नंश॒नोऽस्त॒मेषि॑ प॒था पुन॒र्विश्व॑स्मा॒दिन्द्र॒ उत्त॑रः ॥२१॥

भा०—हे बलवान् होकर आनन्दरस का पान करने हारे मुमुक्षो ! तू पुनः ईश्वररूप शरण को प्राप्त हो, हम दोनों ईश्वर और प्रकृति मिलकर, पुत्र रूप आत्मा के लिये उत्तम कर्मफल उत्पन्न करते हैं। जो तू स्वप्न और प्रमाद और मृत्यु को दूर करता हुआ इस मोक्षमार्ग से फिर गृह के समान शरणरूप परमेश्वर को प्राप्त होता है। इस जीव-लोक व प्राकृत जगत् से कहीं उत्कृष्ट वह परम ऐश्वर्यवान् प्रभु है।

यदुद॑ञ्चो वृषाकपे गृ॒हमि॑न्द्राजं॑गन्तन ।
क॒ऽस्य पु॑ल्व॒घो मृ॒गः कम॑गं जन॒योप॑नो विश्व॑स्मा॒दिन्द्र॒ उत्त॑रः ॥२२

भा०—हे बलवान् तथा आनन्दरस का पान करनेहारे ! हे आत्मज्ञान के साक्षात् करने हारे मुमुक्षो ! जब ऊपर उठने वाले पुरुष गृह के समान शरण योग्य परमेश्वर को प्राप्त हो जाते हैं तब बतला कि अति पापभोगी, विषयों को खोजने वाला, तथा मनुष्यों को विध्वंस करने वाले भूखे सिंह के समान लोलुप जीव कहां चला जाता है ? परमेश्वर सबसे उत्कृष्ट है।

पर्शु॑र्ह॒ नाम॑ मान॒वी सा॒कं स॑सूव विंश॒तिम् ।
भ॒द्रं भ॑ल॒ त्यस्या॑ अभू॒द यस्या॑ उ॒दर॒माम॑य॒द् विश्व॑स्मा॒दिन्द्र॒ उत्त॑रः ॥ २३ ॥

भा०—शरीर के साथ स्पर्श करने वाली मननशील पुरुष की विचारशक्ति एक साथ ही बीस को उत्पन्न करती है। १० इन्द्रियों के स्थूल साधन और १० भीतरी ग्राहक सूक्ष्म साधन इन सब को मननशील आत्मा की विचारशक्ति ही उत्पन्न करती है। हे जीव ! उस माता का कल्याण होता है जिसका कि पेट ऐसे मननशील प्रसव से पीड़ित होता है। वह परमेश्वर समस्त संसार से उत्कृष्ट है।

अथ कुन्तापसूक्तानि ।

(सूक्त १२७–१३६ तक)

[१२७ (१)] स्तुति योग्य पुरुष का वर्णन ।

तिस्रो नाराशंस्यः । १, २ न्यङ्कुसारिण्यौ । निचृदनुष्टुप् । अतः परं त्रिंशद् ऋच इन्द्रगाथाः ।

इदं जना उप श्रुत नराशंस स्तविष्यते ।
षष्टिं सहस्रा नवतिं च कौरम आ रुशमेषु दद्महे ॥ १ ॥

भा०—हे मनुष्यो ! आप लोग इस बात का श्रवण करो कि प्रजाओं के नेता पुरुषों के नेता पुरुषों के गुणों का यहां वर्णन किया जाता है। पृथ्वी पर रमण, या युद्धक्रीड़ा करनेहारे राजन् ! सेनापते ! हम लोग छः हज़ार नव्वे पुरुषों को शत्रुओं के नाशकारी सेना के दलों में नियुक्त करें।

६०९० पुरुषों द्वारा चक्रव्यूह का वर्णन पहले कर आये हैं।

नाराशंसीः शंसति । प्रजा वै नाराः, वाक् शंसः। तै० ब्रा० ५।६।३॥

'कौरम = कुरुषु भवः, साधुर्वा कौरवः । कुर्वन्ति इति कुरवः । अथवा कौ पृथिव्यां रमत इति वा । कुरून् युद्धकर्तॄन् माति, मन्यते वा यः सः कौरमः कुरु = युद्धकर्ता, सैनिक (man of Action) ।

उष्ट्रा यस्य प्रवाहिणो वधूमन्तो द्विर्दश ।
वर्ष्मा रथस्य नि जिहीडते दिव ईषमाणा उपस्पृशः ॥ २ ॥

भा०—जिस राजा के बीस, हिंसा करने वाली शत्रुनाशक शक्तियों से युक्त, शत्रु को दग्ध करने वाले, आगे बढ़ने वाले या उत्तम अश्व आदि सवारियों पर चढ़ कर चलने वाले हों। और जिसके रथ की ऊंची ध्वजाएं चलती चलती गगन को छूने वाली आकाश या सूर्य का भी तिरस्कार करती हैं।

एष इषाय मामहे शतं निष्कान् दश स्रजः ।
त्रीणि शतान्यर्वतां सहस्रा दश गोनाम् ॥ ३ ॥ (१)

भा०—वह प्रसिद्ध राजा सौ स्वर्णमुद्राएं, दस मालाएं और घोड़ों के तीन सौ, गौवों के दस हजार इच्छा करने वाले जन को प्रदान करता है।

(२) विद्वान् पुरुष का कर्त्तव्य ।

तिस्रो रैभ्य ऋचः । अनुष्टुभः । ५।६ मिच्छत् । ६ विराट् ।

वच्यस्व रेभं वच्यस्व वृक्षे न पक्वे शकुनः ।
ओष्ठौ जिह्वा चर्चरीति क्षुरो न भुरिजोरिव ॥ ४ ॥

भा०—हे स्तुतिशील ! विद्वन् ! अच्छी प्रकार वचन बोल, उत्तम, प्रवचन कर । पके फलवाले वृक्ष पर जिस प्रकार पक्षी प्रसन्न होकर मनोहर ध्वनि करता है उसी प्रकार काटने योग्य इस देह के पकजाने पर या परिपक्व ज्ञान हो जाने पर तू ईश्वर की खूब स्तुति किया कर और अपने से न्यून, अपरिपक्व ज्ञानवालों को प्रवचन द्वारा प्रसन्नता से उपदेश कर । और जीभ छुरे के समान और दोनों ओंठ कैंची के फलकों के समान निरन्तर चलें ।

प्र रेभासो मनीषा वृषा गाव इवेरते ।
अमोत पुत्रका एषाममोत गा उपासते ॥ ५ ॥

भा०—विद्वान् जन और उनकी उत्तम मतियां सांडों और गौवों के समान सदा आगे बढ़ती हैं। और उनके पुत्र व शिष्य घर पर विद्या की उपासना किया करते हैं ।

प्र रेभ धियं भरस्व गोविदं वसुविदम् ।
देवत्रेमां वाचं कृधीपुं न वीरो अस्ता ॥ ६ ॥ (२)

भा०—हे स्तुतिशील विद्वन् ! तू उत्तम ज्ञानमय परमेश्वर को प्राप्त कराने वाली, और समस्त ब्रह्माण्ड और देह में बसने वाले परमात्मा और आत्मा का ज्ञान कराने वाली बुद्धि को धारण कर । और बाण को जिस प्रकार धनुर्धर फेंकता है, उसी प्रकार तू उपास्य देव वा विद्वानों के निमित्त ही इस वाणी को प्रेरित कर ।

(३) उत्तम राजा का स्वरूप 'परिक्षित्'।

अथ चतस्रः पारिक्षित्यः । अनुष्टुभः । ८ भुरिक् ।

राज्ञो विश्वजनीनस्य यो देवो मर्त्याँ अति ।
वैश्वानरस्य सुष्टुतिमा शृणोता परिक्षितः ॥ ७ ॥

भा०—समस्त जनों के हितकारी, प्रजा की रक्षार्थ उनके चारों ओर रक्षक रूप से विद्यमान, अपने इर्द-गिर्द प्रजा को बसाने वाले, एवं शत्रु के नाश करने हारे, समस्त नेताओं और प्रजाजनों के स्वामी, उस राजा की आज्ञाओं का श्रवण किया करो। जो कि दानशील एवं विजयशील होकर मनुष्यों से बढ़ा चढ़ा है।

'परिक्षित्'—अग्निर्वै परिक्षित्। अग्निर्हि इमाः प्रजा परि क्षेति अग्नि हि इमाः प्रजाः परि क्षियन्ति। ऐत, ६ । ५ । ६ ॥ अग्नि 'परिक्षित्' है। अग्नि इनके चारों ओर रक्षक है, और अग्नि के चारों ओर समस्त प्रजा बसती हैं।

परिच्छिन्नः क्षेममकरोत् तम आसनमाचरन् ।
कुलायं कृण्वन् कौरव्यः पतिर्वदति जायया ॥ ८ ॥

भा०—प्रजा को अपनी रक्षा में बसाने वाला, कर्मकुशल पुरुषों में श्रेष्ठ राजा पालक होकर, स्त्री के समान पृथ्वी की प्रजा के साथ कुटुम्ब सा बनाता हुआ, कृष्णावर्ण के सिंहासन पर बैठकर हमारा कल्याण करे।

कतरत् त आ हराणि दधि मन्थां परिस्रुतम् ।
जाया पतिं वि पृच्छति राष्ट्रे राज्ञः परिक्षितः ॥ ९ ॥

भा०—प्रजा को उत्तम रीति से बसाने हारे, उत्तम रक्षक राजा के राष्ट्र में स्त्री पति को विविध प्रकार के प्रश्न पूछती है कि दही, ऐश्वर्य, मठा, सब ओर से प्राप्त मखन इनमें से तेरे लिये क्या पदार्थ ला उपस्थित करूं ?

अभीव स्वः प्र जिहीते यवः पक्वः पथो बिलम् ।
जनः स भद्रमेधति राष्ट्रे राज्ञः परिक्षितः ॥ १० ॥

भा०—सूर्य की धूप में पका जौ आदि अन्न जिस प्रकार खेत की हल से बनी रेखाओं पर खड़ा हो, उसी प्रकार वह प्रजाजन प्रजाओं को सब प्रकार से बसाने और उसकी रक्षा करने वाले राजा के राष्ट्र में अत्यन्त सुख प्राप्त कर बढ़ता है ।

(४) राजा को विद्वान् का आदेश और समृद्ध प्रजाएं ।

अथ चतस्रः कारव्याः । ११–१३ अनुष्टुभः । १४ पथ्यापंक्तिः पंचपदा ।

इन्द्रः कारुमबूबुधदुत्तिष्ठ वि चरा जनम् ।
ममेदुग्रस्य चर्कृधि सर्व इत् ते पृणादरिः ॥ ११ ॥

भा०—ऐश्वर्यवान् राजा कर्मण्य पुरुष को जगाता और चेताता है कि उठ, सबको उपदेश करता हुआ तू विविध देशों में विचरण कर मुझ बलवान् की रक्षा में रह कर काम कर समस्त शत्रु भी तेरा पालन करें ।

इह गावः प्रजायध्वमिहाश्वा इह पूरुषाः ।
इहो सहस्रदक्षिणोऽपि पूषा नि षीदति ॥ १२ ॥

भा०—इस राज्य में गौएं, घोड़े और पुरुष खूब पैदा हों । क्योंकि इस राज्य में हजारों का दान देने वाला प्रजा का पोषक पुरुष विराजता है ।

नेमा इन्द्र गावो रिषन् मो आसां गोपती रिषत् ।
मासामभित्रयुर्जन इन्द्र मा स्तेन ईशत ॥ १३ ॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन् ! ये गौवें पीड़ित न हों । इनका स्वामी भी पीड़ित न हो । हे राजन् ! इनपर शत्रुरूप से बर्तने वाला इनका स्वामी न हो । चोर, डाकू स्वभाव का पुरुष भी इनका स्वामी न हो ।

उप नो नो नुमसि सूक्तेन वचसा वयं भद्रेण वचसा वयम् ।
वनादधिध्वनो गिरो न रिष्येम कदा चन ॥ १४ ॥

भा०—हम उत्तम रीति से कहे गये, वेद के सूक्तरूप वचन से सबके नेता राजा और परमेश्वर की उपासना पूर्वक प्रेम से स्तुति करें। वह हमारी उच्च ध्वनि वाली वाणियों का सेवन करे। हम कभी पीड़ित और दुःखी न हों।

[१२८ (५)] दिशाओं के नामभेद से पुरुषों के प्रकार भेद।

अथ पञ्च क्लृप्तयः। अनुष्टुभः। १, ३ निचृतौ।

यः सभेयो विदथ्यः सुत्वा यज्वा च पूरुषः।
सूर्यं चामू रिशादसं तद् देवाः प्रागकल्पयन् ॥ १ ॥

भा०—जो सभा के कार्य में कुशल, ज्ञानपरिषत् और संग्राम में कुशल, राष्ट्र को अपने शासन में रखने हारा, दानशील, यज्ञकर्ता पुरुष हो, उस सूर्य के समान तेजस्वी, हिंसक प्राणियों के नाशकारी पुरुष को ही विजयेच्छु पुरुष सबसे आगे चलने हारे मुख्य पद पर नियुक्त करते हैं।

यो जाम्या अप्रथयद् यत् सखायं दुधूर्षति।
ज्येष्ठाय यदप्रचेतास्तदाहुरधरागिति ॥ २ ॥

भा०—जो पुरुष अपनी बहिन से संग करे, और जो मित्र को मारना चाहता है, और जो अपने से बड़े भाई के लिये उत्तम रीति से आदर नहीं करता उसको नीचे गिरने वाला पतित ऐसा कहते हैं।

यद् भद्रस्य पुरुषस्य पुत्रो भवति दाधृषिः।
तद् विप्रो अब्रवीदुदग् गन्धर्वः काम्यं वचः ॥ ३ ॥

भा०—जो सज्जन पुरुष का पुत्र प्रतिपक्षियों को दबाने और पराजय करने में समर्थ होता है उसको, विविध प्रकारों से प्रजा के सुखों से पूर्ण करने हारा तथा वाणी को धारण करने हारा विद्वान् मनोहर वचन का उपदेश करता है। वह उदय को प्राप्त होने वाला होता है।

यश्च पणिरभुजिष्ठो यश्च रेवाँ अदाशुरिः।
धीराणां शश्वतामहं तदपागिति शुश्रुम ॥ ४ ॥

भा०—जो व्यापारी होकर दूसरों का पालन नहीं करता, या स्वयं भी धन का उत्तम रीति से भोग नहीं करता, और जो धनसम्पन्न होकर दूसरों को दान नहीं करता, पूज्य बुद्धिमान् पुरुषों के बीच में निश्चय से वह नीचा पद पाने योग्य अधम है ऐसा सुनते हैं।

ये च॑ दे॒वाँ अय॑ज॒न्ताथो॒ ये च॑ परा॒द॒दुः।
सूर्यो॒ दिव॑मिव ग॒त्वाय॑ म॒घवा॑नो॒ वि र॑प्शन्ते ॥ ५ ॥

भा०—और जो विद्वान् पुरुषों का आदर सत्कार करते हैं, जो खूब दान करते हैं, आकाश को प्राप्त हुए सूर्य के समान वे ऐश्वर्यवान् पुरुष विविध प्रकारों से शोभा को प्राप्त होते हैं।

(६) योग्य और अयोग्य पुरुषों का वर्णन।

अथ षड् जनकल्पाः। अनुष्टुभः।

योऽना॑क्ता॒क्षो अन॑भ्यक्तो अम॒णिर॑हि॒र॒ण्यवान्।
अब्र॑ह्मा ब्र॒ह्मणः पु॒त्रस्तो ता कल्पे॑षु स॒ं मिता॑ ॥ ६ ॥

भा०—जो ब्रह्म के जानने वाले पुरुष का पुत्र होकर वेद का विद्वान् नहीं है वह बिना अंजी आंख के समान उत्तम रूप से देखने और विवेक करने में समर्थ नहीं है वह शरीर पर तेल आदि न लगाये हुए के समान सुन्दर और चित्ताकर्षक, या स्वस्थ भी नहीं है। वह मणि भूषणादि को न पहनने वाले के समान गुणहीन रहता है। वह सुवर्णादि धारण न करने वाले के समान निर्धन और ज्ञान और गुणों से दरिद्र रहता है। ये सब क्रियासामर्थों में समान जाने गये हैं।

य आ॒क्ता॒क्षः स्व॑भ्यक्तः सुम॒णिः सुहि॑र॒ण्यवान्।
सुब्र॑ह्मा ब्र॒ह्मणः पु॒त्रस्तो ता कल्पे॑षु स॒ं मिता॑ ॥ ७ ॥

भा०—जो वेदज्ञ का पुत्र, स्वयं उत्तम वेद का ज्ञाता है वह अंजी आंख वाले के समान उत्तम रीति से शास्त्र की चक्षु से युक्त हो जाता है। वह गात्र में तैल आदि लगाने वाले के समान सुन्दर और स्वस्थ रहता

है वह उत्तम मणि को धारण करने वाले के समान सुशोभि और उत्तम सुवर्ण आदि के स्वामी के समान ज्ञान का धनी होता है। वे सब जन कर्मसामर्थ्यों में समान हैं।

अप्रपाणा च वेशन्ता रेवाँ अप्रदिदिश्च यः।
अयभ्या कन्या कल्याणी तो ता कल्पेषु सं मिता॥ ८॥

भा०—तालाब जिसका जल पीने योग्य न हो, अथवा जिसमें घाट उत्तम न हो वह धनी पुरुष जो कभी दान नहीं करता है, और कन्या जो कि रूपादि से सम्पन्न तथा कल्याण लक्षणों से युक्त होकर भी मैथुन के योग्य न हो। वे सब कर्मसामर्थ्यों में समान हैं।

सुप्रपाणा च वेशन्ता रेवान्त्सुप्रदादिश्च यः।
सुयभ्या कन्या कल्याणी तो ता कल्पेषु सं मिता॥ ९॥

भा०—उत्तम पान करने योग्य जल व घाट वाला सरोवर धनाढ्य पुरुष जो उत्तम सात्विक दान देने वाला, और कल्याणकारी लक्षणों से युक्त कन्या जो सूखपूर्वक मैथुन करने योग्य अर्थात् गृहस्थ धर्मपालन करने योग्य है वे सब कर्मसामर्थ्यों में समान बतलाये गये हैं, अर्थात् वे तीनों उत्तम और ग्रहण करने योग्य हैं।

परिवृक्ता च महिषी स्वस्त्या च युधिंगमः।
अनाशुरश्वोऽयामी तो ता कल्पेषु सं मिता॥ १०॥

भा०—और रानी जो पति द्वारा छोड़ दी गई है, और कुशलपूर्वक युद्ध में न जाने वाला भीरु सैनिक, घोड़ा, जो तेज़ न हो, और जो पुरुष किसी नियम में न रह सके वे सब कर्मसामर्थ्यों में समान हैं। ये सब कार्य के अवसर पर त्यागने योग्य हैं।

वावाता च महिषी स्वस्त्या च युधिंगमः।
स्वाशुरश्व सुयामी तो ता कल्पेषु सं मिता॥ ११॥

भा०—और रानी जो पति की प्रेमपात्र हो, और वह सैनिक जो

कुशलपूर्वक युद्ध में गमन करे, वह अश्व जो उत्तम गति वाला हो, और सुख से नियम में रहने वाला संयमी पुरुष ये सब कर्म-सामर्थ्यों में समान हैं। ये काम के अवसर पर ग्रहणयोग्य हैं।

(७) वीर राजा का कर्त्तव्य।

अथातः पञ्च इन्द्रगाथाः।

यदिन्द्रो दाशराज्ञे मानुषं विगाहथाः।
वरूथः सर्वस्मा आसीत् स ह यक्षाय कल्पते ॥ १२ ॥

भा०—जिस प्रकार हे ऐश्वर्यवन्! तू दशों दिशाओं के राजाओं के बीच मनुष्य समूह में विचरता है। तू ही सबको घर के समान शरण देने वाला और आपत्ति विपत्तियों और शत्रु के आक्रमणों को रोकने वाला होता है। वह ऐसा पुरुष ही प्रजापति पद के योग्य होता है।

त्वं वृषाक्षं मघवन्नम्रं मर्याकरो रविम्।
त्वं रौहिणं व्यास्यो वि वृत्रस्याभिनच्छिरः ॥ १३ ॥

भा०—हे राजन्! हे नेताओं में कुशल! तू बलवान् इन्द्रियों वाले राजस भाव में लिप्त प्रबल शत्रु को भी नम्र करता है। और तू वट के समान दृढ़ मूलों पर स्थित राजा को भी विविध उपायों से उखाड़ डालता है, और मेघ के समान फैलने और राष्ट्र के घेरने और शस्त्रास्त्रों की वर्षा करने वाले शत्रु के भी शिर को तोड़ डालता है।

यः पर्वतान् व्यदधा यो अपो व्यगाहथाः।
इन्द्रो यो वृत्रहा महान् तस्मादिन्द्र नमोऽस्तु ते ॥ १४ ॥

भा०—जो तू पर्वतों के समान दृढ़, अभेद्य शत्रुओं को भी छिन्न भिन्न करता है, और जो जलों या नदियों के या समुद्र के समान अपार सेनाप्रवाह में भी विविध रूपों से विचरता है, और जो तू शत्रुविदारक होकर बड़ा भारी घेरनेवाले शत्रु का नाश करने हारा है इस कारण से हे ऐश्वर्यवान् तुझे हमारा आदर पूर्वक नमस्कार है।

प्रष्टिं धावन्तं हर्योरौच्चैःश्रवसमब्रुवन् ।
स्वस्त्यश्व जैत्रायेन्द्रमा वह सुस्रजम् ॥ १५ ॥

भा०—ऊंचे कानों वाले, वेग से दौड़ते हुए, वेगवान् अश्व को लोग कहते हैं कि हे वेगवान् अश्व ! तू विजय करने के लिये उत्तम माला धारण करने वाले, या उत्तम सेना व्यूह की रचना करने वाले सेनापति वीर पुरुषों को बलपूर्वक ले जा, उसको सवारी दे ।

युक्त्वा श्वेता औच्चैःश्रवसं हर्योर्युञ्जन्ति दक्षिणम् ।
पूर्वतमं स देवानां बिभ्रदिन्द्रं महीयते ॥ १६ ॥

भा०—वेगवान् अश्वों में से अति वेगवान् और बलवान् ऊंचे कान के घोड़े को शुभकीर्त्ति वाले राजा लोग रथ में लगाते हैं। वह उत्तम अश्व विजिगीषु पुरुषों में सबसे श्रेष्ठ बलवान् राजा को धारण करता हुआ पूजित होता है ।

इति कुन्तापसूक्तम् ।

[१२६] अध्यातम तत्त्व ।

अथ ऐतशप्रलापः । एतश ऋषिः । अग्नेरायुर्निरूपणम् । अग्नेरायुर्यज्ञस्यायात यामं वा षट्सप्ततिसंख्याकपदात्मक सूक्तम् ।

एता अश्वा आ प्लवन्ते ॥ १ ॥ प्रतीपं प्रातिसुत्वनम् ॥ २ ॥
तासामेका हरिक्निका ॥ ३ ॥ हरिक्निके किमिच्छसि ॥ ४ ॥
साधुं पुत्रं हिरण्ययम् ॥ ५ ॥ क्वाहतं परास्यः ॥ ६ ॥
यत्रामूस्तिस्रः शिंशपाः ॥ ७ ॥
परि त्रयः ॥ ८ ॥ पृदाकवः ॥ ९ ॥ शृङ्गं धमन्त आसते ॥ १० ॥
अयन्महा ते अर्वाहः ॥ ११ ॥ स इच्छकं सघाघते ॥ १२ ॥
सघाघते गोमीद्या गोगतीरिति ॥ १३ ॥
पुमां कुस्ते निमिच्छसि ॥ १४ ॥
पल्प बद्ध वयो इति ॥ १५ ॥

बद्धं वो अघा इति ॥ १६ ॥

अजागार केविका ॥ १७ ॥

अश्वस्य वारो गोशपद्यके ॥ १८ ॥

श्येनीपती सा ॥ १९ ॥

अनामयोपजिह्विका ॥ २० ॥

१. ये भोग करने की वृत्तियें सब तरफ़ भाग रही हैं।

२. और उनके प्रेरक आत्मा से प्रतिकूल उससे विपरीत दिशा में जा रही हैं।

३. उनमें से एक 'हरिक्निका' सबके हर्त्ता आत्मा की दीप्तिरूप चिति कला।

४. हे 'हरिक्निके' आत्मा की चितिकले! तू क्या चाहती है।

५. मैं श्रेष्ठ तथा त्रिविध दुःखों से बचाने वाले उस तेजोमय आत्मा को चाहती हूँ।

६. उसका कौन तुझे उपदेश करे? वह तो बहुत दूर अवाङ्-मनसगोचर है।

७. वह वहां है जहां तीन 'शिंशपा' उस परम सुप्त सत्ता के पालन करने वाली तीन अनादि शक्तियां विद्यमान हैं।

८. वे तीनों बहुत दूर हैं।

९. वे तीनों पूर्ण सामर्थ्य वाले हैं।

१०. सब मूल कारण को प्राप्त हुए रहते हैं।

११. वे गात में महान् हैं और शरीर में जुते हुए हैं।

१२. वह इच्छाशील लालची व्यक्ति पर हंसता है।

१३. वह हंसता है जो कि इन्द्रियों की हिंसामय प्रवृत्तियां हैं उन पर, तथा इन्द्रियों की चञ्चलता पर।

१४. हे आत्मन्! इस शरीर में तू क्या नीच गति चाहता है?

१५. क्या मांसभक्षी तथा पिंजरे में बंधे पक्षी की न्याईं तू है ?

१६. हे बन्धे आत्मन् ! तू इस हालत में तो पाप ही पाप हैं ।

१७. अजा अर्थात् प्रकृति के हे आगार अर्थात् आश्रेय बने आत्मन् ! प्रकृति तो (सांसारिक) सुख में बान्धने वाली है ।

१८. तू घुड़सवार अर्थात् इन्द्रियों का स्वामी होकर इन्द्रियों के खुरों में कट-फट रहा है ।

१९. वह प्रकृति तो विविध वर्णों की स्वामिनी है ।

२०. वह प्रकृति तो रागद्वेष आदि रोगों से रहित को भी चाट जाने वाली है ।

[१३०] अध्यात्म तत्त्व ।

को अ॒र्य व॑हुलि॒मा इषू॑नि ॥ १ ॥

को अ॑सि॒द्याः पय॑ः ॥ २ ॥

को अ॑र्जु॒न्याः पय॑ः ॥ ३ ॥

कः का॒र्ष्ण्याः पय॑ः ॥ ४ ॥

ए॒तं पृ॑च्छ॒ कुह॑ पृच्छ ॥ ५ ॥

कुहा॑कं पक्व॒कं पृ॑च्छ ॥ ६ ॥

यवा॑नो यति॒स्वभि॑ः कुभिः ॥ ७ ॥

अकु॑प्यन्त॒ः कुपा॑यकुः ॥ ८ ॥

आम॑णको॒ मण॑त्सकः ॥ ९ ॥

देव॑ त्व प्रतिसूर्य ॥ १० ॥ एनश्चिपङ्क्ति॒का ह॒विः ॥ ११ ॥

प्रदुद्रु॒दो मघा॑ प्रति ॥ १२ ॥

शृ॒ङ्ग उत्पन्न ॥ १३ ॥ मा त्वा॑भि॒ सखा॑ नो विदन् ॥ १४ ॥

व॒शायाः पु॒त्रमा य॑न्ति ॥ १५ ॥

इरा॑ वेदु॒मय॑ं दत ॥ १६ ॥

अथो॑ इ॒यन्नि॒यन्निति॑ ॥ १७ ॥

अथो इयन्निति ॥ १८ ॥

अथोश्वा अस्थिरो भवन् ॥ १९ ॥

उयं यकांशलोकका: ॥ २० ॥

१. हे स्वामिन् कौन दुःखों के बहुत से बाण फेंकता है, चला रहा है।

२—४. रजोमयी प्रकृति का फल क्या है ? सत्वमयी प्रकृति का फल क्या है ? तमोमयी प्रकृति का फल क्या है ?

५. इस प्रश्न को इस विद्वान् से पूछ ।

६. आश्चर्यमय और परिपक्व ज्ञानवान् पुरुष से यह प्रश्न पूछ ।

७. और उससे कह कि हमारे जितने भी कुत्सित कर्म हैं उनसे हमें पृथक् कर ।

८. हम कोप नहीं करते क्रोध करने वाला कुत्सित होता है ।

९. तू मननशील है, और मननशील को शक्ति देता है ।

१०. हे देव ! हे सूर्य के प्रतिरूपक !

११. पापों के ढेर को हम आहुति दे देते हैं ।

१२. तू धनियों को खदेड़ने वाला है ।

१३. हे उत्पन्न हुई कामवासना !

१४. हमारे मित्र तुझे प्राप्त न हों ।

१५. सर्ववशकारिणी ब्रह्मशक्ति के पुत्र की शरण में सभी आते हैं ।

१६. पृथिवी में ज्ञानमय व्यक्ति के प्रति दान दिया करो ।

१७—१८. और आ आ कर इसे दान दिया करो ।

१९. और अस्थिर व्यक्ति कुत्ते की न्याईं हो जाता है ।

२०. ओ देखो, जीवन के किस अंश में लोक लगा हुआ है ।

[१३१] अध्यात्म तत्त्व ।

आमिनोनिति भद्यते ॥ १ ॥

तस्य अनु निभंजनम् ॥ २ ॥

वरुणो याति वस्वभिः ॥ ३ ॥
शतं वा भारती शवः ॥ ४ ॥
शतमश्वा हिरण्ययाः शतं रथ्या हिरण्ययाः ।
शतं कुथा हिरण्ययाः । शतं निष्का हिरण्ययाः ॥ ५ ॥
अहल कुश वर्त्तक ॥ ६ ॥
शफेन इव ओहते ॥ ७ ॥
आय वनेनती जनी ॥ ८ ॥
वनिष्ठा नाव गृह्यन्ति ॥ ९ ॥
इदं मह्यं मदूरिति ॥ १० ॥
ते वृक्षाः सह तिष्ठति ॥ ११ ॥
पाक बलिः ॥ १२ ॥ शकबलिः ॥ १३ ॥
अश्वत्थ खदिरो धवः ॥ १४ ॥
अरदुपरम ॥ १५ ॥
शयो हत इव ॥ १६ ॥
व्याप पूरुषः ॥ १७ ॥
अदूहमित्यां पूषकम् ॥ १८ ॥
अत्यर्धर्च परस्वतः ॥ १९ ॥
दौव हस्तिनो दृती ॥ २० ॥

१. मैंने आत्मा को जान लिया है जो ऐसा कहता है ।

२. उसका फिर दुःख कट जाता है ।

३. परमात्मा स्वयं ऐश्वर्यों के साथ उसके समीप जाता है ।

४–५. और सैकड़ों स्तुतियां तथा बल उसे प्राप्त होते हैं । सुवर्ण से लदे सैकड़ों घोड़े उसे प्राप्त होते हैं । सुवर्ण से भरे सैकड़ों रथ उसे प्राप्त होते

हैं। सैकड़ों सुवर्णमय हौदे तथा झूलें उसे प्राप्त होती हैं। तथा सैकड़ों सुवर्णमय हार तथा सिक्के उसे प्राप्त होते हैं।

६. बिना हल जुते खेत की न्याईं वर्तमान, संसार में सोए पड़े हे व्यवहारी जीव !

७. वह परमात्मा तो अनायास उखेड़ देता है जैसे कि खुर के प्रहार से कोई वस्तु।

८. आ, भक्ति करने पर वह जगज्जननी नत हो जाती है, झुक जाती है।

९. भक्ति में निष्ठा वाले यह खयाल नहीं करते कि

१०. संसार की अमुक अमुक वस्तु मुझे आनन्ददायक है।

११. वे वृक्षों के समान स्थिर समाहित विराजते हैं। क्योंकि उनके साथ परमात्मा सदा स्थित है।

१२. और वे कहते हैं कि हे परिपक्व ज्ञान वाले! तेरे प्रति यह भेंट है।

१३. तथा हे शक्तिशाली ! तेरे प्रति यह भेंट है।

१४. वह 'अश्वत्थ' सनातन व्याप्त होकर विराजने वाला है वह 'खदिर' सदा स्थिरता से विद्यमान नित्य है। वह 'धव' सब दुःखों और पाप मलों को नाश करने वाला, शुद्ध, बुद्ध, मुक्तस्वभाव है।

१५. इसलिये हे, संसार के व्यवहारी! तू उपराम वृत्ति वाला हो जा।

१६. संसार के व्यवहारों में सोए हुए की न्याईं और मरे हुए की न्याईं हो जा।

१७. और समझ कि वह पूर्ण परमेश्वर सर्वत्र व्यापक है।

१८. और यह समझ कि मैं उस पोषक शक्ति से अपने सामर्थ्य का दोहन कर रहा हूँ।

१९. वह परमस्वरूपवान्, महान् समृद्ध है, उसी की तू अर्चना कर।

२०. हाथी के दोनों दांतों के समान आत्मा के दोनों ज्ञान और कर्म बन्धन काटने वाले हैं ।

[१३२] अध्यात्म व्याख्या ।

आदलाबुकमेककम् ॥ १ ॥
अलाबुकं निखातकम् ॥ २ ॥
कर्करिको निखातकः ॥ ३ ॥
तद् वात उन्मथायति ॥ ४ ॥
कुलायं कृणवादिति ॥ ५ ॥
उग्रं वनिषदाततम् ॥ ६ ॥
न वनिषदनाततम् ॥ ७ ॥
क एषां कर्करी लिखत् ॥ ८ ॥
क एषां दुन्दुभिं हनत् ॥ ९ ॥
यदीयं हनत् कथं हनत् ॥ १० ॥
देवी हनत् कुहनत् ॥ ११ ॥
पर्यागारं पुनःपुनः ॥ १२ ॥
त्रीण्युष्ट्रस्य नामानि ॥ १३ ॥
हिरण्य इत्येके अब्रवीत् ॥ १४ ॥
द्वौ वा ये शिशवः ॥ १५ ॥
नीलशिखण्डवाहनः ॥ १६ ॥

१. तदन्तर वह एक आत्मा तूम्बे के समान संसारसागर पर तैरता है ।

२. वह तूम्बे के समान आत्मा तदनन्तर प्रकृति में गड़ जाता है ।

३. वह क्रियाशील आत्मा प्रकृति में गड़ जाता है ।

४. उसको 'वात' प्राण हिलाता डुलाता है ।

५. वह अपना उसे आश्रय बना लेता है ।

६. वह उग्र होकर व्यापक ऐश्वर्य का भोग करता है।

७. स्वल्प का भोग नहीं करता।

८. इन प्राणगण में से उस कर्त्ता को कौन उखाड़ता है, मुक्त करता है ?

९. उनमें से कौन दुन्दुभि अर्थात् भीतरी नाद को बजाता है।

१० जो बजाता है वह कैसे बजाता है।

११. आत्मा की चितिशक्ति बजाती है, तो वह कहां बजाती है ?

१२. वह आत्मा पुनः अपने आश्रय में आता है अर्थात् पुनः पुनः देह में आता है।

१३. सर्व दुःखदाहक के तीन नाम हैं।

१४. एक 'हिरण्य' अर्थात् वह हित और रमणीय सत्वगुण का स्वामी है, ऐसा एकनाम कहा जाता है।

१५. दो और नाम हैं—यह शिशु बुद्धि के लोग कहते हैं।

१६. नीलवाहन और शिखण्डवाहन। अर्थात् वह तमोगुणमयी और रजोगुणमयी प्रकृति का वाहन है।

इस प्रकार ऐतश मुनि दृष्ट 'प्रलाप' अर्थात् उत्कृष्टसूक्तों की आध्यात्मिक योजना है। वस्तुतः वह सूक्त बड़े रहस्यमय हैं इन पर भी अधिक विचार की आवश्यकता है।

इति ऐतशप्रलापाः।

[१३३] ब्रह्म प्रकृति विषयक ६ पहेलियां।

अथ प्रवल्हिकाः षट्।

वित॑तौ किर॒णौ द्वौ॒ ताव॒ा पि॑नष्टि॒ पूरु॑षः।
न वै॑ कुमारि॒ तत् त॒था यथा॑ कुमारि॒ मन्य॑से ॥ १ ॥

भा०—पीस पीस कर फेंकने वाले चक्की के दो पाटों के समान आकाश और पृथिवी अति विस्तृत हैं। उन दोनों को पुरुष अकेला ही

निरन्तर चक्की के समान पीसता चलाता हैं । हे नवयौवन वाली कन्ये ! वह ब्रह्मतत्व वैसा सरल नहीं है जैसा कि तू मानती है ।

मातुष्टे किरणौ द्वौ निवृत्तः पुरुषानृते । न वै० ॥ २ ॥

भा०—हे शरीरपुरी में बसने वाले जीव ! तेरी मातारूप ब्रह्मशक्ति से अनृत रूप दो विक्षेपक वृत्तियां निवृत्त हुई हैं ।

निगृह्य कर्णकौ द्वौ निरायच्छसि मध्यमे । न वै० ॥ ३ ॥

भा०—हे बीच में स्थित ब्रह्मशक्ते ! तू क्रियाशील दोनों को अर्थात् जीव और प्रकृति को वश करके ऐसे बांध देती है जैसे रस्सियों के दो छोर पकड़ कर बीच में गांठ लगा दी जाती है ।

उत्तानायै शयानायै तिष्ठन्तीवाव गूहसि । न वै० ॥ ४ ॥

भा०—हे परमेश्वर ! जिस प्रकार उतान लेटी हुई स्त्री को पुरुष भोग करता है उस प्रकार तू प्रकृतिरूप स्त्री को भोग नहीं करता । और न प्रलय में सोई हुई प्रकृति का तू भोग करता है । तो भी तू प्रकृति के सर्वाङ्गों में व्याप रहा है, उसके कण कण में रम रहा है । वै० इत्यादि पूर्ववत् ।

श्लक्ष्णायां श्लक्ष्णिकायां श्लक्ष्णमेवाव गूहसि । न वै० ॥५॥

भा०—स्नेह वाली प्रकृति में तू छिपा हुआ सा विद्यमान रहता है ।

अवश्लक्ष्णमिव भ्रंशदन्तर्लोमवति ह्रदे ।
न वै कुमारि तत् तथा यथा कुमारि मन्यसे ॥ ६ ॥

भा०—चिक्कण पदार्थ केशों के समान शैवाल वाले तालाब में जिस प्रकार नीचे फिसला जाता है, उसी प्रकार ब्रह्म भी जलाशय के समान इस सलिलमय प्रकृतितत्व में नीचे उतरकर उसमें प्रविष्ट या व्याप्त हो जाता है । (न वै० कुमारि० इत्यादि पूर्ववत्)

[१३४] जीव, ब्रह्म, प्रकृति ।

अथ षट् आजिज्ञासेन्याः ।

इहेत्थ प्रागपागुदगधराग् । अरालागुदभर्त्सथ ॥ १ ॥

भा०—इस जगत् में इस प्रकार पूर्व, पश्चिम, उत्तर और दक्षिण में तथा अन्तराल में सबका भरण पोषण करो ।

० वत्साः पुरुषन्त आसते ॥ २ ॥

भा०—बच्चे जब पुरुष बन जावें तो इन्हें ऐसी शिक्षा दो ।

० स्थालीपाको वि लीयते ॥ ३ ॥

भा०—नहीं तो गृहस्थी की पकी पकाई रसोई भी विलीन हो जाती है ।

० स वै पृथु लीयते ॥ ४ ॥

भा०—वह बिल्कुल ही विलीन हो जाती है ।

० आष्टे लाहणि लीशाथी ॥ ५ ॥

भा०—हे प्राप्त वस्तु की हत्या करने वाली ! तेरी रसोई विलीन हो गई थी, और सो गई थी । अर्थात् दूसरों को न देकर स्वयमेव रसोई का भोग करने से प्राप्त वस्तु भी छीन ली जाती है । और पकी पकाई रसोई भी पड़े रहती है ।

इहेत्थ प्रागपागुदगधराग् । आदिलली पुच्छिलीयते ॥ ६ ॥

भा०—इस प्रकार इस जगत् में सब दिशाओं में तुम सबका भरण पोषण किया करो । अपनी ही इन्द्रियों में लीन व्यक्ति तो पूछ वाले पशु के समान है ।

[१३५] जीव, ब्रह्म, प्रकृति ।

भुगित्यभिगतः । शलित्यपक्रान्तः । फलित्यभिष्ठितः ।

दुन्दुभिमाहननाभ्यां जरितरोथामो दैव ॥ १ ॥

भा०—यह जीवात्मा भोक्ता है इस रूप से वह इस देह में आ

गया है । जब शरीर शीर्ण हो जाता है तब वह 'शल्' शरीरान्तरगामी आत्मा होने से आप से आप शरीर से निकल भागता है । कर्मफल भोगने के लिये जीव इस शरीर में स्थित होता है । हे वेदोपदेष्टः! हे देवाधिदेव! हम उठते हैं और इस सिद्धान्त की डौंडी पीटी हैं ।

कोशबिले रजनि ग्रन्थेर्धानमुपानहिपादम् ।
उत्तमां जनिमां जन्यानुत्तमां जनीन् वर्त्मन्यात् ॥ २ ॥

भा०—कोश के बिल में जैसे खज़ाना रख दिया जाता है, रस्सी में जैसे गांठ लगा दी जाती है, जूते में जैसे पैर रख दिया जाता है इसी प्रकार जीव शरीर में स्थित हो जाता है वह उत्तम जन्म, उत्तम बन्धुओं और उत्तम माता को प्राप्त होकर सदाचार के मार्ग में चलता है ।

अलाबूनि पृषातकान्यश्वत्थपलाशम् ।
पिपीलिका वटश्वसो विद्युत्स्वापर्ण शफो गोशफो जरितरोथामो दैव ॥ ३ ॥

भा०—जैसे तूम्बा, घृतविन्दु, पीपल का पत्ता, कीडी, वट की कौंपल जल पर तैरते रहते हैं, या विद्युत मेघ में रहती है, या किरणें (सुपर्ण) आकाश में पग रखती हैं, या गौ का खुर जैसे पृथिवी पर ऊपर ही ऊपर रह जाता है इसी प्रकार जीव शरीर में रहता है । हे वेदोपदेष्टः! देवाधिदेव ! हम उठते हैं और इस सिद्धान्त की डौंडी पीटते हैं ।

वीमे देवा अक्रंसताध्वर्यो क्षिप्रं प्र चर ।
सुसत्यमिद् गवामस्यसि प्रखुदसि ॥ ४ ॥

भा०—ये विषयों में क्रीड़ा करने वाले प्राण, चक्षु आदि इन्द्रियगण विविध विषयों में दौड़ते हैं । हे अहिंसक अथवा अविनाशिन् आत्मन् ! तू अति शीघ्र इन सबका प्रमुख होकर चल । तू समस्त इन्द्रियों का सच्चा आश्रय स्थान है । और तू सबसे बढ़कर आनन्द लेने वाला है । तू आनन्द का अनुभव कर ।

पत्नी यदृश्यते पत्नी यक्ष्यमाणा जरितरोथामो दैव। होता विष्टीमेन जरितरोथामो दैव ॥ ५ ॥

भा०—संसार का पालन करने वाली प्रकृति परमेश्वर से संगत होती हुई पालिका के समान दिखाई देती है। और इसके भीतर प्रविष्ट परमेश्वर इसमें बल आधान करने वाला होकर उसका वशकर्त्ता है। हे स्तुतिशील विद्वन् ! हम इसी प्रकार जानते हैं, अन्यों को प्रवचन करते हैं।

दक्षिणा और विद्वानों का सत्कार।

आदित्या ह जरितरङ्गिरोभ्यो दक्षिणामनयन्।
तां ह जरितः प्रत्यायंस्तामु ह जरितः प्रत्यायन् ॥६॥

भा०—हे विद्यादि के उपदेष्टा ! प्रजा से कर आदि लेने वाले राजा, और लेनदेन करने वाले वैश्यगण, विद्वान् पुरुषों को दक्षिणा प्रदान करें। उसको विद्वान्जन स्वीकार कर लेते हैं।

तां ह जरितर्नः प्रत्यगृभ्णंस्तामु ह जरितर्नः प्रत्यगृभ्णः।
अहानेतरसं न विचेतनानि यज्ञानेतरसं न पुरोगवामः ॥ ७ ॥

भा०—उस दक्षिणा को विद्वान् लोग स्वीकार नहीं भी करते। दिन के बिना जैसे विविध प्रकार की चेतना काम नहीं करती इसी प्रकार यज्ञों के बिना हम आगे नहीं बढ़ सकते। इसलिये दक्षिणा तो स्वीकार करनी ही चाहिये।

उत श्वेत आशुपत्वा उतो पद्याभिर्जविष्ठः।
उतेमाशु मानं पिपर्ति ॥ ८ ॥

भा०—और वह आदित्य के समान तेजस्वी विद्वान् वेग से मार्ग पर जाने में कुशल है। और गमन करने की नाना क्रियाओं और मार्गों से अतिवेग से जाने में कुशल है। और इसको बहुत ही शीघ्र सत्कार पालता है।

आदित्या रुद्रा वसवस्त्वेनु त इदं राधः प्रति गृभ्णीह्यङ्गिरः।
इदं राधो विभु प्रभु इदं राधो बृहत् पृथु ॥ ९ ॥

भा०—हे ज्ञानवान् ! विद्वान्, वीरगण और सामान्य प्रजा सभी तेरी स्तुति करते हैं। तू यह धनैश्वर्यं स्वीकार कर। यह हमारा दिया धन विविध कार्यों से प्राप्त है। और उत्तम फलजनक और उत्तम कार्यों से प्राप्त है यह धन बहुत बड़ा और विस्तृत है।

देवा ददत्वासुरं तद् वो अस्तु सुचेतनम्।

युष्माँ अस्तु दिवेदिवे प्रत्येव गृभायत ॥ १० ॥

भा०—दानशील पुरुष सब तरफ़ से धनशाली दान प्रदान करें। वह धन, हे विद्वान् पुरुषो ! तुम लोगों को उत्तम ज्ञान कराने वाला हो। और प्रतिदिन तुमको प्राप्त हो। और आप लोग उसको स्वीकार कर लिया करो।

त्वमिन्द्र शर्मरिणा हव्यं पारावतेभ्यः।

विप्राय स्तुवते वसुवनिं दुरश्रवसे वह ॥ ११ ॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन् ! तू परब्रह्म में शरण प्राप्त करने वाले ब्रह्मज्ञानियों को सुखकर अन्न और धन प्रदान कर, और दूर तक परमपद तक श्रवण करने वाले बहुश्रुत, अतिविख्याता, यशस्वी, अथवा उच्चारण से वेद पाठ करने वाले या उत्तम व्याख्याता, स्तुति करने हारे उपदेष्टा मेधावी विद्वान् को भी धन प्रदान कर।

त्वमिन्द्र कपोताय च्छिन्नपक्षाय वञ्चते।

श्यामाकं पक्वं पीलु च वारस्मा अकृणोर्बहुः ॥ १२ ॥

भा०—हे ऐश्वर्यवान् पुरुष ! तू कटे पंख वाले कबूतर के समान आश्रय से रहित, तथा भ्रमण करने वाले नाना प्रकार के ज्ञान से युक्त, विद्वान् अतिथि को सावां चावल, पक्व अन्न, और आश्रय और जल और बहुत से पदार्थ आदरार्थ दिया कर।

अरंगरो वावदीति त्रेधा बद्धो वरत्रया।

इरामह प्रशंसत्यनिरामप सेधति ॥ १३ ॥

भा०—अति उत्तम उपदेष्टा पुरुष वरण योग्य दक्षिणा द्वारा मानो रस्सी से बंधकर, निरन्तर उपदेश ही करता है। वह अन्न आदि देने वाले की प्रशंसा करता है और न देने वाले निर्धन को छोड़कर चला जाता है।

[१३६] राजा, राजसभा के कर्तव्य।

अथ षोडश आहनस्या ऋचः।

यद॒स्या अं॑हु॒भेद्याः॑ कृ॒धु स्थू॒लमु॒पात॑सत् ।
मु॒ष्काविद॑स्या एज॒तो गो॑श॒फे श॑कु॒लावि॑व ॥ १ ॥

भा०—जब पाप का नाश करने वाली इस प्रजा या पृथ्वी का छोटा या बड़ा भाग भी विनष्ट होता है, तब इसके चोरवत् पापी स्त्री-पुरुष छोटे से स्थान में फंसी मछरियों के समान कांपा करते हैं।

यदा॑ स्थू॒लेन॒ पस॑साणौ॑ मु॒ष्का उपा॑वधीत् ।
विष्वं॑ञ्चाव॒स्या वर्ध॑तः॒ सिक॑तास्वि॒व गर्द॑भौ ॥ २ ॥

भा०—जब राजा अधिक बड़े राज्यप्रबंध द्वारा छोटे छोटे अपराध पर भी चोर स्त्री-पुरुषों को दण्ड देता है, तब इस प्रजा के अति आकांक्षा वाले तथा सर्वत्र फैले हुए प्रजा के नरनारी बालुकामय देशों में अश्वों के समान बढ़ते हैं।

यद॑ल्पिक॒ा स्व॑ल्पिक॒ा कर्क॑न्धूके॒व पद्य॑ते ।
वास॑न्ति॒कमि॑व॒ तेज॑नं॒ यन्त्य॒वाता॑य॒ वित्प॑तिम् ॥ ३ ॥

भा०—जब थोड़ी और बहुत ही छोटी प्रजा हो तो वह झरबैरी के समान समझी जाती है। तब वह वित्तपति राजा को अपनी रक्षा के लिये प्राप्त होती है। जैसे कि शीतार्त लोग वसन्त के सूर्य का सेवन करते हैं।

यद् दे॒वासो॑ ल॒लाम॑गुं॒ प्रवि॑ष्टी॒मिन॑मावि॒षुः ।
स॒क्थ्ना दे॑दि॒श्यते॒ नारी॑ स॒त्यस्या॑क्षि॒भुवो॑ यथा ॥ ४ ॥

भा०—जब विजयशील पुरुष सुन्दर गति वाले उत्तम प्रजा के स्वामी को प्राप्त होते हैं तब जिस प्रकार आंख से देखे सत्य को विशेष प्रमाण माना जाता है, उसी प्रकार मनुष्यों की बनी सभा में संघशक्ति से जो बात निर्धारित हो जाती है वह भी प्रमाण मानने योग्य हो जाती है।

महानग्न्यतृप्नद्विमोक्रदस्थां नासरन्।
शक्तिकानना स्वचमशकं सक्तु पद्यम ॥ ५ ॥

भा०—वह सभा प्रजा को तृप्त करती है, किसी को विमुक्त करती है और किसी को रौंदती है, आराम न करती हुई काम करती है। यह मानों शक्ति की खान है। इस सभा के होते प्रजा अपने अपने भोजन को प्राप्त कर सकती है। सत्तु आदि प्राप्त कर सकती है।

महानग्न्युलूखलमतिक्रामन्त्यब्रवीत्।
यथा तव वनस्पते निरघ्नन्ति तथैवेति ॥ ६ ॥

भा०—महासभा ओखली को दृष्टान्तरूप से प्राप्त करती हुई कहती है कि जिस प्रकार काष्ठ के बने ओखल के बीच में धान डालकर कूटते हैं उसी प्रकार हे राजन्! सत्यासत्य का निर्णय करने के लिये सभा के बीच में हम तत्त्व को खूब कूटते पीसते हैं, विचारते हैं। इसलिये उसी को वैसा ही निश्चित जानकर स्वीकार करते हैं।

महानग्न्युप ब्रूते भ्रष्टोथाप्यभूभुवः।
यथैव ते वनस्पते पिप्यति तथैवेति ॥ ७ ॥

भा०—राजसभा यह कहती है कि हे प्रजाओं के पालक! जब अपने न्यायमार्ग से सत्याचरण और विवेक से तू भ्रष्ट हो जाय तो भी ओखल में जिस प्रकार धान्यों को पीसते कूटते हैं और दाना निकालते हैं उसी प्रकार तेरे उपादेय तत्त्व को भी हम पीसते हैं तेरे किये पर पुनः पुनः विचार करते और सत्य को स्वीकार करते हैं।

महानग्न्युप ब्रूते भ्रष्टोऽथाप्यभूभुवः।
यथा वयो विदाह्य स्वर्गे नमवदह्यते ॥ ८ ॥

भा०—राजसभा यह कहती है कि हे राजन् ! हम तुझे इतना परिपक्व कर देते हैं कि जिस प्रकार सूर्य पृथिवीवासियों को दग्धकर स्वयं आकाश में दग्ध नहीं होता इसी प्रकार तू भी हो ।

महानग्न्युप ब्रूते स्वसावेशितं पसः ।
इत्थं फलस्य वृक्षस्य शूर्पे शूर्पं भजेमहि ॥ ९ ॥

भा०—बहिन की न्याईं हितकारिणी महासभा कहती है कि जब प्रजाजन में राष्ट्रसावका प्रवेश हो जाता है । तब फले हुए वृक्ष का अपना अपना भाग सब प्राप्त करते हैं । एक शूर्प के बाद दूसरा अपना अपना शूर्प भर कर ले जाते हैं ।

महानग्नी कृकवाकं शम्यया परि धावति ।
अयं न विद्म यो मृगः शीर्ष्णा हरति धाणिकाम् ॥ १० ॥

भा०—बड़ी राजसभा कण्ठ से उत्तम वचन बोलने वाले का शान्ति-युक्त वाणी से अनुगमन करती है । सभी कहते हैं हम नहीं जानते कौन है कि जो व्याघ्र के समान शूरवीर होकर अपने शिर पर प्रजा के भरण पोषण के भार को धारण करता है ।

महानग्नी महानग्नं धावन्तमनु धावति ।
इमास्तदस्य गा रक्ष यभ मामद्ध्यौदनम् ॥ ११ ॥

भा०—बड़ी सभा वेग से आगे बढ़ते हुए बड़े विद्वान् नेता के पीछे जाती है । वह तू हे राजन् ! इस प्रजाजन की भूमियों और वाणियों की रक्षा कर । पुरुष जिस प्रकार स्त्री से संगत होकर प्रसन्न होता है उसी प्रकार तू मुझसे युक्त होकर हे राजन् ! वीर्य, बल और प्रजापतिपद का भोग कर ।

सुदेवस्त्वा महानग्नीर्व बाधते महतः साधु खोदनम् ।
कुसं पीवरो नवत् यभ मामद्ध्यौदनम् ॥ १२ ॥

भा०—हे महासभे ! उत्तम तेजस्वी राजा तुझे विविध प्रकार से मथता है, दूध से मक्खन के समान तुझसे सार पदार्थ प्राप्त करता है। बड़े भारी राष्ट्र से उत्तम सुख-ऐश्वर्य प्राप्त होता है। उस समय बलवान् पुरुष भी कृश पुरुष की स्तुति करता है। इसलिये हे राजन् ! जिस प्रकार स्त्री अपने कृशपति को प्राप्त करके भी उससे संग लाभ करती है और पति को सुख प्राप्त होता है उसी प्रकार तू भी मेरे साथ सुसंगत होकर रह और राज्यपद के अधिकार का भोगकर।

वशा दग्धामिमाङ्गुरिं प्र सृजतोग्रतं परे।
महान् वै भद्रो यभ मामद्ध्यौदनम् ॥ १३ ॥

भा०—जैसे कोई जली अंगुली को काट डालता है वैसे ही वश में रहने वाली प्रजा अत्युग्र राजा को भी परे फेंक देती है। हे राष्ट्रपते ! तू मुझसे पति के समान सुसंगत होकर रह। और भोग्य परिपक्व अन्न के समान राज्याधिकार का भोग कर।

विदेवस्त्वा महानग्नीर्विबाधते महतः साधु खोदनम्।
कुमारिका पिङ्गलिका कार्द भस्मा कु धावति ॥ १४ ॥

भा०—विविध देशों को विजय करने हारा एवं विविध गुणों का प्रकाशक राजा हे महासभे ! बड़े राष्ट्र के उत्तम सुखकारी ऐश्वर्य को विविध उपायों से दूध से मक्खन के समान मथ कर प्राप्त करता है। सुन्दर रूपवती कुमारी के समान तेजस्विनी सेना अपने आवश्यक कार्य को समाप्त करके आगे बढ़ती है।

महान् वै भद्रो बिल्वो महान् भद्र उदुम्बरः।
महाँ अभिक्त बाधते महतः साधु खोदनम् ॥ १५ ॥

भा०—शत्रु को भेदने में समर्थ बड़ा पुरुष ही प्रजा को कल्याण-सुख का देने वाला होता है। इसी प्रकार भारी बलवान् पुरुष भी प्रजा

को सुखकारी है । बड़ा पुरुष ही बड़े राष्ट्र के उत्तम ऐश्वर्य को सब प्रकार से श्रम से लेता है, और उसको भोगता है ।

यः कुमारी पिङ्गलिका वसन्तं पीवरी लभेत् ।
तैलकुण्डमिमाङ्गुष्ठं रोदन्तं शुदं मद्धरेत् ॥ १६ ॥

भा०—गौर वर्ण की सुन्दर कुमारी स्वयं हृष्ट पुष्ट होकर भी जिस प्रकार जिस किसी कृश पुरुष को प्राप्त कर ले, उसी प्रकार बलवती राजसभा जब निर्बल राजा को प्राप्त करती है तब जिस प्रकार तपे तेल के कड़ाह में से जैसे कोई अपनी अंगुली को झट से अलग कर लेता है उसी प्रकार प्रजा को पीड़ा देने वाले उस अल्प बल के पुरुष को वह उखाड़ फेंकती है ।

इति कुन्तापसूक्तानि समाप्तानि ।

[१३७] राजपद ।

१ शिरिम्बिठिः । बुधः । ३, ४, ६, ययातिः । ७—११, तिरश्चीराङ्गिरसो द्युतानो वा मारुत ऋषयः । १ लक्ष्मीनाशनी । २ वैश्वदेवी । ३, ४-६ सामः पवमान इन्द्रश्च देवताः । १, ३, ४—६ अनुष्टुभौ । ५—१२ अनुष्टुभः । १२—१४ गायत्र्यः । चतुर्ऋचं सूक्तम् ।

यद्ध प्राचीरजगन्तोरो मण्डूरधाणिकीः ।
हता इन्द्रस्य शत्रवः सर्वे बुद्बुदयाशवः ॥ १ ॥

भा०—और जब बड़ी बड़ी लोहे की धाना, दानें, छर्रे वाली तोपें आगे बढ़ी हुई चलती हैं तब सेनापति के समस्त शत्रु जल के बुलबुले के समान शीघ्र विनष्ट हो जाते हैं ।

'मण्डूर' लोहविशेष, फौलाद कहाता है । इसके आयुर्वेद में भस्म और धनुर्वेद में शस्त्र बनाने का विधान है । 'धाणिका' = गोली, धाना, दाना ।

कपृन्नरः कपृथमुद् दधातन चोदयत खुदत वाजसातये ।
निष्टिग्र्यः पुत्रमा च्यावयोतय इन्द्रं सबाध इह सोमपीतये ॥२॥

भा०—हे नेता लोगो ! राजा प्रजापालक पद को निभाने में समर्थ है। उस सुख के पालक को ऊंचे पदपर स्थापित करो। उसको युद्ध करने और ऐश्वर्य प्राप्त करने के लिये प्रेरित करो। और उसको प्रसन्न एवं सुखी रक्खो। हे शत्रुओं को एक साथ मिलकर विनाश करने वाले वीर पुरुषो ! आप लोग इस राष्ट्र में सर्वप्रेरक राजा के परमपद या राष्ट्र के भोग के लिये गुप्त रूप से सबको वश करने का उपदेश करने वाली राजसभा के पुत्र के समान ऐश्वर्यवान् पुरुष को राज्य की रक्षा के लिये अधिकार प्रदान करो।

दधिक्राव्णो अकारिषं जिष्णोरश्वस्य वाजिनः ।
सुरभि नो मुखा करत् प्र ण आयूंषि तारिषत् ॥ ३ ॥

भा०—अश्व के समान बलवान्, अपनी जीवनयात्रा के साथ साथ दूसरे के भरण पोषण के भार को उठा लेने वाले, विजयशील पुरुष को मैं उच्च पदाधिकार प्रदान करता हूँ। वह हमारे मुख्य मुख्य अंगों और पदाधिकारियों को उत्तम कार्य करने में समर्थ, सुदृढ़, बलवान् करे, हमारे आयुओं की वृद्धि करे।

सुतासो मधुमत्तमाः सोमा इन्द्राय मन्दिनः ।
पवित्रवन्तो अक्षरन् देवान् गच्छन्तु वो मदाः ॥ ४ ॥

भा०—उत्पन्न किये, अत्यन्त मधुर समस्त ऐश्वर्य शत्रुनाशकारी राजा को ही आनन्द देने वाले हैं। वे पवित्र करने हारे सदाचारी पुरुषों के निमित्त पात्रों में जल के समान प्राप्त हों। हे पुरुषो। तुम लोगों के समस्त हर्षदायी, तृप्तिकारी सुखजनक पदार्थ उत्तम ज्ञानवान् पुरुषों को प्राप्त हों।

इन्दुरिन्द्राय पवत इति देवासो अब्रुवन् ।
वाचस्पतिर्मखस्यते विश्वस्येशान ओजसा ॥ ५ ॥

भा०—यह द्रुतगति से जाने वाला, ज्ञानवान्, दयार्द्र पुरुष उस ऐश्वर्यवान् राजा के लिये कार्य करता है। इस प्रकार विद्वान् पुरुष कहा करते हैं। वाणी का पालक स्वामी, सब प्रकार की पूजा के योग्य है। वही अपने बलपराक्रम से समस्त विश्व का स्वामी है।

सहस्रधारः पवते समुद्रो वाचमीङ्खयः।
सोमः पती रयीणां सखेन्द्रस्य दिवेदिवे ॥ ६ ॥

भा०—ऐश्वर्यवान् राजा का प्रतिदिन का मित्र, समस्त ऐश्वर्यों का पालक, सबका प्रेरक, आज्ञाओं और उत्तम ज्ञानवाणियों का उपदेष्टा, सहस्रों विद्याओं को धारण करने वाला और मेघ के समान हज़ारों ज्ञान-धाराओं की वर्षा करने वाला, समुद्र के समान ज्ञानरत्नों और आप्त-विद्याओं का सागर होकर, राष्ट्र में स्थित हो और सबको प्रेरित करे।

अव द्रप्सो अंशुमतीमतिष्ठदियानः कृष्णो दशभिः सहस्रैः।
आवत् तमिन्द्रः शच्या धमन्तमप स्नेहितीर्नृमणा अधत्त ॥ ७ ॥

भा०—दर्पवान्, प्रजाओं का पीड़न करने वाला अत्याचारी राजा, दशों हज़ारों सैनिकों के साथ आक्रमण करता करता परस्पर विभाग या फूट वाली प्रजा पर अधिकार कर लेता है। परन्तु मनुष्यों के मन को हरने वाला, प्रजा का अभिमत प्रिय ऐश्वर्यवान् राजा गर्जते हुए उस गर्वीले दुष्ट राजा पर अपनी शक्तिशाली सेना से चढ़ाई करे। और उसकी हिंसाकारी दुष्ट सेनाओं व कुटिल नीतियों को दूर करे पराजित करे।

द्रप्समपश्यं विषुणे चरन्तमुपह्वरे नद्यो अंशुमत्याः।
नभो न कृष्णमवतस्थिवांसमिष्यामि वो वृषणो युध्यताजौ ॥८॥

भा०—कुत्सित आचरण करने और प्रजा का माल खा जाने वाले, प्रजा के पीड़क, नदियों के समान जलवत् धन से भरी हुई या धन को पानी के समान बहाने वाली और फूट वाली प्रजा के समीप सब ओर फैले अति विषम व्यवहार में विचरते हुए, और मेघ के समान फैलकर

बैठे को देखता हूँ । हे बलवान् पुरुषो ! आप लोग युद्ध में जूझ जाओ। मैं यही चाहता हूँ ।

अध द्रप्सो अंशुमत्या उपस्थेऽधारयत् तन्वं तित्विषाणः ।
विशो अदेवीरभ्याऽचरन्तीर्बृहस्पतिना युजेन्द्रः ससाहे ॥ ९ ॥

भा०—और कुत्सित चाल से प्रजा को खजाने वाला पुरुष, फूट वाली प्रजा के बीच में रह कर, अति तेजस्वी होकर, अपने विस्तृत राज्य को धारण किये रहता है । बड़ी भारी सेना के सेनापति अथवा ज्ञान के स्वामी विद्वान् पुरुष को साथ लेकर शत्रु विनाशक राजा सम्मुख मुकाबले पर आती हुई या प्रतिकूल आचरण करती हुई उत्तम गुणों से रहित तामस प्रजाओं को पराजित करता है ।

त्वं ह त्यत् सप्तभ्यो जायमानोऽशत्रुभ्यो अभवः शत्रुरिन्द्र ।
गूल्हे द्यावापृथिवी अन्वविन्दो विभुमद्भ्यो भुवनेभ्यो रणं धाः ॥१०

भा०—हे ऐश्वर्यवन् ! तू प्रकट होता हुआ, प्रजा का विनाश न करने वाले सत् पुरुषों के हित के लिये, दुष्टों का नाश करने वाला हो। और सातों प्रचुर धन, सामर्थ्य वाले लोकों या प्रजाजनों के हित के लिये संग्राम कर । और अति सुरक्षित आकाश और पृथिवी के समान राजा और प्रजा को प्राप्त कर और अपने वश कर ।

त्वं ह त्यदप्रतिमानमोजो वज्रेण वज्रिन् धृषितो जघन्थ ।
त्वं शुष्णस्यावातिरो वधत्रैस्त्वं गा इन्द्र शच्येदविन्दः ॥ ११ ॥

भा०—हे वज्रधारिन् ! तू वज्रद्वारा शत्रुओं का धर्षण करने हारा होकर, उस असीम पराक्रम को प्राप्त होता है । और तू हिंसाकारी साधनों से प्रजाशोषक दुष्ट पुरुष का विनाश करता है । और तू शक्ति, सेना, प्रज्ञा, या कर्मसामर्थ्य से ही भूमियों को अपने वश करता है ।

तमिन्द्रं वाजयामसि महे वृत्राय हन्तवे ।
स वृषा वृषभो भुवत् ॥ १२ ॥

भा०—हम उस शत्रुनाशकारी सेनापति को, बड़े भारी विघ्नकारी शत्रु के नाश करने के लिये, बलवान् बनावें। वह मेघ के समान सुख-ऐश्वर्यों का वर्षक अति श्रेष्ठ सामर्थ्यवान् हो।

इन्द्रः स दामने कृत ओजिष्ठः स मदे हितः ।
द्युम्नी श्लोकी स सोम्यः ॥ १३ ॥

भा०—वह ऐश्वर्यवान् सेनापति दान देने के लिये ही बनाया गया है। वह तृप्त करने वाले हर्ष के हेतु राज्यैश्वर्य के निमित्त ही अति पराक्रमी होकर स्थापित किया जाता है। वह स्तुति योग्य और सर्वप्रेरक पद के योग्य है।

गिरा वज्रो न संभृत सबलो अनपच्युतः ।
ववक्ष ऋष्वो अस्तृतः ॥ १४ ॥

भा०—वाणी द्वारा अच्छी प्रकार स्तुति किया जाकर, शस्त्र के समान अति तीक्ष्ण, बलवान्, शत्रुओं से कभी पदच्युत न होने वाला, महान् और अहिंसित होकर राष्ट्र के भार को उठाता है।

[१३८] परमेश्वर और राजा।

वत्स ऋषिः । इन्द्रो देवता । गायत्र्यः । तृचं सूक्तम् ।

महाँ इन्द्रो य ओजसा पर्जन्यो वृष्टिमाँ इव ।
स्तोमैर्वत्सस्य वावृधे ॥ १ ॥

भा०—जो ऐश्वर्यवान् पुरुष या परमेश्वर बल पराक्रम में बड़ा है, और वर्णन करने वाले मेघ के समान समस्त प्रजाओं पर सुख-सामग्री प्रदान करता है, वह स्तुति करने हारे या राष्ट्र में बसने वाले प्रजाजन को नित्यप्रति बढ़ता है।

प्रजामृतस्य पिप्रतः प्र यद् भरन्त वह्नयः
विप्रा ऋतस्य वाहसा ॥ २ ॥

भा०—जब राज्यकार्य को वहन करने वाले नेतागण, विवाहित

गृहस्थों के समान, सत्य व्यवहार का पालन करते हुए, प्रजा का अच्छी प्रकार भरण पोषण करते हैं, तब विद्वान् पुरुष सत्य के प्राप्त कराने वाले ज्ञान से युक्त होते हैं।

कण्वा इन्द्रं यदक्रत स्तोमैर्यज्ञस्य साधनम् ।
जामि ब्रुवत आयुधम् ॥ ३ ॥

भा०—मेधावी पुरुष जब उत्तम ज्ञानयुक्त स्तुति-वचनों और पदाधिकारों से ही परस्पर सुसंगत राष्ट्र पालन के कार्य के साधने वाले राजा को समर्थ कर देते हैं, तब वे हथियार आदि को निष्प्रयोजन कहा करते हैं।

सुव्यवस्थित राज्य-शासन में चोर आदि का भय न होने से स्वयं जीवन सुरक्षित रहता है। फिर हथियार रखने की आवश्यकता नहीं है।

[१३९] माता, पिता, विद्वान्।

शशकर्ण ऋषिः। अश्विनौ देवते। १,४ बृहत्यौ। २,३, गायत्र्यौ, शेषाः अनुष्टुभः। ५ ककुप्। पञ्चर्चं सूक्तम्।

आ नूनमश्विना युवं वत्सस्य गन्तमवसे ।
प्रास्मै यच्छतमवृकं पृथुच्छर्दिर्युयुतं या अरातयः ॥ १ ॥

भा०—हे राज्य के संचालक दो मुख्य पुरुषो! तुम दोनों, बच्चे को माता पिता के समान, स्तुतिशील, एवं राष्ट्र में बसने वाले प्रजाजन को पुत्र जानकर उसकी रक्षा करने के लिये आओ, और उसको चोर आदि दुष्ट पुरुष और भेड़िये आदि हिंसक जीवों से रहित, तथा विस्तृत, पालनकारी, शरण प्रदान करो, और जो शत्रु हैं उनको पृथक् करो।

यदन्तरिक्षे यद् दिवि यत् पञ्च मानुषाँ अनु ।
नृम्णं तद् धत्तमश्विना ॥ २ ॥

भा०—हे विद्या में व्याप्त ज्ञाननिष्ठ और कर्मनिष्ठ विद्वान् पुरुषो! जो मनुष्यों के अभिमत पदार्थ अन्तरिक्ष में, जो द्यौलोक में, और जो पांच

प्रकार के मनुष्यों अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और निषाद इनमें निहित हैं प्रदान करो ।

ये वां दंसांस्यश्विना विप्रांसः परिमामृशुः ।
एवेत् काण्वस्यं बोधतम् ॥ ३ ॥

भा०—जो विद्वान् लोग तुम दोनों के कर्मों का विचार करते हैं उसी प्रकार तुम दोनों भी विद्वान् पुरुषों के हित का ज्ञान रखो, उनके हितपर भी विचार करो ।

अयं वां घर्मो अश्विना स्तोमेन परि षिच्यते ।
अयं सोमो मधुमान् वाजिनीवसू येन वृत्रं चिकेतथः ॥ ४ ॥

भा०—यह तुम दोनों का अभिषेक उत्तम गुण स्तुति और सत्योपदेश द्वारा सम्पादन किया जाता है । यह मधुर गुणों से युक्त राष्ट्र अथवा ज्ञानवान् सौम्य विद्वान् पुरुष है जिसके द्वारा तुम दोनों संग्राम करने हारी सेना को बसाकर, राष्ट्र के कार्य में विघ्न करने वाले शत्रु को रोग के समान दूर करते हो ।

यदप्सु यद् वनस्पतौ यदोषधीषु पुरुदंससा कृतम् ।
तेन माविष्टमश्विना ॥ ५ ॥

भा०—हे बहुत कर्मों में कुशल एवं पालन कर्म में सिद्धहस्त पुरुषो ! हे विद्याओं में व्यापकज्ञान वाले विद्वान् पुरुषो ! तुम दोनों जो रस या बल जलों और आप्त प्रजा जनों में, जो वनस्पति अर्थात् बड़े वृक्षों एवं प्रजा पालक पुरुषों में, और जो तीव्र रस वाली ओषधियों और तीव्र तेजस्वी सैनिक पुरुषों में उत्पन्न करते हो, उससे मुझ राष्ट्र की और पुरुष की रक्षा करो ।

[१४०] सत्यपालक दो अधिकारी ।

अश्विनौ देवते । शशकर्ण ऋषिः । अनुष्टुभः । पञ्चर्चं सूक्तम् ।

यन्नासत्या भुरण्यथो यद् वां देव भिषज्यथः ।
अयं वां वत्सो मतिभिर्न विन्धते हविष्मन्तं हि गच्छथः ॥ १ ॥

भा०—हे कभी भी असत्य व्यवहार न करने वाले, सदा सत्यपरायण पुरुषो ! क्योंकि तुम दोनों पालन पोषण करते हो, और शरीरों की चिकित्सा करते हो, इसलिये यह स्तुतिशील विद्वान् ही तुम दोनों को मनन करने योग्य स्तुतियों द्वारा केवल नहीं प्राप्त करता, प्रत्युत तुम दोनों अन्न और साधन सम्पन्न पुरुष के पास स्वयं भी प्राप्त होते हो ।

आ नूनमश्विनोर्ऋषिः स्तोमं चिकेत वामया ।
आ सोमं मधुमत्तमं घर्मं सिञ्चादथर्वणि ॥ २ ॥

भा०—विज्ञानद्रष्टा पुरुष निश्चय से ज्ञानमयी बुद्धि से अग्नि और जल तत्वों के यथार्थ गुणज्ञान को जान ले । वह हिंसा रहित जनों के पालक पुरुष में अति मधुर तथा तेज से युक्त बल को प्रदान करता है ।

आ नूनं रघुवर्तनिं रथं तिष्ठाथो अश्विना ।
आ वां स्तोमा इमे मम नभो न चुच्यवीरत ॥ ३ ॥

भा०—हे व्याप्त शक्ति तुम दोनों निश्चय से शीघ्रता से जाने वाले रथ में स्थित होते हो । तुम दोनों के ये स्तुति योग्य गुण जो मुझ द्वारा प्रकट किये गये हैं सूर्य के समान हमें भी प्राप्त हों ।

यदद्य वां नासत्योक्थैराचुच्युवीमहि ।
यद् वां वाणीभिरश्विनेवेत् काण्वस्य बोधतम् ॥ ४ ॥

भा०—हे सदा सत्य व्यवहारवान् ! हे विद्यावान् एवं पदाधिकार पर स्थित पुरुषो ! तुम दोनों के प्रशंसनीय वचनों द्वारा हम विद्वान् पुरुष बलों को बढ़ावें, और जब हम उत्तम वाणियों द्वारा तुम दोनों को ज्ञानोपदेश करें उस समय तुम दोनों विद्वान् के दिये उपदेश का बोध प्राप्त करो ।

यद् वां कक्षीवाँ उत यद् व्यश्व ऋषिर्यद् वां दीर्घतमा जुहाव ।
पृथी यद् वां वैन्यः सादनेष्वेवेदतो अश्विना चेतयेथाम् ॥ ५ ॥

भा०—हे व्यापक अधिकार वाले जनो ! तुम दोनों शासनशक्ति का

स्वामी, और जो विविध अश्वसेना का स्वामी, और तत्वज्ञानी, तथा प्रजा-पीड़ा का नाश करने वाला, और विद्वानों का हितकारी स्वयं बुद्धिमान् और विस्तृत भूमि का रक्षक, ये पुरुष जो तुम दोनों का बुलाते हैं, पदाधिकारी रूप से नियुक्त करते हैं, इसलिये सब गृहों में और पदाधिकारों में चेतना प्रदान करो।

[१४१] दो अधिकारी।

शशकर्ण ऋषिः। अश्विनौ देवता। अनुष्टुभः। पञ्चर्चं सूक्तम्।

यातं छर्दिष्पा उत नः परस्पा भूतं जगत्पा उत नस्तनूपा।
वर्तिं स्तोकाय तनयाय यातम् ॥ १ ॥

भा०—हे प्राण और अपान के समान राष्ट्र के दो अधिकारियो! तुम दोनों गृहों की रक्षा करने वाले, और हमारे परम पालक होकर प्राप्त होवो। और जगत् के पालक और हमारे शरीरों के पालक होवो। हमारे पुत्रों और सन्तति के हित के लिए हमारे गृहों तक को भी प्राप्त होवो।

यदिन्द्रेण सरथं याथो अश्विना यद् वा वायुना भवथः समोकसा
यदादित्येभिर्ऋभुभिः सजोषसा यद् वा विष्णोर्विक्रमणेषु
तिष्ठथः ॥ २ ॥

भा०—हे व्यापक अधिकार वाले दो शासको ! तुम दोनों जो कि ऐश्वर्यवान् मुख्य सम्राट् के साथ समान रथपर चढ़कर जाते हो, और समान पदाधिकार वाले, तीव्र गति से आक्रमणकारी सेनापति के साथ भी रहते हो, और अखण्ड शासन के प्रणेता १२ मासों के समान १२ मुख्य मन्त्रीगण के साथ, और ऋतुओं के समान ६ प्रधान राजसभा के अधिकारियों के साथ भी समान प्रेम व्यवहार वाले हो, और क्योंकि तुम दोनों प्रजा के व्यापक शासन वाले राजा के विविध कार्यों में भी रहा करते हो। और—

यद्द्याश्विनावहं हुवेय वाजसातये ।
यत् पृत्सु तुर्वणे सहस्तच्छ्रेष्ठमश्विनोरवः ॥ ३ ॥

भा०—और क्योंकि उक्त दोनों व्यापक अधिकारवान् पुरुषों को मैं ऐश्वर्य के लाभ, और संग्राम के करने के लिये भी बुलाता हूँ, और क्योंकि उनका शत्रुपराजय करने का सामर्थ्य संग्रामों के बीच में शत्रु के नाश करने में समर्थ होता है, इसलिए उन दोनों का रक्षणसामर्थ्य भी सबसे श्रेष्ठ है ।

आ नूनं यातमश्विनेमा हव्यानि वां हिता ।
इमे सोमासो अधि तुर्वशे यदाविमे कण्वेषु वामथ ॥ ४ ॥

भा०—हे व्यापक अधिकारवान् पुरुषो ! आप दोनों अवश्य प्राप्त होवो । तुम दोनों के लिये ये ग्रहण करने योग्य अन्न आदि भोग्य पदार्थ रखे हैं । ये ऐश्वर्य वाले पदार्थ जो चारों पुरुषार्थों की कामना करने वाले और यत्नशील प्रजाजन के अधिकार में हैं और ये समस्त ऐश्वर्य जो विशेष मेधावी विद्वान् पुरुषों में हैं वे सब तुम दोनों के लिये ही हैं ।

यन्नासत्या पराके अर्वाके अस्ति भेषजम् ।
तेन नूनं विमदाय प्रचेतसा छर्दिर्वत्साय यच्छतम् ॥ ५ ॥

भा०—हे सदा सत्य व्यवहार वाले तुम दोनों दूर देश में और समीप देश में भी जो रोगादि निवारक औषधि और उपद्रवों के निवारक उपाय हैं । हे उत्कृष्ट ज्ञान वाले पुरुषो ! उस उपाय से राज्य में सुख से बसने वाले विशेष हर्षवान् प्रजाजन को शरण या सुख प्रदान करो ।

[१४२] वेदवाणी ।

शशकर्ण ऋषिः । अश्विनौ देवते । १—४ अनुष्टुभः । ५, ६, गायत्र्यौ । षडृचं सूक्तम् ।

अभुत्स्यु प्र देव्या साकं वाचाहमश्विनोः ।
व्यावर्देव्या मतिं वि रातिं मर्त्येभ्यः ॥ १ ॥

भा०—उपदेशक और अध्यापकों की दैवी वाणी से मैं बोध प्राप्त करूं। वह प्रकाश-ज्ञानवाली वाणी मनुष्यों को मनन योग्य ज्ञान और शिष्यों को प्रदान करने योग्य प्रवचन भी विविधि प्रकार से प्रकट करती है।

प्र बोधयोषो अश्विना प्र देवि सूनृते महि ।
प्र यज्ञहोतरानुषक् प्र मदाय श्रवो बृहत् ॥ २ ॥

भा०—हे पापों को दग्ध करनेहारी ! हे पूजनीय ! हे उत्तम सत्य ज्ञान को धारण करने वाली ! हे ज्ञान प्रकाश देने वाली वेदवाणी ! तू नर नारी दोनों को भली प्रकार उन्नति के लिये जगा दे, प्रबुद्ध कर । हे परस्पर सुसंगत व्यवहारों के प्रवर्त्तक राजन् ! तू भी नरनारी दोनों को उत्तम ज्ञानवान् बना । तू हर्ष प्राप्त करने के लिये जो बड़ा भारी यश, ज्ञान और अन्न है, उसका प्रदान कर ।

यदुषो यासि भानुना सं सूर्येण रोचसे ।
आ हायमश्विनो रथो वर्तिर्याति नृपाय्यम् ॥ ३ ॥

भा०—हे पाप दग्ध करनेहारी ज्ञानवाणी ! तू अर्थप्रकाश रूप ज्ञा के साथ हमें प्राप्त होती है, और सूर्य के समान ज्ञान के अगाध सागर विद्वान् के साथ उसको प्राप्त होकर बड़े उत्तम रूप से प्रकाशित होती है। तब ही नर नारी दोनों का यह रमण योग्य, सुखजनक व्यवहार नरों के पालन करने वाले देह और गृह को प्राप्त होता है ।

यदापीतासो अंशवो गावो न दुह्र ऊधभिः ।
यद्वा वाणीरनूषत प्र देवयन्तो अश्विना ॥ ४ ॥

भा०—जब कुछ कुछ पीले पीले रंग के किरण थनों से दूधों के समान उत्पन्न होते हैं, और जब देवोपासना करनेहारे उपासक जन वाणियों द्वारा स्तुति करते हैं, तब विद्या में पारंगत गुरु और ज्ञानी पुरुष हमें उत्तम रीति से प्रबुद्ध, ज्ञानवान् करें ।

प्र द्युम्नाय प्र शवसे प्र नृषाह्याय शर्मणे ।
प्र दक्षाय प्रचेतसा ॥ ५ ॥

भा०—उत्कृष्ट ज्ञान वाले आचार्य और अध्यापक दोनों, यश, उत्कृष्ट धन, बल, शत्रु दमनकारी बल एवं ज्ञान और कर्म सामर्थ्य के लिये हमें नित्य उत्तम शिक्षा से ज्ञानवान् करें ।

यन्नूनं धीभिरश्विना पितुर्योना निषीदथः ।
यद्वा सुम्नेभिरुक्थ्या ॥ ६ ॥

भा०—हे विद्या और कर्म में पारंगत आचार्य और अध्यापक एवं विद्वान् स्त्री पुरुषो ! क्योंकि आप दोनों कर्मों और ज्ञानों से पालक पिता के स्थान पर विराजते हो, और क्योंकि तुम दोनों सुखकारी उपायों और ज्ञानों से भी पिता के पद पर बैठने योग्य हो इसलिये तुम दोनों प्रशंसा के योग्य हो ।

[१४३] विद्वानों के कर्तव्य ।

पुरुमीढाजमीढावृषी । वामदेव ऋषिः । ९ मेधातिथिर्मेध्यातिथी ऋषी ।
त्रिष्टुभः । ८ मधुमती ।

तं वां रथं वयमद्या हुवेम पृथुज्रयमश्विना संगतिं गोः ।
यः सूर्यां वहति बन्धुरायुर्गिर्वाहसं पुरुतमं वसूयुम् ॥ १ ॥

भा०—हे आचार्य और गुरो ! आज हम तुम्हारे, ज्ञान-वाणी क प्राप्त कराने वाले, अति विस्तृत शक्ति वाले, वाणियों को धारण करने वाले, विद्वान् ब्रह्मचारी छात्रों अन्तेवासी वसुओं की कामना करने वाले, सबको प्रसन्नकारी रमणीय स्वरूप को प्राप्त करें जो कि सबके आधार-भूत विद्वानों के हित की वाणी को धारण करता है ।

युवं श्रियमश्विना देवताता दिवो नपाता वनथः शचीभिः ।
युवोर्वपुरभि पृक्षः सचन्ते वहन्ति यत् ककुहासो रथे वाम् ॥२॥

भा०—हे अश्विगण ! दोनों तुम देवस्वरूप हो । तुम ज्ञानशक्ति को कभी नष्ट नहीं होने देते । और अपनी प्रज्ञाओं, बुद्धियों के कारण परम शोभा को प्राप्त हो । जब तुम दोनों को उत्तम बैल और अश्व रथ में ले जाया करें तब तुम दोनों के शरीरों को नाना प्रकार के अन्न आदि पुष्टि-जनक पदार्थ प्राप्त होते हैं ।

को वामद्या करते रातहव्य ऊतये वा सुतपेयाय वार्कैः ।
ऋतस्य वा वनुषे पूर्व्याय नमो येमानो अश्विना ववर्तत् ॥३॥

भा०—हे विद्याओं में पारंगत आचार्य और गुरुजनो ! या विद्वान् स्त्री पुरुषो ! आज कौन अन्नादि का दानशील पुरुष तुम दोनों की जीवन-रक्षा के लिये, और आदर सत्कार के कर्मों द्वारा उत्पन्न सोमरस आदि पान योग्य पदार्थों के पान के लिये प्रबन्ध करता है ? और उत्साही शिष्य सत्यज्ञान वेद के सबसे पूर्व विद्यमान सेवनीय ज्ञान के लिये, तुम्हारे पास नमस्कार और आज्ञा पालन के व्रत को प्राप्त होकर रह रहा है ।

हिरण्ययेन पुरुभू रथेनेमं यज्ञं नासत्योप यातम् ।
पिबाथ इन्मधुनः सोम्यस्य दधथो रत्नं विधते जनाय ॥ ४ ॥

भा०—हे कभी असत्याचरण न करने हारे विद्वान् पुरुषो ! शिष्यों द्वारा बहुत अधिक संख्या में हो जाने वाले आप दोनों सुवर्ण या लोहे के बने दृढ़ रथ से इस यज्ञ को प्राप्त होओ । सोम से युक्त तथा मधु के समान उत्तम औषधिरस से युक्त अन्न का आप दोनों पान करो । और परिचर्या करने वाले पुरुष को उत्तम ज्ञानरत्न प्रदान करो ।

आ नो यातं दिवो अच्छा पृथिव्या हिरण्ययेन सुवृता रथेन ।
मा वामन्ये नि यमन् देवयन्तः सं यद् ददे नाभिः पूर्व्या वाम् ॥५॥

भा०—हे अश्विय एक रथ में संयुक्त अश्वों के समान एक कार्य में

एकत्र नियुक्त हे विद्वान् पुरुषो ! तुम दोनों आकाशमार्ग से और पृथिवी-मार्ग से भी अच्छी प्रकार चलने वाले रथ से हमें प्राप्त होओ। जब कि पूर्व का कोई बांधने वाला कारण बांधता हो तो दूसरे लोग आप विद्वानों की परिचर्या करने के इच्छुक होकर तुम दोनों को न बांधे। जब दूसरे से कोई वचन हो जाय तो वे उसको निभाने के लिये औरों से उसी समय न बंधे, प्रत्युत पूर्व स्वीकृत कार्य को यथासमय करने के लिये शीघ्र यान द्वारा समय पर पहुंचे।

नू नो रयिं पुरुवीरं बृहन्तं दस्रा मिमाथामुभयेष्वस्मे। नरो यद् वामश्विना स्तोममावन्त्सधस्तुतिमाजमीळ्हासो अग्मन् ॥ ६ ॥

भा०—हे दर्शनीय तथा दुःखों का क्षय करने हारे आप दोनों हमारे स्त्रीवर्ग और पुरुष-वर्गों में बहुत से वीर पुरुषों और पुत्रों से युक्त बड़े भारी ऐश्वर्य को उत्पन्न करो। जब तुम्हारे स्तुति समूहों को समस्त पुरुष प्राप्त होते हैं तब धनाढ्य पुरुष भी तुम्हारी स्तुति उनके साथ ही करते हैं।

इहेह यद् वां समना पपृक्षे सेयमस्मे सुमतिर्वाजरत्ना।
उरुष्यतं जरितारं युवं ह श्रितः कामो नासत्या युवद्रिक् ॥ ७ ॥

भा०—हे समान चित्त वालो ! और हे ऐश्वर्य, बल, वीर्य रूप रत्न को धारण करने वालो ! जो उत्तम बुद्धि इन इन नाना कर्मों में तुम दोनों को प्राप्त है, वह उत्तम बुद्धि हमें भी प्राप्त हो। तुम दोनों ही गुण स्तवन करने वाले विद्वान् की रक्षा करो। हे सत्याचरण करने हारे विद्वानो ! अभिलाषा तुम्हारे आश्रय पर स्थित है।

मधुमतीरोषधीर्द्याव आपो मधुमन्नो भवत्वन्तरिक्षम्।
क्षेत्रस्य पतिर्मधुमान्नो अस्त्वरिष्यन्तो अन्वेनं चरेम ॥ ८ ॥

भा०—हमारे लिये ओषधियां मधुर गुण वाली हों। और सूर्य की

किरणें और प्रकाशमान अग्नि, सूर्य, चन्द्र आदि पदार्थ सुखकारी हों। हमें अन्तरिक्ष सुखकर, उत्तम जल वायु के देने वाला हो। हमारा क्षेत्र का पालक किसान वर्ग भी मधुर अन्नादि पदार्थों से समृद्ध हो। हम किसी प्रकार की हिंसा न करते हुए कृषक वर्ग के क्षेत्र के स्वामी के हित और आज्ञा के अनुकूल होकर वर्ताव करें।

पुनाय्यं तदश्विना कृतं वां वृषभो दिवो रजसः पृथिव्याः।
सहस्रं शंसा उत ये गविष्टौ सर्वां इत् ताँ उप याता पिबध्यै ॥९॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो ! तुम दोनों का वह नाना प्रकार का किया हुआ कार्य स्तुति करने योग्य है। द्यौलोक से वर्षण करने वाला सूर्य, अन्तरिक्ष से वर्षण करने वाला मेघ, और उसके समान भूलोक का भी सर्वश्रेष्ठ सुखों का वर्षक नरपति, और वाणी, पृथिवी और इन्द्रियों के प्राप्तिकार्य में हजारों स्तुतिकर्त्ता ज्ञानप्रद विद्वान् पुरुष हैं उन सबको, पान करने के लिये तथा ज्ञान-रस ग्रहण करने के लिये तुम सब लोग प्राप्त होवो।

इति नवमोऽनुवाकः।

शस्त्रकाण्डं नाम विंशं काण्डं समाप्तम्।

अथर्ववेदसंहिता च संपूर्णा।

रसवस्वङ्कचन्द्राब्दे पौषे शुक्ले बुधेऽहनि।
चतुर्दश्यां पूर्त्तिमागाद्विंशं काण्डमथर्वणः॥
ज्ञानविज्ञानसंपूर्णो नानाधर्मपरिष्कृतः।
कुर्याच्छिवमधीतो नो वेदज्ञानमयः प्रभुः॥
मानुषोऽहं स्वल्पमतिः स्वभावेन स्वलद्-गतिः।
इति ज्ञानवतां क्षम्योऽनुग्राह्यस्तद्-दयादृशा॥

आगमप्रवणश्चाहं नापवाद्यः स्खलन्नपि ।
नहि सद्-वर्त्मना गच्छन् स्खलितेष्वप्यपोद्यते ॥
गच्छतः स्खलनं क्वापि भवत्येव प्रमादतः ।
हसन्ति दुर्जनास्तत्र समादधति सज्जनाः ॥
का खलेन सह स्पर्द्धा सज्जनस्याभिमानिनः ।
भाषणं भीषणं साधुदूषणं यस्य भूषणम् ॥

इति प्रतिष्ठितविद्यालंकार-मीमांसातीर्थविरुदोपशोभित-श्रीमत्पण्डितजयदेवशर्मणा-
विरचितेऽथर्वणो ब्रह्मवेदस्यालोकभाष्ये विंशं काण्डं समाप्तम् ।
समाप्तं चाथर्ववेदालोकभाष्यम् ॥ शिवम् ॥ ओ३म् खं ब्रह्म ॥

४. पातञ्जल योगप्रदीप—लेखक श्री स्वामी ओमानन्दजी महाराज । २०× २६=८ पेजी के लगभग ८०० पृष्ठ तथा योगासनों के अनेक चित्र भी दिये हैं ।

मूल्य १२)

५. क्या वेद में इतिहास है ?—ले० पं० जयदेव शर्मा विद्यालंकार । इस विषय पर युक्ति एवं खोजपूर्ण कोई प्रामाणिक ग्रंथ नहीं था । उसी विषय की महान् कमी को विद्वान् लेखक ने इसमें पूरा किया है । मूल्य २॥)

६. 'वेदोपदेश'—रचयिता—श्री स्वामी वेदानन्दजी तीर्थ—यह पुस्तक "वैदिक राष्ट्रगीता" कहलाने योग्य है । इस पुस्तक के पाठ से मातृभूमि, प्रजाप्रेम और स्वराज्य सुख के उत्तम भाव हृदय में जागृत होते हैं । मूल्य १)

७. कर्म-मीमांसा—ले० आचार्य वैद्यनाथ शास्त्री । इसमें पाश्चात्य और पौरस्त्य सभी दृष्टियों से कर्म के विविध विषयों और कर्त्तव्याकर्त्तव्य पर विचार किया गया है । दर्शन के विद्यार्थियों, जन साधारण तथा विज्ञजनों सभी के लिये अत्यन्त उपयोगी है । मूल्य २)